श्री १०८ दिगम्बर जैनाचार्य देशभूषण महाराज के

आशीर्वाद सहित

भारत को परतंत्रता की शृंखलाओं से मुक्त कराने वाली

तथा

स्वतंत्रता का स्वर्णमयी प्रभात दिखाने वाली

एक मात्र प्रतिनिधि संस्था

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस

के

मनोनीत निर्वाचित अध्यक्ष

श्री उच्छंरंगराय नवलशंकर ढेबर

के कर कमलों में

सर्व भाषामयी अपूर्व ग्रन्थराज सिरि भूवलय

सादर समर्पित है।

पौष शुक्ला १, सं० २०१४
वीर निर्वाण सम्वत २४८४

श्री भूवलय प्रकाशन समिति
(जैन मित्र मंडल) धर्मपुरा देहली ।

प्रकाशकीय वक्तव्य

महान ग्रन्थराज श्री भूवलय का परिचय जब भारत के राष्ट्रपति महामहिम डा० राजेन्द्रप्रसाद जी को दिया गया तो उन्होंने इसको संसार का आठवां आश्चर्य बताया। इस महान ग्रन्थ की रचना आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ कुमुदेन्दु स्वामी ने की थी। आचार्य श्री कुमुदेन्दु नन्दी-पर्वत के समीप, बेंगलौर से ५८ मील दूर एलबल्ली स्थान के रहनेवाले थे। वे मान्यखेट के राष्ट्रकूट राज के सम्राट अमोघवर्ष के राजगुरु थे। यह अपूर्व ग्रन्थ अन्य ग्रन्थों से विलक्षण ६४ अङ्कों में है जिससे कन्नड़ भाषा के ह्रस्व, तथा दीर्घ आदि अक्षर बनते हैं। यह ग्रन्थराज जैन धर्म की विशेषतया तथा अन्य धर्मों की संस्कृति का पूर्ण परिचय देता है। यह विज्ञान का भी एक अपूर्व ग्रन्थ है। इस ग्रन्थराज में १८ महान भाषाएँ तथा ७०० कनिष्ठ भाषाएँ गर्भित हैं। यदि इस ग्रन्थराज को भली प्रकार समझा जाए तो इसके द्वारा मनुष्य का ज्ञान बहुत अधिक उन्नति कर सकता है। इस ग्रन्थ का कुछ भाग माइक्रो फिल्म कराया जा चुका है और इसे भारत के राष्ट्रीय संग्रहालय में राष्ट्रपति के आदेशानुसार रखा गया है।

गत वर्ष जैन प्रदर्शनी तथा सेमिनार के आयोजन पर इस ग्रन्थराज की प्रदर्शनी की गयी थी। जनता इसको देखकर आश्चर्य चकित तथा मुग्ध हो गयी थी। जनता की पुकार थी कि इसे शीघ्र प्रकाश में लाया जाए।

यह ग्रन्थराज स्वर्गीय श्री पं० यल्लप्पा शास्त्री, ३५६ विश्वेश्वरपुर सर्किल बेंगलौर के पास था। वे भी गत वर्ष देहली में थे। इस ग्रन्थराज के प्रति उनकी अपूर्व श्रद्धा तथा भक्ति थी। वे प्रातः स्मरणीय विद्यालंकार आचार्य रत्न श्री १०८ देश भूषण जी महाराज के जोकि गत वर्ष देहली में चतुर्मास कर रहे थे सम्पर्क में आये आचार्य श्री के हृदय में जैन धर्म तथा जैन ग्रन्थों की प्रभावना की तो एक अपूर्व लगन है ही। आचार्य श्री ने इस गन्थ की उपयोगिता देखकर इस ग्रन्थराज को प्रकाश में लाने का निश्चय किया। गत वर्ष इस विषय में काफी प्रयत्न किया गया। चतुर्मास समाप्ति पर आचार्य श्री ने देहली से विहार किया अतः ग्रन्थराज के प्रकाशन का कार्य स्थगित सा हो गया। आचार्य श्री सदैव इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने के लिए पूछते रहे परन्तु हम अपनी विवशताएं बताते रहे। अन्त में जब आचार्य श्री गुड़गावें में थे तो देहली के प्रमुख सज्जनों ने आचार्य श्री से प्रार्थना की---कि वे जबतक देहली न पधारेंगे इस कार्य का, आरम्भ होना असम्भव है। आचार्य श्री पहले दो चतुर्मास देहली में कर चुके थे अतः देहली नहीं आना चाहते थे। परन्तु देहली निवासी लगातार आचार्य श्री को इस महान ग्रन्थराज के प्रकाश में लाने के हेतु देहली आने के लिए आग्रह करते रहे। अन्त में आचार्य श्री ने इस कार्य को महानता तथा उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए इस वर्ष देहली आना स्वीकार किया।

आचार्य श्री अप्रैल १९५७ में देहली पधारे। तत्काल ही तार आदि देकर श्री यल्लप्पाजी शास्त्रीको बेंगलौरसे बुलाया गया। भाग्यवश भारतके प्रमुख उद्योगपति धर्मवीर दानवीर, गुरु भक्त श्री युगल किशोर जी बिडला—जोकि आचार्य श्री को अपना धर्म गुरु ही मानते हैं। इस ग्रन्थ से बहुत प्रभावित हुए उन्होंने भी यह प्रेरणा की कि इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाया जाए और उन्होंने क्रियात्मक रूप से सहयोग के नाते इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जो विद्वानों पर व्यय हो वह देना स्वीकार किया। उनके इस महान दान से हमको और भी प्रेरणा मिली। ग्रन्थ के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक नियमित समिति देहली की प्रमुख साहित्यिक संस्था जैन मित्र मण्डल धर्मपुरा देहली के तत्वावधान में ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति के नाम से स्थापित की गयी जिसमें देहली नगर के प्रमुख सज्जनों ने अपना सहयोग दिया। समिति वर्तमान में निम्न प्रकार है।

संस्थापक—दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज।

संरक्षक—श्री सर्वार्थसिद्धि संघ बेंगलौर।

सभापति—ला० अजितप्रसाद जी ठेकेदार।

उपसभापति—ला० मनोहरलाल जी जौहरी ।
,, ला० मुन्शीलाल जी कागजी
मन्त्री—श्री महताबसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० ।
,, ,, आदीश्वरप्रसाद जी एम० ए० ।
,, ,, पन्नालाल जी प्रकाशक तेज ।
कोषाध्यक्ष—श्री नेमचन्द जी जौहरी ।
संशोधक स्वर्गीय श्री यल्लप्पा शास्त्री ।
प्रकाशन प्रबन्धक—ला० छुट्टनलाल जी कागजी ।
,, ,, श्री मुनीन्द्रकुमार जी एम० ए० जे० डी०
,, ,, ,, रघुवरदयाल जी ।
सदस्य—ला० श्यामलाल जी ठेकेदार ।
,, जोतिप्रसाद जी टाइप वाले ।
,, प्रेमचन्द जी जैनावाच कम्पनी
,, शान्तिकिशोर जी ।
,, रणजीतसिंह जी जौहरी ।
,, रामकुमार जी ।

ग्रन्थराजके संशोधन तथा भाषानुवाद का कार्य आचार्य श्री की छत्रछाया में क्षुल्लिका विशालमती माताजी,स्वर्गीय श्री यल्लप्पाशास्त्री, पं० अजितकुमार जी शास्त्री तथा पं०रामशंकरजी त्रिपाठी द्वारा शुरू किया गया । मुद्रण का कार्य श्री देशभूषण मुद्रणालय को दिया गया। कार्य सुचारु रूपसे चलता रहा । आचार्य श्री लगभग ८ घण्टे प्रतिदिन इस ग्रन्थराज के लिए देते रहे हैं । इसी प्रकार यल्लप्पा शास्त्री जी भी दिन रात इस कार्य में संलग्न रहे । इसी बीच में एक महान दुर्घटना हो गयी जैसा कि सदैव होता ही है । भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शीघ्र ही देश को राष्ट्र पिता महात्मा गांधी की आहुती देनी पड़ी उसी प्रकार इस ग्रन्थ के प्रकाश में आने से पहिले ही इस ग्रन्थ के संरक्षक श्री यल्लप्पा शास्त्री, अपने घर बेंगलौर से दूर इसी देहली में २३ अक्टूबर १९५७ को स्वर्गवास कर गये । आप केवल एक दिन ही बीमार रहे । आपका निधन एक महान वज्रपात है, और आज भी समझ नहीं आती कि उनकी अनुपस्थिति में यह समिति क्या कर सकेगी । हम तो स्वर्गीय के प्रति श्रद्धा के दो फूल ही चढ़ा सकते हैं । केवल इतना और कह सकते हैं कि हम अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न करेंगे कि जो कार्य हम स्वर्गीय के जीवन में न करसके वह उनके निधन के बाद अवश्य पूरा करें ।

इस ग्रन्थराज का आरम्भ में इस समय केवल मंगल प्राभृत ही २५० पृष्ठों में प्रकाशित किया जा रहा है । ग्रन्थराज बहुत विशाल है और इसको पूर्णतया प्रकाश में लाने के लिए सहस्रों पृष्ठ प्रकाशित करने पड़ेंगे । आर्य धर्म शिरोमणि श्री युगलकिशोर जी बिड़ला ने इस कार्य में अपना पूरा सहयोग देने की स्वीकारता दी है । गत सप्ताह जैन जाति शिरोमणि दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी तथा उनकी सौभाग्यवती पत्नी रमारानी जी देहली में थीं । वे दोनों आचार्य श्री के दर्शनार्थ उनके पास आये थे । वे इस ग्रन्थ से तथा इस ग्रन्थ के प्रति आचार्य श्री की लगन से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने यह आश्वासन दिया है कि इसके भविष्य के कार्य-क्रम की रूप रेखा आदि उनके पास भेज देने पर वे पूर्ण रूप से इस ग्रन्थ के उद्धार तथा प्रकाशन में सहयोग देंगे । हमें आशा है कि उनके तथा बिड़ला जी के सहयोग से तथा आचार्य श्री के आशीर्वाद से हम इस कार्य को भविष्य में भी प्रगति दे सकेंगे ।

हमें इस कार्य में देहली जैन समाज के अतिरिक्त दिगम्बर जैन समाज गुड़गावां, गोहाना, रिवाड़ी, फरुखनगर तथा रोहतक आदि से भी आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है । ग्रन्थ के मुद्रण में जो कागज लगा है उसका अधिकतर देहली के माननीय सज्जनों ने उठाया है जिनमें निम्न नाम विशेष उल्लेख-हैं । ला० सिद्धोमल जी कागजी, ला० मनोहरलाल जी जौहरी, ला० मुन्शीलाल जी कागजी, ला० नेमचन्द जी जौहरी, ला० नन्नूमल जी कागजी, ला० जयगोपाल जी आदि ।

इस ग्रन्थ की आरम्भ में २००० प्रतियां मुद्रण की जा रही हैं । इनमें से १००० प्रतियों का समस्त व्यय देहली जैन समाज के प्रमुख धर्म-निष्ठ दानी स्वर्गीय ला० महावीर प्रसाद जी ठेकेदार ने अपने जीवन में ही देना स्वीकार किया था । ग्रन्थ के मुद्रण को अधिक से अधिक सुन्दर बनाने में

देशभूषण मुद्रणालय के समस्त कर्मचारी गण तथा उसके प्रबन्धक श्रीचन्द जी जैन ने विशेष प्रयत्न किया है जिसके लिए हम उनके अभारी हैं।

अन्त में हम आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। आचार्य श्री के ही सतत प्रयत्नों तथा लगन के फलस्वरूप आज हम इस महान ग्रन्थ को प्रकाशित करते हुए अपने को धन्य मान रहे हैं। हमें स्वर्गीय श्री यल्लप्पा शास्त्री के दोनों पुत्र श्री धर्मपाल तथा शान्तिकुमार के सहयोग की भी अत्यन्त आवश्यकता है तथा हमें विश्वास है कि वे भी अपने पूज्य पिता की भांति इस कार्य में सहयोग देते रहेंगे। अन्त में हमारा समस्त जैन समाज से निवेदन है कि वह इस कार्य में हमें अपना पूर्ण सहयोग तन-मन-धन से दें। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जैन संस्कृति की प्राचीनता तथा उसका महत्व संसार में सूर्य के समान प्रसरित होगा।

हम हैं आचार्य श्री के आशीर्वाद के अभिलाषी—

सभापति	अजितप्रसाद जैन ठेकेदार।	मन्त्री	आदीश्वरप्रसाद जैन एम० ए०।
मन्त्री	महताबसिंह जैन बी० ए० एल० एल० बी०।	,,	पन्नालाल (तेज अखबार)।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति

जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा देहली।

श्रीभूवलय-परिचय

श्रीकुमुदेन्दु आचार्य और उनका समय

श्रीकुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र (इन्दु शब्दका अर्थ 'चन्द्र' है) नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। एक कुमुदुचन्द्र आचार्य कल्याणमन्दिर स्तोत्रके कर्ता हैं। एक कुमुदचन्द्र आचार्य महान वादी वाग्मी विद्वान हुए हैं जिन्होंने श्वेताम्बरों के साथ शास्त्रार्थ किया था। एक कुमुदेन्दु सन् १२७५ में हुए हैं जो श्री माघनन्दि सिद्धांत चक्रेश्वर के शिष्य थे उन्होंने **रामायण** ग्रंथ लिखा है। किन्तु इस ग्रन्थ राज भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य इन सबसे भिन्न प्रतीत होते हैं।

श्री देवप्पा का पिरिया पट्टन में लिखा हुआ **कुमुदेन्दु शतक** नामक कानड़ा पद्यमय पुस्तक है उसमें भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य का उल्लेख है। देवप्पा ने कवि माला तथा काव्यमाला का विचार करते हुए संगीत मय कविता लिखी है, उसमें भूवलय कर्ता कुमुदेन्दु आचार्य का आलंकारिक वर्णन है। कुमुदेन्दु शतक के कुछ कानड़ो पद्य यहाँ बतौर उदाहरण के दिये जाते हैं– कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने माता पिता का नामका उल्लेख तो नहीं किया परन्तु मुनि होने के बाद इस भूवलय नामक विश्व काव्य की रचना करते समय अपना कुछ परिचय दिया, वह निम्न पद्यों से प्रकट है :

ओदिसिदेनु कर्माटकद जनरिगे । श्री दिव्यवाणिय क्रमदे ।।
श्रीदया धर्म समन्वय गणितद । मोदद कयेयनालिपुदु ।।
वरद मंगलद प्राभृतद महाकाव्य । सरणियोळ्गुरुवीरसेन ।।
गुरुगळमतिज्ञान दरिविगेसिलेकिह । अरहंत केवलज्ञान ।
जनिसलु सिरिवीरनेर शिक्षपन घनवाद काव्यदकयेय ।।
जिनसेन गुरुगळ तनुविनजन्मद घनपुण्यवरधर्मनवस्त ।।
नाना जनपद वेल्लदरोळुधर्म । तानु क्षीणिसि बपगि ।।
तानल्लि मान्यखेटददोरे जिन भक्त । तानुअमोघ वर्षांक ।

कवि कर्नाटक जनता को सम्बोधन करते हुए कहते हैं :—

अर्थ—श्री कुमुदेन्दु आचार्य का ध्येय विशालकीर्ति है, मुनिचर्याका पालन करना उनका गौरव (गुरुत्व) है, वे नवीन नवीन कीर्ति उत्पन्न करते थे, वे अवतारी महान पुरुष थे। सेनगण की कीर्ति फैलाने वाले थे। उनका गोत्र **सद्धर्म** है सूत्र वृषभ हैं, शाखा द्रव्यांग है, वंश इक्ष्वाकु है, सर्वस्वत्यागी सेन हैं। नवीन गण गच्छ के आनन्ददायक नेता थे। नव्य भारत में शुद्ध रुचिकार कर्माट राजा को उन्होंने भारत के निर्माण में अहिंसा धर्म की परिपाटी को बढ़ाने रूप आशीवाद दिया। समस्त भाषाओं और समस्त मतों का समन्वय और एकीकरण करने वाले भुवन विख्यात **भूवलय** ग्रन्थ की रचना की।

इस तरह देवप्पा ने भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु (कुमुदचन्दु) आचार्य का परिचय दिया है। भूवलय ग्रन्थ से प्रतीत होता है कि कर्माटक चक्रवर्ती मान्यखेट के राजा राष्ट्रकूट अमोघवर्ष को भूवलय द्वारा कुमुदेन्दु आचार्य ने व्याख्या के साथ करणसूत्र समझाया था।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य के दिये हुए विवरण को परशीलन करके देखा जाय तो वे सेनगण, ज्ञातवंश, सद्धर्म गोत्र, श्री वृषभ सूत्र, द्रव्यानुयोग शाखा, और इक्ष्वांकु वंश परम्परा में उत्पन्न हुए तथा सेनगण में से प्रगट हुए नव गण-गच्छों की व्यवस्था की।

श्री कुमुदेन्दु को सर्वज्ञ देव की सम्पूर्ण वाणी अवगत थी अतः वे महान ज्ञानी, धुरन्धर पंडित थे लोग इन्हें सर्वज्ञ तुल्य समझते थे। और इनके पहले के मंगल प्राभृत भूवलय को गणित पद्धति के अनुसार जानने वाला श्री वीरसेनाचार्य को बतलाया है। तथा श्री जिनसेन आचार्य का "शरीर जन्म से उत्पन्न हुआ घनपुण्यवर्द्धन वस्तु" विशेषण द्वारा स्मरण करके वीरसेन के बाद श्री जिनसेन, आचार्य को गौरव प्रदान किया है।

जहां तक हमको ज्ञात है। अंक राशि से निर्मित अन्य कोई ऐसा साहित्य ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नहीं आया। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने परम गुरु वीर सेन आचार्य की सम्मति से बनाये गये इस "सव भाषामय कर्नाटक काव्य" में वीरसेन आचार्य से पहले की गुरु परम्परा का निम्न रूप में उल्लेख किया है—

वृषभ सेन, केसरिसेन, वज्रचामर, चारुसेन, वज्रसेन अदत्तसेन, जलजसेन, दत्तसेन, विदर्भसेन, नागसेन, कुंथुसेन, धर्मसेन मंदरसेन जयसेन, सद्धर्मसेन, चक्रबंध, स्वयंभूसेन, कुंभसेन, विशालसेन, मल्लिसेन, सोमसेन, वरदत्तमुनिः स्वयंप्रभारती, और इंद्रभूति (२४ तीर्थंकरों के आदि गणधरों) के अनन्तर "वायु भूति, अग्निभूति सुधर्मसेन, आर्यसेन मुंडिपुत्र, मैत्रेय सेन अकंपसेन, आंध्र गुरु [भग० महावीर के] गणधर हुए। इनके बाद श्री प्रभावसेन, ने हरि-शिव शंकर गणित के एक महान ज्ञाता बनारस [काशीपुरी] में वाद विवाद करके जीता और गणितांक रूप **पाहुड ग्रंथकी रचना** करके दूसरे गणधर पदकी प्रशस्ति प्राप्त की। [अ०, १३, ५०, ८७, ९८, ११९]

गुरु परम्परा—

गुरु परंपरा के इस भूवलय, आगे **"पसरिपकन्नाडिनोडेयर पिसुण तेयळिद कन्नडिगर्क सवरनाडिनोळ्चनिपर"**

इस प्रकार कर्नाटक सेन गण के द्वारा संरक्षण तथा संवृद्धि को प्राप्त कर "हरि, हर, सिद्ध, सिद्धांत, अरहन्ताशा भूवलय" [६, १८६-१९०] धरसेन गुरु के निलय [७, १९] इस गाथा नम्बर से उद्धृत होकर धरसेनाचार्य से, अर्थात् धरसेन आचार्य करुणा के पांच गुरु को परम भक्ति से आने वाले अक्षरांक काव्य की रचना करके प्राकृत, संस्कृत, और कानडी इन तीनों का मिश्रित करके पद्धति ग्रन्थ का इस १३–२१२ अन्तर श्रेणी के ४० श्लोक तक संस्कृत, प्राकृत, कर्नाटक रूप तीन भाषाओं के शास्त्रों का निर्माण हुआ तथा इस सरलमार्ग कोष्ठक काव्य [५-१-७७] को धरसेन आचार्य के पश्चात् भूतवली ने इस कोष्ठक बन्ध अंक [८-५१] रूप में भूवलय का नूतन प्राकृत दो संधि रूप में रचना कर गुरु उसे परम्परा तक लाये, इतना ही नहीं किन्तु इसके अतिरिक्त भूवलय के कर्नाटक भाग में ही शिवकोटि [४-१०-१०२] शिवायन [१०७] समन्तभद्र [४-१०-१०१] पूज्यपाद [१९-१०] इनके नामों को और भूवलय के प्राकृत संस्कृत भाग श्रेणियों में इन्द्रभूति गौतम गणधर नागहस्ति, आर्यमंक्ष और कुंद कुंदाचार्यादिक को स्मरण किया है। इस समय अंक राशि चक्र में छिपे हुए साहित्य में नवीन संगति के बाहर निकल आने के बाद इसके विषय में नये नये विचार प्रगट होंगे। हम इस समय जितना प्रगट करना चाहते थे। उतने ही, विषय को यहाँ दे रहे हैं।

श्री भूवलय को देख कर एवं समझकर, प्रभावित हुआ प्रिया पट्टन के जैन ब्राह्मण अत्रेय गोत्र का देवप्पा अपने कुमुदेन्दु शतक के प्रथम अंश में महावीर स्वामी से लेकर कुछ आचार्य का स्मरण कर उनको नमस्कार कर कुमुदेन्दु के विषय को कहा है। कि श्री वासुपूज्य त्रिविद्याधर देव के पुत्र उदय चन्द्र, इनके पुत्र विश्व विज्ञान कोविद् कीर्ति किरण प्रकाश कुमुदचन्द्र गुरु को स्मरण करते समय उद्धृत हुआ आदि गद्य—

श्रीं देशोगणपालितो बुधनुतह। श्री नंदिसंघेश्वरह।
श्री तर्कागमवार्धिहिम (म) गुरु श्री कुंद कुंदान्वयह॥
श्री भूमंडल राजपूजित सज्छ्रो पादपद्मद्वयो।
जीयात् सो कुमुदेंदु पंडित मुनिहि श्रीवक्रगच्छाधिपह॥

इस पद्य में देवप्पा ने इसी भूवलय के कर्ता कुमुदेन्दु को देशी गण नंदिसंघ कुंद कुंदाम्नाय का बतलाया है। नये गण गच्छ को निर्माण करके उन्हीं को उपदेश देने के कारण सेनगण में इन्हीं को उल्लेखित किया है, और देशीगण का भी उसी में से विकास हुआ हो, ऐसा जान पड़ता है। इस समय भी सेन गण के कर्नाटक प्रान्त में जैन परम्परा के संपालक एवं अनुयायी अनेक जैन विद्यमान हैं। और भूवलय ग्रन्थ के कर्ता कुमुदेन्दु गंग रस की विरदावली में दिये हुए कोडवड़ ग्राम तलेकात् अथवा तलेकाड नंदिगिरि को विश्ववंद्य जैनधर्म के पवित्र पर्वतों का वर्णन करते समय उनके सम्पूर्ण भाव जो नंदि पर्वत के ऊपर आदिनाथ तीर्थंकर का 'नंदि' चिन्ह जो बन गया है, वह रूप उनकी प्रशान्त भावना से ओत–प्रोत है। यह बात उनके वचनों से स्पष्ट होती है।

इहके नंदियु लोक पुज्य ॥८-५५॥ महति महावीर नन्दि ।५६। इहलोकदादियगिरिय । ६-५६। सुहुमान्न्द गणितदबेट्टा । महसीदुमहाव्रत भरत ।६१। वहिदनुव्रत नन्दि ।७२। सहनेय गुरुगल्ल बेट्ट ।७३। सहचर मूरारुमूरु ।७४।

इसका गंगराज के संस्थापक सिंह नन्दि मुनीन्द्र के द्वारा शक सं० १ ईस्वी सन् [७८] में निर्माण हुआ था। पहली राजधानी इनकी नंदिगिरि होनी चाहिए। हम ऐसा निश्चयतः कह सकते हैं कि प्रस्तुत कुमुदेन्दु उन्हीं सिंहनंदि वंश के हैं। इन्हीं की परम्परा का एक मठ सिंहणगद्य में हैं जहां जहां सेनगण है वहाँ वहाँ सब इन्हींके धर्म का क्षेत्र है। इस प्रकार संपूर्ण विषय का विचार करके दिये गए वर्णन को, जो कि देवप्पा ने दिया है, ठीक प्रतीत होता है।

भूवलय काव्य को देवप्पा ने विशेष रीति से समझ कर जनता के प्रति जो उपकार किया है वह उपकार विश्व का दसवां आश्चर्य है। इस भूवलय काव्य को, जो विश्व की समस्त भाषाओं को लिये हुए है। उनको रचना कर उन्होंने अपने पिता को लोक में महान गौरव प्रदान किया है। इससे सिद्ध होता है कि कुमुदेन्दु के पिता वासु पूज्य और उनके पिता उदयचन्द थे।

कुमुदेन्दु के समय का परिचय कराने के लिये अभी तक हमें जितने भी साधन प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर हम कह सकते हैं कि ग्रन्थ कर्ता के द्वारा उल्लिखित पूर्व पुरुषों के नामों का उल्लेख और उनका संक्षिप्त परिचय, तथा समकालीन व्यक्तियों के नाम, समकालीन राजाओं का परिचय, श्री कुमुदेन्दु का समय निर्द्धारण में सहायता करते हैं।

श्री कुमुदेन्दु से पूर्व होने वाले आचार्य धरसेन, भूतबली पुष्पदन्त, नागहस्ति, आर्य मंक्षु और कुंदकुंदादि, एवं अन्य रीति से उल्लिखित शिवकोटि, शिवायन, शिवाचार्य, पूज्यपाद, नागार्जुन ये सब विद्वान आठवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। उनकी परम्परा के ग्रन्थ न मिलने पर भी संस्कृत प्राकृत और कर्नाटक भाषा में लिखा हुआ विपुल साहित्य, तथा विश्वसेन भूतबली पुष्पदन्तादि की रचनाएँ विद्यमान हैं। पर उनमें कुमुदेन्दु के काव्य समान समस्त भाषाओं को समाविष्ट कर वस्तु तत्व दिखलाने का काव्य कौशल नहीं हैं।

श्री कुमुदेन्दु के विनीत शिष्य राजा अमोघ वर्ष ने अपने 'कविराज मार्ग' में कवियों के नामों का जो उल्लेख किया है वह इस प्रकार है:-

विमलोदय नागर्जुन । समेत जय बंधुदुर्विनीतादिगळी ॥
क्रमरोळ्चिगद्या । श्रम पद गुरु प्रतीतियंके य्कोन्डर् ॥

विमल, उदय, नागार्जुन, जयबंधु, दुर्विनीति कवियों में से नागार्जुन द्वारा रचित कक्षपुट तंत्र को समझा फिर नागार्जुन का 'कक्ष पुट तंत्र' जो पहले कानडी भाषा में था वह बाद में संस्कृत में परिवर्तन कर दिया गया इस तरह इस उल्लेख से अनुमान किया जाता है कि यह दुर्विनीत के शासन समय का साहित्य ही उपलब्ध है। विमल जयबंधु का काव्य हमें उपलब्ध नहीं हुआ है तो भी नृपतुंग अमोघवर्ष के ग्रन्थ में आने वाले कर्नाटक गद्य कवि प्रिया पट्टन के देवप्पा द्वारा कहे जाने वाले कुमुदेन्दु के पिता उदयचन्द्र का नाम ही 'उदय' है ऐसा कहने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। और इस भूवलय ग्रन्थ में आनेवाले पूज्यवाद आचार्य ने कल्याण कारक ग्रन्थ को बनाया ऐसा स्पष्ट होता है। क्योंकि कुमुदेन्दु से जो पूर्ववर्ती कवि थे उनका समय सन् ६०० से बाद का नहीं है। इस ग्रंथ से हमने जो कुछ समझा है वह प्रायः अस्पष्ट है, पूरा ग्रन्थ हमें देखने को नहीं मिला है। किन्तु हमने जो कुछ देखा है उससे यह भली भाँति विदित है कि कुमुदेन्दु आचार्य के लिखे अनुसार वाल्मीकि नाम के एक संस्कृत कवि हो गए हैं। ['कवि' वाल्मीकि रस दूत अणि सूबा'] इस प्रकार कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय ग्रंथ में शुद्ध रामायण अंक के कर्ता बाल्मीकि ऋषि के नामका उल्लेख किया है। परन्तु इनके विषय में अभी तक कुछ निर्णय नहीं हो सका है। कोई कहता है कि वह छठी शताब्दी के हैं कोई कहता है कि उसके बाद के हैं। इस तरह उनके समय सम्बन्ध का ठीक निर्णय नहीं हो सका है कि वे कब हुए हैं।

अमोघ वर्ष की सभा में वाद विवाद करके शिव-पार्वती गणित को कह कर चरक पैद्य के हिंसात्मक आयुर्वेद का खण्डन किया। इस तरह कुमुदेन्दु आचार्य के द्वारा कहा गया उक्त उल्लेख अभी तक अस्पष्ट है। आचार्य समन्तभद्र का उल्लेख भी अभी विचारणीय है। इस कथन से स्पष्ट है कि कुमु-

देन्दु के द्वारा उल्लेखित सभी कविजन छठी शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। कुमुदेन्दु के समकालीन व्यक्तियों में से एक वीरसेनाचार्य दूसरे जिनसेनाचार्य, वीरसेनाचार्य के द्वारा षट् खण्डागम की धवला टीका बनाई गई है। और जिनसेन महा पुराण के कर्ता है। उन्होंने अपनो जयधवला टीका शक सं० ७५९ में बना कर समाप्त की है और महा पुराण भी लगभग उसी समय वे अधूरा छोड़कर स्वर्गवासी हुए हैं जिसे उनके शिष्य गुणभद्र ने पूरा किया था अतः बाद में उस समय उनके शिष्य कुमुदेन्दु मौजूद थे ऐसा अनुमान किया जाता है।

३—कुमुदेन्दु आचार्य ने राष्ट्र कूट राजा अमोघ वर्ष को अपना यह ग्रंथ सुनाया था, ऐसा कहा जाता है। मान्यखेट के अमोघ वर्ष का समय इस से निश्चित रूप में कहा जा सकता है। कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने ग्रन्थ में अमोघ वर्ष के नाम का कई बार उल्लेख किया है। जैसे कि—

भारतदेशद मोघवर्षन राज्य। सारस्वतबेंबंग ।८१२६।
तनल्लि मान्यखेटददोरेजिनभक्त। तानुअमोघवर्षांक ।९-१४६।
सिहियखंडदकर्मटिकचक्रिय। महिमेमंडलभेज्ञरांतु ।९-१७२।
गुरुविनचरणधूळिय होमोघांक। दोरेयराज्य 'ळ्' भूवलय ॥
जानरमोघवर्षांकनसभेयोळु। क्षोणिशसर्वज्ञमतदि ॥
इह वे स्वर्गवोएंबंतेरदिम् ।९१७९। वहिसि अमोघवर्षनृप ॥
ऋषिगळेल्लरुएरगुबतेरदिंदळि। ऋषिरूपधरकुमुदेन्दु ॥
हसनादमनदिंदमोघवर्षांकगे। हेसरिट्टुपेळ्द श्री गीतं ।४५।
ऊनविल्लद काव्यदक्षरांकद काव्य। काणिपवेंकुंठ काव्य ।४६।
ऊनविल्लद श्री कुरुवंशहरिवंश। आनंदमय वंशगळलि।
तानेतानागि भारतवाळ्दराज्यद। श्री निवासन दिव्य काव्य।
सिरि भूवलयम्नाम सिद्धांतनु। दोरे अमोघ वर्षांक नृपम्।
ईयुत कर्मटि जनपदरेल्लर्गे। श्रेयोमपिलधर्म्मम ।१६-२कु४,५।

इस प्रकार अमोघ वर्ष का अनेक प्रकार से सम्बोधन करते हुए जो उद्धरण दिये गये हैं। अमोघ वर्ष का समय ईस्वी सन् ८१४ से ८७७ तक उसने राज्य किया है, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। इनके गुरु का समय ईस्वी सन् की ८ वीं शताब्दी होना चाहिये ऐसा अनुमान किया जाता है। कुमुदेन्दु आचार्य ने गंग रस और उनके शंका कास्मरण किया हैं। और गोट्टिक नामक शैवट्ट शिवमार्ग के नामका उल्लेख भी किया गया है जैसे कि—

महदादिगांगेयपूज्य ।५६। महियगन्गरसगणित ।६६।
महिय कळ्गप्पुकोवळला ।७१। मवरितलेकाच गंग ।७२।
अरसराळिदगंगवंश ।१२। त् रसोत्तिगेयवर मंत्र ।१३।
एरडुवरेयद्विपदंद ।१४। गरुवगोट्टिगरेलुरंद ।१५।
अरसुगळाळ्दकळ्वप्पु ।२०। ट्रदंगदनुभवकाव्य ।२३।
आदि योळ्मत्त वर्णदसेनर। नादियगंगर राज्य।
सादि अनादिगळ्भयगसाधिप। गोदम निम्बंद वेद ।२३।

इन समुल्लेखों से यह स्पष्ट है कि आचार्य कुमुदेन्दु ने जो अमोघ वर्ष का 'शैवह' शिवमार्ग' नाम से उल्लेखित किया है वे उनके प्रारम्भिक नाम ज्ञात होते हैं। "शिवमार देवम् सैगोट्टनेंबरडेनये पेसरम्तालदिः, शिवमार मत तथा गजशास्त्र की रचना कर और पुनः एनेल्वदो शिवमारम। हो वलयाविपन "सुभग कविता गुणमय' ॥ भूवलय दोल्" गजाष्टक। योगवनिगेयु "मोने के वाडु" मादुदे पेलगुम्।

इस तरह पर कानडी गद्य में गजाष्टक नाम के काव्य को रचना की है।

यह शैवट्ट वट्टिग—शुभ कविता बनाने में प्रवीण थे। भूवलय में गजाष्टक वणिके वास इत्यादि काव्य कूटने और पीसने के विषय में कविता कर्नाटक भाषा में चत्तान्न वेदन्न' ऐसे दो प्रकार के पुराने पद्य पद्धति में पाये जाते हैं। जो कि पुरातन काव्य की रचना शैली को व्यक्त करते हैं। जहां तक अमोघवर्ष के काव्य का सम्बंध है, उसमें उल्लिखित उक्तदोनों काव्य हैं। उनको इन्होंने निश्चय से उपयोग किया है।

शिवमार्ग वट्टि ने दक्षिण कर्नाटक का राज्य ईस्वी सन् ८०० से ८२० तक किया हैं। इसके पश्चात् गंगरस राजा नंदगिरि, ने (लाल पुराधीश्वर) (राजा) शासन किया है। इतना ही नहीं, किन्तु इसके अलावा इस भूवलय में

'कडवप्पु' 'कल्ल वप्पु' (श्रवणबेल्गोल) का पुरना नाम है यह ७ वीं शताब्दी के पहले के शासन में 'वड्डारक' नामक प्राचीन ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लिखित मिलता है। यह स्थान गंग राजा के एक प्रान्त की राजधानी था ऐसा मालूम होता है। जैसे अन्य पुण्य तीर्थ है, उसी तरह इसे भी पुण्य क्षेत्र माना जाता है इस विषय का अनुशीलन किया जाय तो कुमुदेन्दु गुरु का और उनके समकालीन राजा का क्रिश्चियनशक ८१३ से ८१४ के मध्यवर्ती में सिद्ध होगा। इसे हम स्थूल रूपमें कह सकते हैं। भूवलय के आगे के अध्याय को जहां तक हो अंक पद से निकाल कर देखने के बाद मिलने वाले जितने चाहें उतने साहित्य से क्रिश्चियन शक ८१३ से ८१४ के बीच एक निश्चत समय हमें मिल जाता है। इससे कुमुदेन्दु आचार्य, क्रिश्चियन शक ८ वीं शताब्दी में हुए हैं।

वादी कुमुदचन्द्र–(ईसवी सन् ११००) में इन्होंने जिन-संहिता नामक प्रतिष्ठाकल्प की कानडी टीका लिखी है। यह "इति माघनंदी सिद्धांत चक्रवर्ती के पुत्र चतुर्विध पंडित चक्रवर्ती श्री वादी कुमुदचन्द पंडित देव विरचिते" इस प्रकार उनकी स्तुति की गयी है।

पार्श्व पंडित–(सन् १२०५) यह अपनी गुरु परम्परा को कहते हुए वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, सोमदेव, वादिराज, मुनिचन्द्र, श्रुतकीर्ति, नेमिचन्द्र वासुपूज्य, शिष्य, श्रुतकीर्ति, मुनिचन्द्र, पुत्र वीरनंदि, नेमिचन्द्र सैद्धांतिक। बलात्कारगण के उदयचन्द्र मुनि, नेमिचन्द्र भट्टारक के शिष्य वासुपूज्य मुनि, रामचन्द्र मुनि, नंदियोगी, शुभचन्द्र, कुमुदचन्द्र, कमलसेन, माधवेंदु, शुभचन्द्र शिष्य, ललितकीर्ति, विद्यानंदि, भावसेन, कुमुदचन्द्र के पुत्र वीरनंदि इत्यादि मुनियों की स्तुति की है। इनमें से कोई भी कुमुदेन्दु आचार्य से सम्बन्ध नहीं रखते।

कुमुदेंदु– (ई० सन् १२७५) कुमुदचन्द्र की इस गुरु परम्परा में वीरसेन, जिनसेन (७ विद्वानों के बाद) वासु पूज्य के शिष्य अभयेन्दु के पुत्र "कुमुदेन्दु" माधवचन्द्र अभयेंदु, कुमुदेन्दु व्रति पुत्र, "माघनंदि मुनि, बालेन्दु जिनचन्द्र" यह कुमुदेन्दु मुनि भी भूवलय के कर्ता नहीं हैं।

महाबल कवि–(ई० सन् १२५४) इनको गुरु परम्परा में जिनसेन वीरसेन, समंतभद्र, कवि परमेष्ठी, पूज्यपाद, गृद्धपिच्छ, जटासिंहनंदी अकलंक शुभचन्द्र "कुमुदेन्दु मुनि" विनयचन्द्र, माधवचन्द्र, राजगुरु, मुनिचंद्र, बालचंद, भावसेन, अभयेंदु, माघनंदियति, 'पुष्पसेन' यह कुमुदेंदु भी भूवलय के कर्ता नहीं हैं।

समुदायके माघनंदी–(ई० सु० १२६०) इनकी गुरुपरम्परा में मूल संघ बलत्कार गण के वर्धमान (अनेक तले मारु के शिष्य होने के बाद) श्रीधर शिष्य वासु पूज्य, शिष्य उदयचंद्र, शिष्य कुमुदचंद्र, शिष्य माघनंदि कवि, यह कुमुदचंद्र, भी भूवलयके कर्ता नहीं हैं।

कमल भव–(र० सु० १२७५) इनके द्वारा बतलाई हुई गुरु परम्परा में कोंडकुन्द, भूतवलि, पुष्पदन्त, जिनसेन, वीरसेन, (आगे २३ व्यक्तियों के और नाम कह कर) पद्मसेन व्रति, जयकीर्ति, कुमुदेन्दु योगी, शिष्य माघनंदी मुनि इस तरह छह विद्वानों के बाद" स्वगुरु माघनंदी पंडित मुनि आदि हैं, इस गुरु परम्परा में तीन माघनंदी का नाम आया है। यह कुमुदेन्दु भी भूवलय के कर्ता नहीं हैं।

इसी तरह कुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र नाम के और भी अनेक विद्वान हो गए हैं उनकी गुरु परम्परा प्रस्तुत कुमुदेन्दु से भिन्न है, और समय अर्वाचीन है, ऐसी स्थिति में अन्य नामधारी कुमुदेन्दु नाम के विद्वानों के सम्बन्ध में यहाँ विशेष विचार करने का कोई अवसर नहीं हैं। क्योंकि उनका प्रस्तुत ग्रंथकर्ता से सम्बन्ध भी नहीं ज्ञात होता, अस्तु।

भाषा और लिपि

श्री कुमुदेन्दु आचार्य केकहने के अनुसार श्री आदि तीर्थंकर वृषभदेव के गणधर वृषभसेन से लेकर महावीर के गणधर इन्द्रभूति तक सभी गणधर कर्णाटक प्रान्त वाले ही थे इसलिये सभी तीर्थंकरों का उपदेश सर्व भाषात्मक उस दिव्य वाणी में हुआ था और उसी का प्रसार समस्त लोक में किया गया था। सर्व भाषात्मक उस दिव्य वाणी को प्रमाण संबद्ध रूप से व्यक्त करने की शक्ति केवल कर्नाटक भाषा में ही है। ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

आदि तीर्थंकर श्री ऋषभ देव के द्वारा अपनी दोनों पुत्रियों को दिया हुआ ज्ञान, कनाड़ी भाषा में ही था और यह भी कहा जाता है कि उनके मोक्ष जाने के पूर्व उन्होंने बड़ी रानी यशस्वती के पुत्र भरत को साम्राज्य पद और लघु रानी सुनन्दा के पुत्र गोमंद देवको पौदनपुरका राज्य प्रदान किया।

पश्चात् उनकी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी देवी ने मिलकर पिता से निवेदन किया कि हे तात ! ऐसी कोई शास्वत वस्तु हमें भी प्रदान कीजिये। इस तरह प्रार्थना करने पर पिता ने कहा कि ठीक है, परन्तु सभी लौकिक वस्तुएँ पहले ही वे अपने पुत्रों को दे चुके थे।

भगवान् वृषभदेव ने मन में सोचा कि इनको कोई लौकिक वस्तु देने से क्या फायदा, कोई ऐसी चीज देना चाहिए कि जो परलोकमें भी इनकी कीर्ति को कायम रखे। इस तरह सोचकर भगवान् वृषभदेवने अपनी दोनों पुत्रियों को बुलाकर संपूर्ण ज्ञान साधन के आधारभूत वस्तु इन्हें देना चाहिए, ऐसा सोचकर बुलाया और ब्राह्मी देवी को अपने जंघा पर बिठा कर उनके बायीं हथेली में अपने दाया हाथ के अंगुष्ट से संपूर्ण भाषाओं को पूर्ण करने के लिए जितना अंक चाहिए उतने ही अंक को अ से लेकर अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ- इन नो अक्षर को ह्रस्व, दीर्घ प्लुत के सत्ताईस स्वरों तथा पुनः क, च, ट, त, प, इस वर्गके पच्चीस वर्गित के अक्षरों को य, र, ल, व, श, ष, स, ह, इन आठ व्यजंनों को तथा आगे, ०,००, ०००, ००००ये चार अयोग वाहओं को मिलाकर ६४ चोसट अक्षर रूप, वर्णमालाओं की रचना कर उनके हाथ में लिखा और उनको कहा कि ये अक्षर आपके नाम से यह अक्षय होकर रहें, और यह सम्पूर्ण भाषाओं को इतने ही पर्याप्त हैं ऐसा कहकर उनको आशीर्वाद दिया।

दूसरी अपनी सुन्दरी नामक छोटी पुत्री को दायीं जंघा पर बिठाकर उनकी बाया हथेली में अपने दायें हाथ की अंगुष्ट से एक विंदी ० इस तरह लिखकर उसी के समानरूप से दो छेद करके उसे ही आधा आधा छेदकर १,२, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ० लिख दिया। पुनः इसको एक में मिला देने से पहले के समान विंदो रूप होता है और इन छेद को एक मेंकमें मिलाकर इस अंक को ही वर्ग पद्धति के अनुसार मिलाते जाने से विश्व के समस्त अणु परमाणु ग्रहण करने के लिए जितने अंक आवश्यक हों उतने ये अंक पर्याप्त हैं। ऐसा भगवान ने इस अंक विद्याको, पुत्री सुन्दरी देवी को समझा दिया। और तदनुसार प्रत्येक वस्तुओं को दोनों का बटवारा करके देते समय एक को एक दिया और दूसरो पुत्री को दूसरा दिया ऐसा उनके मन में भाव न हो और उनको पता भी न पड़े इस तरह एक ही वस्तु में दोनों को भिन्न भिन्न रूप में बतलाकर उन दोनों को भो संतुष्ट कर दिया।

इस पद्धति के अनुसार समस्त शब्द समूह को प्रत्येक ध्वनि और प्रतिध्वनि रूप अक्षर संज्ञा को परिवर्तन करके इस अंक अक्षर को चक्रबंध रूप में पहले ही गोम्मट देव के द्वारा अर्थात् बाहुबली के द्वारा "समस्त शब्दागम शास्त्र-रूपमें रचना किया गया है। उस दिनसे परम्परा रूपसे ही वह श्रीकुमुदेन्दुआचार्य तक चला आया है इस तरह इसमें उल्लेख किया गया है। उस समय आदि तीर्थंकर के द्वारा दिया हुआ अंक लिपिके अक्षर लिपि अलावा और भी उस समय वृषभदेव सर्वज्ञ पद (केवल ज्ञान) प्राप्त करने के बाद कहा हुआ दिव्य उपदेश भी कर्णाटक भाषामें ही कहा था श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। कि इस गणित भाषा में विश्व को ७१८ भाषाओं को अपने अन्दर खींचकर समावेश करने वाले अंक भाषा शास्त्र में उपलब्ध है ऐसा बतलाया है।

इरुव भूवलय दोळ्नूरु हृदिगेन्दु । सरस भाषेगवतार ।४-१७७।
वरद वादेळ्नूरहदिनेन्दु भाषेय । सरमाले यागलुम् विद्या।१०-२१०
सावि‌र देंदु भाषघळिरलिवनेल्ल। पावन यह वीर वाणी ।
काव धर्मान्किवु ओंबत्तागियगि । तावु एळ्नूरकं भाषे।५०-१२६।
इदरोळु हुदगिद हृदनेन्दु भाषेय । पइगळ गुणिसुत बरुवर् ।
वासवरेल्लाडुव दिव्य भाषेय । राशिय गणितदे कट्टिर ।।
आशाधर्मामृत कुम्भदोळडगिह । श्री शनेळ्नूरंक भाषे ।५-१२३।
मिक्किह एळ्नूरु कक्षर भाषेयम् । द्क्किय द्रव्यागमर ।
तक्क ज्ञानव मुंदक्करियुव आशेय । चोक्क कन्नडद भूवलय ।५-१७५
प्रकटित सर्व भाषाँक (६-१४) घनवोदळ्नूर् हृदिनेदु ।

वर्तमान भाषायें (६-४५-४६) सात सौ अठारह हैं। ९-१७४) उनमें सात सौ क्षुल्लक भाषायें और अठारह भाषायें कुल मिलाकर सात सौ अठारह (९-१९१) होती हैं।

वशवाद कर्माट देंदु भागद । रस भंग दंकक्षरद्सर्व ।
रसभावगळनेल्लव कूडलु वंदु । वशवेळनूर् हदिनें दु भाषे ॥
॥११-१७१॥

इस प्रकार ७१८ भाषाओं को गर्भित करके सरल तथा प्रौढ रीति से श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विश्व काव्य की रचना को है।

इस तरह अपने काव्य ग्रन्थ को सर्व भाषामय कर्नाटक भाषा में रचा है, इसमें पुरातन और नूतन दोनों भाषाओं को गर्भित किया गया है। कुमुदचन्द्राचार्य ने संयुक्त भाषा को इस तरह वितरण किया है कि संस्कृत, मागधी, पैशाची, सूरसेनी, विविध देशभेदवालो अपभ्रंश पांच नौ, (५-१०-६-७-६) इन भाषाओं को तीन से गुणा करने पर अठारह होता है।

कर्नाटक, मागध, मालव, लाट, गौड, गुर्जर प्रत्येकत्र मित्यष्टादश, महाभाषा (५-६-७-६-८) इस प्रकार उल्लेख किया गया है।

सर्व भाषामयी भाषा विश्व विद्यावऽभासने ।
त्रिषष्टि चतुपष्टिर्वा वनांद् शुभनते मताः ।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ता स्वयंभुवः ।
अकारादि हकारांन्तां शुद्धां मुक्तावलिमिव ।
सर्व व्यंजन भेदेन द्विधा भेदमुपर्युषमि ।
अयोगवाह पर्यन्तां सर्व विद्या सुसंगतांम् ।
अयोगाक्षर संभूति नैक बोजाक्षरश्चितां ।
समवादिवधत् ब्राह्मी मेघा विन्यति सुंदरी गणितं ।
स्थानंक्रमैः सम्यक् दास्यत् ततो भगवतो वक्तारः मिह श्रुताक्षरा
वलि, दभः इति व्यक्त सुमंगलाँ सिद्ध मातृकं स भूवलय ।
(५,१,२,२,१,४,५)

इस संस्कृत गद्यमें आचार्य कुमुदेन्दु ने सर्व भाषामयी भाषा का निरूपण किया है। और अंक लिपि में सात सौ अठारह भाषाओं में से प्रत्येक का नामोल्लेख किया गया है। ब्राह्मी, पवन, उपरिका, वराटिका, वजीद, खरसायिका प्रभुतुका, उच्चतारिका, पुस्तिका, भोगवता, वेदनतिका, नियंतिका, अंक गणित गन्धर्व, आदर्श, माहेश्वरी, दामा, बोलधो, इस प्रकार के विचित्र नामादि का उल्लेख कर विवेचन किया गया है। आचार्य कुमुदेन्दु ने अपने भूवलय में सात सौ अठारह भाषाओं में से निम्न भाषाओं का उल्लेख किया है, कर्नाटक में प्राकृत, संस्कृत, द्रविड़, अन्ध्र, महाराष्ट्र मलयालम, गुर्जर, अंग, कलिंग, काश्मीर कम्बोज, हमीर, शौरसेनी वाली, तिब्बति, व्यंग; बंग, ब्राह्मी, विजयार्ध, पद्म, वैदर्भ, वैशाली, सौराष्ट्र, खरोष्ट्री, निरोष्ट्र, अपभ्रंश, पैशाचिक, रक्ताक्षर, अरिष्ट, अर्धमागधी, (५-१०-२८-१०-५८) इनके अलावा और भी बतलाते हैं—

आरस, पारस सारस्वत, वारस, बस, मानव, लाट, गौड, मागध, विहार उत्कल कान्यकुब्ज, वराह, वैस्मर्ण, वेदान्त, चित्रकर और यक्ष राक्षस, हंस, भूत, ऊहया, यव, नानी तुर्की, द्रमिल, सैन्धव, मालवणिया, किरिय, देव नागरी, लाड, पाशी अमित्रिक, चाणिक्य, मूलदेवी इत्यादि (५-२८-१२०) इस प्रकार आने वाली भाषा लिपियों को इस नवमांक सर्मज्ञ नामक कोष्टक को एक ही अंक लिपि में ही बांधकर उन सम्पूर्ण भाषाओं को इस कोष्टक रूप बंधाक्षर के अन्तर्गत समाविष्ट करके सभी कर्माटकके अनुराशिमें मिश्रित कर छोड़ दिया है। कुमुदेन्दु के समान अन्य किसी महापुरुष में सम्पूर्ण भाषाओं को एक ही अंक में गर्भित कर काव्य रूप में गुंफित करने की शक्ति नहीं है ऐसा मैं निश्चय से कह सकता हूं।

भूवलय ग्रन्थ की परम्परा इतिहास

भूवलय नामक विश्व काव्य की परम्परा को कुमुदेन्दु आचार्य ने इस प्रकार बताया है कि प्राचीन काल में आदिनाथ तीर्थंकर ने अपने राज्य को, अपने पुत्र भरत और बाहुबली को बटवारा करके देते समय उनकी पुत्रि ब्राह्मी और सुन्दरी इन दोनों पुत्रियों को सम्पूर्ण ज्ञान के मूल ऐसे अक्षरांक को पढाया था इस बात का हमने उपर्युक्त प्रकरण में ही समझा दिया है। दोनों बहिनों को पढाया हुआ अक्षरांक गणित-ज्ञान-विद्याको भरत ने सीखने की इच्छा व्यक्त नहीं की।

विचार परायन गोमट देव—

रुणनु दोर्बलियवरक्क ब्राह्मोयु । किरिय सौंदरि अरितिर्द ।
अरत्नाल्काक्षर नवमांक सोन्नेय। परिहर काव्य भूवलय॥

मनविटूदु कलितनाद कारणदिंद। मनुमथ नेनिसिदे देव।।

इस अक्षर अंक गणितको मनःपूर्वक सीखने वाले होने के कारण बाहुबली का नाम मन्मथ भी इसी तरह पड़ा है ऐसा इस श्लोक से प्रतीत होता है। इसलिए इसके निमित्त से इस अंक गणितके कर्ता बाहुबली को माना है। इस अंक चक्र का उपदेश बाहुबली ने जब बड़ा भाई भरत के साथ आठ प्रकार का युद्ध हुआ था उस समय अपने भाई का अपमान करने के प्रति उनके मन में वैराग्य हुआ था उस वैराग्यमें अंत समयमें भरत चक्रवर्तीने समझा कि ये तो अब मुनि होकर कर्म का क्षय करके मोक्ष चला जायगा। इस लिए इन से कुछ दान मांगना चाहिये। इस तरह उनको उन्होंने कहा। तब बाहुबली पूर्णतया विरक्त होने के कारण उनके पास कुछ चीज देने योग्य नहीं थी। और आहार दान, शास्त्र दान, औषध दान और अभय दान के अतिरिक्त और कोई दान देने योग्य नहीं था। परन्तु मन में यह विचार किया कि मेरे पिता ने जो मुझे शास्त्र दान दिया है। उसी को मेरे भाई को देना उचित है। अन्य तीन दान मेरे द्वारा देने योग्य नहीं। ऐसा विचार करके अपने पिता के द्वारा अपनो दोनों बहिनों से समझी हुई "अक्षरांक समन्वय पद्धति" का आदीश्वर भगवान ने अपने को उपदेश किया था वैसा ही सम्पूर्ण ज्ञान को सर्व भाषामयी ज्ञानमें जैसे अन्तर्भुक्त कहा था उसी तरह इस संदर्भ को जैसा कि श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय के पहले अध्याय के उन्नीसवें श्लोक में कहा है कि—

लावण्य दंग मेप्याद गोमट देव। आवागतन्न अण्णनिगे।
ईवाग चक्रबंधद कट्टिनोळ् कट्टि। दाविश्वकाव्य भूवलय॥

इस प्रकार कहे हुए समस्त कथन पर से और कुमुदेन्दु आचार्य के मतानुसार इस भूवलयके आदि कर्ता गोमटदेव ही हैं। इस काव्यको भरत बाहुबली युद्धके बाद जब बाहुबली को वैराग्य हो गया, तब उन्होंने ज्ञान भंडार से भरे हुए इस काव्य को अन्तर्मुहूर्त में भरत चक्रवर्ती को सुनाया था। वही काव्य परम्परा से आता हुआ गणित पद्धति अनुसार अंक दृष्टि से कुमुदचन्द्राचार्य द्वारा चक्रबंध रूप में रचा गया है।

यशस्वति देविय मगळाद बाह्मीगे। असमान कर्माटकद।
'रिसियु' नित्यवु अरत्नाल्कल्कक्षर। होसेद अंगय्य भूवलय।
करुणेयम् बहिरंग साम्राज्य लक्ष्मिय। अरुहनु कर्माटकद।
सिरिमातायुतंते ओंदरिंपेळिद। अरवत्नाल्क भवलय॥
'धर्म ध्वज' वदरोळु केतिदचक्र। निर्मलद्दष्टु हूगळम्।
सर्व मनदगल' केवत्तोंदु सोन्नेय। धर्मद कालुलक्षगळे॥
आपाटियंक दोळ् ऐदुसाविर कूडे। श्रीपाद पद्म दंगदल॥

१-२३-३०-६५-६

यह चक्र ५१०२५०००+५०००=५१०,३०००० दल अंक रूप में अक्षर होकर गणित पद्धति के अनुसार रचना की है इस काव्य को ही कुमुदेन्दु आचार्य ने स्पष्ट रूप में कहा है।

अनादि काल से यह चक्रबद्ध काव्य आदि तीर्थंकर से लेकर महावीर तक इस की परम्परा बराबर चली आई है। जब भगवान महावीर को केवलज्ञान हो गया तब महावीर की वह दिव्य वाणी (दिव्य ध्वनि) सर्व भाषा स्वरूप होने लगी। उस समय महावीर के सबसे प्रथम गणधर इन्द्रभूति ब्राह्मण कर्नाटक, संस्कृत, प्राकत आदि अनेक भाषाओं के विद्वान थे, उन्होंने ही महावीर की वाणी का अवधारण कर भव्य जीवों को वस्तु स्वरूप समझाया था। गणधर के विना महावीर की वाणी ६६ दिन तक बन्द रही, क्योंकि यह नियम है कि तीर्थङ्कर की वाणी विना गणधर के नहीं खिर सकती। भगवान महावीर के मोक्ष जाने से पूर्व तक गौतम इन्द्रभूति नें उनकी वाणी का समस्त संकलन करके राजा श्रेणिक और चेलना रानी एवं अन्य सभा के लोगों को उसका भान कराया था। इसके बाद आचार्य परम्परा से जो पुराण चरित एवं कथा साहित्य तथा सिद्धांत ग्रन्थ रचे गए वे सब महावीर की वाणी के अनुरूप थे ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय ग्रन्थ में प्रकट किया है।

आचार्य कुमुदेन्दु ने नवमांक से जो गणित में काव्य रचना की है उसे 'करण सूत्र' नामसे प्रकट किया हैं। इसके सम्बन्ध में दो तीन श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

नवकार मंतर दोळादिय सिद्धांत । अवयव पूर्वेय ग्रंथ ।
दवतार दादिमद्'अ' क्षरमङ्गल । नव अअअअअअअअअ ।
वशगोंड 'आदि मङ्गल प्राभृत' । रसद्'अ'क्षरवदु तानु ।२-१३१।
अष्ट कर्मगळस् निर्मूल माळ्प । शिष्टरोरेद पूर्वेकाव्य ।३-१५२।
तारुण्य होंदि 'मङ्गल प्राभृत' दारदंददे नवनमन ।४-१३२।
परम मंगल प्राभृत दोळु अकंव । सरिगूडि बरुव भावेगळम्।५-७६
वेद्य हृदिगाल्कु पूर्व श्री शिष्यक्षरण सूत्रांक ।१०-१०.११।
श्री गुरु 'मंगल पाहुडदिम् पेळ्द। राग विराग सद्ग्रंथ.१०-१०५
रस वस्तु पाहुड मंगलरूपद । असदृश वैभव भाषे ।१०-१६५।

इस पाहुड ग्रन्थमें आगे भी कहा है । कि (१०-२१२) जिनेन्द्र वाणी के प्राभृत (१००-२३७) रसके मंगल प्राभृत मंगल पर्याय को पढ़कर (११-४३) मंगल पाहुड (११-६२-६२) इत्यादि

तुसु वाणिय सेविसि गौतम ऋषियु । यशद भूवलयादि सिद्धांत ।
सुसत गळभरके कावेंब हन्नेरड् । ससमांगवनु तिरहस्तद।१४-५।

इस प्रकार गौतम गणधर द्वाराही सबसे पहले यह भूवलय ग्रन्थ ५ भागों में द्वादशांग रूपसे रचना किया गया था और उसे 'मंगल पाहुड' के रूपमें उल्लेखित भी किया था । इस कारण इस ग्रन्थ की रचना महावीर के निर्वाण से थोड़े समय बाद में ही हो गई थी । इस समय भगवान महावीर के निर्वाण समय को २४८४ वर्ष व्यतीत हो गए । महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष बाद विक्रम संवत् शुरू हो जाता है । यद्यपि गौतम बुद्ध और भगवान महावीर समकालीन हैं, दोनों का उपदेश राजगृह में दो भिन्न स्थानों पर होता था, परन्तु वे अपने जीवन में परस्पर मिले हों ऐसा एक भी प्रसंग परिज्ञात नहीं है । और न उसका कोई समुल्लेख ही मिलता है । परन्तु यह ठीक है कि महावीर का परिनिर्वाण गौतम बुद्ध से पूर्व हुआ था । इस चर्चा का प्रस्तुत विषय से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है, अतः यहां प्रकृत विषय में विचार किया जाता है–आचार्य कुमुदेन्दु ने भगवान महावीर के समय के सम्बन्ध में 'प्राणवायुपूर्व' में निम्न प्रकार उल्लेख किया है–

सावि र दोंदुवरे वर्षगळिद । श्री वीर देव निम्बद ।
पावन सिद्धांत चक्रेश्वर रागि । केवलिगळ परंपरेयिम् ।३।
हूविना युर्वेद दोळु महाव्रत मार्ग । काव्यवुसुखदायकवेन् ।
दाव्यक्तदभ्युदय वनय्शरेयव । श्री व्यक्तदिंद सेबिसिद ।४।

यह विश्व काव्य भगवान महावीर के निर्वाण से लेकर आचार्य परम्परा द्वारा डेढ़ हजार वर्षों से बराबर चला आ रहा था । उसी के आधारसे की गई कुमुदेन्दुको यह रचना विक्रम की नौवीं शताब्दी की मानने में कोई आपत्ति नहीं है ।

भूवलय के छंद

कुमुदेन्दु आचार्य के समय में भारत में जो काव्य रचना होती थी उसमें विभिन्न छन्दों का उपयोग किया जाता था । कुमुदेन्दुने, दक्षिण उत्तर श्रेणी को मिलाकर अपने शिष्य अमोघ वर्ष के लिए अनेक उदाहरणों के साथ नयी और पुरानी कानडी मिलाकर प्रौढ़ और मूर्खजनों के हित के लिए उक्त रचना की थी, क्योंकि पूर्व समय में पुरानी कानड़ी का प्रचार उत्तर भारत के प्रायः सभी स्थानों पर होता था, और दक्षिण में तो था ही । कुमुदेन्दु आचार्य ने ग्रन्थ रचना करते समय इस बात का ध्यान जरूर रक्खा था कि किसी को भी उससे बाधा न पहुंचे । इसलिये सर्व भाषामय बनाने का प्रयत्न किया है । अतएव उभय कर्नाटक भाषाओं में ही सर्व भाषाओं के गर्भित करने का प्रयत्न किया गया है । भूवलय के कानड़ी श्लोक के विषय में ग्रन्थकर्ता ने यह दर्शाया है कि जनता के आग्रह से उन्होंने कर्नाटक भाषा में रचने का प्रयत्न किया है और उसे सुगम बनाने के लिये ताल और क्रम के साथ सांगत्य छन्द में लिखा है तथा श्लोक १२३-१२४ का उल्लेख किया है ।

लिपियु कर्माटक वागलेवेकेंब । सुपवित्र दारिय तोरि ।
मपताळ लयगूडि 'दारु सावि र सूत्र' । दुपसवहार सूत्रदलि ॥
वरद बागिसि अति सरल बनागि । गौतमरिंद हरिसि ।
सर्वांकदरवत्नात्कक्षरविंद । सारि श्लोक 'आरुलक्षगळोळ् ॥

कुमुदेन्दु आचार्य ने इस काव्य-ग्रन्थकी ताल और लय से युक्त छह हजार सूत्रों तथा छह लाख श्लोकों में रचना की है ऐसा उन्होंने स्वयं उल्लेखित किया है ।

कुमुदेन्दुके शिष्य नृपतुङ्गने अपने कविराजमार्ग में तथा पूर्व कवि लोग अपनी कविता में 'चत्तन्त वेदंडा' नाम की पद्धति में रचना की है। कुमुदेन्दु ने अपने काव्य को 'चत्तन्न वेदंडा' पूर्व कवि कथित मार्ग से भिन्नित करके आगे बढ़ा दिया है। चत्तन्न को चार भाग में—और वेदंड को १२ अध्याय से १२ वें अध्याय के अंत तक अन्तर्गत रूप दंडक रूप गद्य साहित्य में रचना करके नृप तुंग के पहले कर्नाटक छन्द को दर्शाया है। कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने काव्य में कहा है कि :—

मिगिलादतिशय देळ्नूर हदिनेंदु । अगणित दक्षरभाषे ।९-१९८।
शगणादि पद्धति सोगसिम् रचिसिहे । मिगुबभाषेयु होरगिल्ल ।
चरितेयसांगत्य वेने मुनि नाथर । गुरु परंपरेय विरचित।९-१९६।
चरितेय सांगत्य रागदोळउगिसि । परतंद विषय गळेल्ल।७१९२।
वशवागदेल्लगि कालदोळेंव । असहश ज्ञानद् साँगत्य ।
उसहसेनरु तोरुवदु असमान। असमान साँगत्य वहुदु।९-१२३-१२२।

यह काव्य 'चत्तन्न' होने के कारण इसका विशेष निरूपण करने की जरूरत नहीं रही। उसका उदाहरण थोड़ा-सा यहाँ दिया जाता है।

स्वति श्री मद्रामराज गुरु भूमंडलाचार्य एकत्वभावनाभावितरुं उभय नय समग्ररुं गुप्तरुं चतुष्कषाय रहितरुं पंचव्रत समय तरुं सप्त तत्व सरोजिनी राजहंसरुं अष्टमद भजतरुं, नव विधाबालब्रह्मचर्यालंकृतरुं-दशधर्म समेत द्वादश द्वादशांग श्रुतरुं पारावारुं चतुर्दश पूर्वादिगुरुंरलं।

इस प्रकार १२ [अ] और ३१ अध्याय से ५० श्रेणी में उसका विभाजन किया है।

भूवलय की काव्यवद्ध रचना

कुमुदेन्दु ने अपने काव्य को अक्षरों में नहीं लिखा है, किन्तु पूर्व में कहे हुए गौतम गणधर के मंगल प्राभृत के समान इसी पाहुड ग्रन्थ को आचार्य विश्व सेन के लिखे हुए के समान, इनके सभी साहित्य का आधार रखते हुए कन्नड़, संस्कृत, प्राकृत में भूतबली आचार्य द्वारा लिखे हुए समान, अथवा नागार्जुन आचार्य द्वारा लिखे हुए कक्षपुट गणित के समान अंकों में गणित पद्धति से गणना कर गुणन करके अंकों में लिखा है।

ओदिनोळत मुहूर्तदि सिद्धांत । दादि अंत्य बनेल्ल चित्त ॥
साधिप राज अमोघ वर्षनगुरु । साधिपश्रमसिद्ध काव्य ।९-१९५।

पूर्वाचार्यों के समान इन्होंने ४६ मिनट में ग्रन्थ को रचना की है, ऐसा उल्लेख किया गया है। यह सर्व भाषामयी, काव्य मूढ और प्रौढ़ सभी लोगों को लक्ष्य में रखकर सरल भाषा में रचा गया है। सात सो अठारह भाषाओं को काव्य में निहित करते हुए कहीं-कहीं चक्रबद्ध और कहीं-कहीं चिन्हबद्ध काव्यों से अलंकृत किया गया है पहले यह ग्रन्थ मूल कानड़ी भाषा में छपा है उसमें मुद्रित ग्रन्थ के पद्यों में श्रेणिबद्ध काव्य है। उस काव्य बंध में आने वाले कन्नड काव्य के आदि अक्षरों को ऊपर से लेकर नीचे पढ़ते जांय तो प्राकृत काव्य निकलता है और मध्य में २७ अक्षर बाद ऊपर से नीचे को पढ़ने पर संस्कृत काव्य निकलता है। इस तरह पद्यबद्ध रचना का अलग-अलग रीति से अध्ययन किया जाय तो अनेक बंध में अनेक भाषा निकलती हैं ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।

बंधों के नाम

चक्रबंध, हंसबंध, पद्म, शुद्ध, ववमांकबंध, वर पद्मबंध, महापद्म, द्वीप सागर, पल्लव, अम्बुबंध, सरस, सलाक, श्रेणी, अंक, लोक, रोम कूप, क्रौंच मयूर, सीमातीतादि बंध, काम के पद्म बंध, नख, चक्रबंध, सीमातीत गणित बंध, इत्यादि बंधों से काव्य रचा गया है। यह काव्य आगे चलकर अंक बंध से निकल कर इसमें क्रम से सभी विषय पल्लवित हो सकेंगे। आचार्य कुमुदेन्दु की धार्मिक दृष्टि का इससे अधिक दिग्दर्शन कराने की जरूरत नहीं है। इस भूवलय में—वेदंड में—तर्क व्याकरण, छंद-निघंटु अलंकार काव्य घर, नाटकाष्टांग, गणित, ज्योतिष सकल शास्त्रीय विद्यादि सम्पन्न नदी के समान गम्भीर महानुभाव, लोकत्रय में अग्रसर गारव विरोध रहित, सकल महीमंडलाचार्य तार्किक चक्रवर्ती शत विद्या चतुर्मुख, षट्तर्क विनोदर, नैयायिक वादि, वैशेषिक भाषा प्राभृतक, मीमांसक विद्याधर सामुद्रिक भूवलय सम्पन्न। इस तरह वेदंड की गद्य में रचना की गई है।

इस प्रकार कह कर अपने और अपनी विद्वत्ता के विषय में भी विवेचन किया गया है। इस कारण लोक में उन्हें, समतावादी, सकलज्ञानकोविद रूप-

से भी किन्हीं ने उल्लेख किया है। आचार्य कुमुदेन्दु ने जैन मत-सूत्रों के अभिमान से इतर मतों के अभिप्रायों को ठुकराया नहीं । इतर मतों का बहुत दिनों तक पूर्वजों की निधि समझकर उस साहित्य को एक प्रकार से तुलनात्मक रीति से सिद्ध करके बतलाया है। तुलना करते हुए कहीं भी विषमता को स्थान नहीं दिया है। किन्तु अगाध प्रमाणों को सामने रखते हुए उस उपकार को उपयोग में लाकर केवल वस्तु तत्व का विवेचन मात्र किया गया है और इसके सिवाय उन्होंने अन्य किसी तरह का कोई आक्षेप प्रत्याक्षेप रूप में कोई कथन नहीं ही किया है और आगे या पीछे होने वाले विपर्यास को ध्यान में रखते हुए मोती के समान निर्मल बुद्धिरूपी धागे में उसे पिरोया गया है।

जहां तक मैं जानता हूँ यह काव्य अत्यन्त प्राचीन है और भारतीय साहित्य में ऐसा अनुपम काव्य (ग्रन्थ) अभी तक कोई उपलब्ध नहीं हुआ है। अतः इसे सबसे महान् काव्य कहने में कोई आपत्ति नहीं है।

मूल ग्रन्थ

कुमुदेन्दु आचार्य द्वारा स्वयं हस्त द्वारा लिखी हुई इस ग्रन्थ की मूल प्रति उपलब्ध नहीं है और यह उपलब्ध प्रति किसके द्वारा लिखी गई है यह भी ज्ञात नहीं है। अन्य समकालीन, पूर्व या पश्चाद्वर्ती किसी कवि ने उनका उल्लेख भी नहीं किया है जिससे उनके सम्बन्ध में विशेष रूप से यहाँ विवेचन प्रस्तुत किया जाता। केवल उनकी कृति भूवलय ग्रन्थ में ही उनका नामोल्लेख होने से उनका नाम नवीन रूप से परिचय में आया है। अतः विद्वान लोग उस काल की ग्रन्थ राशि और शासन-सामग्री का यदि परिशीलन करें तो तत्कालीन इतिहास और ग्रन्थकर्ता एवं ग्रन्थ की महत्ता के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु जिन्होंने इस ग्रन्थ का अध्ययन किया है, कराया है। उन्होंने ही इसकी महत्ता को समझा और अनुभव किया है। माता कव्वे, प्रिया पट्टन के जैन ब्राह्मण कवि, और कन्नड कवि रत्न के पोषक, दान चिन्तामणि के पोषक अत्तिमव्वे के समान, मल्लिकव्वे नामकी महिला ने इस भूवलय स्वरूप धवल जयधवल, महा धवल, विजय धवल और अतिशय धवल इत्यादि ग्रन्थों के साथ इस महान ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराकर इस महान् सिद्धान्त ग्रन्थ को गुणभद्राचार्य के शिष्य माघनंद्याचार्य को अपने ज्ञानावरणी कर्मक्षयार्थ प्रदान किया था, ऐसा ग्रन्थ की अन्तिम लिपि प्रशस्ति से जाना जाता है।

अनूनधरमज नाम का प्रसिद्ध—

महनीय गुणनिधाम्। सहजोन्नत बुद्धिविनय निधिये नेनेगळ्दम्।
महिविनुत कीर्ति कांतेय। महिमानम् मानिताभिमानम् सेनम्॥

इस सेन की स्त्री—

अनुपम गुणगण दाखवर्। मनशील निदानेयेनिसिजिन पदसत्के।
कनदशिलो मुखळेनेमा। ननधि श्री मल्लिकब्बे ललनारत्नम्॥
अवनितात्नदपेम्। पावन्गम् योगळ लरि दुजिन पूजयना।
नाविधद दानद मळिन। भावदोळाम् मल्लिकब्बयम् पोल्लवरार्।
विनयदे शीलदोळ् गुणदोळादिय पेंपिनिम् पुट्टिद मनो।
जन रति रूपिनोळ् खणियेनिसिर्द। मनोहर वप्पु दोंदरू॥
पिन मनेदान सागर मेनिप्पवधूत्त मेयप्पसंदसे।
ननसति मल्लिकब्बे धरत्रियोळादोरेसद्गुणंगळोळ्॥
श्री पंचमियम् नोंतु। द्यापनेयम् माडिबरेसि सिद्धांतभना॥
रूपवतो सेन वधुचित। कोप श्री माघनंदियति पतिगित्तळ्॥

इस मल्लिकव्वे के द्वारा प्रतिलिपि की हुई प्रति 'दान चिन्तामणि' मेरे पास है। इस महिला ने ग्रन्थ को स्वयं पढ़कर और दूसरों को पढ़ाकर स्वयं मनन और प्रचार किया, ऐसा मालूम होता है। इस ग्रन्थ को पढ़कर उससे प्रभावित होकर प्रिया पट्टन के देवप्पा ने अपने लिखे हुए कुमुदेन्दु शतक में निम्न रूपमें उल्लेख किया है—

विदितविमलनानासत्कलान् सिद्ध मूर्तिहि।
'य ल भू' कुमुदेंदो राजवद् राजतेजम्॥
इमाम्यलवलेककुमुदींदुप्रशस्ताम्।
कथाम् विश्रुण्वंतिते मानवाश्च॥

सुनय श्रेयसभसंख्यमश्नन्ति भद्रम् ।
शुभम् मंगलम् स्वस्तु चास्याह कथायाह ॥१०२॥

देवप्पाका हमें कोई विशेष परिचय प्राप्त नहीं है जिससे उनके विषयमें विचार किया जाय। देवप्पा ने ऊपर के पद्य में कुमुदेन्दु मुनि के विषय में ('य ल् व भू' य ल वलय') जो कुछ भी कहा है उससे ज्ञात होता है कि आचार्य कुमुदेन्दु बड़े भारी तेजस्वी महात्मा थे और उनका यह ग्रन्थ आदि मध्य और अन्तिम श्रेणी में विभक्त है, जो प्राकृत संस्कृत के महत्व को लिए हुए है। संस्कृत प्राकृत और कानड़ी, इन तीनों की श्रेणियों का यदि चिन्तन किया जाय तो ज्ञात होगा कि य ल व भू और यल वलय उनके नामहैं जिनका उसमें कथन निहित है अथवा देवप्पा कुमुदेन्दु आचार्य के समय के नजदीक होने के कारण इनके माता पिता के नाम के साथ उन्हें जन्म स्थान का नाम भी ज्ञात था, ऐसा जान पड़ता है। देवप्पा के अनुसार अथवा कुमुदेन्दु के कहे अनुसार वह नंदिगिरि निश्चय से पर्वत के शिखर पर था ऐसा निश्चय किया जाता है। इस महात्मा के द्वारा कहे जाने वाले गाँव बेंगलूर ततः चिक्क बल्लापुर के मार्ग में होने वाले नंदी स्टेशन के नजदीक है। यही ग्राम और यही क्षेत्र कुमुदेन्दु की जन्मभूमि ज्ञात होती है। कुमुदेन्दु की जन्म भूमि के सम्बन्ध में और भी विचार किया जा रहा है।

ग्रन्थ की उपलब्धि

संसार का दशवाँ आश्चर्य स्वरूप महान ग्रन्थ भूवलय आज से लगभग २० वर्ष पहले पूज्य आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज ने बेंगलोर में श्री एलप्पा जी शास्त्री के घर पर आहार ग्रहण करने के अनन्तर देखा था, परन्तु अंक रूप में अंकित होने के कारण उस समय इस ग्रन्थ का विषय आचार्य श्री को ज्ञात न हो सका, अतः उस समय इस महान् ग्रन्थ का महत्व महाराज अनुभव न कर सके।

श्री एलप्पा शास्त्री को यह ग्रन्थ अपने श्वशुरके घरसे प्राप्त हुआ था। उनके श्वशुर को यह ग्रन्थ कहाँ से किस प्रकार प्राप्त हुआ, यह बात मालूम न हो सकी।

भूवलय ग्रन्थ में एक कानड़ी पद्य आया है। उसके अनुसार सेठ श्रीषेण की पत्नी श्री मल्लिकव्वे ने श्रुत पंचमी व्रत के उद्यापन में धवल, जय धवल, महा धवल, अतिशय धवल तथा भूवलय ग्रन्थराज लिखाकर श्री माघनन्दि आचार्य को भेंट किये थे। धवल, जयधवल, महाधवल ग्रन्थ मूड़ बिद्रो के सिद्धान्त वस्ति भण्डार में विद्यमान हैं। संभवतः भूवलय ग्रन्थ भी उसी सिद्धान्त वस्ति भण्डार में विराजमान होगा। श्री एल्लप्पा शास्त्री के श्वशुर के घर पर यह ग्रन्थ किस तरह पहुंचा, यह रहस्य की बात अज्ञात है। अस्तु।

श्री एल्लप्पा शास्त्रीजी ने महान् परिश्रम करके अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से भूवलय के अंकों का अक्षर रूप में परिवर्तित करके कानड़ी लिपिमें लिख डाला तब इस ग्रन्थ का महत्व जनता के सामने आया। यदि यह ग्रन्थ कानड़ी लिपि में ही रह जाता तो उसका परिचय दक्षिण प्रान्त में रहता, शेष समस्त भारत की जनता उससे अनभिज्ञ ही रह जाती। प्राचीन साहित्य के उद्धार में रुचि रखने वाले, अनेक प्राच्य ग्रन्थों को प्रकाश में लानेवाले, सतत ज्ञानोपयोगी, विद्यालंकार आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने श्री एलप्पा शास्त्री के सहयोग से इस भूवलय ग्रन्थ के प्रारम्भिक १४ अध्यायों का हिन्दी भाषा में अनुवाद करके देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराने की प्रेरणा की, उसके फलस्वरूप भूवलय के मंगल प्राभृत के १४ अध्याय जनता के समक्ष आये हैं।

इस महान अद्भुत ग्रन्थ को जब भारत के महामहिम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी को श्री एल्लप्पाजी शास्त्री ने भेंट किया तो राष्ट्रपतिजी ने इस ग्रन्थ को सुरक्षित रखने के लिए भूवलय को राष्ट्रीय सम्पत्ति बना लिया। मैसूर राज्य की ओर से इस ग्रन्थ को इंग्लिश अंकों में परिवर्तित करने के लिये श्री एल्लप्पा जी शास्त्री को १२ हजार रुपये प्रदान किये गये। उस आर्थिक सहायतासे इस ग्रन्थ का अंगरेजी अंकाकार निर्माण हो रहा है।

जैन समाज तथा भारत देश के दुर्भाग्य से श्री एल्लप्पाजी शास्त्री का गत मास दिल्ली में शरीरान्त हो गया, अतः अब इस ग्रन्थ के अग्रिम भाग के प्रकाशन में बहुत भारी अड़चन आ गई है। यदि भारत सरकार का सहयोग पूज्य आचार्य श्री को मिल जावे तो इस ग्रन्थ का अग्रिम भाग प्रकाशन में आ सकता है।

भूवलय का परिचय

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलयग्रन्थ में पंच भाषा मयी गीता का समावेश किया है, उन्होंने गीता का प्रादुर्भाव श्लोकों के प्रथम अक्षर से ऊपर नीचे की ओर लेजाते हुए किया है. जिसको प्रथम गाथा **'अट्ठवियकम्मवियला'** आदि है। तदन्तर अपनी नवमांक पद्धति के समान–

भूवलय सिद्धांतद्इघतेळु । तावेल्लवनु हौंदिसिरुव ॥
श्री वीरवाणियोळ्बह"इ,' मंगलकाव्य । ई विश्ववूर्ध्वलोकदलि ॥

इसमें चक्रबन्ध है, जिसमें कि २७ कोष्ठक हैं उन कोष्ठकों में से बीच का अंक '१' है जिसका कि संकेताक्षर **'अ'** है। 'अ' से नीचे (सब से नीचे) गिनने पर १५ आता है १५ में ५८ संख्या है जिसका कि संकेत अक्षर 'प्' है उसके ऊपर के तिरछे कोठे में आने पर ३८ संख्या है जिसका कि संकेताक्षर 'ट्' हैं। उसके आगे के कोठे में '१' आता है जिसका संकेत अक्षर 'अ' है इन तीनों अक्षरों को मिलाने पर **'अष्ट'** बन जाता है।

इस चक्र बन्ध को नीचे दिखाते हैं –

यह प्रथम चक्र-बन्ध है इसके अनुसार आये हुए अंकों को अक्षर रूप करके पढ़ा जाता है। इस प्रकार कनड़ी श्लोक प्रगट होते हैं उन कनड़ी श्लोकों के आद्य अक्षरों को नीचे की ओर पढ़ने से **'अट्ठवियकम्मवियला** आदि प्राकृत भाषा की गाथाएँ प्रगट होती हैं। उस कानड़ी श्लोकों के मध्य में स्थित अक्षरों को नीचे की ओर पढ़ने से **ओंकार 'विन्दुसंयुक्त"** आदि संस्कृत श्लोक प्रगट होता है जो कि भूवलय का मंगलाचरण है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय में जो गीता लिखी है वह उन्होंने आधुनिक महाभारतसे न लेकर उससे प्राचीन **'भारत जयाख्यान'** नामक काव्य ग्रन्थ से ली है, ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने लिखा है। उस गीता को चक्रबन्ध पद्धतिसे प्रगट किया है। प्राचीन लुप्त हुए जयाख्यान काव्य के भीतर आये हुए गीता काव्यको उद्धृत किया है, उस गीता का अन्तिम श्लोक निम्नप्रकार है—

चिदानन्दघने कृष्णेनोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम् ।
वेदत्रयी परानन्दतत्त्वार्थऋषिमण्डलम् ॥

इस प्रकार प्रथमाध्याय को समाप्त करके दूसरे अध्याय का प्रारम्भ निम्नलिखित रूप से किया है–

'अथव्यासमुनीन्द्रोपदिष्ट जयाख्यानान्तर्गत गीता द्वितीयोऽध्याय': इस गद्य से प्रारम्भ करके गोम्मटेश्वर द्वारा उपदिष्ट भरत चक्रवर्ती को तथा भगवान नेमिनाथ द्वारा कथित कृष्ण को तथा उसी गीता को कृष्ण ने अर्जुन को संस्कृत भाषामें कहा गोम्मटेश्वर ने भरत को प्राकृत भाषा में और भगवान नेमिनाथने कृष्ण को मागधी भाषा में कहा था। जिसका प्रारम्भिक पद्य निम्नलिखित है।

'तित्थणबोधमायगमे' आदि

('अ' अध्याय १६वीं श्रेणी)

नेमिगीता में तत्वार्थ सूत्र, ऋषि मण्डल, ऋद्धि मन्त्र को अन्तर्भूत करके भगवान नेमिनाथ द्वारा कृष्ण को उपदेश किया गया है।

एल्लरिगीरव ंते केळ ँदु श्रे णिक । गुल्लासदिंदगौतमनु ॥
सल्लीलेयिंदलि व्यासरुपेळिद । देल्लतीतदकथेय ॥१७-४४॥

व्याससे लेकर गौतम गणधर द्वारा श्रेणिक को कही हुई कथा को आचार्य कुमुदेन्दु कहते हैं।

ऋषिगळेल्लरु एरगुवतेरदिंदलि । ऋषिरूप धर कुमुदेंदु ।
हसनादमनदिंद मोघवर्षांकगे । हेसरिंदु पेळ्द श्रीगीते ॥
॥१७-९४-१००॥

इस प्रकार परम्परागत गीता को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ऋषि रूप या कृष्ण रूप में अपने आपको अलंकृत करके अर्जुन रूप अमोघवर्ष राजा को गीता का उपदेश किया है। इस प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ विश्व का एक महान महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका विवरण श्री कुमुदेन्दु आचार्य स्वयं प्रगट करते हैं–

धर्मध्वजवदरोळ् केत्तिदचक्र । निर्मल दष्टु हूगळम् ॥
स्वर्मनदलगय्वत्तोंदुसोन्नेयु । धर्मदकालुलक्षगळ ॥
आपाटियन्कदोंळ् ऐदुसाविर कूडे । श्री पादपद्म दंगदल ॥
सपि अरूपिया ओम्दरोळ्व । श्री पद्धतिय भूवलय ॥

इस प्रकार भूवलय के अंक और अक्षर पद्मदल ५१०२५००० है इस अंक में ५००० मिलाने से समस्त भूवलय की अक्षर संख्या हो जाती है, ऐसा श्री कुमुदेन्दु ने सूचित किया है। इस तरह ५१०३०००० संख्या का योग (५+१+०+३+०+०+०+०=९) नवम अंक रूप है, ९वें अंक को प्रथम करके नवमांक गणित से इस राशि को विभक्त किया गया है।

करुणेयोंबत्तिप्पत्तेळु ॥ अरुहण गुणवेम्त्तोम्दु ॥
सिरि एळ् नूरिप्प त्तोम्त्म् ॥ वरुव महान् कगळारु ॥
एरडने कमल हन्नेरडू ॥ करविडि देळन्द कुंभ ॥
अरुहन वाणी ओम्बत्तू ॥ परिपूर्ण नवदंक करग ॥
सिरि सिद्धम् नमह ओम् हत्तु १,६८, ७६ ॥

इस तरह वर्णमालांक- अक्षर राशि को तथा ९-२७-८१-७२९ संख्या को स्थापित करके ६-१२-७-९ का पूर्ण वर्ग होकर के विभाग कर दिया है। ९×९=८१×८१=७७९×९=६५६१ इस तरह संख्या में पहला अध्याय समाप्त हुआ है। इस प्रकार इस राशि के प्रमाण अपुनरुक्त **९ अंक** बन जाता है।

नवकार मंत्तर दोळादिय सिद्धांत्त। अवयव पूर्वेय ग्रन्थ ॥
दवत्तारादि मदक्षर मंगल। नव अ अ अ अ अ अ अ अ अ ॥

अध्याय २

कर्णसूत्र गणिताक्षर अंक के समान "है" 'क' को मिलाने २८×६०= कुल ८८ होता है, इस ८८ को आपस में मिलाने से ८+८=१६ होता है। यह १६—१×६=कुल सात होता है। ये सात भंग होकर के इन्हें ९ अंक से भाग करने पर प्राप्त हुए लब्धांक से अपने इस काव्य को प्रारम्भ करते हुए, इस शर्मग्गी कोष्टक को दिया गया है। यहां अनुलोम अंक को ५४ अक्षर के भाग करने पर जो अंक राशि के एक सूक्ष्म केन्द्र को ८६ अंक राशि रूपनिरूपण किया गया है। (अध्याय २, श्लोक १२)

इस अनुलोम राशि को प्रतिलोम राशि के उसी ५४ अक्षर वर्ग के ७१ अंक राशि में वर्गी करण करके (अध्याय २—१७)। इन अंकों को परस्पर मिलाकर, परस्परभाग देकर २५ को अंक राशि किया है। इन अङ्कों को वर्ग भाग कर ३५ अर्धभंग करके इस अंक राशि का २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १ इस पहाड़े से परस्पर भंग करके अपने काव्यांक को मोती के समान माला में गूंथकर काव्य की रचना की गई है। इस वर्ग गणित का ९ वां अंक अशुद्ध घन होने के कारण उत्तर में गलती जरूर आ जाता है। परन्तु कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि तुम इसे गलती मत समझो। हम आगे जाकर इसका खुलासा करेंगे।

कुमुदेन्दु आचार्य द्वारा कहा हुआ जो गणित है वह हमारी समझ में नहीं आता। उसे स्वयं ग्रन्थकारने आगे जाकर स्पष्ट विवेचन के साथ राशि के रूप में बतलाया है।

अध्याय ३

इस अध्याय में कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने काव्य की कुशलता का सभी ढंग बतलाया है।

अध्याय ४

इस अध्याय में सम्पूर्ण काव्य ग्रन्थ को तथा अपनी गुरु परम्पराको कहकर रस, और रसमणि की विधि, सुवर्ण तैय्यार करने की विधि और लोह-शुद्धि का विषय अच्छी तरह से वर्णन किया गया है। रस शुद्धि के लिए अनेक पुष्पों के नामों का उल्लेख किया गया है इस **अ** अध्याय में रस मणि के शुद्ध रूप को बतलाते हुएमें वैद्यशास्त्र की महत्ता को पाठकों को अच्छी तरह से समझा दिया गया है।

अध्याय ५

इसमें अनेक देश भाषाओं 'के नाम' और देशों के नाम, तथा अंकों के नाम देकर भाषा के वर्गीकरण का निरूपण किया गया है।

अध्याय ६

इसमें द्वैत, अद्वैत, का वर्णन करते हुए अपने अनेकान्त तत्त्व के साथ तुलनात्मक रूप से वस्तु तत्त्व की प्रतिष्ठा की गई है। इसमें आचार्य कुमुदेन्दु

ने ४ बातें मुख्य रूप से कही है—

दोषगळ् हदिनेन्टु गशियार्दाग । ईशरोळ् भेद तोरुवदु ।।
राशिरत्नत्रय दाशेय जनरिगे । दोष वळिवबुद्धि वहुदु ।।
सहावास संसार वागिपोकाल । महियकळ्तलेये तोरुवदु ।।
महणाण वरणीय दोष वदळियलु । वहु सुखविहमोक्ष वहुदु ।।
विषहर वागलु चैतन्य बप्पन्ते । रससिद्धि अमृतदशक्ति ।।
यशवागे एकांत हरकदु केट्टोडे । वशवप्पनन्तु शुद्धात्म ।।
रतुनत्रयदे आदियद्वैत । द्वितियवु द्वैतवेम्बंक ।।
तृतीयदोळ नेकांतळवेने द्वैताद्वैतव । हितदिसाधिसिद्ध जैनांक ।।
हिरियत्व विवुमूरु । सरमालेय । अरहंत हारदरत्नम् ।।
सरफणिपन्ते मूरर मूर ओंबत्त । परिपूर्णमूरारुमूरु ।।

।।७७-८१।।

अध्याय ७

इसमें कवि रस सिद्ध के लिए आवश्यक २४ पुष्पों की जाति तथा अष्ट महा प्रातिहार्यों में एक सिंह का नाम कहकर चार सिंहों के मुखों की महिमा का वर्णन किया गया है।

अध्याय ८

इस भाग में समस्त तीर्थंकरों के वाहनों, सिंहासनों का आकार रूप और उनके स्वभाव के साथ राशि की तुलना करते हुए उनकी आयु, नाम आदि का प्रश्नोत्तर एवं शंका समाधान के साथ गणित शास्त्र का व्याख्यान किया है।

अध्याय ९

इसमें रस सिद्धि के लिए आवश्यक कुछ पुष्पों का, और सिद्ध पुरुषों को दिव्य वाणी को, कर्नाटक राजा अमोघ वर्ष को सुनाया गया है, और उसमें अपने वंश का परिचय देते हुए आचार्य भूत बली के भूवलय की ख्याति का वर्णन किया गया है।

अध्याय १०

इसमें कर्नाटक जैन जनता को अध्ययन कराकर, तथा 'क ट प' इनको नवमांक पद्धति को तथा 'य' इस अंक की अष्टक पद्धति को समझाया है इस वर्ग पद्धति के अनुसार २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, इन भागों के समान अनुलोम-प्रति लोमों का परस्पर गुणा करने से सम्पूर्ण भाषाओं में यही काव्य ग्रन्थ आ जाता है। यहाँ ९ को तोड़कर दो भाग करके, इस गणित को रीति से समस्त भाषाओं को अंकित कर उनकी रीति को विशदरीति से समझाया गया है। इस तरह पुरानी और और नयी कनड़ी मिलाकर मिश्रित रूप में काव्य की रचना की गई है।

अध्याय ११

इस भाग में ऋषभदेव द्वारा अपनी पुत्री ब्राह्मी को सिखाये गये अक्षर अंकों को लिख लिया गया है। इस पद्धति से कोड़ा-कोड़ी सागर को मापने की 'मेटगूट शलाका' रीति को समझाया गया है।

अध्याय १२

इसमें २४ तीर्थंकरों, के उन वृक्षों का जिनके नीचे बैठकर उन्होंने अरहंत पद प्राप्त किया है। उन अशोक वृक्षों का नाम तथा उनकी प्राचीनता का उल्लेख किया गया है।

अध्याय १३

इसमें पुरुषोत्तम महान् तीर्थंकरों की जीवनचर्या, तपश्चरण, विद्या और उनके वैदुष्य गुण का महत्व स्थापित किया है। साथ ही भगवान महावीर के बाद होनेवाली आचार्य परम्परा का, तथा धरसेनाचार्य का कथन करके सेनगण परम्परा का वर्णन किया गया है।

अध्याय १४

इस अध्याय में पुष्पायुर्वेद की विधि बतलाकर तत्पश्चात् चरकादिद्वारा अज्ञात 'न समझी जाने वाली' 'रसविद्या' को और जिनदत्त, देवेन्द्र यति अमोघवर्ष, समन्तभद्राचार्य, आदि के द्वारा समर्थित एवं पल्लवित पुष्पायुर्वेद का निरूपण किया गया है।

अध्याय १५

इसमें भवनवासी देव, और उनके वैभव का कथन किया गया है। इसमें सम्भव और असम्भव जंचनेवाले तत्वों का विशद विवेचन किया गया है।

अध्याय १६

दोनों श्रेणियों में भगवद् गीता की प्रस्तावना का वर्णन तथा उसी के अन्तर्गत तत्वार्थसूत्र का विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया है। और भगवद् गीता के प्रारम्भ करने के पूर्व मंगल कलश की पूजा करके गीता का व्याख्यान प्रारम्भ किया है। तथा कृष्ण और अर्जुन के रूप को अपने में कल्पना कर पूर्व गीता और तत्वार्थ सूत्र का विवेचन किया है। आगे अमोघवर्ष के लिए कन्नड़ गीता की भूमिका का उल्लेख किया गया है।

अध्याय १७

इसमें भगवद् गोता की परम्परा ब्राह्मण वर्णोत्पत्ति गोम्मटदेव (बाहुवली) की उपनयन विधि, वनवासि-देश की, दण्डक राजा के विषय का अत्यन्त सुन्दर रूप से कथन करके राजा समुद्र विजय, तथा बलकृष्ण उपनयन संस्कार करने की विधि का कथाद्वारा उल्लेख किया गया है।

बलभद्र, नारायण इत्यादि की उपनयन विधि के साथ गीता तत्वोपदेश का समुल्लेख किया गया है। इस भगवद् गीता को सर्वभाषामयी भाषा भूवलय रूप में, पांच भाषा रूप में प्राकृत, संस्कृत, अर्ध मागधी, आदि में कृष्ण रूप कुमुदेन्दु आचार्य ने निरूपण किया है।

अध्याय १८

इसमें मूल श्रेणी में भगद् गीता की शेष परम्परा का उल्लेख करते हुए, पहले की श्रेणी में जयाख्यान के अन्तर्गत भगवद् गीता के श्लोकों का कर्नाटक भाषा में निरूपण किया गया है। और भगवद् गीता के अंक चक्र का कथन दिया हुआ है। तथा अंक चक्र को समझाकर द्वितीय अध्याय में उल्लिखित अनुलोम सम-विषम आदि की संख्या को शुद्ध करके गीता का आगे का विवेचन दिया हुआ है। इस श्रेणी में कृष्ण द्वारा अर्जुन को कहा गया 'अणुविज्ञान' का भी वर्णन करता है।

१९ और २० अध्याय

इसमें सीधा भगवद्गीता के अर्थ को दूसरी श्रेणी में अंक विज्ञान, अणु-विज्ञान आदि के अद्भुत विषयका ऊपर से नीचे तक अंक विद्याओंके साथ वर्णन किया गया है। इस तरह इस खंड में २० अध्याय हैं। उनमें इस मुद्रित भाग में १४ अध्याय तक दिया गया है। शेष ६ अध्याय बाकी हैं। उनके यहां न दिये जाने का यह कारण है कि इसके मूल अनुवादक पंडित एलप्पा शास्त्री का अक्स्मात् आयु का अन्त हो जाने के कारण इस कार्य में कुछ रुकावट-सी आ गई है। किन्तु फिर भी हमारे चातुर्मास के अन्त में इसके भार को सम्हालने वाले अन्य सहायक के अभाव में उसे पूरा करना सम्भव नहीं हो सका। तो भी हमने शेष को ११ अध्याय से लेकर १४ अध्याय तक रात दिन में इस का अनुवाद कर पूरा करने का प्रयत्न किया है। आगे अवसर मिलने पर, और एक स्थान पर ठहरने आदि की सुविधा उपलब्ध होने पर उसे पूरा करने का प्रयत्न किया जायगा। विद्वानों को चाहिए कि वे इस ग्रन्थ का अध्ययन करके लाभ उठावें। क्योंकि ग्रन्थ का प्रतिपाद्य अंक विषय गम्भीर होने के कारण सर्वसाधारण का उसमें सरलता से प्रवेश होना कठिन है।

चक्रबन्ध को पढ़ने का क्रम

गीता के इस 'ओ' अध्याय की एक बिन्दो को तोड़कर, उसको घुमाने से चक्र तथा पद्य आरम्भ हो जाता है। इस पद्य का कहीं भी अंक में पता नहीं चलता, क्योंकि भूवलय ग्रन्थ अक्षर में नहीं है। अक्षर में होता तो कहीं न कहीं पढ़ा जाता, अतः पढ़ने के लिए इसमें एक भी अक्षर नहीं है। बाएं से दायें तक बराबर चलेजायें तो उन अंकों की गणना २७ होती है। इसी तरह ऊपर से नीचे की ओर पढ़ते जावें तो भी २७ अंक ही आवगे, इस तरह चारों ओर से पढ़ने पर २७ अंक ही लब्ध होते हैं। २७×२७=७२९ हो जाते हैं। इसी चौकोर चक्र के कोष्ठक में ६४ अक्षर के गुणाकार से गुणित कर प्राप्त हुआ लब्धांक ६४ ही लिखा गया है। उन २७ अंकों में से दोनों ओर के १३-१३ अंक छोड़कर ऊपर के एक का रूप 'अ' है। 'अ' के ऊपर से नीचे उतर करके उसके अन्तिम अंक ८ को छोड़कर बगल के ५८ अंक पर आजाय इस

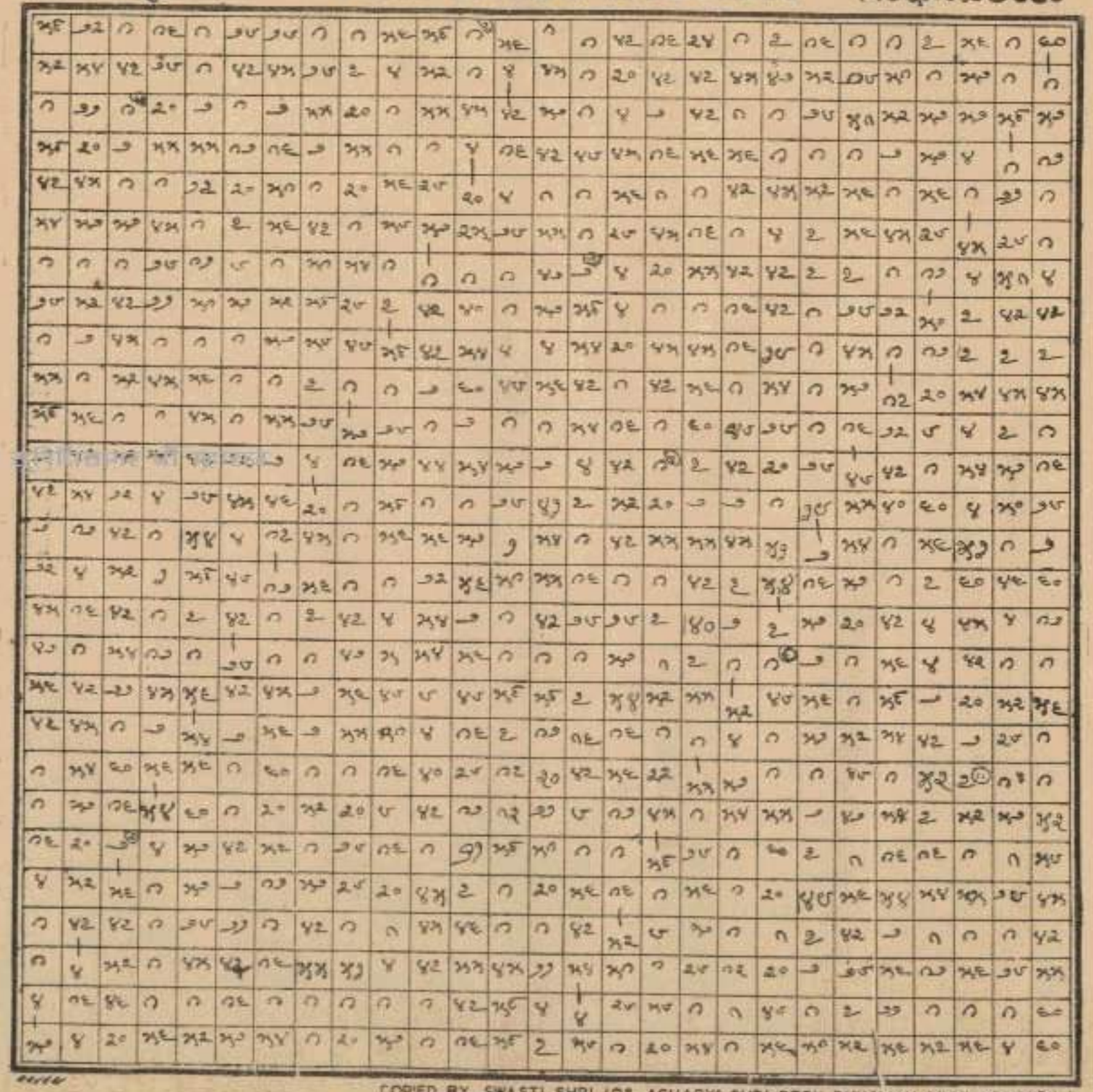
अंक का अर्थ 'घ' है। वहाँ से आगे बढ़ने पर दूसरी पंक्ति के ऊपर के कोने में ३८ आता है। इस अङ्क का अर्थ 'ट' होता है। पुनः ५८ के बाद एक अङ्क आता है। ६० का अर्थ 'ह' है, एक का अर्थ'अ' है। इसी तरह से इसी क्रम रीति के अनुसार अन्त तक (६०) चले जावें, और ६० से लौटकर आड़ी लाइन की मध्यम प्रथम पंक्ति के २ पर आजाँय। दो का अर्थ 'आ' हो गया। 'ह' में आ मिलाने से हा हो गया। इस तरह ऊपर चढ़ते हुए जाने से एक अंक पर पहुँचते हैं, क्योंकि वह एक अंक आड़ा हो जाता है। पुनः वहाँ से एक कोठा नीचे उतरकर फिर ऊपर '४७' पर जाँय, वहाँ से फिर आड़ा जाय और निश्चित कोठे पर पहुंचकर फिर ऊपर लिखे क्रम से उसी प्रकार प्रवृत्ति करता जाय तो घंटे के अन्दर सभी अंकों को पढ़ सकता है। इन ६४ अक्षरों में सभी भाषाओं का समावेश है। पर वह रूढ़ी रूप न होने से लोगों को उसके पढ़ने में कठिनाई होती थी किन्तु दो वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद उसे पढ़ने पर सभी के लिए मार्ग सुगम हो गया है। और सभी जन प्रयत्न करने पर उसे आसानी से पढ़ सकते हैं तथा सभी भाषाओं का परिज्ञान कर सकते हैं। जिस तरह से छोटे बच्चों को यदि यह भाषा सिखलाई जाय तो वे कम से कम छः महीने में पढ़ सकते हैं अर्थात् १-२-३-४-५-६-७-८-९-०, इनमें से बिन्दी को तोड़कर नव अंक की उत्पत्ति हुई है। इस तरह तत्व दृष्टि से विचार किया जाय तो भगवान महावीर की समस्त वाणी का (उपदेशों का) सार सातसौ अठहार भाषाओं को उपलब्धि होती है। क्योंकि यह नव अंक में संसार की समस्त भाषाएं गर्भित हैं। और यह नव का अंक नव देवता का बाची है। और इष्ट मंगल रूप है।

जिस तरह श्रीकृष्ण ने मुँह खोला तो यशोदा ने विचार किया कि यह ब्रह्माण्ड मालूम होता है इसी में तीन लोक गर्भित हैं, उसी तरह नवमांक के अन्दर सम्पूर्ण जगत् गर्भित है। इसमें विश्व की सभी भाषाएँ अन्तर्निहित होने से इस ग्रन्थ का नाम 'भूवलय' रक्खा गया है, जो उसके यथार्थ नाम को सूचित करता है।

पहले अंक अक्षर में जो कानड़ी भाषा का श्लोक अष्ट महाप्रातिहार्य रूप होता है। और अ' से नीचे की ओर पढ़ा जाय तो 'अट्ठवियकम्म वियला' प्राकृत भाषा की गाथा निकलती है। उस कानड़ी श्लोक के मध्य में 'ओ' आता है। उससे नीचे तक पढ़ते जायं तो संस्कृत काव्य निकलता है। इसी तरह से १५ अध्याय तक पढ़ते जायँ तो उसके नीचे-नीचे भगवद्गीता निकलती है। इस तरह से इसअथाह अंक समुद्र में कोई पता नहीं चलता, परन्तु चतुर मनुष्य डुबकी लगाकर उसमें से सुन्दर सुन्दर मोती निकाल कर लाते हैं। इसी तरह उस अंक समुद्र का यथेष्ट रीत्या अवगाहन करने पर विविध भाषाओं से ओत-प्रोत अनेक ग्रन्थों का सहज ही पता चल जाता है। जिस तरह समुद्र में डुबकी लगानेवाले चतुर मनुष्य गहराई में डुबकी लगाकर असली और नकली मोती निकाल लाते हैं और फिर उनमें से असली मोती छांटकर रख लेते हैं। उसी प्रकार इस भगवद्गीता के अन्तर्गत गहराई से अध्ययन करते हुए 'ओम् इत्ये काक्षरं ब्रह्म' अट्ठवियकम्म वियला, सरस्वती स्तोत्र-चन्द्रार्ककोटि और तत्त्वार्थ सूत्र इत्यादि भाषाएँ निकलती हैं। इसके आगे और भी अवगाहन कर अनेक भाषाओं का पता चलने पर सूचित किया जावेगा। क्योंकि इस समय तक १४ अध्यायों का ही अनुवाद हो सका है। शेष ग्रन्थ का अनुवाद बादको प्रस्तुत किया जावेगा। पाठक गण उससे सब समझने का यत्न करें।

सिरि भूवलय मूल अध्याय 'अ' अंक का चक्र

सिरि भूवलय SIRI BHOOVALAYA ಸಿರಿಭೂವಲಯ



मार्गदर्शक :- आचार्य श्री

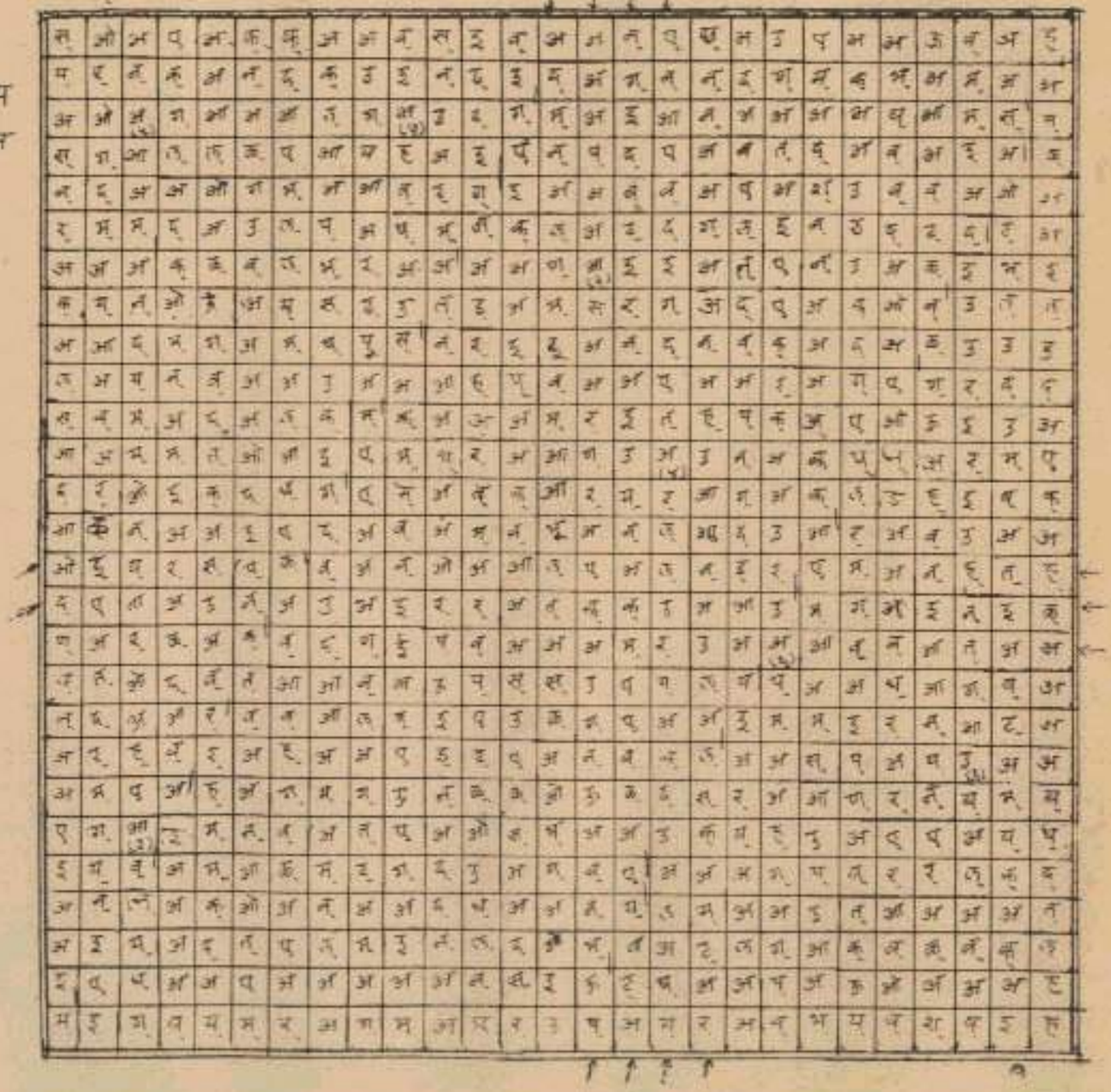
COPIED BY SWASTI SHRI 108 ACHARYA SHRI DESH BHUSHAN MUNI MAHARAJ

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सिरि भूवलय

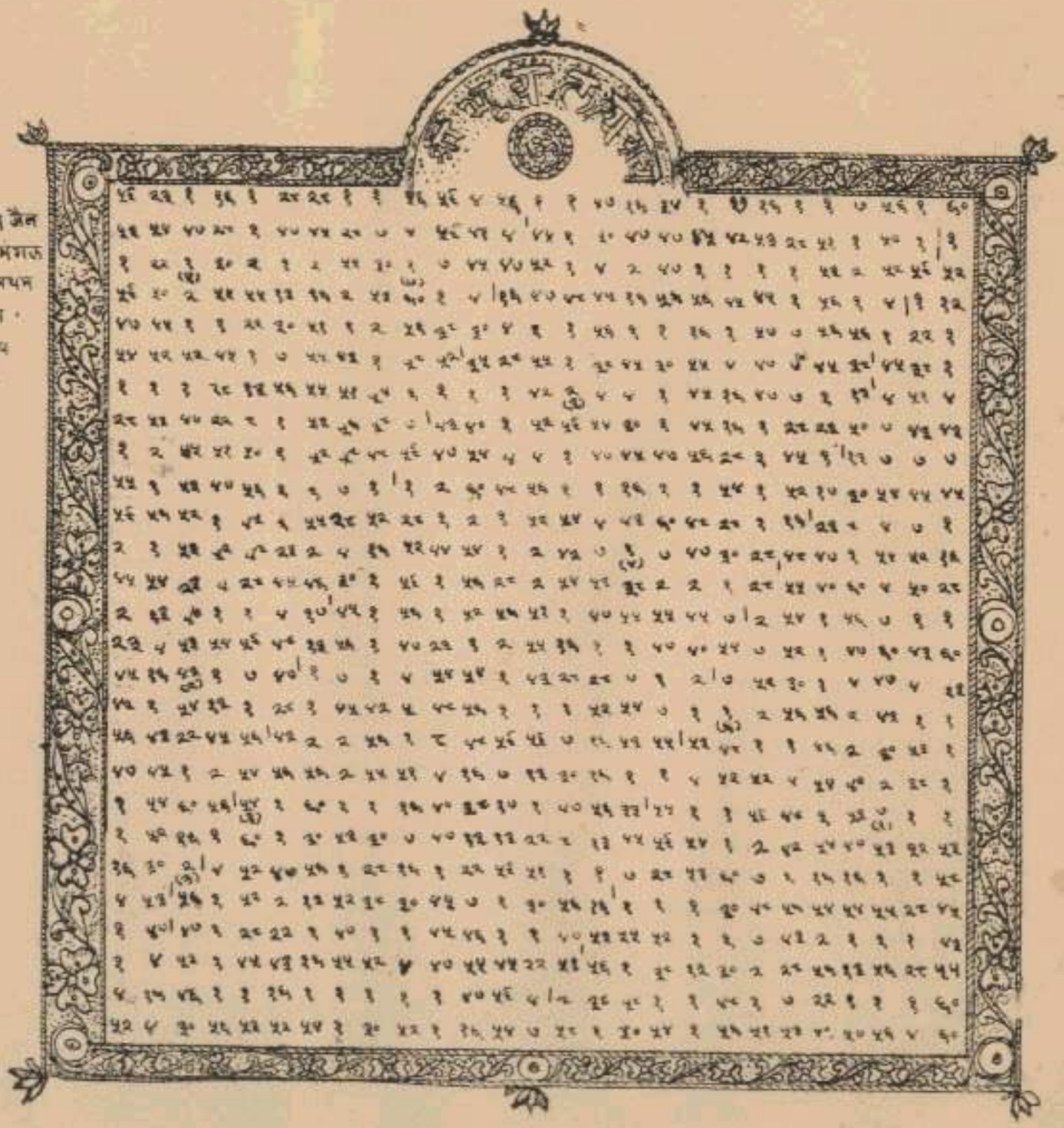
'अं' अध्याय प्रथम

१ भाग



मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

श्री भूपलय जैन
सिद्धान्त भवन
आमृत ग्रथन
खंड ' अ '
अध्याय
अंक आठ





卐 श्री वीतरागाय नमः卐

श्री दिगम्बराचार्य वीर सेनाचार्यवर्योपदिष्ट

श्री दिगम्बरजैनाचार्य कुमुदेन्दु विरचित

अंक भाषामयी जैन सिद्धान्त शास्त्र

श्री भूवलय

हिन्दी अनुवाद कर्ता

श्री दिगम्बर जैनाचार्य १०८ देशभूषण जी महाराज

प्रथम खण्ड

मंगल प्राभृत

"अ" अध्याय १-१-१

★ प्राकृत संo ❖

अ ट्ठ महाप्रातिहार्य वय्भवदिन्द । अष्ट गुणन्गळोळ् ओ मद्दम् ॥ सृष्टिगे मंगल पर्यायदिनित्त । अष्टम जिनगेरणुवेनु ॥१॥

ट् वरणेयकोलु पुस्तक पिन्छ पात्रेय । अवतारद कमन्डलद ॥ नव का रमन्त्र सिद्धिगे कारणवेन्दु । भुवलयदोळुपेळ्द महिमा ॥२॥

ट वरणेयोळक्षरदंकव स्थापिसि । दवयववदे महाव्रतवु ॥ अव ट वरिगे तक्क शक्तिगे वरवाद । नवमन्गलद भूवलय ॥३॥

वि हवारिण ओम्कारदतिशय विहनिन्न । महावीरवाणि एन्दे नुव ॥ प हिमेय मन्गल प्राभृत वेन्नुव । महसिद्ध काव्य भूवलय ॥४॥

ह कवु द्विसम्योगदोळगेइप्पत्तोंदु । प्रकटदोळरवत्तमूकूडे ॥ सकलांक दोळु वि ट्ट सोन्नेये एन्टेन्दु । सकलागम ए ळु भंग ॥५॥

क मलगळेळु मुन्द के पोगुतिर्दाग । क्रमदोळगेरडु कालून्नूरु स ॥ तमलांक ऐदुसोन्नेयु आरुएरडैदु । कमलदगंध भूवलय ॥६॥

स महद्रुदयदोळा कमलगळ् चलिपाग । विमलांक गेलुवन्दब्ध ड । समवनुवेसदोळु भागिसे सोन्नेय विमलांक काव्य भूवलय ॥७॥

म विरुद्ध सिद्धान्तवनु महाव्रतकेंदु । नवपदवरणु व्रतकेंदु ॥
वि यलियमल मूढ दम्सरणुत्तलिया । जयपरीषहव्इप्पत्तोरडम् ॥ नय
य लयल दिक्कुगळहत्तनु बट्टेय । नलविनिम् धरसिद मुनि
कलियंक काव्य भूवलय ॥११॥
गेलवेरिसुव भूवलय ॥१४॥
सलुव प्रमाण भूवलय ॥१७॥

ला वण्यदंग मैय्याद गोमट देव । आवागतन्न अरण्णनिगे ॥ ईवागच
रिण जदहत्तनु आत्म धर्मवागिसि कोंड भजकर्गे श्रीविन्ध्यगिरिय ॥ निज
ट् क्किनिसिल्लदाहत्तनु निर्जदिद । तक्कजनकेपेळ्द महिमर् ॥ सिक्करुस
टि दि अनुभागबन्ध देप्रदेशवहोक्कु । विदियादिहदिनाल्कहोंदि । अदनल्लि
य शस्वतिदेविय मगळाद ब्राम्हिगे । असमान कर्माटकद । रिसियुनि
रसद ओंकार भूवलय ॥२४॥
रिसिरिद्धि यरवत्त नाल्कु ॥२७॥

क रुणेयम्बहिरन्ग साम्राज्यस् लक्ष्मिय । अरुहनु कर्माटकद ॥ सिरिमात
ज् य सिद्धियादअाओम्देअक्षर ब्रह्म । नयदोळग्अरवत् नाल्कु । जयिनर्गेस
ना ति जरा मरणवनुगुणाकार । दातिथ्यबरेभागहार । ख्यातियभंगदोळरिव
प द पद्म दोळगणंकाक्षर विज्ञान । अदर गुणाकार मग्गि ॥ वदगि बंदा
रग वपददंकदिम्गणिसलोम्बत्ताम्। अवरंक वनुलोम भंग। दवतारवयत्नपूर्वक
ट् कद सम्योगदे भंगवागिह हत्तु ।सकलांक चक्रेश्वरवु ॥ अकलंक वादहत्त
ट कवनु महवीर नंतर्मुहूर्त दिम्।प्रकटि सेदिव्य वाणियलि ॥ सकलाक्षरवम्
स वर्थसिद्धि येंदेनलु अक्षर भंग । निर्वाहदोळगंक भंगम् ॥ सर्वांक
म् रमवादाहत्तम्वळेसुव(कालदे)योग दे।निर्मलम्शुद्धसिद्धान्तधर्मवहरडुवआ
सा गर द्वीपगळेल्लव गणिसुव । श्रीगुरु ऐदवरंक ॥ नागवनाकव
रा शियोळोम्दम्तेगेयलाराशियु ।घासियागदलेतुंबिरुव॥ श्रीशननन्तदपद वि

स वियागिसि प्रोढ मूढ-रीर्वरिगोंदे ।नव पद भक्ति भूवलय ॥८॥
म् आर्गदिदगेल्दवर सव् वंशद। स्वयम् सिद्ध काव्व भूवलय ॥९॥
यु ॥ सलुवदिगंबरनेन्तेंदुकेळुव । बलिदन्क काव्य भूवलय ॥१०॥
बलशलिगळभूवलय ॥१२॥ कळेयद पुण्य भूवलय ॥१३॥
विलयगैदघद भूवलय ॥१५॥ जलज धवलद भूवलल ॥१६॥
सलेसिद्धधवल भूवलय ॥१८॥

क् र बन्धद कट्टिनोळ्कट्टिट । दाविश्व काव्य भूवलय ॥१९॥
त त्त्वबेळर दर्शनवन्नित्त । विजय धवलद भूवलय ॥२०॥
म् सारसागर दो ळगेंब । चोक्क कर्माट भूवलय ॥२१॥
नि धियागिशिवसौख्य होंदिद । पदवेमंगलकर्माटकवु ॥२२॥
त् यवु अरवत्नाल्कक्षर । होसेद अंगय्य भूवलय ॥२३॥
यशदेडगय्य भूवलय ॥२५॥ रसमूरु गेरेय भूवलय ॥२६॥
यशवु नाल्कारदु हत्तु ॥२८॥ रस सिद्धिया हत्तु ओम्दु ॥२९॥

य् त्नदे ओम्दरिम् पेळिद । अरवत्नाल्कंक भूवलय ॥३०॥
अ् यत्नदाकलेयतिशय । स्वयम् सिद्ध भंग भूवलय ॥३१॥
म् विख्यात । पूतवु पुण्य भूवलय ॥३२॥
ध्या नि यरिविगे सिलुकिह । सदवधि ज्ञान भूवलय ॥३३॥
य भागिसे । अवनिगेयेळु भूवलय ॥३४॥
न् कद ओ मुंदे । प्रकटद गुणकार बिन्दु ॥३५॥
ति ळिदिह गौतम । नकलंक हन्नेरडंग ॥३६॥
यो गदोळ् अरवत्तनाल्क न्नेल्ल । निर्वहिसलु हत्तु भंग ॥३७॥
गि न जिनपाद । शर्मर सिद्ध भूवलय ॥३८॥
न रकव मोक्षव । साधन वागिसिदंक ॥३९॥
ह संख्यात । दाशेयनन्त समख्यात ॥४०॥

दि शेयोळु बंद अनन्त संख्यातद । वश दोळसमृख्यातवदम् ॥ रस कमलगळेळु
ट् वरणेयोळिरुवन् 'क' दोळु कूडिद् अरवत्तु । सवियंक वेंटॅट वरोळ् ॥ अवितिह श्रीपद्
ट वरणेयोळिरुवन्क दोळु कूडिद् एन्टॅंदु । अवधु रात्तुगह कूडिदरे ॥ नव पद्म व
स मनाद ई मूरु पद्मग नेल्ल । ममहृदयद शुद्धरसद । गमकदोळ् अंन्टद अंट
य शद ध्यानाग्नियिम् पुटविडे रससिद्धि । वशवागुवुदु सत्य मणियु ॥ रसमणि
ल वमात्रवादरू दोषगळिल्लद । नवमान्कदादि अरहन्त ॥ अवनेरडू कालन्नूरिद्द अन्
त् रतरवादेर आपाद पद्मगळोळु । बरुव अतीतानागतद॥ वरदवादोंदु आ समयद
थ ण थरण वेन्नुव रसमणियौषध । गणितवम् नागार्जुननु । क्षणदोळगरि दनु गुरुविन्
सा धिसि केडिसुत सिद्धान्त मार्गद । ओदिनन्काक्षरविद्ये ॥मोदर्दाहम्सालक्षण धर्मदि
रा गवगेलिदवराग पेळिद दिव्यम् । नागसम्पगेय हूउगळम् ॥ सागर दुपमान गुणितद
सि द्धरसवमाडि हूवनु कोंदिह । बुद्धियज्ञानव केडिसि ॥ शुद्धात्म नेले
द् रुशन माडलु सद्दर्शन वागि । परमात्म पादव गुणिसे ॥ तिरुगिद कमल
अरुहन पद पद्म भंग ॥५३॥ परमन पदपद्म दंग ॥५४॥ गुरुपरम् परेयादि भंग
गुरु गळ उपदेश दंग ॥५७॥ परिशुद्ध परमात्मनंग ॥५८॥ सरसद हन्नेरडंग
परिमळ रसवगेल्दन्ग ॥६१॥ सरसाक्षरद् एळु भन्ग ॥६२॥ गुरुसेन गणदवरन्ग
ध् रमध्वजवदरोळु केत्तिद चक्र । निर्मलदष्टु हूवुगळम् ॥ स्वर्मन दळगळ य्वत्
आ पाटियंकदोळ् ऐदु साविर कूडे । श्रीपाद पद्म गंधजल (दंगजल)॥ रूपि अरूपियाओ
सि रि सिद्ध अरहंत आचार्य पाठक । वर सर्वसाधु सद्धर्म ॥ परमागम वद
करुणे योम्बत्त् इप्पत्तोळु ॥६८॥ अरुहन गुणवेंबत्तोंदु ॥६९॥ सिरियेळ्नूरिप्प
एरडने कमल हन्नेरडु ॥७२॥ करविडिदेळंक कुम्भ ॥७३॥ अरुहन वाणि

द् गणित राशियोळुत्पन्न वागिह । बगेबगेयन्कदक्षरद ॥ सोगसिनिम् मन्गलप्रा
धि षणर् एन्देने व्रुद्ध मुनिगळ सम्पद । दिशेयोळु बह बालमुनिगे ॥ वशवागद
म् नवु सिंहासन तनुवु चैत्यालय । जिनबिम्बदन्ते नन्नात्म । नेनुत अक्ष
म रेतिहदेहाभिमानदोळध्यात्म । सरमालेयोळु बन्धकरगे । अरहन्त रूपि

का दिरिसिददिव्य । रससिद्धि जलपद्मगंध ॥४१॥
म हदिनारु स्वप्नद । अवयव स्थलपद्मगन्ध ॥४२॥
द रिंदबरुवंक एळम् । सविदरे बेट्टद पद्म ॥४३॥
म् एंटनु । श्रमविल्लदे सोन्नेगेय्दु ॥४४॥
मो क्षदेकामदबहुदेम्ब । रस सिद्धियंक भूवलय ॥४५॥
क् द । सवियें भाविसे महापद्म ॥४६॥
ष ट् पद । दरियिरि वर्तमान वनु ॥४७॥
द लातनु । गुणिसुत लेन्दु कर्म वनु ॥४८॥
म् । आदि जिनेन्द्ररर मतदिम् ॥४९॥
च रितेयम् । भोगव योगदोळ् कूडि ॥५०॥
इ ह सिद्धर लोकद । सिद्ध सिद्धान्त भूवलय ॥५१॥
व दलगळ कूडलु । बर लोम्दु साविर देन्दु ॥५२॥
॥५५॥ सरसान्क हुट्टिद भंग ॥५६॥
॥५९॥ करुणेय मूरु हूवन्ग ॥६०॥
॥६३॥ सरमंगल काव्य भंग ॥६४॥
ओ म्दु सोन्नेयु । धर्मदकालु लक्षगळे ॥६५॥
म् दरोळ् पेळुव । श्रीपद्धतिय भूवलय ॥६६॥
म् बरेव चय्त्यालय।दिरुव श्रीबिंबओम्बत्तु ॥६७॥
त्ओम्बत्म् ॥७०॥ बरुव मदान्कगळारु ॥७१॥
ओम्बत्तु ॥७४॥ परिपूर्ण नवदन्क करग ॥७५॥
सिरि सिद्धं नमह ओम्हत्तु ॥७६॥

का र भद्रवु । बगेगे शुभदसौख्यकर ॥७७॥
रा शियतिशय हारदे।हौसेदरे बन्विह शिववु ॥७८॥
य बाद भावद्रव्यगळिंद।घनबन्धपुण्यभूवलय ॥७९॥
न द्रव्यागमकाव्य ।सिरि यिरप सिद्ध भूवलय ॥८०॥

म न दर्थियिंद शरीरवतपिसिद । जिनरूपि नाशेयजनरू ।घनकर्माटक वेन्टनु गेले मोक्ष । वनुभव मंगल काव्य ॥८१॥
दि शेयोळोम्बत्तार वशगोंड सूत्रांक । दसमानि पाहुड काव्य ॥ वशवाद न मनात्म स्वसमय वेन्नुव ।कु समय नाशक काव्य ॥८२॥
स र्वार्थ सिद्धिसम्पददनिर्मलकाव्य। धर्मवलौकिकगणित ।निर् ममबुद्धिय नवलम् बिसिरुवर । धर्मानुयोगद वस्तु ॥८३॥
शर्मर निर्मल काव्य ॥८४॥ धर्म मूरारु मूरन्क ॥८५॥ धर्म समन्वय काव्य ॥८६॥ निर्ममकार वाक्यान्क ॥८७॥
धर्म भाषेगळेन्टोन्देळु ॥८८॥ मर्म पशचदानुपूर्वि ॥८९॥ धर्म समन्वय गुणित ॥९०॥ कर्मद अरिकेय गणित ॥९१॥
करम्द संख्यात गणित ॥९२॥ कर्मदसम्ख्यात गुणित॥९३॥ कर्मदनन्तान्क गुणित ॥९४॥ कर्मदुत्कृष्टदनन्त ॥९५॥
कर्मसिद्धान्तद गणित ॥९६॥ निर्मलदध्यात्म बन्धम् ॥९७॥ सर्वस्व सार भूवलय ॥९८॥ धर्ममन्गल प्राभृतवु ॥९९॥
निर्मल शुद्धकल्याणम् ॥१००॥ धर्मवय्भव भद्र सौख्य ॥१०१॥
न वकार मन्त्र दोळादिय सिद्धान्त। अवयव पूर्वेय ग्रन्थ॥दवतारदआदि म द् 'अ' क्षरमन्गल।नव अ अ अ अअअअअअ ॥१०२॥
अवरोळु अपुनरुक्तान्क ॥१०३॥ अवुनोडल पुनरुक्त लिपि ॥१०४॥ अवरोळ गादिय भन्ग ॥१०५॥ सविएरळ् मूर्नालकु भन्ग ॥१०६॥
इवु ऐदारेळेन्टु भन्ग ॥१०७॥ सवोम्बत्त्तु हत्हन् ओम्दु ॥१०८॥ सविहन्एरड् हदिमूरू भन्ग ॥१०९॥ अवु हदिनालक् हदिनय्दु ॥११०॥
अवु हदिनार् हदिनेळु ॥१११॥ नव वेरडेने हदिनेन्टु ॥११२॥ अवु हत्तोंबत्तु इप्पत्त्उ ॥११३॥ अवर मुन्द् ओम्देरळ्मूरु ॥११४॥
सवि नालकयदारेळेन्ट नग ॥११५॥ नवमुनदेंमूवत्त अन्ग ॥११६॥ अवु नलवत् मुन्देहत्अन्क ॥११७॥ सवि हत्त्उ अरवत्तु भन्ग ॥११८॥
अवु हत्तए अरवत्तु भन्ग ॥११९॥ सवियओम्देरडुमूर्नालकु ॥१२०॥ अवु कूडल् अरवत्तनालकु ॥१२१॥
सवियअ अरवत्नालकु भन्ग ॥१२२॥ अवरंकवदु तोम्वत्एरडु ॥१२३॥ अवु अडगिहुदु अन्तरद ॥१२४॥
ह ळियलु आरूवरे साविर मुन्दे। बळसिह अरवत्तोंदु ॥ तिळियंक औंबत्तर मूर ह रिमुन्दे ॥ कळेये मंगलद (बळसे)पाहुडवुम् ॥१२५॥

९×९×९×९ = ६५६१ = ९ ६५६१ अन्तर ७७८५×१४३४६ = ९

प्राकृत और कर्माटक ये दोनों भाषा सक्रमवर्त्ती है संस्कृत अक्रमवर्ती

अट्टविहकम्म वियला णिटिटय कज्जा परणट्टसंसारा । ओकारम् बिन्दु संयुक्तं नित्यम् ध्यायन्ति योगिनः ।
दिट्टसयलत्थ सारा सिद्धआ सिद्धिम् मम दिसन्तु ॥१॥ कामदं मोक्षदम् चैव ओंकाराय नमो नमः ॥१॥

★ आरम्भ के लाल रंग के अक्षरों को ऊपर से नीचे की तरफ पढ़ने से प्राकृत भाषा बनती है।
❖ बीच के लाल रंग के अक्षरों को ऊपर से नीचे की तरफ पढ़ने से संस्कृत भाषा बनती है।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री दिगम्बरजैनाचार्य वीरसेन जी के शिष्य श्री दिगम्बरजैनाचार्य कुमुदेन्दु विरचित

श्री सर्वभाषामय सिद्धान्त शास्त्र

भूवलय

श्री १०८ दिगम्बरजैनाचार्य देशभूषण जी द्वारा

कानड़ी का हिन्दी अनुवाद

प्रथमखंड 'अ' अध्याय

कौ मोददायकमनंतगुणाम्बुराशि, श्री कौमुदेन्दुमुनिनाथकृतोपसेवं ।
श्री देशभूषण मुनीश्वरमासुनम्य, हिंदीं करोमि शुभ भूवलयस्य बुद्ध्या ॥

मंगल प्राभृत

अष्ट महाप्रातिहार्य वैभवदिंद । अष्टगुणंगळोळोंदस् ॥
सृष्टिगे मंगल पर्यायदिनित्त । अष्टमजिनगेरगुवेनु ॥ १ ॥

इस भूवलय ग्रन्थ की रचना के आदि में श्री कुमुदेंदु जैनाचार्य ने मंगल रूप में श्री चन्द्र प्रभु तीर्थंकर को ही नमस्कार किया है। यह चन्द्र प्रभु तीर्थंकर परम देव कैसे हैं, ? सो कहते हैं-

अष्ट महाप्रातिहार्य--

संपूर्ण विश्व के अन्दर जितनी भी श्रेष्ठ वस्तुएं हैं अर्थात् जितने वैभव चक्रवर्ती देवेन्द्र या मनुष्य के सुख हैं, उन संपूर्ण सुखों से भी अत्यन्त पवित्र एवं मंगलकारी सुख, जो है वह अष्ट महा-प्रातिहार्यों तथा अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी के वैभवों से सुशोभित आठ गुणों से युक्त एक अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान के पास ही हैं वे भगवान ही विश्व के प्राणियों को मंगल के देने वाले हैं। इसलिये हम अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान को मन-वचन-काय से त्रिकरण शुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हैं।

श्री कुमुदेंदु आचार्य ने केवल अकेले आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान को ही नमस्कार क्यों किया ?

समाधान--भगवान गुणधर आचार्य द्वारा रचित जयधवल के टीकाकार अर्थात् कुमुदेंदु आचार्य के गुरु वीरसेन आचार्य ने जयधवल की टीका के आदि में चन्द्रप्रभु भगवान को ही नमस्कार किया है जैसा कि--

जयइ धवलंगते ए णाऊरियसयल भुवण भवणगणो ।
केवलणाण सरीरो अणंजणो णामओ चंदो ॥

अपने धवल शरीर के तेज से समस्त भुवनों के भवन समूह को व्याप्त करने वाले केवल ज्ञान शरीर धारी, अनंजन अर्थात् कर्म से रहित चन्द्रप्रभु जिनदेव जयवंत हो।

विशेषार्थ--चन्द्रमा अपने धवल अर्थात् सफेद शरीर के मंद आलोक से मध्य लोक के कुछ भाग को व्याप्त करता है, उसका शरीर भी पार्थिव है और वह सकलंक है। परन्तु चन्द्रप्रभु भगवान अपने परमौदारिक रूप धवल शरीर के तेज से तीनों लोकों के प्रत्येक भाग को व्याप्त करते हैं। उनका अभ्यंतर शरीर पार्थिव न होकर केवल ज्ञान मय है। और वे निष्कलंक हैं, ऐसे चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र देव सदा जयवन्त हों।

वीरसेन स्वामी ने इसके द्वारा चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र की बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार की स्तुति की है। और श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भी "अष्ट महाप्रातिहार्य वैभवदिद" अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी से सुशोभित संपूर्ण प्राणियों को शुद्ध धवलीकृत कल्याण का मार्ग बतलाने के कारण उनको प्रथम नमस्कार किया है। श्री वीरसेन आचार्य ने 'धवलंगतंएण' इत्यादि पद के द्वारा उनकी बाह्य स्तुति की है। औदारिक नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुआ उनका औदारिक शरीर शुभ तथा सफेद वर्ण का था। उस शरीर की प्रभा चन्द्रमा की कांति के समान, निस्तेज न होकर तेजयुक्त थी। जो करोड़ों सूर्यों की प्रभा को भी मात करती थी। अर्थात् तिरस्कार करती थी। "केवलणाणशरीरो" इस पद से भगवान की अत्यन्त स्तुति की गई है और कुमुदेन्दु आचार्य ने भी इसी आशय को लेकर अंतरंग लक्ष्मी की स्तुति की है। प्रत्येक आत्मा, केवल--ज्ञान, केवल दर्शन--आदि अनन्त गुणों का पिंड है। इसलिए उन अनन्त गुणों के समुदाय को छोड़ कर आत्मा जैसी स्वतंत्र और कोई वस्तु नहीं है। बाह्य शरीर आदि के द्वारा जो आत्मा की स्तुति की गई, वह, आत्मा की स्तुति न होकर किसी विशिष्ट पुण्यशाली आत्मा का उस शरीर की स्तुति के द्वारा महत्व दिखलाना मात्र है। यहां केवल ज्ञान यह उपलक्षण है, जिस में केवल दर्शन आदि अनन्त आत्मा के गुणों का ग्रहण होता है, अथवा चार घातिया कर्मों के नाश से प्रगट होने वाले आत्मा के अनुजीवी गुणों का ग्रहण होता है। "**अनंजणों**" यह विशेषण भगवान की अर्हन्त अवस्था को दिखलाने के लिए दिया गया है। इससे प्रगट हो जाता है कि यह स्तुति अर्हन्त अवस्था को प्राप्त चंद्रप्रभु भगवान की है। इस स्तोत्र के आरम्भ में आए हुए 'जयइ धवलं' पद द्वारा वीरसेन आचार्य ने इस टीका का नाम 'जयधवला' प्रख्यात कर दिया है और चिरकाल तक उसके जयवन्त होकर रहने की कामना की है। यही आशा कुमुदेन्दु आचार्य की भी है, और कुमुदेन्दु आचार्य ने आगे चलकर महावीर इत्यादि द्वारा महावीर भगवान की स्तुति की है।

श्लोक नं० १

अर्थ--अशोक वृक्ष आदि आठ महाप्रातिहार्य वैभवों से युक्त ज्ञानादि आठ गुणों में से एक 'ओं' अक्षर समस्त संसार के लिए मंगलमय है। अर्थात जो आठ गुण हैं वे इस 'ओं' के पर्यायरूप हैं। ऐसे गुण और पर्यायसहित गुणों को प्राप्त करने वाले आठवें चन्द्रप्रभु भगवान को मैं (कुमुदेन्दु आचार्य) प्रणाम करता हूँ।

कुमुदेन्दु आचार्य ने व्याकरण इत्यादि तथा आजकल के प्रचलित काव्य रचना इत्यादि के क्रम के अनुसार इसकी रचना नहीं की है। बल्कि जिनेन्द्र भगवान की जो अनक्षरी वाणी थी और जो वाणी उनकी दिव्य ध्वनि के द्वारा सर्वांग प्रदेश से खिरी थी वैसी ही वाणी में आपने भूवलय ग्रन्थ की रचना की है।

इस प्रकार कुमुन्देन्दु आचार्य ने जो इस ग्रन्थ की रचना की है वह गणित के द्वारा ही हो सकती है अन्य किसी साधन से नहीं। कुमुदेन्दु आचार्य ने भी इस भूवलय काव्य की रचना केवल गणित द्वारा ही की है।

इसीलिये ७१८ (सात सौ अठारह) भाषा ३६३ धर्म तथा ६४ कलादि अर्थात् तीन काल तीन लोक का परमाणु से लेकर वृहद्ब्रह्मांड तक और अनादि काल से अनन्त काल तक होने वाले जीवों की संपूर्ण कथायें अथवा इतिहास लिखने के लिये प्रथम नौ नम्बर (अंक) लिया गया है। एक जो अंक है वह अंक किसी गणना या गिनती में नहीं आता है। इसीलिये परम्परा से जैनाचार्यों ने सर्व जघन्य अंक को

दो २ को माना है आज उसी पद्धति के अनुसार कुमुदेन्दु आचार्य ने सर्व जघन्य अंक दो को मानकर नौवें (नवां) अंक को आठवां अंक माना है। नौ के ऊपर अंक ही नहीं है। फिर यहां एक शंका होती है कि १ और १ मिलकर दो हुआ तो फिर यहां यह एक कहां से आ गया ? जब दो को छोड़कर एक को लेते हैं तो दो मिटकर एक एक ही रह जाता है। यह एक क्या चीज है ? दुनियां में ऐसा प्रचलित है कि प्रत्येक मनुष्य के हाथ में कोई चीज रखी जाती है तो एक, दो, तीन इत्यादि क्रम से गिनती के द्वारा गिनी जाती है, वे गिनती १०-१२-१५-२० इत्यादि जो संख्या हैं एक को लेकर १२ या १३ या २० या ३० को प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक एक संख्या क्रम से निकाल दी जाए तो अंत में केवल एक ही रह जाता है।

उत्तर-अंक-कहे जाने योग्य एक नहीं है। एक का टुकड़ा कर दिया जाए तो दो टुकड़े हो जाते हैं और दो बार टुकड़े कर दिये जाएं तो चार होते हैं। इसी क्रम के अनुसार काटते चले जाएं तो काल की अपेक्षा अनादि काल से फिर भी अनादि काल तक चलता ही रहेगा। क्षेत्र की अपेक्षा से केवली भगवान गम्य शुद्ध परमाणु तक जाएगा। जीव की अपेक्षा से सर्व जघन्य क्षेत्रावगाह प्रदेशस्थ क्षुद्र भव ग्रहणधारी जीव तक जायगा, भाव की अपेक्षा केवली भगवान के गम्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म तक कर पावेंगें। आप लोग हमेशा देखते हैं कि एक रुपया है, अथवा एक घर है, या कोई चीज है ऐसे तुम गिनते रहते हो। तब तुम्हारे विचार से ही एक को हमेशा अलग २ मानेगें। सभी चीज एक कैसे रह सकती हैं ? अर्थात् कभी भी नही रह सकती हैं।

इतने महान शक्ति शाली होने पर भी आत्मध्यान में बैठे हुए योगी राज के समान अथवा सिद्ध भगवान के यह जो एक अंश आप अपने अन्दर ही स्थित है। ऐसे एक को एक से गुण करने से एक ही रह जाता है। यह ही इसकी अचिन्त्य महिमा है। कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय की कला कौशल की रचना में ज्ञानादि अष्ट गुणों में 'ओं' अर्थात ज्ञान रूपी एक को ही सम्मान्य अर्थात मंगलमय माना है।

इस भूवलय को गणित शास्त्र के आधार पर लिखा है। अंक शास्त्र और गणित शास्त्र ये विद्या महान् विद्या हैं और इन दोनों का विषय भिन्न-भिन्न है। अंक शास्त्र का विषय यह है कि सबसे पहले वृषभदेव भगवान ने सुन्दरी देवी की हथेली पर बिन्दु को काट-कर एक और दो आपस में मिलाते हुए नौ तक लिखा था। इस विषय का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन करने वाले जो शास्त्र हैं उन्हीं का नाम अंक शास्त्र है। इस अंक शास्त्र के आधार से गणित शास्त्र की उत्पत्ति हुई, अर्थात् द्रव्य प्रमाणानुगम नामक रचना भगवान भूतबली आचार्य ने की। इसी द्रव्य प्रमाणानुगम शास्त्र के आधार से इस भूवलय ग्रन्थ के आधारभूत जड़ को मजबूत किया गया है। इसलिये सर्व जघन्य दो मान लिया और दो से गिनती की जाए तो नौवां अंक आठवां हो जाएगा। इसलिये आनुपूर्वी क्रम से नवें चन्द्रप्रभु भगवान आठवें तीर्थ-कर हुए। इसलिये कुमुदेन्दु आचार्य ने नवें चन्द्रप्रभु भगवान को नम-स्कार किया है। क्योंकि यह बात ठीक भी है कि संपूर्ण भूवलय की ६४ अक्षरों में ही रचना की हुई है और आठ को आठ से गुणा करने से ६४ होता है। ॥१॥

[१] "**टवरणेयकोलु**" अर्थात् पुस्तक रखने की व्यासपीठ [रहल] [२] पुस्तक [३] पिच्छ [४] पात्र रूपी कमंडल ये चारों ही नव पद सिद्धि के कारण हैं। इस प्रकार भूवलय की रचना के आदि में महा महिमावान [वैभवशाली] चन्द्रप्रभु भगवान ने कहा है। ॥२॥

इसी [व्यासपीठ] अर्थात् रहल में एक ओर चौसठ अक्षर और दूसरी ओर नौ अंक की जो स्थापना की गई है वही महाव्रत धारण किये हुए महात्माओं ने अर्थात् [दिगम्बर मुनिराजों ने] भव्य जीवों की शक्ति को जानकर उनकी शक्ति के अनुसार साध्य हुआ नव केवल

लब्धि रूप नव मंगल ही भूवलय है। ॥३॥

यह नौ की वाणी ओंकार शब्द का अतिशय है। ऐसी इस वाणी को इस काल में महावीर वाणी कहते हैं और इसको महामहिमा वाला मंगल प्राभृत भी कहते हैं और इसको महासिद्ध काव्य भी कहते हैं, तथा इसको भूवलय सिद्धान्त भी कहते हैं। ॥४॥

भूवलय की पद्धति के अनुसार 'ह्' और 'क्' इन दोनों अक्षरों के संयोग को द्विसम्योग कहते हैं। क् २८ और ह् ६० अगर इन दोनों अंकों को जोड़ लिया जाए तो ८८ आ जाता है। वह बिन्दी ही ८८ बन गयी। ८ और ८ को जोड़ देने से १६ बन गया और १ और ६ को जोड़ देने से ७ [सात] बन गया। सात के रूप में ही भगवान महावीर ने इसका नाम सप्तभंगी रखा। ॥५॥

जिस समय भगवान महावीर सहस्र कमल के ऊपर कायोत्सर्ग में खड़े थे उस समय देवेन्द्र ने प्रार्थना की कि भव्य जीव रूपी पौदे कुमार्ग नाम की तीव्र गर्मी के ताप से सूखते हुए आ रहे हैं। इसके लिये धर्मामृत रूपी वर्षा की आवश्यकता है इसलिये तुम्हारा समवसरण श्री विहार, अखिल, काश्मीर, आन्ध्र, कर्नाटक, गौड़, वाह्लीक, गुर्जर इत्यादि छप्पन देशों में बिहार करके उन जीवों को धर्मामृत की वर्षा करने की कृपा करें, इस प्रकार उन्होंने नम्र प्रार्थना की। यद्यपि भगवान का समवसरण बिना प्रार्थना के चलने वाला था। परन्तु देवेन्द्र की प्रार्थना करना एक प्रकार का निमित्त था। जिस समय देवेन्द्र ने समझा कि भगवान का विहार होने वाला है उस समय इस बात को जानकर कमलों की रचना चक्र रूप में स्थापित की। किस प्रकार स्थापित किया यह बतलाते हैं ?

आगे की ओर सात पीछे की ओर सात, इस प्रकार चारों ओर बत्तीस २ कमल की रचना की अर्थात् चक्र रूप में स्थापना की। अब हमको इस प्रकार समझना चाहिये कि एक एक कमल में १००८ दल अथवा पंखड़ी होती हैं।

३२×७ में गुणा करने से २२४ होते हैं और एक वह कमल जो भगवान के चरण के नीचे है उसको मिलाकर कुल २२५ हुए और २२५ अर्थात् २+२+५ को जोड़ दें तो ९ हो गया और कनाड़ी भाषा में इसका '**ऐरडूकालनूर**' अर्थ होता है और इसी का अर्थ भगवान का चरण भी होता है। इसी का अर्थ कायोत्सर्ग में स्थित खड़ा होना भी है। और जब भगवान अपने कदम को दूसरी जगह रखते हैं तो उसी समय भक्तिवश होकर देव उस कमल को घुमा देते हैं। तब घूमने के पश्चात् वही कमल भगवान के दूसरे पांव के नीचे आकर बैठ जाता है। अब जो २२५ कमल पहले थे उसको दुबारा २२५ से गुणा करने से ५०६२५ हो जाता है। [५+०+६+२+५=१८=८+१=९] ये भी जोड़ देने से परस्पर ९ हो जाता है।

भगवान के समवसरण में देव-देवियाँ ऊपर के अंक के अनुसार अष्ट द्रव्य मंगल को लेकर खड़े थे। जब भगवान अपने पांवों को उठाकर दूसरे पांव पर खड़े हुए उस समय इतने ही द्रव्यों से अर्चना [पूजा] करते हुए तथा जब तीसरा पांव उठाकर रखा तो इसी अंक के गणितानुसार अर्चना करते हुए चले गए। अर्थात् सारे [५६ देशों] भरतखंड में भगवान के जितने पांव पड़ते गए उतने ही देव-देवियां हैं ॥६॥

जिस समय भगवान विहार करते थे उस समय भगवान के चरण के नीचे जो कमल होता था उसकी सुगन्ध उसी भूमि से निकलकर भव्य जीवों की नासिका में प्रवेश कर हृदय में जाती थी। तब उनके हृदय में अत्यन्त पुण्य-परमाणु का बन्ध होता था। अब इस समय तो भगवान हैं ही नहीं, उनके चरण के नीचे का कमल भी नहीं। तब फिर वह गंध किस प्रकार आएगी। क्योंकि अब कमल की गंध तो है ही नहीं तो फिर हम क्यों भक्ति करें ?

इस प्रकार के प्रश्न प्रायः उठते हैं जिनका समाधान हम नीचे दिए हुए दसवें श्लोक में करेंगे।

भगवान अपने समवसरण के साथ विहार करते समय पृथ्वी पर चलने-फिरने वाली चिड़िया के समान चलते थे। परन्तु अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का विहार चक्र के समान अर्थात् आजकल के हवाई

जहाज के समान तिरछा चलता था। इस समय वही भगवान के चरण कमल हमारे हृदय-कमल में चक्र की भाँति घूमते हुए सर्वांग भक्ति को उत्पन्न कर अत्यन्त शान्तमय बना देते हैं। इस प्रकार घूमने के कारण आठवां अंक मिलता है, उस अंक से तथा उस गुणाकार से '९' नौ नामक अंक दो से भाग होकर अर्थात् विषमांक से भाग होकर शून्य रूप बन जाता है। यह गणित की क्रिया किसी को मालूम नहीं थी। स्वयं वीरसेन आचार्य को भी यह नवमांक पद्धति विदित न थी। कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विधि को अपने क्षयोपशम ज्ञान से जानकर गुरू से प्रार्थना की। तब वीरसेन आचार्य प्रसन्न होकर बोले--तुम हमारे शिष्य नहीं परन्तु हम ही आपके शिष्य हैं। जैसा उन्होंने अपने मुख से प्रकट किया है, इस बात का आगे चलकर खुलासा दिया गया है।

यह विधि गणित शास्त्रज्ञों लिये अधिक महत्वशाली है, बहुत दूर प्राच्य देश (जर्मन इत्यादि) से आने वाला (राडार बम्बार मिशन) अर्थात् राडर विमान भारत के किसी एक बड़े भाग को नष्ट करने के लिये आता है। तब तुरन्त ही भारत वाले अपनी साइंस से मालूम कर लेते हैं कि एक बड़ा विमान भारत के बड़े भाग को नष्ट करने के लिये आ रहा है। तभी वह कई स्थानों को सूचित कर, उस विमान को गोली से मार गिराने की आज्ञा देते हैं। यदि गोली लग जाती है तो विमान नष्ट हो जाता है अन्यथा विमान अपना काम पूर्ण कर लेता है। इसका कारण क्या है ? इसका उत्तर है कि गणित शास्त्र की अधूरता ही इसका कारण है। यदि भूवलय का गणित शास्त्र जगत में प्रचलित हो जाए और समांक का विषमांक से विभाग हो जावे तो सब सवाल हल हो जाते हैं। और एक दूसरे को मारने की हिंसा मिट जाती है। कहते हैं कि एक राजा के पास मारने का शस्त्र है और दूसरे के पास रक्षा करने का शस्त्र है तो उस मारने वाले शस्त्र का क्या लाभ अर्थात् कुछ नही। यही जैन धर्म का बड़ा महत्वशाली अहिंसा का शस्त्र दुनिया को देन है। भगवान् महावीर के ज्ञान में कुछ भी जानने में शेष न रहने के कारण उनके ज्ञान को सर्वज्ञ कहा है। अगर भगवान् के ज्ञान में कुछ वस्तु शेष रह जाती तो उनको सर्वज्ञ नहीं कहा जाता। इसलिये उनकी वाणी प्रमाण होने के कारण किसी को अप्रमाणता के विषय की शंका नहीं हो सकती। यही भगवान के ज्ञान में एक महत्व है। इसलिये आजकल भी भगवान महावीर के कमलों की गंध का आस्वादन ऊपर कहे हुए गुणकार से भगवान के पद-कमलों को गुणकार करते हुए विशेष रूप से वस्तु को जान सकता है। यही हमारे कहने का प्रयोजन है ॥ ७ ॥

पूर्वापर विरोधादि दोष रहित सिद्धान्त शास्त्र महाव्रती के लिये हैं और अरहंत सिद्धाचार्यादि नव पद की भक्ति अणुव्रत वालों के लिये है। इस रीति से अणुव्रत और महाव्रत दोनों की समानता दिखलाते हुए यह मूढ़ और प्रौढ़ अर्थात् विद्वान् दोनो को एक ही समान उपदेश देने वाला भूवलय शास्त्र है। जैसे कि कनाड़ी श्लोकों को पढ़ लेने से मूढ़ भी अर्थ कर लेता है और इस कनाड़ी में भी विद्वान् अपने प्रथक-प्रथक दृष्टिकोणों से उन्हीं अक्षरों को ढूंढ़ते हुए प्रथक्-प्रथक भाषा और विषय को निकाल लेते हैं ॥ ८ ॥

जिन्होंने सम्यक्त्व के आठ मूल दोषों को निकाल दिया है और देव-मूढता, गुरू मूढता और पाखंडी मूढ़ता को त्याग दिया है और दर्शनावरणी कर्म का नाश कर दिया है और क्षुधा, तृषादि बाईस परीषहों को जीत लिया है। ऐसे महाव्रतियों के प्रमाण से जो वस्तु सिद्ध हो गई उस वस्तु को दुबारा सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। यदि कोई सिद्ध भी करे तो वह अविचारित रमणीय है। अर्थात् कुछ फल नहीं। यह भूवलय काव्य भी महाव्रतियों के शिरोमणि आचार्य के द्वारा बनाया हुआ है अतः स्वयं प्रमाण है ॥ ९ ॥

इस भूवलय काव्य में बतलाया गया है कि दस दिशा रूपी कपड़ों को अपने शरीर पर धारण करते हुए भी मुनिराज दिगम्बर कैसे बने ?

जैसे सूर्य को दिनकर, भास्कर, प्रभाकर आदि अनेक नामों से पुकारते हैं वैसे ही कवि लोग उस सूर्य को तस्कर भी कहते हैं क्योंकि वह रात्रि के अन्धकार को चुराने वाला है। इसी

तरह दिगम्बर जैन मुनि सम्पूर्ण वस्त्रादि परिग्रह से रहित अर्थात् निरावरण आकाश के समान होते हैं। केवल एक शरीर मात्र उसके पास परिग्रह है। इस रूप में होते हुए दशों दिशा रूपी वस्त्रको धारण किए हुए हैं। यह शब्द उपमा रूप में है ॥१०॥

अनादि काल से इस तरह मुनियों के द्वारा बनाया हुआ यह भूवलय नाम का काव्य है ॥ ११ ॥

आत्म बल से बलिष्ठ होने के कारण इन्हीं मुनियों को ही बलशाली कहते हैं ॥ १२ ॥

ऐसे दिगम्बर मुनियों के द्वारा कहा हुआ काव्य होने के कारण इसके श्रवण-मनन आदि से जो पुण्य का बन्ध होता है वह बंध अंतिम समय तक अर्थात् मोक्ष जाने तक साथ रहता है अर्थात् नाश नहीं होता है ॥ १३ ॥

इस भूवलय के श्रवणमात्र से अनेक कला और भाषा आदि अनेक दैविक चमत्कार देखने को मिलते हैं इसी तरह सुनने और पढ़ने मात्र से उत्तरोत्तर उत्साह को बढ़ाने वाला यह काव्य है ॥ १४ ॥

इस प्रकार इस पवित्र भूवलय शास्त्र को सुनने मात्रसे सम्पूर्ण पापों का नाश होता है ॥ १५ ॥

दिगम्बर मुनियों ने ध्यानस्थ होकर अपने हृदय रूपी कमल दल में धवल विन्दु को देखकर जो ज्ञान प्राप्त किया था उसी के अतिशय को स्पष्ट कर दिखलाने वाला यह भूवलय है। अथवा यह धवल, जयधवल, महाधवल, विजयधवल और अतिशय धवल जैसे पाँच धवलों के अतिशय को धारण करने वाला भूवलय है। जब दिगम्बर मुनिराज अपने योग में कमल दल के ऊपर पाँच बिन्दुओं को श्वेत अर्थात् धवल रूप में जिस प्रकार एक साथ देखते हैं उसी तरह इस भूवलय ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ पर तथा प्रत्येक पंक्ति पर इन पाँच धवल सिद्धान्त ग्रंथ के एक साथ दर्शन कर सकते हैं और पढ़ भी सकते हैं ॥ १६ ॥

चौंसठ (६४) अक्षरमय गणित से सिद्ध अर्थात् प्रमाणित होने के कारण यह भूवलय सर्वोपरि प्रमाणिक काव्य है ॥ १७ ॥

ऐसे इस भूवलय के अंक फोटो कर लेने से उसके सब अंकाक्षर काले न होकर सफेद बन गए हैं। उसी तरह जीव द्रव्य से शब्द निकलता है। उसी तरह यह अंक सिद्ध हुआ। यह भूवलय ग्रंथ है।

अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले आदि मन्मथ कामदेव, गोमट्टदेव (बाहुबलि) जिस समय अपने बड़े भाई भरत चक्रवर्ती को तीनों युद्धों में जीतते समय जब वैराग्य उत्पन्न हुआ तब जीता हुआ सम्पूर्ण भरत-खंड अपने भाई को वापिस दे दिया। तब खेद खिन्न होते हुए सकल चक्रवर्ती राजा भरत ने (बाहुबलि) से पूछा कि हमने राज-लोभ से आपके बज्र वृषभ नाराच संहनन से बने हुए शरीर पर चक्र छोड़ा। जो पर-चक्र को मात करने वाला सुदर्शन चक्र है वह चक्र आपके शरीर को भी घात करे इस विचार से छोड़ दिया। यह सभी लोभ कषाय का उदय है। मैं इतना बलशाली होते हुए भी पुद्गल से रचा हुआ होने के कारण आपके ज्ञानमयी शरीर रूपी चक्र का घात करने में असमर्थ होने के कारण तुम्हारे पास निस्तेज होकर खड़ा हुआ हूँ। मैं इस निस्तेज चक्र को वापिस कर रहा हूँ, यह मुझे नहीं चाहिए। पहले पिता वृषभदेव तीर्थंकर जब तपोवन में जाने लगे तब मैं, आप, ब्राह्मी और सुंदरी इन चारों को नौ अंकमय चक्ररूपी भूवलय में ६४ (चौंसठ) अक्षरों में बाँधकर ज्ञानरूपी चक्र को बनाने की विधि को दिखाया था। उस समय हमने अच्छी तरह नहीं सुना था, इसलिए मुझे लोभ पैदा हुआ है। उसके फल ने ही मुझे निस्तेज कर दिया अर्थात् मुझे हरा दिया। अब मुझे किसी से न हारनेवाले भूवलय चक्र को वापिस दो। कुम्हार के चक्र के समान संसार में घुमाने वाला यह चक्र मुझे नहीं चाहिए। तब बाहुबली ने कहा कि जैसा आप कहते हो वैसा नहीं हो सकता। इस भरत खंड को आप पालें में तो इसका पालन नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि मैं इस पृथ्वी को पूर्णरूप से त्याग कर चुका हूँ। इसलिये मुझ को तो अब ज्ञान रूप चक्र के द्वारा धर्म साम्राज्य प्राप्त कर लेने की आज्ञा दो तब इच्छा न होने पर भी भरत चक्रवर्ती को मानना पड़ा अतः भरत महाराज बोले कि यदि मेरा

सुदर्शन चक्र चला जाए तो कोई चिन्ता नहीं है, परन्तु इस ज्ञान-चक्र-रूपी भूवलय को कदापि नहीं छोड़ सकता हूँ। इसलिए मुझे लौकिक चक्र और अलौकिक ज्ञान चक्र रूपी भूवलय चक्र इन दोनों को दो, इसपर बाहुबली ने २७ × २७ = ७२९ कोष्ठ में सम्पूर्ण द्रव्य श्रुत-रूपी द्वादशांग वाणी को ६४ अक्षरों में बाँध कर इन अक्षरों को पुनः ९ अंक में बाँध कर दान दिया हुआ होने के कारण यह भूवलय विश्वरूप काव्य है ॥ १९ ॥

उत्तम क्षमादि दस प्रकार के धर्मों को अपना आत्मधर्म मानते हुए बाहुबली ने भक्त जनों को श्री विंध्यगिरि पर अपने निजी सात तत्व रूपी सप्त भंगों द्वारा जिसको प्रकट किया था वह विजय धवल ही यह भूवलय है ॥ २० ॥

तीनों शल्य रहित उन दश धर्मों को पालन करते हुए उनके द्वारा जो अपने अंदर अनुभव प्राप्त किया है उस अनुभव को ग्रहण करने योग्य सत्यपात्र रूपी भव्य जीवों को जो दान देने वाले महात्मा हैं वे इस संसार रूपी सागर में कभी नहीं डूब सकते। ऐसा बताने वाला शुभ कर्माटक अर्थात् ६३ कर्म प्रकृति पर विजय पाने वाला तथा केवल ज्ञान प्राप्ति का उपाय बताने वाला यह भूवलय है।

कर्माटक शब्द का विवेचनः---

आदि तीर्थंकर अर्थात् वृषभदेव भगवान के गणधर वृषभसेनाचार्य से लेकर गौतम गणधर तक सभी गणधर परमेष्ठी कर्नाटक देश के थे। और सब तीर्थंकरों ने अपना उपदेश (सर्व भाषामयी दिव्य वाणी को) कर्नाटक भाषा में ही भव्य जीवों को सुनाया। यह कर्माटक कैसा था ? जैसे कि सात सौ रेडियो को अपने घर में रखकर अलग अलग स्टेशनों पर नम्बर लगाकर उनको गायन सुनने के लिए रख दिया जाय तो दूर से सुनने वालों को वीणा-नाद के समान अर्थात् कोयल पक्षी के कंठ के समान मधुर आवाज सुनने में आती है। उसी तरह यह कर्नाटक भाषा है। इस भाषा से दिव्य ध्वनि के अर्थ को समझ कर सब गणधर परमेष्ठियों ने बारह अंग (द्वादशांग) रूप में गूंथ कर इन अंगों से प्रत्येक भाषाओं को लेकर सुननेवाले भव्य जीवों की योग्यता के अनुसार उन्ही २ भाषाओं में उपदेश देते थे। इसलिए कर्नाटक भाषा को दिगम्बराचार्य कुमुदेन्दु मुनि ने कर्माटक अर्थात् ६३ कर्मों के खेल को बतलाने वाली अथवा कर्माटक अर्थात् आठ कर्मों की कथा को कहनेवाली और दिव्य वाणी को अपने अन्तर्गत रखने की शक्ति इस कर्माटक भाषा में ही बताई है, अन्य किसी भाषा में नहीं। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने बतलाया है। इसी का नाम भूवलय ग्रन्थ है ॥ २१ ॥

यह कर्म चार भागों में विभक्त है--१ स्थिति २ अनुभाग ३ प्रदेश बंध ४ प्रकृति बंध। ये चारों बंध आत्मा के साथ भिन्न-भिन्न रूप से फल को देते हुए आठ कर्म रूप बन गए हैं। आठों कर्म आत्मा के साथ पिंड रूप में आवरण करा के इस आत्मा को संसार रूपी समुद्र में भ्रमण कराते हैं। इन सभी कर्मों के आवागमन को द्वितीयादि चौदह गुणस्थान तक सम्यक्त्व रूपी निधि में परिवर्तित कर आत्मा के साथ स्थिर करते हुए मोक्ष में पहुंचाने वाली यह कर्माटक नामक भाषा है ॥ २२ ॥

तिरेसठ (६३) कर्म प्रकृति को घातियाकर्म में और शेष बचे हुए ८५ कर्मों को एक अघाति कर्म मानकर उस एक को ६३ में मिलाकर ६४ (चौंसठ) मानकर भगवान ऋषभदेव ने चौसठ ध्वनि रूप, अर्थात् आजकल कर्नाटक देश में प्रचार रूप में रहने वाली लिपि के रूप में ही रचना करके यशस्वती देवी की पुत्री ब्राह्मी की दाहिने हाथ की हथेली को स्पर्श करते हुए क्रम से लिखा हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥ २३ ॥

उन चौंसठ अक्षरों को परस्पर मिलाने से "ओम्" बन जाता है अर्थात् ४ और ६ दस बन जाते हैं, दस में एक और बिन्दी लगाने से 'ओ' से "ओम्" बन जाता है। कर्नाटक भाषा में एक को 'ओंदु' कहते हैं, दु' प्रत्यय है। 'दु' को निकाल दिया जाय तो 'ओम्' रह जाता है और 'दु' का अर्थ 'का' हो जाता है। 'का' का अर्थ छठी विभक्ति में

लगता है। संक्षेप रूप कह दिया जाय तो 'ओम्' शब्द में सम्पूर्ण 'भूवलय' अंतर्गत होता है।

अब पहले श्लोक से लेकर सत्ताइस अक्षर से तेइस श्लोक तक आ जाएं तो "ओकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यम्" हो जाता है। ये ही रूप भगवत् गीता में नेमिनाथ भगवान ने कृष्ण को सुनाया है। वह गीता इस भूवलय के प्रथम अध्याय से ही शुरू होती है। इसका विवेचन आगे चलकर करेंगे ॥ २४ ॥

इस भारत में कर्नाटक दक्षिण की तरफ पड़ता है। ब्राह्मी देवी का दायें हाथ से लिखने का भी यही कारण है कि कर्नाटक देश दक्षिण में था। उसी दक्षिण देश में स्थित नन्दी नामक पर्वत पर इस भूवलय की रचना हुई। नन्दी नामक पर्वत के समीप पांच मील दूरी पर "यलव" नाम का गांव अब भी वर्तमान में है। उसी 'यलव' के 'भू' उपसर्ग लगा दिया जाए तो 'भूवलय' होता है ॥ २५ ॥

ब्राह्मी देवी की हथेली में तीन रेखायें हैं। ऊपर की बिन्दी को काट दिया जाए तो ऊपर का एक, बीच का एक और नीचे का एक इस प्रकार मिल कर तीन हो जाते हैं। सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के चिन्ह ही ये तीन रेखागम हैं। भूवलय में रेखागम का विषय बहुत अद्भुत है। सारे विषय को और सम्पूर्ण काल को इस रेखागम से ही जान सकते हैं। सिद्धान्त शास्त्र के गणित में इस रेखा को अर्द्धछेदशलाका अथवा शलाकार्द्धच्छेद नाम से भी कहते हैं ॥ २६ ॥

दिगम्बर जैन मुनियों ने ऋद्धियों के द्वारा अपने रेखागम को जान लिया है वह बहुत सुलभ है। मान लो कि दो और दो को जोड़ने से चार, चार और चार को जोड़ने से आठ, आठ और आठ को जोड़ने से सोलह, सोलह और सोलह को जोड़ने से बत्तीस, बत्तीस और बत्तीस जोड़ने से चौंसठ होता है। इस तरह करने से चौंसठ होता है। यदि गुणा किया जाय तो पांच बार करने से चौंसठ आता है इस रेखागम से चौंसठ को एक रेखा मान लो। प्रथमार्द्धच्छेद में बत्तीस रह गया, द्वितीयार्द्धच्छेद में सोलह रह गया, तृतीयार्द्धच्छेद में आठ रह गया, चतुथार्द्धच्छेद में चार रह गया, पंचमार्द्धच्छेद में दो रह गया। यही भूवलय रेखागम की मूल जड़ है।

इन चौसठ अक्षरों को दस (६+४) मानकर अन्त में एक मानने की विशिष्ट कला है। यदि इस प्रकार न करें तो रेखांकागम नहीं बनता इसलिए कुंद-कुंद आचार्य को द्वादशांग से लेना पड़ा।

सम्पूर्ण संसारी जीवों का सिद्ध पद प्राप्त करना ही एक ध्येय है। इस लोक में रहने वाले सम्पूर्ण अजीव द्रव्यों में से एक पारा ही उत्तम अजीव द्रव्य है। जैसे जीव अनादि काल से ज्ञानावरणादि आठों कर्मों से लिप्त है, उसी प्रकार पारा भी कालिमा, कटिक, सीसक आदि दोषों से लिप्त है। जब यह आत्मा इन ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हो जाती है, तब सिद्ध परमात्मा बन जाती है। इसी तरह यह पारा भी जब इन कालिमादि दोषों से रहित हो जाता है तो रसमणि बन जाता है। इन दोनों का कथन भूवलय में आगे चलकर विस्तार पूर्वक कहा हैं ॥ २९ ॥

अर्हन्त देव ने कर्माष्टक भाषा कहा है। "आदौसकार प्रयोगः सुखदः" अर्थात् सब के आदि में जो सकार का प्रयोग है वह सुख देने वाला है। इसलिए सिद्धान्त शास्त्र के आदि में सकार रख दिया है। "सिरि" यह शब्द प्राकृत और कनाडी दोनों भाषा में समान रूप से देखने में आता है। इस तरह यह प्राचीन भाषा है। जब इस प्राचीन भाषा को अपने हाथ में लेकर संस्कृत किया तब से 'श्री' रूप में प्रचलित हुआ। 'इस श्री' शब्द का अर्थ अंतरंग और बहिरंग दोनों रूपों में 'लक्ष्मी' है। अंतरंग लक्ष्मी यह है कि सब जीवों पर दया करना। परन्तु दया करने से पहले किन जीवों पर किस रीति से दया करना, इस बात को सबसे पहले जान लेना चाहिए। जिस समय ज्ञानावरणादि कर्म नष्ट होते हैं तब अनन्त ज्ञान प्रकट होता हैं, इस ज्ञान को केवल ज्ञान कहते हैं। इस केवल ज्ञान से भगवान ने सब जीवों का हाल यथावत् यथार्थ रूप से जान लिया था। सिद्ध जीव तो अपने

समान अनादि काल से आप अपने अंदर हमेशा ही सुख में स्थित हैं। इसलिए सिद्ध जीवों के ऊपर दया करने की कोई आवश्यकता ही नहीं बल्कि संसारी जीवों के ऊपर दया करने की आवश्यकता है। इसीलिए भगवान ने अनन्त ज्ञान प्राप्त किया। इसी को कुमुदेन्दु आचार्य ने अंतरंग लक्ष्मी कहा है। उपदेश के बिना जीवों का उद्धार तथा सुधार नहीं हो सकता। एक-एक जीव को अलग-अलग उपदेश करने का समय भी नहीं मिल सकता, क्योंकि समय की कमी होने के कारण सभी जीवों को एक ही समय में सब भाषाओं में सभी विषयों का एकीकरण करके उपदेश देना अनिवार्य है। सभी जीवों का एक स्थान पर बैठकर यथा योग्य उपदेश सुनने का जो नाम है उसी का नाम समवसरण है। यह समवसरण बहिरंग लक्ष्मी है। इन दोनों सम्पत्तियों को बताने वाली कर्माटक भाषा है। इन भाषाओं को ओम् से निकाल कर चौंसठ अक्षरों को दया, धर्म आदि रूपों में विभक्त कर उपदेश दिया है। यही सर्व जीवों का एक साम्राज्य है। इस बात को कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥ ३० ॥

नय मार्ग से देखा जाय तो ६४ अक्षर हैं। जयसिद्धि अर्थात् प्रमाण रूप से देखा जाय तो एक है। उसी का नाम 'ओम्' है। "ओमित्येकाक्षरंब्रह्म" अर्थात् 'ओम्' यह एक अक्षर ही ब्रह्म है। इस प्रकार भगवद्गीता में कहा गया है। वह भगवद्गीता जैनियों की एक अतिशय कला है। इन कलाओं से ६४ अक्षरों को समान रूप से भंग करते जायें तो सम्पूर्ण भूवलय शास्त्र स्वयं सिद्ध बन जाता है ॥ ३१ ॥

इन भंगों से पूत अर्थात् जन्म लिया हुआ जो ज्ञान है, वह ज्ञान गुणाकार रूप से जाति, बुढ़ापा, मरण इन तीनों को जानकर अलग अलग विभाजित करने से पुण्य का स्वरूप मालूम हो जाता है। इसी लिए यह पुण्यरूप भूवलय है ॥ ३२ ॥

भगवान के चरणों के नीचे रहने वाले कमल पत्रों के अन्दर होने वाले जो धवल रूप अंक अक्षर हैं, वह सब विज्ञानमय हैं। अर्थात् आकाश प्रदेश में रहने वाले अंक हैं। उन अंकों को पहाड़े का गुणाकार करने से लिया गया अर्थात् ध्यान में स्थित मुनिराजों के योग में झलके हुए अंकाक्षर सर्वावधिज्ञान रूप हैं, उन्हीं अंकों से इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई है ॥३३॥

[illegible] रहना सिद्धादि नव पद तकाक अंकों से बने हुये दुनियाँ में जितनी अंक राशि हैं उन सबको नव पदों से गुणा कर देने से अर्थात् १ को दो से और दो को ३ से, ३ को चार से, और ४ को ५ से, और ५ को ६ से गुना करने से ८२० आ गया। वह इस प्रकार है १×२×३×४×५×६×७=७२० इस क्रम को अनुलोम भंग भी कहते हैं। इस प्रकार चौसठ बार यत्नपूर्वक करते जाए तो ९२ डिजिट्स् [स्थानांङ्क] आ जाता है। इसी रीति से उल्टा अर्थात् ६४×६३×-६२×६१ इस रीति से एक तक गुना करते चले जाये तो वही ९२ अंक आ जायेगा। इसी गणित पद्धति से भूवलय की रचना हुई है। इतना बड़ी अंक राशि को यदि कोई जान सकता है तो परमावधि धारक महामेधावी वीरसेनाचार्य सरीखा ही जान सकता है। परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार मतिश्रुतज्ञान के धारक हम सरीखे लोग भी जान सकते हैं। अब इस भूवलय में यह एक अपूर्व बात है कि नव का अंक जो है वह दो, चार, पांच, आदि हरएक अंक के द्वारा पूर्णरूप से विभक्त कर लिया जाता है। अर्थात् उन अंकों के द्वारा नौ का अंक कटकर अन्त में शून्य पाँच आ जाता है।

ट् ३८, क् २८, कुल मिलकर ६६ हुआ। उनमें से आदि और अन्त का दोनों पुनरुक्त हैं। उन पुनरुक्तों को निकाल देने से ६४ बन जाता है। अर्थात् ६६-२=६४। ६+४=१० अंक में जो बिन्दी है वह बिन्दी सर्वोपरि होने से उसका नाम सकलांक चक्रेश्वर है और अकलंक है अर्थात् निरावरण है, जब अंक बन गया तो फिर उससे अक्षर भी बन जाता है यही भूवलय का एक बड़ा महत्व है ॥३५॥

इस टक भंग को महावीर स्वामी ने अपनी दिव्य वाणी में अन्तर मुहूर्त में प्रकट किया, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। इस बात पर शंका होती है कि:—

ऊपर पांचवें श्लोक में हक भंग रूप में भगवान महावीर ने कहा था, ऐसा लिखा है, वहां बताया है कि हक भंग से सप्तभंगी रूप वाणी की उत्पत्ति होती है और टक भंग से द्वादशाङ्ग १२ की उत्पत्ति होती है और १२ को जोड़ देवें तो ३ आ जाता है ऐसी विषमता क्यों ? इसका समाधान करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि:

हक भंग से सब तीर्थंकरों द्वारा द्वादशांग वाणी का प्रचार हुआ यह तो अटल बात है परन्तु चौवीसवें तीर्थंकर श्री महावीर ने गौतम गणधर को समझाने के लिए ट्क भंग को स्वीकार किया था। ट्क भंग से गौतम गणधर ने बारह अंग को जान लिया और उसी को सम्पूर्णभव्य जीव को गूंथ कर समझा दिया है ॥३६॥

इस बारह अंग शास्त्र का अध्ययन करने से सवार्थसिद्धि की प्राप्ति होती है। अर्थ का मतलव चौंसठ अक्षर होता है उन अक्षरों को भंग करने से ९२ अंक आ जाता है फिर घटाते चले जांये तो वही ६४ अंक आ जाता है, और दस अंक भी मिल जाता है ॥३७॥

मर्म रूपी इस दस को उपयोग में लाने से समस्त सिद्धान्त का ज्ञान हो जाता है। जो कि पहले कहे हुये जिनेन्द्र देव के चरण कमल की सुगन्ध को फैलाने वाला है ॥३८॥

इस दश के अंक का अर्द्धच्छेद कर देने से पाँच का अंक आ जाता है जो कि पंच परमेष्ठी का वाचक है। इसी अंक से मध्यलोक के द्वीप सागरादि की गणना हो जाती है तथा नागलोक, स्वर्ग लोक,, नर और नरक लोक एवं मोक्ष स्थान तक की गणना की जा सकती है। इन्हीं तीन लोकों के घन राजुओं को पिण्ड रूप बनाने से वही दश का अंक आ जाता है अर्थात् ३४३ को क्रमशः जोड़ देने पर दश बन जाता है। इस बात को दिखलाने वाला यह अंक रूपी भूवलय है ॥ ३९ ॥

यह एक का अंक महाराशि है, उस राशि की गिनती किसी दूसरे अंक से नहीं होती है। अतएव इस राशि को अनन्त राशि कहते हैं। क्योंकि इस राशि में से आप कितनी ही एक-एक राशि निकालते चले जाओ तो भी उसका अन्त नहीं हो पाता है जितना का जितना ही वह रहता है। ऐसे करते हुए भी जिनेन्द्र देव के चरण कमल को १, २, ३, ४, ऐसे ९ तक गिनती करने का नाम संख्यात है और असंख्यात भी है। संख्यात राशि मानव के असंख्यात राशि ऋद्धि प्राप्त मुनि और देव इत्यादि के लिए और अनन्त राशि केवली भगवान के गम्य है।

इस प्रकार जघन्य संख्यात दो है। सर्वोत्कृष्ट संख्यात नौ है तो एक नम्बर में अनन्त भी है, असंख्यात भी और संख्यात भी है ॥ ४० ॥

इन तीनों दिशाओं से आई हुई अनन्त राशि को संख्या राशि से गिनती किया जावे तो प्रत्येक राशि में अनन्त ही निकल कर आता है। ऊपर भगवान के समवसरण बिहार के समय में बताये हुये जो सात कमल हैं, उन कमलों को जलकमल मानकर उन जल कमलों से रससिद्धि या पारा की सिद्धि बन जाती है। कुमुदेन्दु आचार्य ने इस सिद्धरस को दिव्य रस सिद्धि कहा है ॥ ४१ ॥

पाँचवाँ श्लोक में जो 'हक' भंग आया है उसमें ८८ की संख्या है। उस अठासी वर्ग स्थान में जो गुप्त रीति से छिपा हुआ है, उसका नाम श्री पद्म है। भगवन्त के जन्म कल्याण के समय के पीछे गर्भावतरण के समय में जिन माता को जो सोलह स्वप्न हुए थे उस स्वप्न समय का जो कथन है उस कथन के अन्दर जो पद्म निकल कर आयेगा उसका नाम स्थल पद्म है। उस पद्म से पारा को घर्षण किया जाय तो महौषधि बन जाती है ॥ ४२ ॥

पुनः उसी अठासी को जोड़ दिया जाय तो सात का कथन निकल आता है। इस कथन के अन्दर जो कमल आकर मिल जाता है उसको पहाड़ी पद्म या कमल ऐसे कहते हैं। इस प्रकार जल पद्म स्थल पद्म और पहाड़ी पद्म ऐसे तीन पद्म इस गिनती में मिल गये। इन तीनों पद्मों को कुमुदेन्दु आचार्य ने इसी भूवलय के चौथे खण्ड प्राणावाय पूर्व के विभाग में अतीत कमल अनागत कमल और वर्तमान कमल इन तीनों नामों से भी कहा है। इसका मतलब यह है कि अतीत चौबीस तीर्थंकरों के चिन्हों से गिनाया हुआ जो नाम है वह अनागत कमल है। इसी तरह वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों का लांच्छनों के गणित से गिना हुआ जो नाम है वह अतीत कमल है। अनागत चौबीस तीर्थंकरों के चिन्हों से गिना हुआ नाम वर्तमान कमल है।

"कुंभानागत सद्गुरु कमलजा" अर्थात् अनागत सद्गुरु ऐसे कहने से अनागत चौबीसी इसका अर्थ होता है। कुंभ अर्थात् जो कलश है वह १९वें तीर्थंकर का चिन्ह है। इन तात्विक शब्दों से भरे हुए तथा गणित विषय से

परिपूर्ण ऐसे इस शास्त्र के अर्थ को जैन सिद्धान्त के वेत्ता महाविद्वान लोग ही अपने कठिन परिश्रम से जान सकते हैं। अन्यथा नहीं ॥ ४३ ॥

अब आगे कुमुदेन्दु आचार्य ध्यानाग्नि और पुटाग्नि दोनों अग्नियों का विशेष रूप से साथ-साथ वर्णन करते हैं।

उपर्युक्त अतीत अनागत और वर्तमान कमलों को अथवा यों कहो कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों को समान रूप से लेकर उनके साथ में सम्मिश्रण करके अपने चञ्चल मन रूप पारा को पीसने से उसकी चपलता मिट जाती है और वह स्थिर बन जाता है ॥ ४४ ॥

फिर उस शुद्ध पारा को ध्यान रूप अग्नि में पुटपाक विधि से पकाया जावे तो वह सम्यक् रूप से सिद्ध रसायन हो कर सच्चा रत्नत्रय रूपी रसमणि बन जाता है। तत्पश्चात् यही रसमणि संसारी जीवों को उत्तम सुख देने में समर्थ हो। इस तरह काम और मोक्ष इन दोनों पुरषार्थों को साधन कर देने वाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥ ४५ ॥

नवमअङ्क के आदि में श्री अरहन्त देव हैं जो कि बिलकुल निर्दोष हैं। उनमें दोष का लेश भी नहीं है। वह भगवान् अरहन्त देव विहार के समय में जब जब अपना पैर उठाकर रखते हैं तो उसके नीचे जो कमल बन जाता है उसको महापद्माङ्क कमल कहते हैं।

विहार के समय में भगवान् के चरण के नीचे २२५ कमल रचे जाया करते हैं। उन कमलों में से सुरुडग के समय भगवान के चरण के नीचे जो कमल होता है वह बदल कर घुमाव खाकर दूसरे डग के समय भगवान के चरण के नीचे दूसरा कमल आया करता है। इसी प्रकार घुमाव खाकर नम्बर बार हरेक कमल आते रहते हैं। अब भगवान के चरण के नीचे पहले आये हुये कमल को तो अतीत कमल कहते हैं। चरण के नीचे आकर रहने वाले कमल को वर्तमान कमल कहा जाता है। किन्तु घुमाव खाकर आगे भगवान के चरण के नीचे आने वाले कमल को अनागत कमल कहते हैं।

उपर्युक्त प्रकार की रसमणी के बनाने की गणित विधि को नागार्जुन ने अपने गुरुवर श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी से जानकर उस ज्ञान को आठ बार क्रियात्मक रूप देकर रसमणि बनाया था उसी विधि के अनुसार कुमुदेन्दु आचार्य ने इस अलौकिक गणित ग्रन्थ में सोना आदि बनाने की भी विधि बताई है।

आदि नाथ भगवान के निर्दोष सिद्धान्त मार्ग से प्राप्त एकाक्षरी विद्या से अहिंसात्मक विधि पूर्वक यह रसमणि बनती है।

अंकाक्षर विधि को पढ़ने से कर्मों को नष्ट करने वाले सिद्धान्त का मार्ग मिलता है जिसे अहिंसा परमो धर्मः कहते हैं। और यह यथार्थ रूप में आत्मा का लक्षण ही अहिंसा धर्म है। इस लक्षण धर्म से जो आयुर्वेद विद्या बतलाई गई है यह धर्म श्री वृषभदेव आदि जिनेन्द्र के द्वारा प्राप्त हुआ है ॥४६॥

और इसे सम्पूर्ण रागद्वेष नष्ट हो जाने के कारण जब सर्वज्ञता प्राप्त हो गई तब भगवान ने बताया था।

दिगम्बर मुनि राग को जीतने वाले होने के कारण सूक्ष्म जीवों की हिंसा न हो जाए इस हेतु से वृक्ष के पत्ते उसकी छाल, उसकी जड़, शाखाएं, फल आदि को न लेकर उन्होंने केवल पुष्पों से अपने आयुर्वेद शास्त्र की रचना की है। पुष्प में हिंसा कम है और इसमें ऊपर कहे हुए पंच अंग का सार भी होने से गुण अधिक है। अब आगे कुमुदेन्दु आचार्य का पारा या रस की सिद्धि के लिए जो अठारह हजार पुष्प हैं उसमें से इधर एक को लेकर, जिसका नाम "नागसम्पिगे" अर्थात् नागचम्पा है। उन चम्पा पुष्पों से बना हुआ रसमणी में सागरोपम गुणित रोग परमाणु नष्ट करने की शक्ति है। उतना ही शरीर सौन्दर्य भी बढ़ता जाता है। जब सौन्दर्य, आयु शक्ति इत्यादि की वृद्धि हो जाती है तब समान रूप से भोग और योग की वृद्धि हो जाती है ॥५०॥

जगत में एक रूढ़ि है कि सभी लोग पुष्प को तोड़ कर पूजा, अलंकार आदि के निमित्त से ले जाते हैं और वे सब व्यर्थ ही जाते हैं। यहाँ आचार्य ने उन पुष्पों को सिद्ध रस बनाने के लिए ही तोड़ने की आज्ञा दी है। जो फूल भगवान के चरण में चढ़ाया जाता है इसका अर्थ है कि वह सिद्ध रस बनाने के लिए ही चढ़ाया जाता है वह व्यर्थ नहीं जाता। प्राचीनकाल में भगवान की मूर्ति को सिद्ध रसमणि से तैयार करते थे। जिस फूल से रसिमणि बन गयी

उसी फूल को तोड़ कर भगवान के चरणों में चढ़ाया जाता था। उन मूर्तियों का अभिषेक करने से फिर उस धारा को मस्तक पर सिंचन करने मात्र से कुष्ठादि महान् रोग तुरन्त नष्ट हो जाते थे। इस पद्धति का विज्ञान-सिद्धि से सम्बन्ध था। आजकल गन्धोदक में वह महिमा नहीं रही सारांश यह है कि वह पहले मूर्ति बनाने की विधि जो कि रसिमणी से बनाई जाती थी वह नहीं रही। लेकिन इससे हमें आज के गन्धोदक पर अविश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि अगर ऐसे छोड़ दिया जाय तो धर्म का घात भी होगा और वह रसमणी भी नहीं मिलेगा। परन्तु आजकल वह पुष्प भी मौजूद है और भगवान पर चढ़ाया भी जाता और उसमें रसमणि बनाने की शक्ति भी है लेकिन रसमणी बनाने की विधि न मालूम होने के कारण आजकल उसका फल हमें नहीं मिलता है अगर इसी भूवलय ग्रन्थराज से विदित करले तो हम इस विधि को जानकर रसिमणी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा ज्ञान कराने वाला केवल भूवलय ग्रन्थ ही है॥ ५१॥

ऊपर कही गई विधि के अनुसार भगवान के चरण कमल की गिनती करके सम्यक् दर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं और भगवान के शरीर में रहने वाले एक हजार आठ लक्षणों से लक्षित चिन्ह भी हमें प्राप्त होंगे॥ ५२॥

अरहन्त भगवान के चरण कमलों की गणना करने का यह गुणाकार भंग है। लब्धांक को घात करने से जो अंक आता है उसे भंगांग [गुणनखंड] कहते हैं। यही द्वादशांग की विधि है। यह विधि गुरु परम्परा से आई हुई अनादि अनिधन भंग रूप है ५३-५४-५५।

इन सम्पूर्ण अतिशयों से युक्त होने पर भी भंग निकालने की विधि बहुत सुलभ है। गुरु परम्परा से चले आये भंग रूप है।

अठारह दोषों का नाश कर चुकने वाले परमात्मा के अंगों से आया हुआ यह अंग ज्ञान है।

सुलभता पूर्वक रहने वाले ये बारह अंग हैं सो दया धर्म रूप कमलपुष्पक पत्तों के समान हैं अथवा यह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपात्मक हैं और आत्मा के अंतरंग फूल है।

इन फूलों के घर्षण से यह अन्तरात्मा परमात्मा बन जाता है।

इन परमात्मा के चरण कमलों के स्पर्श वाले कमलों की सुगन्ध से पारा रसायन रूप में परिणत होकर अग्नि स्तम्भन तथा जलतरण में सहायक बन जाता है।

यह सेनगण गुरु परम्परा से आया हुआ है, इस सेनगण में ही वृषभ सेनादि सब गणधर परमेष्टि हुए हैं, इन्हीं परम्परा में धरसेन आचार्य वीरसेन जिनसेन आचार्य हुये हैं तथा इस भूवलय ग्रन्थ के कर्ता कुमुदेन्दु आचार्य भी इसी सेन संघ में हुये हैं तथा अनादि कालीन सुप्रसिद्ध जैन ऋग्वेद के अनुयायी जैन क्षत्रिय कुलोत्पन्न जैन ब्राह्मण तथा चक्रवर्ती राजा लोग भी इन्ही सेनगण के आचार्यों के शिष्य थे। सब राजाओं ने इन्हीं आचार्यो की आज्ञा को सर्वोपरि प्रमाण मानकर धर्म पूर्वक राज्य किया था और उनकी चरण रज को अपने मस्तक पर चढ़ाया था॥ ५६ से ६३॥

और इस मंगल प्राभृत का शृङ्खलाबद्ध काव्यांग है। वह द्वादशाङ्ग रूप है॥६४॥

इस मंगल प्राभृत काव्य को चक्र में लिखे होने के कारण यह धर्म ध्वजा के ऊपर रहने वाले धर्म चक्र के समान है। उस चक्र में जितने फूलों को खुदवाया गया है उतने ही अक्षरों से इस भूवलय की रचना हुई है। अब आगे उसके कितने अक्षर होते हैं सो कहेंगे।

स्व मन के दल में इन अंकों की स्थापना कर लेते समय इक्यावन, बिन्दी और लाख का चतुर्थांश अर्थात् पच्चीस हजार कुल मिलकर ५१०२५००० हजार होंगे॥६५॥

उतने महान अंकों में ५००० हजार और मिला दिया जाय तो (५१०-३००००) अंक होगा। इन अंकों को नवमांक पद्धति से जोड़ दिया जाय तो नौ हो जायेगा। भगवान का एक पाद उठाकर रखने में जितने कमल घूमे उतने कमलों में से सुगंधित हवा निकले, उतने परमाणुओं के अरूपी द्रव्य का वर्णन इस भूवलय में है। ऐसे मान लो कि एक कानडी सांगत्य छन्द के श्लोक में १०८ असंयुक्ताक्षार मान लिया जाय तो उपर्युक्त कहा हुआ अंक को १०८ से भाग

देने से ७२५००० इतने कानड़ी श्लोक संख्या होते हैं। इतने श्लोकों से रचना किया हुआ काव्य इस संसार में और कोई कहीं भी नहीं है। महा भारत को सब से बड़ा शास्त्र माना गया है। उसमें १२५००० श्लोक हैं। वे संस्कृत होने के कारण से भूवलय में १०८ अक्षरों में एक कानड़ी श्लोक की अपेक्षा से महाभारत की श्लोक संख्या सवा लाख होने पर भी ७५००० हजार मानी जायेगी इस अपेक्षा से यह भूवलय काव्य महाभारत से छः गुणा बड़ा है बल्कि छः गुणा से ज्यादा ही समझना चाहिए। इस भूवलय के अंक ५१०-३०००० हैं। इन अंकों को चक्र रूप में कर लेना हो तो ७२९ से भाग देना होगा तब ७००९६ इतने चक्र बन जाते है। परन्तु यदि हम अपने प्रयत्न से चक्र बनाना चाहें तो १६००० ही बना सकते हैं। शेष के ५४०९६ चक्र बनाने का ज्ञान हमारे अन्दर नहीं है। किन्तु उन १६००० चक्रों को भी यदि निकालने का प्रयत्न किया जाय तो उनके निकालने में भी इतने महान करोड़ों अंक भी [ऊँ] इस एक अक्षर में गर्भित हैं। इस तरह से १७० वर्ष लगेंगे। रूपी और अरूपी सभी द्रव्यों को एक ही भाषा में वर्णन करने वाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम श्री पद्धति भूवलय भी है ॥६६॥

१ श्री सिद्ध २ अरहन्त ३ आचार्य ४ पाठक अर्थात् उपाध्याय ५ सर्व साधु ६ सद्धर्म ७ परमागम ८ परमागम के उत्पत्ति कारण चैत्यालय और ९ जिन बिम्ब इस तरह नौ अंक में समस्त भूवलय को गर्भित कर रचना किया हुआ ये सम्पूर्ण अंक है ॥६७॥

दया धर्ममयी इस अंक को रत्नत्रय से गुणाकर देने से ९×३ = २७ ॥ ६८ ॥

इस सताईस को २७×३ = ८१ ॥६९॥

इसी तरह भूवलय में रहने वाले ६४ अक्षर बारम्बार आते रहें तो भी अपुनरुक्त अक्षर का ही समावेश समझना चाहिए ॥१०४॥

इसमें कोई शंका करने का कारण नहीं है, भूवलय के प्रथम खण्ड मंगल प्राभृत के ४९ वें अध्याय में २०,७३,६०० बीस लाख तिहत्तर हजार छः सौ अंक हैं। उन सभी के १२७० चक्र होते हैं इसको अक्षर रूप भूवलय की गिनती से न लेकर चक्रांक की गिनती से ही लेना चाहिए। ऐसे लेने से नौ अंक बार-बार आते रहते हैं तो भी कुमुदेन्दु आचार्य ने अपुनरुक्तांक ही कहा है। यहाँ पर विचार कर देखा जाय तो अनेकान्त की महिमा स्पष्ट हो जाती है। इस रीति से ६४ अक्षर भी बार-बार आते हैं।

इन अंकों में से यह आदि भंग हैं ॥१०५॥

इस क्रम के अनुसार २ ३ और ४ भंग हैं ॥१०६॥

इसी क्रम से ५ ६ ७ ८ भंग है ॥१०७॥

इसी तरह ९ १० ११ भंग होते हैं ॥१०८॥

इसी तरह १२ १३ भी भंग होते हैं ॥१०९॥

इसी क्रमानुसार १४ १५ भंग हैं ॥११०॥

इसी रीति से १६ १७ भंग हैं ॥१११॥

दो नौ मिलकर अठारह भंग हुए ॥११२॥

इसी तरह १९ २० भंग होते ॥११३॥

उसके आगे १ २ ३ अर्थात् २१ २२ २३ भंग हैं ॥११४॥

इसी क्रम के अनुसार ४ ५ ६ ७ ८ अर्थात् २४ २५ २६ २७ २८ भंग होते हैं ॥११५॥

इसा क्रम से नौ अर्थात् २९ और ३० भंग है ॥११६॥

इसी तरह ३१ ३२ के क्रमानुसार ३९ तक जाना चाहिए ॥११७॥

इसी क्रम से ५० से ५९ तक जाना चाहिए ॥११८॥

उसके बाद ६०वां भंग आ जाता है ॥११९॥

तत्पश्चात् १-२-३-४ अर्थात् ६१-६२-६३-६४ इस तरह भंग आता है, उन सभी को मिलाने से ६४ भंग आता है। ये ही ६४ भंग सम्पूर्ण भूवलय है ॥१२०। १२१। १२२ ॥

उन ६४ भंगों के क्रम के अनुसार प्रतिलोम और अनुलोम के क्रमानुसार अंक और शब्दों को बना दिया जाय तो ९२ स्थानांक आ जाता है।

६४ अक्षरों को १ से गुणाकार करने पर ६४ आता है। इस ६४ को असंयोगी भंग अथवा एक संयोगी भंग कहते हैं। क्योंकि श्रुतज्ञान के इन ६४ अक्षरों में से जिस अक्षर का भी हम उच्चारण करते हैं तो वह वस्तुतः अपने मूल स्वरूप में ही रहता है। इसलिये इसको असंयोगी भंग कहते हैं।

वह इस प्रकार हैं—

अ × अ = अ अथवा १ × १ १

अब भूवलय सिद्धान्त में आने वाली द्वादशांग वाणी में द्रव्य श्रुत के जितने भी अक्षर हैं और उनके जितने भी पद होते हैं तथा एक पद में जितने भी अक्षर हैं इत्यादि क्रम बद्ध संख्या को जहाँ-तहाँ आगे देते जायेंगे। अब असंयोगी भंग अर्थात् ६४ अक्षरों के द्विसंयोगी भंग को करते समय आने वाले गुणाकार को यहाँ बतलाते हैं। ६४ × ६३ = ४०३२

द्विसंयोगी भंग—संपूर्ण संसार में अनादि काल से लेकर आज तक जो काल बीत चुका है और आज से लेकर अनन्त काल तक जो आने वाला काल है उसकी जितनी भी भाषायें होती हैं तथा उसके आश्रय पर चलने वाले जितने भी मत हैं उनके द्विसंयोगी सभी शब्द इस द्विसंयोगी भंग में गर्भित हैं। भाव यह है कि कोई भी विद्वान या मुनि अपनी समझ से नूतन जानकर जो अक्षरों वाला शब्द उच्चारण करता है तो वह सब इसी में आ जाता है। अब यदि ३ अक्षरों के भंग को निकालना हो तो द्विसंयोगी भंग को ६२ से गुणा करें, चतुः संयोगी भंग निकालना हो तो त्रिसंयोगी भंग को ६१ से गुणा करे इसी प्रकार आगे भी यदि चतुःषष्ठि भंग तक इसी क्रमानुसार ६४ बार गुणा करते जायें तो—६८५१८९४३३८०३७७४४८६१६८५४०३०२४०९८७१९९६३-३५४७३७—८७३४२६४४०३७८७३५३०२२९६२६१५९४०२८४४१६०००-०००००००००००० इतनी संख्या आ जाती है, जो कि९ से भाग देने पर शेष शून्य बचता है। यही १२३ श्लोकों से निकला हुआ अर्थ है॥ १२३॥

अब यहाँ पर प्रश्न उठता है कि हजार-दस हजार पृष्ठ वाले छोटे से भूवलय ग्रन्थ में से इतनी बड़ी संख्या किस प्रकार प्रगट हुई ?

उत्तर—इस भूवलय ग्रन्थ की लेखन शैली ही ऐसी है। यहाँ पर चार चरणों का एक श्लोक होता है। इसमें से आचार्य श्री ने केवल अन्त चरण की ही बारम्बार गणना की है॥ १२४॥

यह मंगल प्राभृत का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ। इसमें कुल ६५६१ अंकाक्षर हैं। ९ को ९ से यदि ३ बार गुणा किया जाय तो भी इतने अंकाक्षर आ जाते हैं। इस अध्याय में ९ चक्र हैं तथा प्रत्येक चक्र में ७२९ अक्षराङ्क हैं। यहाँ तक कानड़ी का १२५ वाँ श्लोक समाप्त हुआ।

अब इन कनाड़ी श्लोकों का प्रथमाक्षर ऊपर से लेकर नीचे तक यदि चीनी भाषा की पद्धति के अनुसार पढ़ते चले जायं तो प्राकृत भगवद्गीता निकल आती है। कानड़ी श्लोकों का मूल पाठ प्रारम्भ के ४ पृष्ठों में आ चुका है। अब उसका अर्थ लिखते हैं। जिन्होंने ज्ञानावरणी आदि आठों कर्मों को जीत लिया है और जो इस संसार के समस्त कार्यों को पूर्ण करके संसार से मुक्त हो गये हैं तथा तीनों लोकों एवं तीनों कालों के समस्त विषयों को जो देखते रहते हैं ऐसे सिद्ध भगवान् हमें सिद्धि प्रदान करें।

अब कनाड़ी श्लोक के मध्य में ऊपर से लेकर नीचे तक निकलने वाले संस्कृत श्लोक का अर्थ लिखते हैं :—

अर्थात् "ओ" एक अक्षर है। बिन्दी एक अंक है। इन दोनों को यदि परस्पर में मिला दें तो "ओं" बन जाता है। ओं बनाने के लिए अ, उ तथा म् इन तीनों अक्षरों की जरुरत नहीं पड़ती। क्योंकि कानड़ी भाषा में स्वतन्त्र ओ अक्षर है। उन अक्षरों का नम्बर भूवलय में २४ बतलाया गया है। ओ अक्षर को बिन्दी मिलाकर ओं बनाकर योगी जन नित्य ध्यान करते हैं। क्योंकि अक्षर में यदि अंक मिला दिया जाय तो अद्भुत शक्ति उत्पन्न हो जाती है। उस शक्ति से योगी जन ऐहिक और पारलौकिक दोनों सम्पत्तियों को प्राप्त कर लेते हैं।

दूसरा अध्याय

आ दिय अतिशय ज्ञान साम्राज्य । साधित वय् भववाद ॥ मोद अ थगिम अविरल शब्दव । नोदिप नवम बंधदोळु ॥१॥
दि वद देवागमवाद समव स्रुति । यव यव वद नाल्वेरळ ॥ स वि रदे निंदु न भो बिहारवमाडि । दवनु पेळिरुव भूवलय ॥२॥
म नुज रोळतिशय दनुभव चक्रिगे । घन शक्ति वय् भवक र नु ॥ अनुजनुदोर्बलियवनादि मन्मथ । जिनरुपिनादि भूवलय ॥३॥
स रस विद्य गळोळु कामद कलेयोळु । हरुषदायुर् वेददोळ् उ ॥ ल रयद अपुनरुक्ताक्षर दनुकद । सरस सौंदरि देवियोडने ॥४॥
म् नविट्टु कलितवनाद कारणदिंद । मनुमथ नेनसिदे देवा ॥ श णसदे सव्नुदरियरि तनुक गणनेय । घनविद्ये इरुव भूवलय ॥५॥
ह कदनुकदोळु बनुदेळर भाजितम् । सकलवु गुणितवो एम् ब् अ ॥ सकलशब्दागमद्एळ् भंगगळिह । प्रकटद तत्व भूवलय ॥६॥
ण वदनुकवदनेळ रिंदलि भागिसे । नव सोन्नेयु हुट्टि बहु द ॥ अवधरिसलुबिडियनुकगळ्एष्टेंब । सबिशंकेगिंतु उत्तर वु ॥७॥
ण वर्ग्ददंदद करण सूत्रव कोळ्व । अवयव दोळगिह घ णत ॥ नवमस्तनाल्कुसोन्नेगळेरळ्सूरनाल्कु सवि आरारेरडों बत्तारु ॥८॥

१८८८१९८३९५६२३२७६२५९५३९१८७३४१२९७०४५८४५२८०७३६८४७८३५४९३९३१५२९९००९४८६९२६६४३२०००००००००००००

(यहां ८५ को चौंसठ ६४ अक्षरों से आया भंग है। आडासे जोड़ दे तो ३६९ होता है। ३६९ को पुनः आडासे मिलाने से १८ हो जाता है। १८ मिला दिया जाय तो १+८ = ९ ।

जु णि एंदु नाल्कोंबत्त् सोन्ने सोन्ने योंबत्तु । घनवे नौ वोंबत्तेरडैदु ॥ जिनओंदु सूरोंबत्सूरु बंदंकद । घनदेमुंदके बरुवंक ॥९॥
दो ड्ड ओंबतु नाल्कैदु सूरेंटेळु । ओड्डिदद नाल्कैंटो घ ॥ गुड्डे यार् सूरेळु सोन्ने एंटेरडैदु । अड्डनाल्कैंटैदु नाल्कु ॥१०॥
स म सोन्ने एळु ओंबत्तेरडोंदु । गमनाल्कु सूरेळु बर् प् आ ॥ क्रमदेंदु ओंदोंबत् सूरु ऐदोंबत्तु । विमल ऐदेरडारु एळु ॥११॥
म रळि एरडु सूरु एरडारैदोंबत्तु । सरदे सूरेंटैंब र शि ॥ अरुहर ओंबत्तु ओम्दैंदु एंटैंदु । सरियोंदु बरलु बंदंक ॥१२॥
च रिते योळ् प्रतिलोम गुणकार दिंबंद । वरवैवत्नाल् क् अक्षरद॥ सरमालेइदरोळुअनुलोमक्रमविह परियद्रव्यागमवरियै ॥१३॥
उ त्तरदोळु सोन्नेगळु हन्नेरडुं । ओत्ते नाल्केरडे अक् षा ॥ मत्तोंटेळैदैदेंढारु बंदंक । वत्तिनोळैंदु नाल्केळु ॥१४॥
र सदोम् दोंदु नाल्कू सोन्ने यरडैदु । वसदेंटैदारुकु लि षा ॥ यशदेळै दारु ओंदु ओंबत्तु । वशदोंबतु नाल्केरडु ॥१५॥
स् र नाल्कारू सोन्नेयु ओंदु येरडारू । एरळ्सूरु ऐदैंबरि त ॥ सरि ओंदेळैदु सूरेंदु सूरनाल्कु । बरेसोन्ने योंदारु ओंदु ॥१६॥
स विसूरेंदु सोन्नेयु ऐन्दोंबत्तु । नवऐळु नाल्केरळ् हो स दे ॥ कवि सोन्ने नाल्कु बंदंक वैभव । दवयव अनुलोम वरियै ॥१७॥

४०२४७९९८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४९९१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४०००००००००००

इस ७१ अंक को जोड़ दे तो २६१ = ९ आता है।

न वदंक वाद ई अनुलोम विदरिद । सविरस वेनु तितु स क लं ॥ सवेसलु भागदहार लब्धदि बंद । भवभयहरणद अंक ॥१८॥
ग णितदे हन्नेरळ् सोन्नेगळागलु । गण सूरोंबत्तेरडों ल ॥ मणि ऐदेळु नाल्कोंबत्तु नाल्कु । गण ओंदों बत्ता रना ल्कु ॥१९॥

४६६१४६४७५१२६३०००००००००००० यह मात्रा हरेक के द्वारा आया हुआ लब्धांक है इन कुल मिलाने से ६४ आता है।
६४ को जोड़ दे तो १० होता है।

चारुरत्रि दंकविंतिवनेल्ल कूडिद । दारियोळ् बंदिहुदं ॥ सारतरात्मतत्वव नोडलेरळ् भाग । दारंके अरवत्तोंदु ॥२०॥
दळिरतेय क्रम प्रतिलोम वदा । अदरंक अरवत्तानाल् नृदु ॥ अदरर्द्ध माडलु बह भंगाक्षर । वदर क्रम वंदितिहुदु ॥२१॥
मना हन्नोंदु सोन्नेय निट्टु मुन्दण । रमदोळ ऐदेरिब ॥ विमलआर्नात्कारु ऐदेळु मूरेळु । सप्तनाल्केळें दुनाल्मूर्येरडु ॥२२॥
वदंक वनेरडं परस्पर दिंद । तविसुव कालक्र दे ॥ अवतरिसिद तप्प तप्पेनलागदु । सवियंक दुपदेश मुंदे ॥२३॥
सिग रंगल प्रासूत्र योट्टु बहु । लालं गमनिस लाग ॥ तावे क्षणवागि इप्पत्तों वर्गांक । धावल्य वदनु काणु विरि ॥२४॥
वदंकदे बंद तप्पित वेनिल्ल । ओवियादुत्तर दं ॥ कोविदओंदंक उत्पत्ति यायितिल्लि । नववैदरिं भागवायतु ॥२५॥
दनन बाणवु वक्रवदहुदु । सदरदि हूविन गंध ॥ मृदु वदेंतो अंतु हृदय होक्कु । हृदनागि भोग योग वनु ॥२६॥
न दिन दत्याशे एरलुबिडदिह । अनुपमयोगागनि यदनुम् ॥ ने कोने होगिसि कर्मवकेडिसलु । अनुपम पंचाग्नि इदेको ॥२७॥

घनरत्न ऐदुइंद्रियवु ॥२८॥ मनुजत्वदनुभवलाभ ॥२९॥ घनकर्मदास्रवविल्ल ॥३०॥ जिनमुद्रे हृदय होक्किहुदु ॥३१॥
अनुभवगम्यद दृष्टि ॥३२॥ जिननाथनोप्पिदभक्ति ॥३३॥ जिन मुनिगळ ज्ञानयोग ॥३४॥ विनुतांतरंग विज्ञान ॥३५॥
तनयरिगेल्ल सौभाग्य ॥३६॥ जिननाथ अडिइट्टमार्ग ॥३७॥ घन कर्म वळिव भूवलय ॥३८॥ जिनवर्धमानसाम्राज्य ॥३९॥
मनसिंहृदग्रद कमल ॥४०॥ " " " " "

वरद संहननद आदि यादी काव्य । धरेय भव्यर भावदलि ॥ करुणेय प्रतिम समुद्घातवनुतोर्प । गुरुगळैवर दिव्य चरण ॥४१॥
वंनदोळु तपगैदःत्म योगदे तम्म । तनुवनु कृशगैव् ॥ आग ॥ जिननाथनंदद सर्व साधुगळंक । दनुभव साधुसमाधि ॥४२॥

वनु संख्यातदोळरिवं ॥४३॥ वनुअसंख्यातदोळरिव ॥४४॥ घनअनंतांकदोळरिव ॥४५॥
जिननाथनरिकेगेगम्य ॥४६॥ तनुमनवचनातीत ॥४७॥ घनदुष्कर्मदावाग्नि ॥४८॥
वनुपडेदवनोब्बयोगि ॥४९॥ विनुत वैभव शालि अज्ज ॥५॥ घन शिव सौख्यव पडेव ॥५१॥
दिन दिन उन्नति गडवं ॥५२॥ वनगृहव् वेल्लवनरिव ॥५३॥ घनशुद्धोप योगियवं ॥५४॥
वनु सार्द कर्म भूवलय ॥५५॥

मनव माडिद कर्मदंकगळष्टु । विमलात्म गुणावदे ॥ पु रुळि ॥ गमकद कलेयन्तेहेऽच्चत वरुवाग । तमगल्लि उपदश शक्ति ॥५६॥
सयुतवागिहेऽच्चुत बरला आत्म होस आदियाद ज्ञानवद ॥ नि शियोळु पड़ेदु द हगलुब न् दं ल्लर्गे । वशागोळिसुवव पाठकनु ॥५७॥

वशगोळिसुवनुपाध्यायं ॥५८॥ रस दूट उणि सुबनार्य (चार्य) ॥५९॥ यशदे भूवलयवनलेव ॥६०॥
यशदोळिन्द्रियव जयिसिरुव ॥६१॥ होसव नागेसेव भूवलय ॥६२॥ हुसियनोड़िसिद महात्मा ॥६३॥
असम मानवरग्रगण्य ॥६४॥ हो सेदु पेळुव द्वादशांग ॥६५॥ असदृश समतेय पेळ्व ॥६६॥

होसमार्दवार्जवरूप ॥६७॥ रिसि समुदाय दोळप्र ॥६८॥ होसदादुपदेशदार्य ॥६९॥
यशदौषदर्द्धिय देहि ॥७०॥ होस बुद्धि ऋद्धिय सिद्ध ॥७१॥ उसहसेनार्य वंशजनु ॥७२॥
वृषभनाथन काल दरिव ॥७३॥ हसर मेल्लद दयापरनु ॥७४॥

गन मार्ग दे पोपरंदद तीव्रत्व । दगणितदाचारसद मि ॥ मिगिलागिपालिसुतदरन्ते भव्यर । बगेय पालिसुवनाचार्य ॥७५॥
वद कदंते सम्पूर्ण पदार्थद । सविचार वेल्लवन ह हि ॥ अधरवरिगेल्लक आचार सारव । सवियवयवव तोरिसुव ॥७६॥
र्म साम्राज्यद सार्व भौमत्ववु । निर्मल सद्धर्मव पा ॥ धर्म वैभव वदरंक दृष्टाचार । धर्म व पालि सुवार्य ॥७७॥
रिणियोळु दश धर्मद सारव । सारिदगुरुवुआचार्य ॥ सारद सि द्धरनारैदु तोरुव । सारतरात्म आचार्य ॥७८॥

सारतरात्म भूवलय ॥७९॥ धीरन चरण भूवलय ॥८०॥ नेरद मार्ग भूवलय ॥८१॥
दारि योळ् बन्द भूवलय ॥८२॥ शूरर काव्य भूवलय ॥८३॥ हारद रत्न भूवलय ॥८४॥
सारात्म किरण भूवलय ॥८५॥ नेर सिद्धान्त भूवलय ॥८६॥ क्रूर कर्मारि भूवलय ॥८७॥
शूरर ज्ञान भूवलय ॥८८॥ सारात्म ज्योति भूवलय ॥८९॥ नेरदध्यात्म भूवलय ॥९०॥

सारमाणिक्यभूवलत ॥ ९१ ॥ वीरजिनेन्द्रभूवलय ॥ ९२ ॥ वीरनवचन भूवलय ॥९३॥
वीर महादेव वलय ॥ ९४ ॥ भूरि वैभवयुतवलय ॥ ९५ ॥ एरिदनन्त आचार ॥९६॥
सारवसारिदाचार्य ॥ ९७ ॥ भूरि वैभवद विरागी ॥ ९८ ॥ गेरिसुवेनुभक्तियनु, ॥९९॥

र् ससिद्धियागेदुर्लोहसुवर्णद वशवागुवन्तात्म निर त ॥ यशवळिसुवदेहर्वाजितनागुत । वशवागेमोक्षवुसिद्ध, ॥१००॥
ई शनागुवनु लोकाग्रदेनेलसुव । राशियोळ्शुद्ध तानागी ॥ लेसा ती र्थवदंसारेभव्यर । राशिराशिये कादिहुदु ॥१०१॥
व र्तनागिरे आत्मनुसंसारद । व्यर्थेयनेल्लवम्समेदि र् पा ॥ क्षितिये श्री सिद्धत्व दनुभवदादिय । हितवदनन्तवु काल ॥१०२॥
मा न मायवुलोभ क्रोध कषायद । ताणवेल्लवईगळिदु ॥ ताण वा णवनेल्लकाणुतलरियुत । आनन्दविहरेल्ल सिद्धर् ॥१०३॥
ण व कारमन्त्रदसार सर्वस्वरु । अवरिवरेन्नदेसर स ॥ अवयववेआत्मन रुपवागिह । अवरुसिद्धरु एन्दरियय्, ॥१०४॥

नवदंक संपूर्णसिद्धर् ॥१०५॥ अवरुवासिसुव भूवलय ॥१०६ नवकारमन्त्रदसिद्धर् ॥१०७॥
अवरनन्तांकदेवद्धर् ॥१०८॥ अवरनन्तदज्ञानधररु ॥१०९॥ नवकोटिमुनिगळगुरुगळ् ॥११०॥
अवरंगनिर्मलशुद्धर् ॥१११॥ अवयववळिदवयवरु ॥११२॥ नवसद्दर्शनमयरु ॥११३॥
अवरु "स" अक्षरआदि ॥११४॥ अवरुतंमिन्दजीविपरु ॥११५॥ सविसौख्यसार सर्वस्वर् ॥११६॥
अवतारवळिदुबाळ्ववरु ॥११७॥ अवरनन्तदवीर्ययुतरु ॥११८॥ अवरनन्तदसुखमयरु ॥११९॥
सवियअगुरुलघुगुणरु ॥१२०॥ नवसूक्ष्मत्वताळ्दवरु ॥१२१॥ कवियवगाहदोळिहरु ॥१२२॥
अवरव्याबाधधररु ॥१२३॥ नवगेवेकवरसंपदवु ॥१२४॥ अवररहन्तत्स्वतिळिदर् ॥१२५॥

सुविशालजगवनोळ्पवरु ॥१२६॥ अवरपादकेनमिसुवेनु ॥१२७॥ भववळिदवरासिद्धर्

ठ् वर्णेयोळं कदक्षरवनुस्थापिसि । दवयववो येम्ब अव र ॥ नवकेवललब्धिगोडेयरेन्देनुवरु । अवररहन्तर् इष्टात्मर्, ॥१२८॥
इ ष्टददेवरुघातिकर्मवगेल्दु । स्पष्टदेभववनीगिद स् द् ॥ वृष्टियोळ् भूवलय के धर्मव पेळ्द । स्पष्ट द् ओंकार वेळ्दवरु ॥१२९॥
द नियोळु मूरुवेळेयलि अनन्तद । गणितदोळडगिसिदवरम् ॥ व न ज नाभिय सोंकदेनिन्ददेवरम् । जिनदेवरेंदरियुवुदु ॥१३०॥
र् सयुतवाद भूवलय सिद्धान्तके । रसवन्तर्मुहूर्त्तदि तीर्थ । होसेदेन्दुमूरुकालव नोन्देकालदि । होसदोन्दरोळुपेळ् दिहर ॥१३१॥
ओ मकारओंदरोळुगिसिदरवत्नाल् । कंकम ओंदक्षर् ह ॥ अंकवेअक्षर अक्षर अंकवेम् । बम्कियपेळ्दवरवरु ॥१३२॥
म नमथनुपटळु दोळु बाळ्व नररिगे । घनकर्मवोळिदवस र व ॥ अनुभववनु पेळ्द अरहन्तरड़िगळ नेनेवल्लि ऐदंकसिद्धि ॥१३३॥
स खशिखेगळु समानदोळिर्प देहद । सकलांकपरमनिगिरु तु म् ॥ सकलागमवु सर्वांगम् ओंदरिम् । प्रकट वादरहन्त देव ॥१३४॥
ख चरव्यन्तर भवनामर कल्पद । सचरदेवतेगळवरु नो ॥ सचराचरवनेल्लवकेळिदवरागि । अचलभक्तिय प्रकटिसिदर् ॥१३५॥
र् सनेन्द्रियदासेयळिद भव्यात्मरु । वशगेय् सकलांक दु दया ॥ वशवादुदेमगेन्दु नमिसुतपोदरु । असदृश भूवलयक्के ॥१३६॥
ऊ नविल्लद ज्ञान ओंददुहुट्टि । श्री निकेतनंगदुप रि ॥ आनतवागिह मुक्कोडे पूमळे । भानुमंडलद भूवलय ॥१३७॥
व् शगोंड "अ" आदिमंगलप्राभृत । रसद अक्षरवदु रा नु ॥ यशदारुसाविर दैनूररवत्तोंदु । रसदेरडनेय अन्तरदोळ् ॥१३८॥

यशदैदेन्टेळेळ् अन्तरद ॥१४०॥ दिशेयधिकारदोळ् बर्प ॥१४१॥ रसदंकगणनेयक्षरद ॥१४२॥
यशदेकूड़िदरेबाहङ्क ॥१४३॥ रसदेन्ट्मूर्नाल्केरडु ओंदु ॥१४७॥ वशदसाविर हन्नेरडरेय ॥१४५॥
दिशेयोळुबरुवचारित्र्य ॥१४६॥ यशवदन्तागे "आ" इदरोळ् ॥१४७॥ रसदन्तराधिकारदोळु ॥१४८॥
रसदक्षरदलेक्कसिद्धि ॥२४९॥ कुसुमगळन्नुकूड़िदरे ॥२५०॥ विषहरदनुभवविरुव ॥१५१॥
यशदंककाव्यदसिद्धि ॥१५२॥ रिषिवर्द्धमानरवाक्य ॥१५३॥ रसदन्तरेन्ट्नाल्केन्ट्ऐळु ॥१५४॥
ओ मृदंकवेप्पत्तेळुयेम्भत्तैदु । अमृमलुअन्तर न दरलि ॥ उम्मिदेन्ट्नाल्केन्टेळु बंदंक । सम्मतव् "आ" क्य भूवलय ॥१५५॥

संपूर्ण

आ दूसरे अध्याय में ६५६१ अक्षर हैं+ अन्तर में ७८४८ = है । कुल मिलकर १४४०९ अक्षर होते हैं

अथवा

प्रथम--अध्याय १४३४६+दूसरे आ अध्याय १४४०९ = २८७५५ हुये ।

प्रथम अक्षर ऊपर से नीचे तक पढ़ते जायंतो प्राकृत भाषा सक्रमवर्ती

आदिमसंहणणजुदोसमचउ रस्संगचारु संठाणोम् दिव्ववरगन्धधारी पमाणठिदरोमणखरुवो ॥२॥

२७ वां अक्षर से लेकर यदि ऊपर से नीचे पढ़ते जायं तो संस्कृत भाषा सक्रमवर्ती

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित सकल भूतल मल कलंका । मुनिभिरुपासिततीर्था । सरस्वती हरतुनो दुरितान् ॥२॥

द्वितीय अध्याय

अनादि कालीन ज्ञान साम्राज्य के वैभव युक्त इतिहास को लिए हुये तथा नवमबन्ध में कहे जाने वाले अत्यन्त सुन्दर अर्थागम को प्रकट करने वाला यह अखिल शब्दागम है। १

आकाश में अधर गमन करने वाले तथा देवों द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर समवशरण नामक सभा में विराजमान होकर उपदेश देने वाले भगवान् के मुख कमल से निकला हुआ दिव्य ध्वनि रूप यह भूवलय शास्त्र है। २

सम्पूर्ण मनुष्यों में अतिशय सम्पन्न और चक्रवर्ती के अपूर्व वैभव से युक्त ऐसे श्री भरत यहाराज के अनुज तथा जिन रूप धारण करने वाले ऐसे आदि मन्मथ श्री बाहुबलि जी द्वारा निरूपित यह भूवलय है।

विवेचनः— मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पाँच तथा कुश्रुत, कुमति और कुअवधि ये तीन मिलकर आठ प्रकार के ज्ञान हैं। इनमें जो पहले के पाँच हैं वे सम्यग्ज्ञान के भेद हैं और जो शेष तीन हैं वे मिथ्या ज्ञान कहलाते हैं। इन तीनों को विभंग ज्ञान भी कहते हैं। स्थावर इत्यादि असंज्ञी जीवों को कुमति, कुश्रुत होता है और सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त को विभंग ज्ञान भी हो सकता है। यह ज्ञान सासादन गुणस्थानवर्ती जीवों तक होता है। सम्यग् मिथ्यात्व गुणस्थान में सद्ज्ञान और असद्ज्ञान (अज्ञान) ये दोनों मिश्र ज्ञान होते हैं। मति श्रुत अवधि असंयत सम्यग्दृष्टि आदि को होता है। मनः पर्ययज्ञान प्रमत्त गुण स्थान को लेकर क्षीण कषाय गुण स्थान तक होता है। तेरहवें गुण स्थान में केवल ज्ञान होता है और चौदहवें गुण स्थान वाला अयोग केवली होता है इससे ऊपर अशरीरी होकर सिद्ध हो जाता है।

पाँचों ज्ञानों में जो पहले के चार ज्ञान हैं वे परोक्ष हैं और केवल ज्ञान पूर्णतया आत्माधीन होने के कारण प्रत्यक्ष है। यह ज्ञान आदि और अतिशयवान् भी है। केवल ज्ञान हो जाने के बाद फिर शरीर धारण नहीं करना पड़ता इसलिये इसे अशरीरी भी कह सकते हैं और पौद्गलिक पर वस्तु के संबंध से रहित है, इसलिये यह अरूपी भी कहलाताहै। मत, श्रुति,अवधि और मनःपर्यय ये चारों ज्ञानपरोक्ष हैं क्योंकि ये चारों ज्ञान इंद्रियों की अपेक्षा रखते हैं। केवल ज्ञान अतींन्द्रिय है और संसार के सभी पदार्थों को एक साथ जानने वाला है। इसलिये इसको सर्वज्ञ ज्ञान कहते हैं। अनन्त ज्ञान भी इसे कहते हैं। जिसका अन्त नहीं है वह अनन्त है। केवल ज्ञान का भी हो जाने के बाद अन्त नहीं होता है।

यह ज्ञान व्यवहार नय से लोकालोक के त्रिकालवर्ती संपूर्ण विषयों को जानता है तथा निश्चयनय से अनाद्यनन्तकाल से आये हुए अपने आत्मस्वरूप को प्रतिक्षण में जानता है अतः इस ज्ञान को शुद्धात्मज्ञान कहते हैं।

अतिशय वैभव से संयुक्त संपूर्ण जीवों को आमोद प्रमोद उत्पन्न करने वाले गंगा नदी के पवित्र प्रवाह के समान अखंडित होकर बहाने वाले अर्थागम को मैं (दिगंबराचार्य कुमुदेन्दु मुनि)ने नवम अंक के बंधन में बांध दिया है। यह पहले कानड़ी श्लोक के अर्थ का सार है। ऐसा होने पर भी नवम बंध-वैभव इन दो शब्दों की व्याख्या विस्तार पूर्वक नहीं हो सकी। इसी अध्याय का छः से लेकर आने वाले श्लोक में संक्षेप में नवम बंध के अर्थ का विवरण करते हैं। ऐसा कहने पर भी वह पूर्ण नहीं हो सकता।

बंधनानुयोग द्वार का कथन विस्तार के साथ ही होना चाहिये। इसका विस्तार आगे लिखेंगे।

वैभव शब्द का अर्थ ३४ अतिशय है. जिनका विवेचन आगे समयानुसार करेंगे।

श्लोक दूसराः—

ऊपर कहे हुये श्लोक के अनुसार मनुष्य को केवल ज्ञान अर्थात् निर्विकल्प समाधि प्राप्त होने के बाद उसके बल से स्वर्ग से देवेन्द्र आकर उस केवली भगवान् के लिये समवसरण की रचना करते हैं।

देवताओं के द्वारा समवसरण की रचना होने पर भी उसकी माप

तथा ऊँचाई इत्यादि सर्व प्रमाण भूवलय में दिया गया है। जैन शास्त्र में कोई भी बात अप्रमाणित नहीं होती अर्थात् प्रमाणिक होती है। आजकल विमान चढ़ने में दस, बारह सीढ़ी तक एक ही तरफ लगा देते हैं, परन्तु समवसरण के लिये चारों ओर हर एक में २१००० सीढ़ियाँ होती हैं। आज के विमानों में चढ़ते समय एक के ऊपर एक पांव रखकर चढ़ा जाता है परन्तु समवसरण में क्रमशः चढ़ने का क्रम न होने के कारण इस तरह चढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती।

पहली सीढ़ी में पाद लेप औषधि के प्रभाव से मनुष्य और तिर्यंच प्राणी समवसरण भूमि में जाकर भगवान् के सन्मुख पहुंच जाते थे। यद्यपि यह बात आजकल की जनता के लिये हास्यकारक मालूम होती है तथापि श्री भगवान् कुंदकुंदाचार्य तथा श्री पूज्य पाद आचार्यादिक पहले इसी प्रकार की पाद औषधि का लेप करके आकाश में गमन करते थे, यह बात उस समय की जनता के समक्ष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती थी। पाद औषधि का विधान किस प्रकार करना चाहिये, इस विधि को भूवलय के प्राणावायु पर्व में पूर्ण रीति से स्पष्ट किया गया है। विमान इत्यादि तैयार करने की भी विधि इसमें आई हुई है। इस खंड में जंगली कटहल के फूलों से पादलेप तैयार होता है ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने बतलाया है। आगे इसके विधान का प्रसंग आने पर लिखेंगे। ऐसे देव निर्मित समवसरण में विराजमान होने पर भी भगवान् ने समवसरण का स्पर्श नहीं किया। बल्कि वे सिंहासन के ऊपर चार अंगुल अधर विराजमान रहते थे और आकाश में गमन किया करते थे।

सर्वसंघ परित्याग कर अपने तप के द्वारा संपूर्ण कर्मों की निर्जरा करके केवल ज्ञान साम्राज्य को प्राप्त कर, संपूर्ण प्राणी को भिन्न-भिन्न कल्याण का मार्ग न बतलाकर एक अहिंसामयी सच्चे आत्मकल्याणकारी आत्मधर्म को बतानेवाले भगवान श्री वीतराग देव के द्वारा कहे हुए भूवलय को कुमुदेन्दु आचार्य ने संपूर्ण विश्व के प्राणी मात्र के लिये सर्वभाषामयी भाषा अंक रूप में कहा है।

श्लोक तीसरा :-

इस मनुष्य भव में अतिशय देने वाले तीन पद हैं। इससे अन्य कोई भी महान् पद नहीं है। बीते हुए जन्म जन्मान्तरों में अतिशय पुण्यसंचय कर सोलह कारण भावना, बारह भावना तथा दस लक्षण धर्म इत्यादि भावनाओं को भाते हुये आने के कारण राजा महाराजादिक १८ श्रेणियों को चढ़ते हुये आने से परम्परा अभ्युदयसुख किसी १८ श्रेणियों में कहीं भी खंडित न होकर परम्परागत अभ्युदय सुख में सबसे पहले भरत चक्रवर्ती तथा मन्मथ बाहुबली महान् उन्नतिशाली पराक्रमी कामदेव थे। मन्मथ का अर्थ-ईश्वर के ध्यान में ज्ञानाग्नि से शरीर को तपाने के कारण इसका नाम मन्मथ पड़ा, ऐसा कतिपय विद्वानों का कथन है। जिनके शरीर नहीं है वे दूसरे के मन को कैसे आकर्षित कर सकते हैं? ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय में इस प्रकार कहा है कि जिस समय मनुष्य को पुंवेद प्रगट होता है उस समय स्त्रियों के साथ भोग करने की इच्छा उत्पन्न होती है। स्त्री वेदनीय कर्म का उदय होने से पुरुष की अपेक्षा और नपुंसक वेद का उदय होने से एक साथ स्त्री और पुरुष इन दोनों के साथ रमण करने की इच्छा होती है, ऐसे अवसर में अशरीरी ईश्वर मन्मथ कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय में कहा है। इतना ही नहीं उस समय सभी मनुष्यों में बाहुबली अत्यन्त सुन्दर देखने में आये थे। इस प्रकार संपूर्ण भरतखंड के मानव प्राणियों को अपने आधीन करके रहने वाले भरत चक्रवर्ती थे। यदि मनुष्य सुख की अपेक्षा देखा जाय तो ये दो ही सुख है एक कामदेव का सुख और दूसरा चक्रवर्ती का सुख। इसके अतिरिक्त संसारी सुख अन्य किसी में भी नहीं है। ऐसे अतिशय कारक सुख, रूप लावण्य तथा बल इत्यादि संपूर्ण इंद्रिय-जन्य सुख को तृण के समान जानकर उसे त्याग कर सबसे अंतिम तथा सर्वोत्कृष्ट अविनाशी अनाद्यनन्त मोक्ष पद को प्राप्त करने का उद्यम किया, तो क्या यह बात सामान्य है? यह जिनरूप धारण करने की

प्रबल इच्छा मन में प्रगट होने के बाद विषय वासना कभी रह नहीं सकती। किंतु इस जिन रूप का स्पष्टीकरण ही इस भूवलय में है ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। इसलिये इसकी प्राप्ति के लिये गोमटदेव ने संपूर्ण मानव को सुखकारी भूवलय ग्रन्थ की रचना की है।

वृषभदेव तीर्थंकर कृत युग के आदि में संपूर्ण साम्राज्य पद भरत चक्रवर्ती को देकर तपोवन को जाने के लिये जब उद्युक्त हुए थे तब अपने शरीर के संपूर्ण आभरणों को प्रजाजनों को अर्पण कर दिया था। उस समय उनके शरीर पर कुछ भी शेष नहीं रह गया था। तब ब्रह्मचारिणी युवती ब्राह्मी व सुन्दरी नामक दो देवियों अर्थात् भरत चक्रवर्ती की बहिन ब्राह्मी और बाहुबली की बहिन सुन्दरी देवी दोनों आकर पिताजी से निवेदन करने लगी कि पिताजी ! भाई भरत को तथा बाहुबली को तो आपने बहुत कुछ दिया परन्तु हमें कुछ नहीं दिया। इसलिये हमें भी कुछ मिलना चाहिए। तब भगवान ने कहा कि बेटियो ! तुम्हें क्या चाहिए अर्थात् तुम क्या चाहती हो ? इस तरह भगवान की प्रश्न करने की आदत थी। संसार एक ऐसा अनूठा है कि यदि कोई आकर किसी से पूछे तो वह यह नहीं कह सकता कि तुमको क्या चाहिए ? अर्थात् वह कहेगा कि मेरे पास १०-२० या ५० रुपया है, इसे तुम ले जाओ, यही बात कहेगा। परन्तु भगवान की इस तरह भावना नहीं होती। क्योंकि भगवान के अन्दर लोभ कषाय का सर्वथा अभाव था तथा उनकी आत्मा के अन्दर स्वाभाविक दान करने की प्रवृत्ति होने के कारण इनके प्रति शंकात्मक उत्तर मिलता है। भगवान के अन्दर यही एक अतिशय है। पिताजी की इस बात से प्रसन्न होकर दोनों पुत्रियाँ लौकिक सम्पत्ति पूछना तो भूल ही गईं पर ब्रह्मचारिणी होने के कारण इह परलोक के कल्याण निमित्त तथा भविष्यकाल की सर्वजनता के कल्याणार्थ उन दोनों पुत्रियों ने इस प्रकार प्रार्थना की कि:-- हे पिताजी ! अभी भरत चक्रवर्त्यादि को आपने जो वस्तु दिया है वह सब क्षणिक इंद्रिय जन्य तथा अंत में दुःखदायी है। इसलिए हमें ऐसी वस्तु नहीं चाहिये। हमें आप कोई ऐसी वस्तु दें कि जो सदा हमारे साथ रहे।

तब भगवान ने प्रसन्नतापूर्वक दोनों पुत्रियों को अपने पास बुलाकर बांई अंक में ब्राह्मी को और दाहिनी अंक में सुन्दरी देवी को बिठा लिया। तत्पश्चात् ब्राह्मी से कहा कि पुत्री ! तुम अपना हाथ दिखाओ। पिता की आज्ञानुसार ब्राह्मी देवी ने अपना दाहिना हाथ निकाला। तब भगवान ने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे को अंदर रखकर मुट्ठी बांधकर ब्राह्मी की हथेली में बंधे हुए अमृतमय अपने अंगूठे से लिख दिया। ऐसा लिखने का कारण यह था कि जब भगवान का जन्म हुआ तब बालक अवस्था में सौधर्म इंद्र ने तत्काल जनित भगवान के मृदुल मृणाल अंगूठे के मूलभाग में अमृत भर दिया था। इसलिये उस अमृत को उनके अंगूठे के मूलस्थान से लेकर सिंचन करते हुए सर्वभाषामयी भाषाओं को धारण करनेवाला कर्माष्टक अर्थात् आठ प्रकार की कन्नड़ भाषा के स्वरूप को दिखानेवाली लिपि रूप कई अक्षरों को लिखकर कहा कि बेटी आपके प्रश्न के अनुसार अक्षर की उत्पत्ति हुई है। सो अनन्त काल तक रहेंगी। इसलिये यह साद्य अनन्त कहलाता है। पहले भोग-भूमि के समय में इस लिपि की आवश्यकता नहीं थी। उसके पहले अनादि काल से अर्थात् सबसे प्रथम कर्म-भूमि के प्रादुर्भाव के समय में सबसे प्रथम तीर्थंकरों से आज जैसे ही उत्पत्ति होती आई है इस दृष्टि से देखा जाय तो तुम्हारी हथेली पर लिखे हुए अक्षर अनाद्यनन्त भी कहे जायेंगे। इसलिये कर्नाटक भाषा साद्यनंत भी है और अनाद्यनंत भी। छठवें काल में ये अक्षर काम में नहीं आने से शांत हो जाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो अक्षर आदि और सांत भी हैं।

इसका विस्तार आगे चलकर बताया जाएगा।

इस बात को सुनकर ब्राह्मी देवी सन्तुष्ट हो गई क्योंकि उसकी हार्दिक इच्छा पहले से यही थी कि हमें कोई अविनाशी वस्तु मिले। अतः उसे प्राप्त होते ही वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। अनेक विद्वानों का यही मत है कि सभी लिपियों की अपेक्षा ब्राह्मी लिपि प्राचीन है।

क्योंकि यह लिपि आदि तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ भगवान की सुपुत्री ब्राह्मी देवी के नाम से अंकित है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि सबसे पहले श्री आदिनाथ भगवान ने ब्राह्मी देवी की हथेली में जिस रूप से लिखा था वह आधुनिक कानड़ी भाषा का मूल स्वरूप था।

उपर्युक्त बात को देखकर पिताजी (भगवान आदिनाथ) की जंघा पर बैठी हुई सुन्दरी देवी ने प्रश्न किया कि पिताजी ? बहिन ब्राह्मी की हथेली में जो आपने लिखा वह कितना है ? जिस प्रकार किसी विश्वस्त व्यक्ति का सहयोग लेने के लिये यदि प्रश्न किया जाय कि हमें अमुक कार्य करने के लिये रुपये की आवश्यकता है। सो आपके पास मौजूद है या नहीं ? तो उसके इस प्रश्न पर यदि वह कह दे कि मैं आपको पूर्ण सहयोग दूंगा तो रुपये पैसे का कोई प्रश्न नहीं उठता क्योंकि पूर्ण रूप से सहयोग देने की प्रतिज्ञा कर लेने के कारण वहाँ पैसे के प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती पर यदि संदिग्ध हो जाय तो आप कितने पैसे का सहयोग देंगे ऐसा प्रश्न करते ही रुपये की संख्या की जरूरत पड़ जाती है। इसी प्रकार जब सुन्दरी देवी ने यह प्रश्न कर दिया कि पिताजी ब्राह्मी बहिन की हथेली में जो आपने लिखा वह कितना है ? तो तत्काल ही उन वर्णों की संख्या की आवश्यकता पड़ गई।

तब भगवान् ने कहा कि बेटी ! तुम अपना हाथ निकालो, ब्राह्मी की हथेली में हमने जो लिखा सो बतलायेंगे।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि सुन्दरी देवी को कौन सा हाथ निकालने में तथा भगवान् आदि-नाथ को किस हाथ से लिखवाने में सुविधा हुई ?

इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार ब्राह्मी देवी के हाथ में भगवान् ने अपने सीधे हाथ से लिखा था उसी प्रकार सुन्दरी देवी के हाथ में लिखने की सुविधा नहीं थी। क्योंकि ब्राह्मी देवी भगवान् की बायीं जंघा पर बैठी हुई थी और सुन्दरी देवी दाहिनी जंघा पर। अतः ब्राह्मी देवी के हाथ में भगवान् ने अपने दायें हाथ से आधुनिक लिपि के समान लिखा और सुन्दरी देवी के हाथ में बायें हाथ से लिखने की आवश्यकता पड़ी।

इसी कारण बायें से दायीं ओर वर्णमाला लिपि तथा दायें से बायीं ओर अंकमाला लिपि प्रचलित हुई। प्राचीन वैदिक और जैन शास्त्रों में "अंकानां वामतो गतिः" ऐसा लेख तो उपलब्ध होता था किन्तु उसके मूल कारण का समाधान नहीं हो रहा था। इस समय इसका समुचित समाधान भूवलय से प्राप्त होकर उसने सभी को चकित कर दिया है। इस समाधान से समस्त विद्वद्वर्ग को सन्तोष हो जाता है।

तत्पश्चात् भगवान् आदिनाथ स्वामी जी ने उपरोक्त नियमानुसार सुन्दरी देवी की दायीं हथेली के अंगूठे द्वारा १ बिन्दी लिखी और उसके मध्य भाग में एक आड़ी रेखा खींच दी। उस रेखा का नाम कुमुदेन्दु आचार्य ने अर्द्धच्छेद शलाका दिया है और छेदन विधि को शलाकार्धच्छेद अर्थात् एक दम बराबर काटने को कहा है। जब बिन्दी को अर्द्ध भाग से काटा गया तब उसके बराबर दो टुकड़े हो गये। कानडी भाषा में ऊपरी भाग को [१] तथा नीचे के भाग को [२] कहते हैं, जोकि थोड़े से अन्तर में आज भी प्रचलित हैं।

ये दो टुकड़े नीचे के चित्र में दिये गये हैं। इसे देखने से आप लोगों को स्वयं पता चल जायेगा।

एक टुकड़े से दो-दो टुकड़े से तीन चार, छः, सात, आठ और नौ और एक बिन्दी और टुकड़ा मिलाने से पाँच अर्थात् चार को एक टुकड़ा मिला देने से पाँच बन जाता है। इन सब अंकों को एकत्रित कर मिलाया जाय तो पहले के समान बिन्दी बन जाती है।

इसका स्पष्टीकरण आगे आने वाले २१वें अध्याय में ग्रन्थकार स्वयं विस्तार पूर्वक कहेंगे। यदि उपर्युक्त विधि के अनुसार अंकों की गणना की जाय तो बिंदी के दो टुकड़े होने पर भी कानड़ी भाषा में ऊपर का टुकड़ा एक और नीचे का टुकड़ा दो होने से तीन हो गये अर्थात् १ + २ = ३ हो गये। इन तीनों को तीन से गुणा करने

पर ९ [नौ] हो गये इस नौ के ऊपर कोई अंक ही नहीं है। अर्थात् एक बिन्दी को एक दफे काटा जाय तो तीन बन गया दूसरी बार गुणा करने से नौ बन गया यही भगवान् जिनेन्द्र देव का व्यवहार औरनिश्चय नय कहलाता है। इस प्रकार यह संपूर्ण भूवलय ग्रन्थ व्यवहार और निश्चयनय से भरा हुआ है। नौ के ऊपर कोई भी अंक नहीं है। नौ नम्बर में ही चार और छः आ जाता है। ऊपर के कथनानुसार भगवान् ने ब्राह्मी देवी की हथेली पर जितना अक्षर लिखा था वह सब चार और छः अर्थात् चौंसठ ये सभी नौ में ही समाविष्ट है। इसी चौंसठ अक्षर को गणित पद्धति के अनुसार गिनते जायें तो संपूर्ण द्वादशांग शास्त्र निकल आता है। इसका खुलासा आगे चलकर आवश्यकतानुसार करेंगे।

श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु मुनिराज आज से डेढ़ हजार वर्ष पहले हुये हैं जो महा मेधावी तथा द्वादशांग के पाठी, सूक्ष्मार्थ के वेदी और केवल ज्ञान स्वरूप नौ अंक के संपूर्ण अंश को जानने वाले थे। इसलिये छः लाख श्लोक परिमित कानडी सांगत्य छन्द में आज कल सामने जो मौजूद हैं वह नौ अंकों में ही बन्धन करके रक्खा हुआ है। उन्ही नौ अङ्कों से सातसौ आठरह भाषा मय निकलता है।

ये किस तरह निकलती है सो आगे चलकर बतायेंगे।

भगवान् ऋषभदेव ने एक बिन्दी को काटकर ९ अंक बनाने की विधि बताकर कहा कि सुन्दरी देवी! तुम अपनी बड़ी बहिन ब्राह्मी के हाथ में ६४ वर्ण माला को देखकर यह चिन्ता मत करो कि इनके हाथ में अधिक और हमारे हाथ में अल्प है। क्योंकि ये ६४ वर्ण ९ के अन्तर्गत ही हैं। इस ९ के अन्तर्गत ही समस्त द्वादशांग वाणी है। यह बात सुनते ही सुन्दरी देवी तृप्त हो गई।

इस प्रकार पिता-पुत्री के सरस विद्याओं के वाद-विवाद करने में संसार के समस्त प्राणियों की भलाई करने रूप ज्ञान भण्डार का संक्षिप्त समस्त इतिहास ध्यान से मन लगाकर गोम्मट देव ने सुना। इस प्रकार मन को मंथन करके सुनने के कारण ही गोम्मट देव का नाम मन्मथ [कामदेव] हुआ। पहिले गोम्मट देव को उनके पिता जी ने कामकला और सभी जीवों का हितकारी आयुर्वेद अर्थात् समस्त जीवों का रोग दूर करने वाला अहिंसात्मक वैद्यक शास्त्र सिखलाया था। अब अक्षर और अंक दोनों विद्याओं के मालूम हो जाने पर परमानन्दित होते हुये भगवान् से पहले सीखी हुई विद्याओं की चर्चा का स्वरूप प्रकट हुआ। ६४ अक्षर का गुणाकार करने से वे ही वर्ण बारम्बार आते रहते हैं, इसलिए अपुनरुक्त कैसे हुआ? ९ अंक के ऊपर पुनः १ अंक की उत्पत्ति है और १० की उत्पत्ति होती है। वह १० का अंक पुनरुक्ति है। ऐसा सभी अंकों का हाल है। इसलिए पुनरुक्ति हुआ। जब भगवान् ने ब्राह्मी देवी को ६४ अक्षर और सुन्दरी को ९ अंक सिखाया तथा अपुनरुक्त रूप से सारी द्वादशांग वाणी निकलती है और अपुनरुक्त से निकलता है, ऐसा बताया। ६४ के ऊपर पैंसठवां अक्षर तथा ९ के ऊपर १० ये दोनों अक्षर और अंक पुनरुक्त ही हैं। इसी प्रकार अगले अंक और अक्षर दोनों क्रमशः यानी अ आ, ११-१२ इत्यादि पुनरुक्त होते जाते हैं।

भगवान् ने कहा कि ये ६४ अक्षर और ९ अंक अपुनरुक्त है, यह कैसे हुआ? इसके बीर में भगवान् ने उत्तर दिया। ऐसा कहने में भगवान् से जो उत्तर मिला वह अगले श्लोक में आयेगा।

अब कामकला और आयुर्वेद इन दोनों विषयों की चर्चा चल रही है। किन्तु कामकला का जो विषय है वह यहाँ चलने के लायक नहीं है। क्योंकि पिता और पुत्र, पिता और पुत्रियों, भ्रातृ और भगिनी उसमें भी ब्रह्मचारिणी भगिनी उसके समक्ष कामकला का वर्णन सर्वथा अनुचित है कामकला तो पवित्र प्रेम वाले पति-पत्नी और अपवित्र प्रेम वाले वेश्या और कामुक पुरुषों में होता है, ऐसी शंका उठाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि यहाँ रहने वाले दोनों पिता-पुत्र तद्भव मोक्ष भागी हैं। अर्थात् पुनर्जन्म नहीं लेने वाले हैं और दोनों स्त्रियाँ ब्रह्म-

चारिणी हैं। ऐसे पवित्रात्माओं से ही यदि काम कला निकले तो वह लोकोपकारिणी हो और आयुर्वेद विद्या शारीरिक स्वास्थ्य दायिनी बने। इस आयुर्वेद और कामुक दोनों का परस्पर में अभिन्न संबंध है। और ये दोनों ही अनादि भगवद्वाणी से निकली हुई हैं। अर्थात् पवित्र और अपवित्र ये दोनों कलायें भगवद्वाणी से निकलती हैं. अन्यथा भगवद्वाणी अपूर्ण हो जाती है। कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा है कि पवित्रता तथा अपवित्रता पदार्थ में नहीं, बल्कि वीतराग अथवा सराग रहने वाले जीवों में है। इसलिए इसे ४ पवित्रात्माओं की चर्चा करनी चाहिये। इसके लिए एक कथा भी है, सो देखिये।

भगवज्जिन सेनाचार्य श्री कुमुदेन्दु आचार्य के सहाध्यायी थे। वे सकल जैन समाज में मान्य दिगम्बर जैन मुनि थे, यह इतिहास देखने से ज्ञात होता है। कि जब जिनसेन पवित्रकुल में पैदा हुये तब उस घर में एक वे ही लड़के थे। उनकी उम्र ४ वर्ष की थी जिससे कि वे घर में बालक्रीडा किया करते थे। एक दिन आचार्य कुमुदेन्दु के गुरु श्री वीरसेनाचार्य [धवल और जय धवल ग्रंथ के कर्ता] आहार के लिये इसी घर में आ पहुंचे। आप आहार के पश्चात् तेजस्वी बालक को शुभ लक्षणों सहित समझकर उसके माता-पिता से कहने लगे कि इस बच्चे को संघ में सौंप दो। वह होनहार बालक अपने माँ-बाप का इकलौता लाड़ला था, अतः उन लोगों की इच्छा न होने पर भी गुरु वचनमनुल्लंघनीयम् अर्थात् गुरु के वचनों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए इस नियम से तथा आचार्य वीरसेन की आज्ञा को चक्रवर्ती राजे महाराजे आदि सभी सहर्ष शिरोधार्य करते थे। अतः उनकी आज्ञा अप्रतिहत प्रवाहरूप चलती थी। इसलिये उन्हें सौंपना ही पड़ा। बालक कर्णच्छेद, उपनयन तथा चूड़ाकर्म संस्कार से रहित था। यथा जात रूप [दिगम्बर रूप] था। उनका चूडा कर्म ही केशलुंचन रूप प्रतिभासित होता था। इसी रूप में साधक ८ वर्ष के पश्चात् केशलुंच करके यथाविधि दिगम्बर दीक्षा धारण की इसलिये वे आगर्भ दिगम्बर मुनि कहलाते हैं। ऐसे दिगम्बर मुनियों का शुभ समागम प्राप्त होना आजकल परम दुर्लभ है।

जिनसेन आचार्य के नाम से चार आचार्य हुये है। उनमें से हमारे कथानायक जिनसेनाचार्य पहले वाले कुमुदेन्दु आचार्य के सहपाठी थे। इसी प्रकार वीर सेनाचार्य भी आजकल मिलने वाले धवल तथा जय-धवल टीका के कर्ता वीरसेन नहीं बल्कि इससे पहले के पद्यात्मक धवल टीका के जो कर्ता थे वे ही कुमुदेन्दु आचार्य के गुरु थे। आजकल पद्यात्मक धवल टीका उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार कल्याण कारक ग्रंथ कर्ता उग्रादित्याचार्य भी राष्ट्रकूट अमोघ वर्ष नृप के समय वाला नहीं है। क्योंकि कल्याण कारक में जितने भी श्लोक हैं वे सभी भूवलय में आते हैं, इसलिये उस काल के उग्रादित्याचार्य नहीं हैं। उग्रादित्याचार्य श्री कुमुदेन्दु आचार्य के समय में थे, ऐसा कतिपय विद्वानों का मत है यद्यपि यहाँ इस समय इस विषय की आवश्यकता नहीं थी, तथापि इसका कुछ थोड़ा विवेचन यहाँ किया गया है।

पहले गोम्मट देव अर्थात् बाहुबली काम कला तथा आयुर्वेद पढ़ते थे वैसे ही इस काल में भी आचार्य कुमुदेन्दु के शिष्य शिवकुमार, उनकी पत्नी जककी लक्को अब्बे: तथा कुमुदेन्दु वीरसेन, और उग्रादित्याचार्य आदि मेधावी आचार्य उस समय मौजूद थे। इसलिये धन्य हैं वह काल। ऐसे दिगम्बर मुनि साक्षात् भगवान् का रूप धारण करके संपूर्ण भारत में जैन धर्म का डंका चारों ओर बजाया करते थे। यह महोन्नति काल जैन धर्म के लिये था। कर्णाटक के एक राजा ने सारे भरत खंड को जीत कर उसे अपने आधीन कर हिमवान् पर्वत के ऊपर अपने झंडे को फहराया था। इतिहास में कर्माटक देश का राजा पहले शिवमार ही था।

जिनसेनाचार्य :-

जिनसेन दिगम्बर जैनाचार्य होकर राजस्थान में भी विहार करके वहां उपदेश दिया करते थे। वीतरागी जिनमुद्राधारी भगवान स्वरूप जिनसेनाचार्य कहलाते थे। ऐसे जिनसेनाचार्य अपने एक काव्य में

अत्यन्त सुन्दर स्त्रियों के प्रत्येक अंगोपांगादिक के मर्माग का सुन्दर रूप से वर्णन करके शृंगाररस का अत्युत्तम विवेचन किया था। उस काल के कई विद्वान् बड़े सुन्दर ढंग से स्त्रियों का वर्णन करने वाले परस्पर में कहने लगे कि ये मुनि काम विकारी अवश्य होंगे। ऐसी जनता के मन में शंकास्पद चर्चा उत्पन्न हुई और यह बात सर्वत्र फैल गई। यहीं तक नहीं बल्कि यह बात धीरे २ जिनसेन आचार्य के कानों में भी जा पहुंची। तब जिनसेन आचार्य आश्चर्य चकित होकर कहने लगे कि केवल मेरे एक ही व्यक्ति पर यदि वह दोष आ जाता तो कोई दोष नहीं था। परन्तु संपूर्ण दिगम्बर मुद्रा पर यह दोष लगाना है, यह ठीक नहीं है। क्योंकि यह धर्म को कलंकित करने वाला है। इस तरह जिनसेन आचार्य मन में सोचकर राजस्थान में चले आये और उस राजा को आज्ञा दी कि कल एक सभा बुला कर सभी युवक और युवतियों को लाकर बिठा देना और उनके नीचे छोटी २ चटाई बिछा देना। इस प्रकार आज्ञा पाते ही राजा ने तुरन्त ही सभी तैयार करवा दिया। तब आचार्य जिनसेन ने खड़े होकर कहा कि हम धर्म अर्थ तथा काम इन तीनों पुरुषार्थों पर व्याख्यान देंगे। इस तरह पहले अपने व्याख्यान की भूमिका समझा दी। तत्पश्चात् धर्म और अर्थ को गौण करके काम पुरुषार्थ का विवेचन करेंगे। ऐसा कहकर काम पुरुषार्थ के शृंगार रस का वर्णन इस तरह किया कि उस सभा में बैठे हुए सभी युवक और युवतियां अपने आप को भूल कर मुंह खोलकर सुनने में दत्तचित्त हो गये और कामांध होकर परवशता के कारण स्वयं ही चटाई पर वीर्यपात कर चुके।

इस तरह जिनसेन आचार्य का उपदेश समाप्त होते ही बैठे हुए युवक और युवतियों के उठने पर चटाई पर गिरे हुए युवकों के वीर्य तथा स्त्रियों के रज को देखकर राजा और सब प्रजा परिवार सहित विस्मित होकर कहा कि देखो जिनसेन आचार्य के इन्द्रियों पर विकार है या नहीं? किन्तु जिनसेन आचार्य के लिंग में किसी प्रकार का भी विकार नहीं दीख पड़ा। तब राजा ने उन्हें सच्चा महात्मा कह कर आचार्य की प्रशंसा करते हुए कहा कि आप ही एक सच्चे महात्मा हैं। राजा व सारे प्रजा परिवारने इस प्रकार अनेक स्तुति की। निकृष्ट कराल पंचम काल में भी ऐसे महात्मा ने इस भरत खण्ड में जन्म लिया था तब वृषभ तीर्थंकर के समय में गोम्मट देव अर्थात् बाहुबलि आदि वज्र वृषभ नाराच संहनन वाले काम कला के विषय की चर्चा को करते हुए भी इस विषय में अरुचि रहने वाले को क्या काम विकार कुछ कर सकता है? अर्थात् नहीं। इस चर्चा के समय में उनके पिता भगवान वृषभदेव और उनकी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों ब्रह्मचारिणी चारों जन मिलकर काम कला की चर्चा करने से इस भूवलय में काम कला के बारे में जो विवेचन आने वाला है वह अत्यन्त सुन्दर और गृहस्थों के लिए अनुकरणीय है।

गृहस्थों की भोगादि क्रियाओं में वीर्य वृद्धि के लिए स्खलन होने से शरीर दुर्बल होता है। वे पुनः तत्कालीन वीर्य की वृद्धि के लिए आयुर्वेद तथा औषधादि सेवन से सुखी होंगे। अपने समान अर्थात् बाहुबलि के समान शरीर बना लेने की ही आशा गोम्मटदेव की थी।

श्री भूवलय में आने वाली काम कला और आयुर्वेद ये दोनों अनादि काल से भगवान की वाणी के द्वारा चले आये हैं और अनन्त काल तक चलते रहेंगे। इसलिए ये तीनों काल में अहिंसात्मक ही रहेंगे। क्योंकि जिनेन्द्र देव ने सभी जीवों पर समान दयालु होने के कारण एक चींटी से लेकर सम्पूर्ण प्राणी मात्र पर अर्थात् मनुष्य पर जिस जिस समय में रोगादिक बाधा हो जाती है उस समय उन सब रोगों को नाश करने वाला पुष्पायुर्वेद को बतलाया है। उसके श्री भूवलय के चौथे खण्ड में एक लाख कानड़ी श्लोक हैं। इन्हीं श्लोकों को संशोधक महोदय ने उसमें से निकाल कर अपने पास रक्खा है। इस श्लोक को संशोधक महोदय ने सरकार को अर्पण कर दिया है। भारत की सरकार ने इस ग्रन्थ को अनुवाद करने के लिए सर्वार्थसिद्धि संघ, विश्वेश्वरपुर सकल बंगलौर को सौंप दिया है। यह ग्रन्थ अब जल्दी ही क्रम से उद्धृत होकर जनता के हाथ में आयेगा। अब उस काम कला और आयुर्वेद के साथ शब्द शास्त्र भगवद्गीता (पांच भाषाओं में) और भगवान वृषभदेव के द्वारा कही हुई पुरु गीता, श्री नेमिनाथ भगवान के द्वारा अपने भाई श्री कृष्ण को कही हुई नेमि गीता, द्वारका के कृष्ण के कुरुक्षेत्र में कही हुई भगवद्गीता, और भगवान महावीर के द्वारा गौतम गणधर को कही हुई, गौतम गणधर के द्वारा श्रेणिक राजा को कही हुई और श्रेणिक राजा के द्वारा अपनी रानी चेलना देवी को कही हुई भगवान महावीर गीता को कहा है। जक्की लक्की अब्बे और उसका पति राजा सईगोट्टा शिवमार प्रथम अमोघवर्ष इन दोनों दम्पतियों को उपदेश की हुई कुमुदेन्दु गीता, और उसी अक्षर से दश तक की निकलने वाले ऋग्वेद इत्यादि हजारों ग्रन्थ हुए हैं। परन्तु कोई उन्हें अभी तक देख भी नहीं पाया है।

प्रतिलोमांक भागहार

१८८८१६८३६५६२३२७६२५६५३६१८७३५१२६७०४५८४५२८०७३६८४७८३५४६३६१५२६६००६४८६६२६६४३२०००००००००००००
४—१६०६६१६६२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६६६६६६६३०६३४०८१६४६६६४७४२३१२६६
२७८२७८४७२२६६८३४५०६११०५७४२६२८७१३४५८७८६५०१०२७६६१८८४६६१८६२१६६४०
६—२४१४८७६८८४६८६६६२६३०१४२६१६५७२६३८५४६६४६६४५५६५११२२४७०४६२११३४६६४४
३६७६०४८३७६७८६८२४३०६६२८२३३५६०७४६०८८३६५५५०७६५३६४१४४६६७७८६६६६६
६—३६२२३१६८२७४८४४६३६४५२१४३७६३५८६५७८२४६२४६१८६२६६८३७०५७३८१७०२०४१६
५६७२८५५२३०२३३०३६४४१३८५४२०१७६१२६३४४०६३१८४८७१०४३६२५६६१६७६५५३४
१—४०२४७६६८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४६६१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४
५६४८०५५४२१६१६६३२०५७६१३८८७५४८०६२०६४१४६६०७२८५८३६८०८४७४८२३७७१०८
४—१६०६६१६६२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६६६६६६६३०६३४०८१६४६६६४७४२३१२६६
०←३८१३५४६८५६०४८८३०४३८५२७४५०६६३६३६४१७६६७७६५१७५८१६१४८००८१४५८१२६
६—३६२२३१६८२७४८४४६३६४५२१४३७६३५८६५७८२४६२४६१८६२६६८३७०५७३८१७०२०४१६
१६१२३००३१५६४३३६४६३३१३०७१६०४६८१५६३०७२८६२४६१३२४४२२६६६७५६०८७६
४—१६०६६१६६२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६६६६६६६३०६३४०८१६४६६६४७४२३१२६६
३०२३८०३६२३१६६२३१७६७०२१०२६६८३६०२३०७६६१६६४२७६१६२५८०००२८१८५५५३६
७—२८१७३५६८६५८२१२७३०६८५०००७२८३४७४४६७४६४१६०३६०६६४२८८२२४०७६६०४७६८
२०६४४४०५७३५७६५८७२८५२०६५७१४६१५७३३२६६६७१४६६२७८४८७४८०६३३८६७५६८६
५—२०१२३६६६०४१५८०५२१६१७८५७६६३१०५३२१२४६५८२८८२६२६०२०५८७४३४२७८६१२०
५२०४०६६६३२१५३५०६३४२८०५१८१०४१२०१७०८८६१३३५२४६६८६३४६६५८८६८६६४
१—४०२४७६६८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४६६१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४
११७६२६७१२३८३७४०४६५८८०८६८५४८३०५५६२०६६६५५६६३६४६४८१७५०६०३१०८४०३
२—८०४६५६६६१६६३२२०८७६७१४३०६५२४२१२८४६६८३३१५३१७०४०८२३४६७३७११५६४८
३७४३०७१६२१७४१८४०८२०६४६७८६५८८४३०७०६८६२४१६२२४२३६६४०११६५६६२७५५२
६— ३६२२३१६८२७४८४४६३६४५२१५३७६३५८६५७८२४६२४६१८६२६६८३७०५७३८१७०२०४१६
१२०७५१७६४२५७३४६८७५७३२४१०२२६४७२८८४६३७४६७२६७५५६२३४३७८४२६०७१३६
३—१२०७ ६४२
०००० ००० ०००००००००० ०

अशुद्ध नवम शंक

चौवन अक्षर सम्मिलित

लब्धांकः—

४६६१४०६४७५१२६३०००००००००००००

भंगांकः—

२३४५७०४७३७५६४६५०००००००००००

शेषांक :—

०००००००००००००००००००००००००००

(मंगल प्राभृत का दूसरा अध्याय, पद्य एक से बाईस तक)

१—४०२४७९९८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४९९१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४०००००००००
२—८०४९५९९६१६६३२२०८७६७१४३०६५२४२१२८४९९८३३१५३१७०४०८२३४९७३७११५६४८
३—१२०७४३८९४८४९४८३१३१५०७१४५९७८६३१९२७४९७४९७५५६१२३५२४६०५६७३४७२
४—१६०९९१९९२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६९९९९६६३०६३४०८१६४६९९५७४२३१२९६
५ २०१२३९९९०४१५८०५२१९१७८५७६६३१०५३२१२४९५८२८८२९२६०२०५८७४३४२७८९१२०
६—२४१४८७९८८४९८९६६२६३०१४२९१९५७२६३८५४९९४९९४५९५११२२४७०४९२११३४६९४४
७—२८१७३५९८६५८२१२७३०६८५०००७२८३४७४४९७४९४१६०३६०९६४२८८२२४०७९९०४७६८
८—३२१९८३९८४६६५२८८३५०६८५७२२६०९६८५१३९९९३३२६१२६८१६३२९३९८९४८४६२५९२
९—३६२२३१९८२७४८४४९३९४५२१४३७९३५८९५७८२४९२४९१८९२६६८३७०५७३८१७०२०४१६

अर्थ—प्रथम अध्याय में 'हक' पाहुड का विषय आया है। पहले अध्याय के पाँचवें श्लोक में भी हक पाहुड का विषय आया है। भूवलय अक्षर भंग कर गणित के नियमानुसार यदि कर लिया तो "ह" का अर्थ ६० और "क" का अर्थ २८ इन दोनों के परस्पर में मिलाने से ८८ होता है। ६० में जो बिंदी थी उस बिंदी का लोप हो गया अब वह नहीं दीखती। जो ८८ अंक उत्पन्न हुआ है उसको यदि आड़ी रीति से जोड़ दिया जाय तो ८+८=१६ होता है। १+६=७ हुआ इस गणना के अनुसार भगवान महावीर ने सात भंग के नियमों के अनुसार अनादि कालीन संपूर्ण द्वादशांग को इस गुणाकार की विधि से निकाल कर भव्य जीवों को उपदेश दिया था।

श्री भगवान् पार्श्वनाथ तक आये हुए समस्त द्वादशांगों का विवेचन भगवान पार्श्वनाथ ने टक भंग में लिया था। १-१-१-३६ + वह टक भंग भी अनादि द्वादशांग में ही मिल गया है और आगे भी मिलता ही जाएगा। भगवान महावीर ने श्री पार्श्वनाथ भगवान के टक भंग से लेकर हक भंग से उपदेश किया। केवल ज्ञान की ऐसी महिमा है कि अपने केवल ज्ञान से सम्पूर्ण वस्तुओं को एक साथ जानने की शक्ति केवली में होती है, अतः जैसे है वैसा ही यथार्थ पदार्थ द्वादशांग वाणी में कहा गया है।

अब ५४ अक्षर को घुमाने से इसके अन्दर वह महत्व निकलता है। इस विषय को ७ वें श्लोक में स्वयं कुमुदेन्दु आचार्य कहेंगे ॥६॥

ऊपर कहे हुए संपूर्ण नव पदों का अर्थात्—

१ सिरिसिद्ध, २ अरहन्त, ३ आचार्य, ४ पाठक ५ वर सर्व साधु ६ सद्धर्म, ७ परमागम, ८ चैत्यालय, ९ और बिम्ब ओंवत्तु ॥

इन नौ पदों में सात अंक से भाग देने से बिंदियां आती हैं। इस अंक का यही एक महत्व है। आज कल प्रचलन में आने वाले पाश्चात्य गणित शास्त्र में नौ अर्थात् विषमांक को सम अंकों से भाग देने पर बिंदी नहीं आती उदाहरणार्थ नौ अंक को दो अंक से भाग देने पर ४ (चार) दफे नौ नौ आकर शेष नौ बच जाता है। पर इस तरह बचना नहीं चाहिए। यह पाश्चात्य गणित शास्त्र की अपूर्णता समझना चाहिए। यह भूवलय भगवान महावीर की वाणी होने के कारण और संपूर्ण अंश को जानने वाला होने के कारण ऊपर कहे हुए नौ अंक दो से विभक्त होकर बिंदी आ जाना और ७-६-५-४ इत्यादि पूर्ण अंकों से विभक्त होकर शून्य शेष रहने वाली विधि को बतलाने वाले को सर्वज्ञ कहते हैं। ऐसे नौ अंक किसी अंक से विभक्त नहीं हुआ या

+ १।१।३६ ऐसा कहने से प्रथम खंड मंगल प्राभृत समझना चाहिए। दूसरा जो यह है कि इसे निशान श्लोक संख्या समझना चाहिए। आगे इसी तरह क्रम समझना चाहिए।

शेष रह जाय तो वह सर्वज्ञ वाणी कैसे होगी ? इस जटिल प्रश्न का, इस मुख्य प्रश्न का अगर हल हो जाता है तो जैन धर्म सार्व धर्म हो सकता है। परन्तु जैन धर्म सार्व धर्म होते हुए भी वह ताले में या बिस्तर में बंद होकर गुप्त रूप में ही रह गया। उसका दर्शन अन्य लोग या जैन विद्वानों की आंखों के सामने आ नहीं पाया। यह दोष केवल जैन विद्वानों पर ही नहीं है विज्ञानादि साधनादि वस्तुओं के संग्रहालय करोड़ों रुपये व्यय करके अपने हाथ में रहने वाले पाश्चात्य विद्वानों के हाथ से भी नहीं हुआ परन्तु श्री भूवलय ग्रन्थ का अध्ययन परम्परा जैन विद्वानों के द्वारा चली आती तो जैन धर्म का भी उद्धार होता जाता और सारे संसार का भी उद्धार हो जाता।

इस श्लोक के द्वारा यह निष्कर्ष निकला कि नौ अंक सात से विभक्त होकर शून्य आ जाता है। ये कैसे ? जैसे आचार्य कुमुदेन्दु स्वयमेव प्रश्न उठाकर उसका समाधान करते हैं कि यह शंका परमानन्द वाली है, ऐसा बताते हैं। इस उत्तर का समाधान करते हुए आचार्य ने ऊपर दी हुई गणित विधि को बतलाया ॥७॥

— नौ अंक को अपने नीचे रहने वाले ८ आठ ७ सात ६ छः ५ पांच चार ३ तीन २ दो इन संख्याओं में विभाग होने की विधि को आचार्य ने करण सूत्र में ऐसे कहा है और एक संख्या से सब संख्या का विभाग होता ही है।

नौ और चार मिल कर ०००००००००००० ये तेरह बिंदी अन्त में रखना चाहिए और पहले बिंदी से बांये भाग से २, ३, ४, ६ यहां तक आठ श्लोकों का अर्थ पूर्ण हुआ।

गौतम गणधर से जब किसी जिज्ञासुने प्रश्न किया कि भगवान के करण सूत्र की विधि क्या है ? ऐसा प्रश्न करने से गौतम गणधर ने उत्तर में कहा कि करण सूत्र अनेक हैं उनमें से एक यह करण सूत्र है। इस सूत्र से जो अंक निकले हुए हैं उन सभी अक्षरों को द्वादशांग वाणी ही समझना चाहिए। कुल अंक चौरासी स्थान में ही बैठा है सबका जोड़ लगाने से तीन सौ उनत्तर (३६९) अंक होते हैं। अंकों को पुनः जोड़ने से १८, अठारह को पुनः जोड़ने से ९ होते हैं जैसे ३+६+९=१८ अब अठारह आ गये, इस १८ को १-८-९ इतने बड़े अंश अर्थात् चौरासी स्थान पर बैठे हुये सब के सब महान् अंक नौ के अन्दर गर्भित हो गये हैं यह कितने आश्चर्य की बात है ?

यह बात आश्चर्य की नहीं है बल्कि इसे भगवान के केवल ज्ञान की महिमा समझना चाहिए।

५४ अंक को संयोग भंग से प्रतिलोम के क्रम से ५४ बार गुणा करते आने से यह अंक निकल आता है। इसकी विधि इस तरह है कि—

६४×६३=४०३२ इसमें दुनियां की सम्पूर्ण भाषाओं के दो अक्षर का सम्पूर्ण शब्द निकल आते हैं। एक बार आया हुआ शब्द पुनरुक्त नहीं आता है।

उदाहरणार्थ—

१ को अ और ६४ को : फ : ये दोनों मिलकर (अ फ) होता है यह भाषा इंगलिश है। सभी लोग ऐसा कहते हैं कि इंगलिश भाषा ईसा मसीह के समय से प्रचलित हुई है इसके पहले ग्रीक भाषा थी इङ्गलिश नहीं थी। परन्तु भूवलय ग्रन्थ से साबित होता है कि इङ्गलिश भाषा पहले भी मौजूद थी। भगवान महावीर की वाणी के अन्दर भी यह भाषा मौजूद थी। पार्श्वनाथ भगवान की वाणी में भी मौजूद थी। इसी तरह केवल भगवान वृषभदेव तक ही नहीं परन्तु उससे भी पहिले से अनादि काल से यह भाषा मौजूद थी अगर यह बात भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ से उनको मालूम हो जाय कि यह इङ्गलिश भाषा अनादि काल से मौजूद है तो लोगों को कितना आनन्द होगा। इसी तरह कानड़ी, गुजराती, तेलगु, तामिल इत्यादि नयी उत्पन्न हुई हैं ऐसा कहने वालों को भी इस विषय को जानना चाहिए।

अब देखिये इसी गणित पद्धति के अनुसार कहीं इङ्गलिश भाषा का शब्द निकाल कर देते हैं वह इस प्रकार है कि:—

(of)	4032				
	2	फिराने से	fo	64	and 1
	4030				
(off) 2nd 64	2	,,	foo	,,	,, 2
	4028				
(if) 4 ,,64	2	,,	fi	,,	,, 4
	4026				

ऊपर कहे हुए अनुसार गुणन फल से ४०३२ निकला उस में १ और ६४ मिला दिया तो इंगलिश का (fo) आया अब इसमें से २ दो घटाइये तो ४०३० बाकी बचा और बचा हुआ ४०३० ये उलट कर ६४ और १ मिला दिया जाय तो (fo इस fo को first, for furlang.

इस तरह इङ्गलिश वाक्य रचना करने की मिसाल मिल जाती है। अब बचा हुआ ४०३० से और दो घटाने से ४०२८ वास होता है। इसमें से दो दीर्घ 'आ' और ६४ को मिलाने से o ff :: इन चार बिन्दुओं का खुलासा ऊपर के मुखपत्र चार्ट पर देखो। अब इसको उलटा करने से '::' 'आ' ffo होता है इससे :: फादर father fast इस तरह वाक्य रचना करने के लिए शब्द निकल आते हैं। अब बचा हुआ ४०२८ में और दो निकाल देने से बचा हुआ २६ छब्बीस बच गया है। इसी तरह इसको भी इसी रीति से करते जायें तो अन्त में चार बिंदी आ जाते हैं। इसलिए इस भूवलय का गणित प्रामाणिक है ऐसा सिद्ध होता है। आगे इसी तरह करते जायें तो तीन अक्षर का शब्द निकल आता है। कैसे निकल आता है? उस विधि को बतलाते हैं—

४०३२ को × ६२ से गुणा किया जाय।

८०६४
२४१९२

२४९९८४ भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि निकल आयी। तीन लोक और तीन काल में रहने वाले तथा होने वाले समस्त भाषाओं की और समस्त विषयों की तीन अक्षर के शब्द निकल आते हैं। इन तीन अक्षरों की वाणी ही द्वादशांग वाणी है ऐसे कहते हैं। भगवान की तीन अक्षरों की वाणी को छोड़कर अन्य प्रचलित किसी वेद में भी देखने में नहीं आता है, इसलिए यह भूवलय ग्रंथ प्रमाण है। उसका क्रम इस तरह से है कि—

'कमल, ऐसा एक शब्द लीजिये—

कमल २८.५२,५५,
मलक ५२,५५.२८,
लकम ५५, २८,५२,
कलम २८,५५,५२,
मकल ५२,२८,५५,
लमक ५५, ५२,२८

अब अनेकान्त दृष्टि तथा आनुपूर्वी क्रम से देखा जाय तो २८ को १ बावन को २, और ५५ को तीन माना जाय तो

१२३
२३१
३१२
१३२
२१३

३२१ इस रीति से अन्त तक करते जायें तो छः ०००००० बिंदी आयेंगी इसलिए भगवान की दिव्य ध्वनि को भूवलय गणित के प्रमाण में अनेकांत से यह सत्य है एकांत से नहीं हैं। भगवान की दिव्य ध्वनि के द्वारा बारह अंग शास्त्र का अभाव हो गया इस समय वह शास्त्र मौजूद नहीं है। ऐसे कहने वाले दिगम्बर जैन विद्वानों की यह असमझ है। श्वेताम्बर आदि समस्त जैन जैनेतर सभी विद्वान् अपने पास बचा हुआ थोड़ा बहुत अंकात्मक श्लोक को ही भगवद् वाणी मानते हैं। तो भी भूवलय ग्रंथ में कहा हुआ गणित पद्धति के अनुसार एक भी श्लोक नहीं निकलता है। इसलिए वे सब जो श्लोक से परिमित संख्या वाले हैं वे एक भाषात्मक कहलाते हैं। इसलिए वे परिमित श्लोक भगवान की दिव्य ध्वनि नहीं कहलाते हैं।

दिगम्बर विद्वान लोग कहते हैं कि 'हमारे पास इस समय अंग ज्ञान की व्युच्छुत्ति हुई है'। उनका कहना भी सच है। क्योंकि सम्पूर्ण विषय और सम्पूर्ण भाषाओं को बतलाने वाले कोई भी साधन रूप बतलाने वाले की भूवलय ग्रन्थ की अंक से पढ़ने की परिपाटी तेरह सौ वर्षों से अर्थात् श्री आचार्य कुमुदेंदु के समय से आज तक अध्ययन अध्यापन की परिपाटी बंद होने के कारण अंगादि विच्छेद मानने लगे थे। अब यह भूवलय

ग्रन्थ से निकलकर ऊपर लिखा हुआ गणित पद्धति के क्रम से महान् मेधा वाही नहीं कि सामान्य पढ़े लिखे हुए मामूली आदमी भी आसानी से भूवलय ग्रन्थ जैसी द्वादशांग वाणि को आसानी से निकाल कर दे सकता है। अब चार अक्षर भंग आप लोगों को आसानी से निकालने वाली विधि निम्न प्रकार बतायेंगे इससे आप लोगों की समझ में आयेगा।

४ अक्षर के भंग

आ म ल क

१)	१ २ ३ ४	आ म ल क	२)	२ ३ ४ १	म ल क आ
३)	३ ४ १ २	ल क आ म	४)	४ १ २ ३	क आ ल म
५)	२ ३ २ ५	क ल म आ	६)	३ २ १ ४	क ल म आ
७)	२ १ ३ ४	म आ ल क	८)	१ ३ ४ २	आ ल क म
९)	३ ४ २ १	ल क म आ	१०)	२ १ ४ ३	म आ क ल
११)	१ ४ ३ २	आ क ल म	१२)	२ १ ३ ४	म आ ल क
१३)	३ २ ४ १	ल म क आ	१४)	४ २ ३ १	क म ल आ
१५)	२ ३ १ ४	म ल आ क	१६)	१ ३ २ ४	आ ल म क
१७)	४ ३ ० २	क ल आ म	१८)	३ १ ४ २	ल आ क म
१९)	२ ४ ३ १	ल आ क म	२०)	० २ ४ ३	आ म क ल
२१)	२ ४ ३ ०	म क ल आ	२२)	२ ० २ ४	ल आ म क
२३)	४ ० २ ३	क आ म ल	२४)	० ४ २ ३	आ क म ल

इस चार अक्षर के समस्त अंक की राशि में सम्पूर्ण विश्व के अंक राशि आगये हैं कोई बाहर बाकी नहीं रह जाता है।

आगे के उत्सर्पिणि काल में तीर्थंकर रूप में होने वाले समंतभद्रादि महान मेधावी बड़े बड़े आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थ में या भविष्य में होने वाले महान ग्रन्थ में जो ४ अक्षर की शब्द रचना होती है वह इस चार अक्षर रूपी भूवलय में अब ही मिल जाता है। इसी तरह—

"क म ल द ल" ये पांच अक्षर हैं—

ऊपर के अनुसार आंच अक्षरों को अपुनरुक्त रूप से फिराते आयें तो बहत्तर शब्द निकल आयेंगे। ७३ शब्द नहीं हो सकते हैं कोई ७३ निकाल कर रखे तो वह पुनरुक्त हो जाता है इसलिऐ भगवान महावीर की वाणी जितनी छोटी हो उसमें पुनरुक्त दोष नहीं आता है। ऊपर कहे जैसा अगले आने वाले उत्सर्पिणी काल में जितने तीर्थंकर होंगे उनकी सब दिव्य ध्वनि में निकलकर आने वाले अक्षर का भंग इस भूवलय में अभी भी मिल जायगा, यही अनेकान्त सत्य है।

इसी विधि से आगे बढ़ते हुए छः अक्षर "कमल" इस शब्द को अपुनरुक्त रूप से घुमाते जाएं तो १२० शब्द निकलकर आएगा ऊपर कहे जैसा ही इसको भी मान लेना। इसी विधि से आगे बढ़ते हुए सात अक्षर "कमल दल रज" इस शब्द को अपुनरुक्त रूप से घुमाते आएं तो ७२० शब्द निकलकर आएगा उसमें पहिले व अन्त के दोनों शब्द पुनरुक्त रीति से आ जाते हैं इसलिए वह निकाल देने से ७१८ भाषा रह जाती है, वह इस प्रकार है:—

वह क्रम इस प्रकार है—

१२×२×३×४×५×६= ७२०—२=७१८ और ८ अक्षर की शब्दराशि को निकालकर आपके सामने रखना हमारी बुद्धि के बाहर है ऐसा रहने में इसके ऊपर का ९-१०-११-१२ इसी रीति से बढ़ते हुए अक्षरों के स्वरूप को मिलाते हुए शब्द राशि बनाते जाना इस काल में बहुत कठिन है इसी विधि से ऊपर कहे हुए ५४ अक्षरों का एक शब्द निकालना हो तो इस अध्याय में आये हुए ८४ स्थान हैं जो ८४ स्थान में आयी हुई अंक राशि ५४ अक्षरों का समूह है उस राशि से अपुनरुक्त रूप से ५४-५४-५४-५४ ऐसा अक्षर निकालते आएं तो ८४ शून्य आजायगा ०००००००

अनुलोम क्रम जैसे ऊपर १×२×३×४×५×६ ऐसे क्रम ५४ तक लिखा जाए तो शब्द राशि की उत्पत्ति आती है जितने बार की प्रतिलोम की संख्या है उतने बार की अनुलोम क्रम संख्या के भाग देने से उतना ही शून्य आजावेगा अब प्रतिलोम क्रम ११ और अनुलोम क्रम पद तक हम आए हैं। अब प्रतिलोम क्रम ६४ से लेकर १ तक आएं अनुलोम क्रम १ से लेकर ६४ तक रहे तो ८२ अंक हो जाता है वह फिर बताया जावेगा।

अनुलोम क्रम ७२ अंक का आता है ८४ प्रतिलोम। ८४ अंक को अनुलोम ६१ अंक से भाग करने से पूरणा आने के लिए जो कोष्ठक बतलाया गया है उस रीति से कर लेना। अर्थात् अनुलोम ७१ अंक को २ से गुणा करे तो जो अंक आता है उसको २ गुणना इसी रीति से ३-४-५-६-७-८-९ तक कर लेना तब भाग देते आना जब भाग देते आवें तो ऊपर से नीचे जिस संख्या से भाग होता है उस संख्या को आड़ा पद्धति से लिख लें जो अंक आता है उसको लब्धांक कहते हैं। उसको आधा करें तो सारी शब्द राशि हो जाती हैं। अवधि ज्ञान सम्पन्न महा मुनि और देव देवियाँ और कुमति ज्ञान वाले नारकी जीव के लिए इतना ज्ञान है। आजकल सीमंधर भगवान् के समोशरण में रहने वाले ऋद्धि धारक मुनि ही इस अंक से निकलने वाला अर्थात् ६४ अक्षर का एक शब्द ६३ अक्षर का एक शब्द ६२ अक्षर का एक शब्द जान सकते हैं। हम लोगों के ज्ञान-गम्य नहीं हैं। परन्तु आचार्य कुमुदेन्दु ने इस समस्त विधि को गणित पद्धति से जान लिया था। इसलिए उनका परम पूज्य उस मूल धवल सिद्धान्त का रचयिता आचार्य वीरसेन अपना शिष्य होते हुए भी इतना महान भूवलय जैसे ग्रंथ रचना से उनकी महान मेधा शक्ति को देख करके अपने शिष्य को ही अपना गुरु मानकर शिष्य बन गया। सो ऐसा महान प्रसंग दिगम्बर जैन साहित्य में नहीं मिलता है। लेकिन आचार्य जी को सल्लेखना लेने के समय में अपने शिष्य को अपना गुरु बना करके शरीर त्याग करने की परिपाटी मिलती है और चालू भी है परन्तु जीवित काल में ही शिष्य बनकर रहना महान गौरव की बात है।

ऊपर कहे हुए के अनुसार प्रतिलोम गुणा कर ५४ अक्षर की सरमाला नामक माला रूप में इसकी रचना हुई है। अब आगे आने वाले अनुलोम क्रम से आने वाले द्रव्यगम है ऐसे जानना चाहिए।

भावार्थ—

इसकी व्याख्या विस्तार के साथ ऊपर की गई है। इसलिए पुनरुक्त यहाँ नहीं किया गया है।

४७९९८०७३१६१०४३७३५७१५३२६२१०६४१४९९१६५०६५७ ५२०४११७४८६८५५७८२४०००००००००००० इस अंक के पूर्ण वैभव का अवयव अनुलोम पद्धति अनुसार है।

इस अंक में ७१ अंक हैं इस अंक को आड़ा करके मिला दें तो २६१ होता है। इसको पुनः जोड़ दिया जाय तो ९ हो जाता है।

अर्थ—इस प्रकार नौ अंक में अन्तर्भाव हुआ इस अनुलोम क्रम के अनुसार ऊपर कहा हुआ प्रतिलोम के भाग देने से जो लब्धांक आता है वही भवभय को हरण वाले अंक हैं। ऊपर कहे हुए कोष्ठक में रहने वाले प्रत्येक लब्धांक को लेकर आड़ा करके रख दिया जाय तो ४६९१४९४७५१२९३००-०००००००००० यही ५४ अक्षर का भागाहार लब्धांक यही अंक आड़ा रखकर मिला देने से ६४ होता है। इस ६४ को मिला देने से से १० होता है। दस में भी १ एक ही है अर्थात् नम्बर १ अक्षर है और जो बचा हुआ बिंदी है। यही एक भंग से निकलकर आया हुआ भगवान के नीचे रहने वाले बिंदी रूप कमल हैं।

भावार्थ—

गणित की दृष्टि से देखा जाय तो ऊपर के कहे हुए प्रतिलोम रूप छोटी राशि "नौ"। इस नौ से भाग देने से अर्थात् नौ को नौ से भाग देने से बिंदी आना था। परन्तु अब यहां दस मिल गया यह आश्चर्य की बात है। गणित के संशोधन करने वाले गणितज्ञ विद्वानों के लिए महान निधि है इसी लब्धांक को आधा करके कुमुदेंदु आचार्य भंगांक को निकालने की विधि को बतलाने वाले तीन श्लोकों में 'पांच' मिल जाता है। वह और भी आश्चर्य-कारक है। ९ से ९ को भाग देने से शून्य आना था। लेकिन ऊपर दस आया है नीचे पांच

आया है, बस व्याख्यान से इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि ९ को पांच से भाग देने से शून्य आ गया है। पाश्चात्य गणितज्ञ लोगों के मत से ९ तो ५ से विभक्त नहीं होता है और समांक से विषमांक का कभी भाग नहीं होता है ऐसा कहने का उन लोगों का अभिप्राय है। उस अभिप्राय का निरसन करने के लिए इतना बड़ा विस्तार के साथ लिखा हुआ भगवान महावीर की अगाध महिमाओंसे अनेकांतदृष्टि से देखा जाय तो विषमांक हुआ। ९ को समांक दो चार आठ और विषमांक तीन-पांच-सात, से भी नौ विभक्त होकर शून्य आता है। गणितज्ञ विद्वानों को इस विषय पर कहीं वर्षों तक बैठकर खोज करनी चाहिए जैसे हमने अर्थात् जैनियों ने माना है उसी तरह जाना जाय तो आनन्द तथा प्रशंसनीय माना जायेगा।

रत्नत्रय में चारित्र तीसरा है, अनियत वसतिका और अनियत विहार अर्थात् कुमुदेन्दु आचार्य के और उनके महान् विद्वान मुनि शिष्य तथा उनके अन्य चतुः संघ के मुनि जनों के लिए खास नियत वास करने के लिए घर नहीं था। अर्थात् वसतिका इत्यादि कोई स्थान नहीं है। और उनको किसी गाँव या किसी अन्य स्थान में पहुंचने की भी कोई निश्चित योजना नहीं थी। उनके लिए नियमित रूप नहीं है। वे हमेशा गोचरी वृत्ति अर्थात् जिस प्रकार गाय या भैंस घास या रोटी देने वाले से राग द्वेष न करके चुपचाप आहार खाती है उसी तरह दिगम्बर साधु किसी खास व्यक्ति के या अन्य काला या गोरा व्यक्ति को ख्याल या अपेक्षा न करके केवल उनके द्वारा शुद्ध आहार राग द्वेष भाव से रहित लेते हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि—

गृहस्थ धर्म में अव्रती, अणुव्रती तथा महाव्रती इस तरह पात्र के तीन भेद बतलाते हैं पहले अव्रती में पात्रापात्र दोनों हैं। असयंमी अपात्र में शुद्धाशुद्ध के विचार से रहित होकर भक्ष्य और अभक्ष्य का कोई नियम नहीं रहता है, और पशु के समान उनके खान पान का हिसाब रहता है। वैसे आज कल के लोग आहार विहार का कोई विचार न करके एक दूसरे की झूठन को भी नहीं छोड़ते हैं और न उसको अशुद्ध मानते हैं और न इनको रात और दिन का ख्याल आता है। यही चिन्ह अपात्र अविरत मिथ्यादृष्टि का है।

कुमुदेन्दु आचार्य ऐसे गृहस्थ श्रावक के बारे में कहते हैं कि–

ये लोग गधे के समान खाना खाते हैं। उसी प्रकार आजकल के गृहस्थ रहते है जब खेत में किसान बीज बो देता है तब शुरू में धान का अंकुर उत्पन्न होकर ऊपर आना आरम्भ होता है। तब उस समय कदाचित गधा आकर उसको खाने लगे तो सबसे पहले उसका मुंह धान की जड़ तक घुसकर जड़ सहित उखाड़ लेता है और उसके साथ मिट्टी का ढेर भी आता है। उस समय में गधा अपने मुंह में लेकर घास को खाने लगता है तब मिट्टी भी उसके साथ जाती है। जब मिट्टी साथ जाती है तब केवल बीच में से खाकर दोनों तरफ छोड़ देता है। तब दोनों तरफ छोड़े हुए को कोई ग्रहण नहीं कर सकता और दोनों तरफ से भ्रष्ट होता है। उसी तरह अव्रती अपात्र मनुष्य आप जो खाते हैं वह खाना अणुव्रती या महाव्रती नहीं खा सकते हैं। इसलिए उनका खान पान हेय माना गया है। ऐसा आहार खाने से कुष्ठादिक अनेक रोग होते हैं जैसे कहा भी है कि—

मेधां पिपीलिका हन्ति यूका कुर्याज्जलोदरम्।
कुरुते मक्षिका वान्ति कुष्ठरोगं च कोकिलः।
कण्टको दारुखण्डञ्च वितनोति गलव्यथाम्।
व्यञ्जनांतर्निपतितस्तालुं विधृति वृश्चिकः॥

भोजन के समय चींटी अगर पेट में चली जाय तो बुद्धि नष्ट होती है, जूं पेट में चली जाय जलोदर रोग उत्पन्न होता है, मक्खी पेट में चली जाय तो वमन अर्थात् उलटी करा देता है, मकड़ी पेट में चली जाय तो कुष्ठ रोग होता है।

छोटे कांटे या छोटे तिनके इत्यादि पेट में चले जायं तो कंठ में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

इसी तरह मार्कंडेय ऋषि ने भी कहा है कि:—

अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेयमहर्षिणा॥

मार्कंडेय ऋषि ने सूर्यास्त होने के बाद अन्न ग्रहण करना मांस के समान तथा जलपान करना रुधिर के समान कहा है। इसलिए उत्तम बुद्धिमान

मनुष्य को रात्रि को अन्न और पानी का त्याग कर देना चाहिए।

ऊपर के कहे हुए जो चारित्र की हानि या नाश करने का साधन हैं उन सबको त्याग कर जब अणुव्रती तथा क्रम से महाव्रती बनता है तभी शुद्ध चारित्र को प्राप्त कर सकता है।

शुद्ध चारित्र केवल महाव्रती मुनि ही पालन कर सकता है। यह शुद्ध चारित्र निरतिचार अठारह हजार शीलों के तथा चौरासी लाख उत्तर गुणों के पालने से होता है। इस चारित्र के अंक भंग को निकालने की विधि को ऊपर कहे हुए गणित से लिया है।

यदि आत्मतत्व की दृष्टि से देखा जाय तो समस्त भूवलय स्वरूप अर्थात् केवली समुद् घात, लोक पूरण समुद्घात रूप आत्मतत्व व्यवहार और निश्चय दो विभाग से होता है। इसी तरह ऊपर कहा हुआ भागाहार लब्धांक को भी दो भाग करने से ६४ शेष रह जाता है, ऐसा कुमुदेंदु आचार्य कहते हैं।

प्रतिलोम से लिखा हुआ **"रुदळिरते"** प्रतिलोम से पढ़ते जांय तो **"तेरळिदरु"** इस तरह शब्द बन जाता है। यह **"रुदळिरते"** शब्द किस भाषा का है सो हमें पता नहीं लगा। जो ऊपर लब्धाङ्क आया है वह ६४ है, उसको आधा किया जाय तो ? ६८ होता है। इसकी विधि इस तरह है:—

२३४५७४७३७५६४६५०००००००००० इससे इसका निष्कर्ष यह निकला कि अनेकांत दृष्टि से देखा जाय तो ६४ से ६८ भाग होता है ऐसा आचार्य ने बतलाया है।

इसका आचार्यों ने भंगांक ऐसा कहा है। गणित विधि बहुत गहन होने के कारण पुनरुक्ति दोष नहीं आता। महान मेधावी तपस्वी हैं वे इसे पुनरुक्त न मानकर जो रस इस गणित से आता है उस रस को आस्वादन करते हुए आनन्द की लहर में मग्न हो जाते हैं।

प्रतिलोम को अनुलोम से भाग देते समय लब्धांक के इसी विधि में अन्तिम भागांक में जो गलती है उस गलती को ऊपर के कोष्ठक में देख लेना ऊपर के लब्धांक गणित के अन्त में सभी शून्य ही आना चाहिए था परन्तु नहीं आया, अंक ही आ गया है।

१२०७५१७९४२५७३४६८७५७३२४१०२२९४७२८८४९३७४९७२९७५५-६२३४३७८४२९०७१३६१२०७५१७९४२५७३४६८७५७३२४१०२२९४७-२८८४९३७४९७२९७५५६२३७८४२९०१३६१२०७०००९४२०००००००-०००००००००००००००००७४९७२९७५५६०३०००००००० यह जितने चिन्ह दिये गये हैं वे सभी अंक ९ आना चाहिए था परन्तु यहाँ ९ नहीं आया है।

अर्थ—प्रतिलोम '९' और अनुलोम ९ से भाग देते समय जो गलती आती है उस गलती को बतलाने के लिए जितनी गलती आयी है उतने अंक नीचे यह (०००) चिन्ह दिया गया है। इस गलती को जान बूझकर ही हमने डाला है और आचार्य ने इसको ऊपर छोड़ दिया है। क्योंकि यदि ऐसे गलत अंक को नहीं रखते तो संस्कृत भगवद्गीता नहीं निकल सकती थी और न प्राकृत भगवद् गीता हो। इसीलिए इस अक्षर को बतलाने के लिए जैन ऋग्वेद के समान महर्षि के द्वारा रचित अनादि कालीन ३६३ मत जैन ऋग्वेद में नहीं निकलते। अनादि ऋग्वेद के सम्बन्धी १० मंडल के अष्टक ८८८८८८-८८८८ अर्थात् श्री नेमि गीता के प्रथम अध्याय का ७ वां सूत्र—

"सत्संख्याक्षेत्र स्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च"

इस सूत्र के अनुसार आठ अनुयोग द्वारा ऋग्वेद नहीं आता था। वही ऋग्वेद अनादि कालीन गणित को नहीं मिलता था। जैन पद्धति के वाल्मीकि ऋषि ने रामायण के अंक के अन्त में स्तवनिधिब्रह्म देव की स्तुति के द्वारा पहले होने वाले आजकल के वैदिकों में प्रचलित रहने वाले, साम्य वेद के पूर्वार्चिका और उत्तरार्चिका नामक महान् भाग नहीं निकल सकता था। और पूर्वार्चिका के अर्थ के अन्दर ही उत्तर अर्चिका मिलकर हमारे गणित पद्धति के अनुसार सांगत्य कानडी पद्य के अनुसार नहीं आ सकता था। उसके ६५ पद्य के १ अध्याय में प्रत्येक श्लोक में ६५ अध्याय होकर ६५ सांगत्य पद्य में पुनः ६५ सांगत्य पद्य आड़ा और सीधा मिलाकर १०० श्लोक वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत देखने में नहीं आ सकता था।

रामायण के बालकांड, अयोध्या कांड और अरण्य कांड ये तीनों कांड

देखने में नहीं आ सकने थे। इसके अलावा और भी कितनी अद्भुत साहित्य कला को हम गणित के द्वारा नहीं छुड़ा सकते और जैसे कितने ही रस-भरित काव्य (साहित्य) के नष्ट होकर गिर जाने से यहां हमने गलत संख्या को रख दिया है। इसका उत्तर आगे दिया गया है।

१७६ श्लोक के नीचे दिये गये प्रतिलोम१७१६५४३९९४६०२११६०-२२८६७११८८४९२०८८२२३४९५७०९७६०७७०७५९५३९९३७७५४३५४-६३१६९९३३३१२०००००००००००० हैं। आगे उस जगह पर २९ अंक स्वच्छ चन्द्रमा की चांदनी के समान निकलकर आते हैं। यहां तक २४ श्लोक पूर्ण हुए।

अब आचार्य कुमुन्देदु ने स्याद्वाद का अवलम्बन करके गणित के बारे में आनन्द दायक उत्तर देते हुए कहा कि कोई गलती नहीं है। क्योंकि जिस गलती से महत्व का कार्य साधन होता है ऐसी गलती को गलती नहीं माना जा सकता जिस छोटी गलती से ही महान् गलती होती है उसी को गलती माना जाता है। परन्तु यहाँ ऐसा नहीं है यह मंगल प्राभृत है, अतः यहाँ अमंगल रूप गलती नहीं आनी चाहिए ऐसे यदि तुम प्रश्न करोगे तो ऊपर के कोष्ठक में दिए हुये (४६९१) इत्यादि रूप से ऊपर से नीचे उतरते हुए लब्धांक को देखो उसमें किसी प्रकार की गलती नहीं दीखती। गलती के बदले में अतिशय महिमा के (१) अंक की उत्पत्ति होती है यदि उसका आधा किया गया तो '६८' आकर '९' नामक ५ अंकों से भाग हो गया। यह अतिशय धवल की महिमा नहीं है क्या ? ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य भूवलय ग्रन्थ में लिखते हैं। इस प्रकार २५ श्लोक तक पूर्ण हुए।

मन्मथ का बाण सीधा नहीं है वह तो टेड़ा है मन्मथ का पुष्प बाण स्त्री और पुरुष के ऊपर छोड़ाजाय तो तीर जैसे हृदय में घुसकर बार बार वेदना उत्पन्न करता है उसी तरह मन्मथ के बाण भी स्त्री पुरुष के हृदय में घुस कर हमेशा भोग की तीव्र वेदना उत्पन्न कर देते हैं। जिस तरह पुष्प मृदु होने पर भी पुरुष या स्त्री को अपनी सुगन्धि से बार बार सुगन्धित करता है उसी तरह मन्मथ का बाण मृदु होने पर भी स्त्री या पुरुष के भोगने की वेदना को उत्पन्न कर देता है। इसी तरह छोटी छोटी गलती से अनेक प्रकार की महान् २ गलती होती हैं। भोग का विरोध करने वाले योग को योग का विरोध करने वाले भोग को समान करके ॥ २६ ॥

प्रति दिन बढ़ाई जाने वाली अतिशय आशा रूपी अग्नि ज्वाला की शक्ति को दबाकर उसके बदले में उपमा रहित योगाग्नि रूपी ज्वाला को बढ़ाते हुए कर्म को नाश करने से सिद्ध हुआ गणित का पाँच अंक योगी लोगों के लिए पञ्च अग्नि के समान है ॥ २७ ॥

ये पञ्चाग्नि रूपी रत्न ही पाँच प्रकार की इन्द्रिया हैं ॥२८॥

जिस कार्य की सिद्धि के लिए मनुष्य पर्याय को हमने प्राप्त किया उस पर्याय से अद्भुत लाभ होने वाले कार्य को सतत करते रहने से कर्म का बंध नहीं होता परन्तु छोटे छोटे सांसारिक कार्यों के करने से कर्म का बंध होता है ॥२९-३० ॥

इस गणित की जो मनुष्य हमेशा भावना करता है उनके हृदय में दिगम्बर मुद्रा या भगवान जिनेश्वर की भावना हमेशा पूर्ण रूप से भरी रहती है ॥३०॥

तर्क में न आने वाले और स्वात्म-चिंतवन में ही देखने या आने वाले इस पाँच अंक की महिमा केवल अनुभव-गम्य है ॥ ३२ ॥

तीसरा दीक्षा कल्याण होने के बाद छद्मस्थ अवस्था में माने गये जिनेश्वर को यह भक्ति है ॥ ३३ ॥

यह जो पाँच अंक हैं वह जैन दिगम्बर मुनियों को देखने में आया हुआ है ॥ ३४ ॥

ख्याति को प्राप्त हुआ यह अंक विज्ञान है ॥ ३५ ॥

यह छोटे छोटे बालकों से भी महान् सौभाग्य को प्राप्त कर देने वाला है ॥ ३६ ॥

जिनेन्द्र देव ने गणित के इस अंक के ऊपर ही गमन किया है अर्थात् यह क्षेत्र भी है ॥ ३७ ॥

बड़े २ कर्म रूपी शत्रु का नाश करने वाला आत्मस्वरूप नामक हयभूवलय है ॥ ३८ ॥

श्री भगवान महावीर स्वामी की वृद्धि समान यह अध्यात्म-साम्राज्य है ॥ ३९ ॥

मन रूपी सिंह के ऊपर आकाश गंगा के समान अधर भाग में स्थित कमल है ॥ ४० ॥ २८ से लेकर ४० तक अन्तर पद्य को नीचे दिया जाएगा यह प्रत्येक चौथे चरण का अक्षर है। इससे पहले २७ श्लोकों के पहले तीन चरणों को मिलाकर पढ़ लेना चाहिए।

अर्थ:—जैसे उत्तम संहनन वालों का शरीर है। वैसे इस काव्य की रचना उत्तम है।

इस काल के पृथ्वी के भव्य जीवों के भाव में करुणा अर्थात् दया के अप्रतिम रूप अर्थात् केवली समुद्घात को बतलाने वाला यह काव्य है और पंच परमेष्ठियों का यह दिव्यरूपी चरण भूवलय काव्य है और ऊपर का आया हुआ पांच का चिन्ह है ॥ ४३ ॥

जंगल में तप करके आत्म-योग द्वारा अपने शरीर को कृश करते समय श्री जिनेन्द्र देव का अंतिम रूप ही मनमें धारण करना सर्व साधु का अन्तिम रूप है अर्थात् अरहंत सिद्ध आचार्य और उपाध्याय ये चार और जिन धर्म जिनागम, जिन बिंब तथा जिन मंदिर, इन दोनों चार चार अंकों को मिलाने वाला बीच का पाँच अंक है। यदि चारों ओर देखा जाय तो पाँच ही अंक है। इस रीति से ही काव्य की रचना हुई है। यही साधु समाधि है।

इसके आगे ४३ से ५५ श्लोक तक के अन्तर पद्यों में देख लें।

अर्थ:—इन पाँच कों संख्यात से ४३ असंख्यात से ॥ ४४ ॥ तक और बहुत बड़े अनन्त अंक से अर्थात् इन तीनों से पाँच को जानना चाहिए ॥ ४५ ॥ यह जिनेन्द्र भगवान का ही स्वरुप दिखाया गया है ॥ ४६ ॥

वह साधु मन वचन से अतीत यानी अगोचर है ॥४७॥

वह साधु दुष्ट कर्मों को भस्म करने के लिए दावानल के समान है।४८।

ऐसा ज्ञानी ध्यानी साधु ही वास्तविक योगी है ॥४९॥

ऐसा ही योगी साधु आचार्य पद के योग्य माना गया है ॥५०॥

ऐसा साधु ही परम विशुद्ध मुक्ति के सुख को प्राप्त कर लेता है ॥५१॥

वह योगी दिन प्रतिदिन अपने आध्यात्मिक गुणों में निरन्तर वृद्धि करता जाता है ॥५२॥

उस साधु को घर तथा वन का रहस्य अच्छी तरह ज्ञात (मालूम) होता है ॥५३॥

वह योगी ध्यानो साधु जिनेन्द्र भगवान के समान अपना उपयोग शुद्ध रखने में लगा रहता है, अतः वह अन्य साधुओं के समान शुद्ध उपयोगी होता है ॥५४॥

विवेचन—शारीरिक संगठन के लिए हड्डियों का महत्वपूर्ण स्थान है, इस हड्डियों के संगठन को 'संहनन' कहते हैं। संहनन के ६ भेद हैं—१-वज्र ऋषभ नाराच (वज्र के समान न टूट सकने वाली हड्डियों का जोड़ और वज्र सरीखी हड्डी की संधियों में कीली), २ वज्र नाराच (वज्र सरीखी हड्डियां हों जोड़ वज्र समान न हो), ३ नाराच (हड्डियां अपने जोड़ों तथा संधियों में कील सहित हों) ४ अर्द्ध नाराच (हड्डियां आधी कीलित हो) ५ कीलक (हड्डियां कीलों से मिली हों), ६ असंप्राप्ता सृपाटिका (सांप की हड्डियों की तरह शरीर की हड्डियां बिना जोड़ के हों, केवल नसों से बंधी हुई हों)।

समुद्घात—मूल शरीर को न छोड़ते हुए आत्मा के कुछ प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात है, उसके ७ भेद हैं—

१ कषाय, २ वेदना, ३ विक्रिया, ४ आहारक, ५ तैजस, ६ मारणान्तिक और ७ केवल समुद्घात।

इस प्रकार विविधि विषयों का प्रतिपादन करने वाला यह भूवलय सिद्धांत ग्रन्थ है ॥५५॥

पूर्व काल में बाँधे गये कर्मों का जितना ही वमन (निर्जरा या क्षय) किया जाय उतना ही आत्मिक गुणों का विकास होता है और जब आत्मिक गुणों का विकास होता है तब संगीत कला में परम प्रवीण गायकों की गान कला के समान उपदेश देने की शक्ति बढ़ जाती है ॥५६॥

तब हृदय में नित्य नवीन ज्ञान रस की धारा प्रवाहित होती है। जैसे रात्रि में पढ़ा हुआ पाठ दिन में स्मरण हो जाता है। उसी प्रकार योगी को रात्रि समय का ज्ञान-चिन्तवन दिनमें उपस्थित हो जाता है। ऐसे ज्ञानी साधु पाठक यानी उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं ॥५७॥

उपाध्याय परमेष्ठी कहलाने वाले एक ही व्यक्ति अवस्था के भेद से क्रमशः आत्मिक योग में बैठ जाने पर साधु परमेष्ठी, अठारह हजार शील व ५ आचार के पालन करने के समय में आचार्य परमेष्ठी, चारों घातियाँ कर्मों का क्षय कर लेने के पश्चात् अरहन्त परमेष्ठी तथा चारों अघातिया कर्मों का क्षय करके मोक्ष पद प्राप्त कर लेने के पश्चात् सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं।

उस आध्यात्मिक ज्ञान को अपने वश में करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी हैं ॥५८॥

उस ज्ञानरूपी अमृत रस को अपने मधुर उपदेश द्वारा भव्य जीवों को पिलाने वाले आचार्य परमेष्ठी हैं ॥५९॥

ऐसे आचार्य परमेष्ठी समस्त जीवों को ज्ञान उपदेश देते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं ॥६०॥

वे समस्त इन्द्रियों को जीतने वाले हैं ॥६१॥

सम्पूर्ण जीवों के लिए नई नई कला को उत्पन्न करने वाला भूवलय है ॥६२॥

सम्पूर्ण असत्य के त्यागी महात्मा होते हैं ॥६३॥

वे महान मनुष्यों के अग्रगण्य होते हैं ॥६४॥

सम्पूर्ण विषयों को बटोर कर बतलाने वाला द्वादशांग है ॥६५॥

अनुपम समता को कहने वाले हैं ॥६६॥

नये नये मार्दव आर्जव गुण को उत्पन्न करने वाले हैं ॥६७॥

सम्पूर्ण ऋषियों में अग्रगण्य हैं ॥६८॥

नये नये उपदेश देने वाले आचार्य हैं ६९॥

पवित्र औषध ऋद्धि के धारक हैं ॥७०॥

अनेक बुद्धि-ऋद्धि तथा सिद्धि के धारक हैं ॥७१॥

वृषभसेन आद्य गणधर के वंशज हैं ॥७२॥

श्री ऋषभदेव के समय से चलने वाले समस्त विषयों को जानने वाले ॥७३॥

दयालु होने से सम्पूर्ण हरितकाय के भक्षण के त्यागी हैं ॥७४॥

जिस प्रकार आकाश मार्ग से जाने वाला प्राणी अव्याहतगति होने के कारण तीव्र गति से गमन करता है, उसी प्रकार तीव्र प्रगति से जो आचार-सार के अगणित आचार को स्वयं आचरण करते हैं और अन्य भव्य जीवों को आचरण कराते हैं वे आचार्य होते हैं ॥७५॥

विवेचन—आकाश मार्ग से जाने वाले चारण ऋद्धि-धारी साधु विद्याधर या विमान जितने वेग से गमन करते हैं, उस वेग की अगणित विधि को भूवलय की गणित पद्धति से जाना जा सकता है। वह इस प्रकार है।

गणित का सबसे जघन्य अंक २ दो माना गया है क्योंकि एक को एक से गुणा या भाग करने पर कुछ भी वृद्धि आदि नहीं होती।

२ को यदि वर्ग किया जावे (२×२=४) तो ४ अंक आता है, चार को चार से एक बार वर्ग करने से (४×४=१६) १६ होते हैं, यदि ४ को तीन बार रखकर गुणा किया जावे तो [४×४×४=६४] ६४ आता है, यदि चार को चार बार गुणा किया जावे तो [४×४×४×४=२५६] २५६ होता है। यदि ४ के वर्गित संवर्गित अंकों के २५६ को इसी पद्धति से वर्गित संवर्गित किया जावे तो संवर्गित फल ६१७ अंक प्रमाण आता है जोकि प्रचलित गणित पद्धति के दस शंख के १९ अंक प्रमाण संख्या से बहुत बड़ी अंक राशि होती है। दो के वर्ग ४ की संवर्गित संख्या जब इतनी बड़ी होती है तो विचार कीजिये कि भूवलय में प्रतिपादित ९ अंक की वर्गित संवर्गित संख्या कितनी बड़ी होगी? ऐसी गणित—पद्धति से आकाश में गमन करने की तीव्रतम प्रगति को भी जाना जा सकता है।

नौ अंक के समान आचार्य जगत के सम्पूर्ण पदार्थों के मर्म को दिखलाकर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार गृहस्थों तथा मुनियों को आचार के पालन करने की प्रेरणा करता है ॥ ७६ ॥

धर्म साम्राज्य के सार्व-भौमत्व को प्रगट करके आचार्य ९ अंक के समान समस्त आचार धर्म को पालन करते हैं ॥७७॥

इस संसार में उत्तम क्षमा आदि दशधर्मों का प्रचार करने वाले गुरु आचार्य महाराज हैं। तथा सिद्ध भगवान के सारतर आत्म-स्वरूप को बतलाने वाले आचार्य हैं ॥७८॥

अन्तर श्लोक

इसी प्रकार सारतर आत्म-स्वरूप को बतलाने वाला भूवलय है ॥७९॥

धीर वीर मुनियों के आचरण का प्रतिपादक यह भूवलय है ।८०॥

सरल मार्ग को बतलाने वाला भूवलय है ॥८१॥

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने मार्ग में चलते हुए अपने शिष्यों को जो पढ़ाया वह यह भूवलय सिद्धान्त है ॥८२॥

यह भूवलय शूर वीर मुनियों का काव्य है ॥८३॥

रत्नहार में जड़े हुए मुख्य रत्न के समान भूवलय ग्रन्थ-रत्नों में प्रमुख है ॥८४॥

आत्मा को निर्मल ज्योति-रूप भूवलय है ८५॥

अत्यन्त सरलता से सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला भूवलय ग्रन्थ है ॥८६॥

क्रूर कर्मों का अजेय शत्रु भूवलय ग्रन्थ है ॥८७॥

शूर वीर ज्ञानी ऋषियों के मुख से प्रगट हुआ यह भूवलय है ॥८८॥

आत्मा की सार ज्योति-स्वरूप यह भूवलय है ॥८९॥

सरलता से आत्मतत्व को बतलाने वाला भूवलय है ॥९०॥

जिस प्रकार रत्नों में माणिक श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार शास्त्रों में श्रेष्ठ शास्त्र यह भूवलय है ॥९१॥

श्री वीर जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित यह भूवलय है ॥९२॥

श्री वीर भगवान की दिव्यवाणी स्वरूप यह भूवलय है ॥९३॥

श्री महावीर महादेव के प्रभा-वलय के समान यह भूवलय है ॥९४॥

विशाल आत्मवैभवशाली यह भूवलय है ॥९५॥

अनन्त आचार की वृद्धि करने वाला यह भूवलय है ॥९६॥

इस प्रकार अति उत्कृष्ट आचार को प्रतिपादन करने वाले आचार्य के समान यह भूवलय है ॥९७॥

अत्यन्त वैभवशाली वैराग्य को उत्पन्न करने वाला यह भूवलय है ।९८।

भव्य जीवों के हृदय में भक्ति उत्पन्न करने वाला भूवलय है ॥९९॥

श्लोक

जिस प्रकार सिद्धरसायन द्वारा कालायस (काला लोहा) भी सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार पतित संसारी जीव को देह से भेद-विज्ञान उत्पन्न करके मुक्ति प्रदान करने वाला भूवलय है ॥१००॥

घातिकर्म नष्ट करके जीवराशि में जीवनमुक्त ईश्वर (अर्हन्त) होकर भव्य जीवों की रक्षा करता हुआ धर्म तीर्थ द्वारा उनका कल्याण करके वह लोक के अग्र-भाग में विराजमान सिद्धराशि में सम्मिलित हो जाता है ॥१०१॥

जब यह आत्मा सांसारिक व्यथा से पृथक् हो जाता है तब मुक्ति स्थान में आत्मा के आदि अनुभव को अनन्तकाल तक अनुभव करता है ॥१०२॥

अनादिकाल से संलग्न क्रोध काम लोभ मायादिक को जब यह आत्मा नष्ट कर देता है, तब वह आत्मा सिद्धालय में अपने आपको जानता देखता हुआ समस्त पदार्थों को जानता देखता है । समस्त सिद्ध निराकुल होकर आनन्द से रहते हैं ॥१०३॥

णमोकार मंत्र में प्रतिपादित पांच परमेष्ठी आत्मा के पांच अंग स्वरूप हैं । जब यह आत्मा सिद्ध हो जाता है तब वह भेद-भावना मिट जाती है और सभी सिद्ध एक समान होते हैं ॥१०४॥

अन्तर श्लोक

९ अंक के समान सिद्ध भगवान परिपूर्ण हैं ॥१०५॥

सिद्धों के रहने का स्थान ही भूवलय है ॥१०६॥

णमोकार मंत्र की सिद्धि को पाये हुए सिद्ध भगवान हैं ॥१०७॥

सिद्ध भगवान अनन्त अंकों से बद्ध हैं यानी संख्या में अनन्त हैं ॥१०८॥

वे अनन्तज्ञानी हैं ॥१०९॥

वे तीन कम ९ करोड़ मुनियों के गुरु हैं ॥११०॥

वे निर्मल ज्ञान शरीर-धारी हैं ॥१११॥

वे भौतिक शरीर के अवयवों से रहित हैं किन्तु आत्म-अवयव (प्रदेशों) वाले हैं ॥११२॥

परिपूर्ण ९ अंक समान परिपूर्ण दर्शन वाले वे सिद्ध भगवान हैं ॥११३॥

'आदौ सकारप्रयोगः सुखदः' के अनुसार सिद्ध भगवान आदि अक्षर वाले हैं ॥ ११४॥

वे अन्न आदि अन्य पदार्थों की सहायता से जीवन व्यतीत नहीं करते अतः स्वतन्त्र-जीवी हैं ॥११५॥

वे अत्यन्त रुचिकर सर्वस्वरूप सुख के सार का अनुभव करते हैं॥११६॥

वे सिद्ध भगवान अवतार (पुनर्जन्म) रहित होकर अपना सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं ॥११७॥

वे अनन्त वीर्य वाले हैं ॥११८॥

वे अनन्त सुखमय हैं ॥११९॥

वे गुरुता लघुता-रहित अत्यन्त रुचिकर अगुरुलघु गुणवाले हैं ॥१२०॥

उन्होंने नवीन सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त किया है ॥१२१॥

वे महान कवियों की कविता द्वारा प्रशंसा के भी अगोचर हैं ॥१२२॥

वे अव्याबाध गुण वाले हैं ॥१२३॥

वे समस्त संसारी जीवों द्वारा इच्छित महान् आत्मनिधि के स्वामी हैं ॥१२४॥

वे ही अर्हन्त भगवान के तत्व (रहस्य) को अच्छी तरह जानने वाले हैं ॥१२५॥

उन्होंने समस्त विशाल जगत को अपने ज्ञान दर्शन द्वारा देखा है ॥१२६॥

इस कारण मैं उनके चरणों को नमस्कार करता हूँ ॥१२७॥

क्योंकि उन्होंने (सिद्धों ने) समस्त संसार-भ्रमण का नाश कर दिया है ॥१२८॥

विवेचन—सिद्ध परमेष्ठी में वैसे तो अनन्त, पूर्ण विकसित, शुद्ध गुण होते हैं किन्तु ८ कर्मों के नष्ट होने से उनके ८ विशेष गुण माने गये हैं।

ज्ञानावरण कर्म के नष्ट होने से लोक अलोक के त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को उनकी समस्त पर्यायों सहित एक साथ जानने वाला अनन्त ज्ञान होता है ॥१॥

दर्शनावरण कर्म के समूल नाश हो जाने से समस्त पदार्थों की सत्ता का प्रतिभासक दर्शन गुण है ॥ २॥

मोहनीय कर्म के समूल क्षय से आत्मा की अनुपम अनुभूति कराने वाला सम्यक्त्व गुण है ॥३॥

अनन्त पदार्थों को निरन्तर अनन्त काल तक युगपत् जानते हुए भी आत्मा में निर्बलता न आने देकर अनन्त शक्तिशाली रखने वाला वीर्य गुण है। जो कि अन्तराय कर्म के क्षय से प्रगट होता है ॥४॥

उक्त चारों गुण अनुजीवी गुण हैं।

वेदनीय कर्म नष्ट हो जाने से आत्मा में आकुलता-बाधा आदि का न रहना अव्याबाध गुण है ॥५॥

आयु कर्म सर्वथा न रहने से शरीर की अवगाहना (निवास) में न रह कर स्वयं अपने आत्म-प्रदेशों में निवास रूप अवगाहनत्व गुण है ॥६॥

नाम कर्म द्वारा पौद्गलिक शरीर के साथ संसारी दशा में आत्मा सतत स्थूल रूप बना रहता है। नाम कर्म नष्ट होने से आत्मा में उसका सूक्ष्मत्व गुण प्रगट होता है ॥७॥

गोत्र कर्म आत्मा को संसार में कभी उच्च-कुली, कभी नीच-कुली बनाया करता है। गोत्र कर्म नष्ट हो जाने पर सिद्धों में गुरुता (उच्चता), लघुता (नीचता) रहित अगुरुलघु गुण प्रगट होता है ॥८॥

अन्तिम चारों गुण प्रतिजीवी गुण हैं। ये ४ अनुजीवी तथा ४ प्रतिजीवी गुण सिद्धों में पाए जाते हैं।

अर्हन्त भगवान्—

व्यास पीठ में उल्लिखित अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिन वाणी, जिन धर्म, जिन चैत्य, जिन चैत्यालय; ९ स्थानों का सूचक ९ अंक क्या ९ केवल लब्धियों के अधिपति अर्हन्त भगवान को सूचित करता है? हां वे ही अर्हन्त भगवान इष्ट देव हैं ॥१२९॥

विवेचन—विशेष आध्यात्मिक निधि के प्राप्त होने को 'लब्धि' कहते हैं। अर्हन्त भगवान को चार घाति कर्म नाश करने के अनन्तर ९ लब्धियां प्राप्त होती हैं। (१) केवल ज्ञान, (२) केवल दर्शन, (३) क्षायिक सम्यक्त्व, (४) क्षायिक चारित्र, (५) क्षायिक दान, (६) क्षायिक लाभ, (७) क्षायिक भोग (८) क्षायिक उपभोग, (९) क्षायिक वीर्य (अनन्त वीर्य) ये नौ लब्धियां हैं।

ज्ञानावरण के नाश से केवल ज्ञान लब्धि प्रगट होती है जिससे अर्हन्त भगवान त्रिलोक, त्रिकाल के ज्ञाता होते हैं।

दर्शनावरण कर्म के नाश हो जाने से लोकालोक की सत्ता की प्रतिभासक केवलदर्शन लब्धि प्राप्त होती है।

दर्शन मोहनीय कर्म सर्वथा हट जाने से, अक्षय आत्मानुभूति कराने वाली क्षायिक सम्यक्त्व लब्धि प्रगट होती है।

चारित्र मोहनीय नष्ट हो जाने पर आत्मा में अनन्त काल तक अटल अचल स्थिरता रूप क्षायिक चारित्र लब्धि का उदय होता है।

दानान्तराय के क्षय होने से असंख्य प्राणियों को अपनी दिव्य वाणी द्वारा ज्ञान दान तथा अभय दान करने रूप अर्हन्त भगवान के अनन्त दान लब्धि होती है।

लाभान्तराय के नष्ट हो जाने से बिना कवलाहार किए भी अर्हन्त भगवान के परमौदारिक शरीर की पोषक अनुपम पुद्गल वर्गणाओं का प्रति समय समागम होने रूप क्षायिक या अनन्त लाभ नामक लब्धि प्राप्त होती है।

भोगान्तराय के क्षय हो जाने पर जो अर्हन्त भगवान पर देवों द्वारा पुष्प वर्षा होती है, वह क्षायिक भोगलब्धि है।

उपभोगान्तराय के क्षय हो जाने पर अर्हन्त भगवान को जो दिव्य सिंहासन, चमर, छत्र, गन्धकुटी आदि प्राप्त होते हैं वह क्षायिक उपभोग लब्धि है।

वीर्यान्तराय के क्षय हो जाने पर जो अर्हन्त भगवान के आत्मा में अनन्तशक्ति प्रगट होती है वह क्षायिक या अनन्त वीर्य लब्धि है।

उन नौ लब्धियों के स्वामी अर्हन्त भगवान हैं, उनसे ही आध्यात्मिक इष्ट मनोरथ सिद्ध होता है, अतः वे ही इष्ट देव हैं।

इष्ट देव श्री अर्हन्त भगवान ने चार घाति कर्मों का क्षय करके संसार के परिभ्रमण का अन्त किया और ओंकार के अन्तर्गत अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भूवलय सिद्धि के लिए उपदेशामृत की वर्षा की ॥१३०॥

गन्धकुटी पर रक्खे हुए सिंहासन के सहस्रदल कमल के ऊपर चार अंगुल अधर विराजमान अर्हन्त भगवान ने अनन्त अंकों को गणित में गर्भित करके तीन संध्या काल में अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को कहा। वे ही जिनेन्द्र भगवान हैं ॥१३१॥

शान्त वैराग्य ज्ञान आदि रसों से युक्त भूवलय सिद्धान्त को अभव को श्री जिनेन्द्र भगवान ने तीनकाल-वर्ती विषयों को अन्तर मुहूर्त में प्रतिपादन करके धर्म तीर्थ बना दिया ॥१३२॥

ओ एक अक्षर है और उसपर लगी हुई बिन्दी एक अंक है, इस प्रकार ॐ (ओं) की निष्पत्ति है। समस्त भूवलय ६४ अक्षरात्मक है। ६४ अक्षर ९ में गर्भित हैं। वह कैसे ? सो कहते हैं—६४ अक्षर (६+४=१०) १० रूप हैं। १० में एक का अंक 'ओ' अक्षर रूप है और बिन्दी अंक रूप है। इस तरह ॐ में ६४ अक्षर गर्भित हैं। अंक ही अक्षर हैं और अक्षर ही अंक हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ॥१३३॥

स्पष्टीकरण— ० (बिन्दी) को अर्द्ध रूप में विभक्त करके उसके दोनों टुकड़ों को विभिन्न प्रकार से जोड़ने पर कनड़ी भाषा में समस्त अंक बन जाते हैं जैसे ० (बिन्दी) को आधे रूप में विभक्त करने से ⊂ दो टुकड़े हुए उस टुकडा का आकार क्रमशः एक आदि अंक रूप बन जाता है।

मन्मथ (कामदेव) की गुदगुदी में जीने वाले समस्त नर पशु आदि प्राणियों को श्री जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण करने से पांच अंक (५)की सिद्धि होती है अर्थात् पंच परमेष्ठी पद प्राप्त होता है ॥१३४॥

श्री अर्हन्त भगवान के परमौदारिक शरीर में नख (नाखून) और केश (बाल)एक से रहते हैं, बढ़ते नहीं हैं। उन अर्हन्त भगवान के एक सर्वाङ्ग शरीर से द्वादश अंग रूप द्रव्य श्रुत प्रगट हुआ। वह द्वादश अंग एक ॐ रूप है ॥१३५॥

अर्हन्त भगवान की उपर्युक्त अनुपम चराचर पदार्थ गर्भित दिव्यवाणी को सुनकर विद्याधर, व्यन्तर, भवनामर, कल्पवासी देवों ने श्री जिनेन्द्र देव में अचल भक्ति प्रगट की ॥१३६॥

रसना इन्द्रिय की लोलुपता से विरक्त भव्य मनुष्य ९ अंक परिपूर्ण भगवान का उपदेश सुनकर पूर्ण तृप्त हुए और अनुपम भूवलय को नमस्कार करके अपने अपने स्थान पर चले गये ॥१३७॥

कभी भी रंचमात्र कम न होने वाला एक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर समवशरण में विराजमान श्री जिनेन्द्र देव के सिर के ऊपर तीन छत्र झुक रहे हैं, देवों द्वारा पुष्प वृष्टि होती है तथा पीठ के पीछे प्रभामंडल होता है। ऐसी ज्ञान प्रभा प्रगट करने वाला भूवलय है ॥१३८॥

भूवलय के प्रभावशाली इस 'आ' (दूसरे) मंगल प्राभृत में विविधता परिपूर्ण ६५६१ अक्षर प्रमाण श्रेणी बद्ध श्लोक हैं। अन्तर श्लोकों के अक्षर आगे बताते हैं ॥१३९॥

अन्तर श्लोक

अन्तर में ५८७७: ॥१४०॥

अनेक भाषामय काव्य प्रगट होते हैं ॥१४१॥

अंकों द्वारा अक्षर बनालेने पर उन विविध काव्यों का निर्माण होता है ॥१४२॥

बड़ी युक्ति से उन अंकों को परस्पर मिलाने से उन काव्यों का उदय होता है ॥१४३॥

[८३४२] आठ तीन चार दो एक ॥१४४॥

११२५०० ॥१४५॥

यह अंक चारित्र का वर्णन करने वाला है ॥१४६॥

अन्तरान्तर में जो काव्य प्रगट होता है, वह चारित्र का वर्णन करता है ॥१४७॥

इस अन्तराधिकार में जितने अक्षर हैं उन्हें बतलाते हैं ॥१४८॥

वे अक्षर जितने हैं उतने ॥१४९॥

वर्ण मिलाने से ॥१५०॥

जो कठिनाई से प्राप्त हुआ ॥१५१॥

उससे अंक रूपी यश काव्य की सिद्धि होती है ॥१५२॥

यह ऋषीश्वर भगवान जिनेन्द्र देव का वाक्य है ॥१५३॥

अन्तर श्लोकों की अक्षर संख्या ७८४८ हैं ॥१५४॥

१ से प्रगट हुआ ७७८५। अन्तर में ७८४८ अंकाक्षर रहने वाला सर्व सम्मत 'अ' अध्याय भूवलय है ॥१५५॥

६५६१+अन्तर ७८४८=१४४०९

अथवा

अ (प्रथम) अध्याय ६५६१+अन्तर ७७८५=१४३४६+ 'अ, (दूसरा) अध्याय १४४०९=२८७५५ अक्षर हैं दोनों अध्यायों में १८ अंक चक्र हैं।

इस द्वितीय अध्याय के मूल श्लोकों श्रेणी-बद्ध आद्य अक्षरों से (ऊपर से नीचे तक पढ़ने पर) जो प्राकृत गाथा प्रगट होती है उसका अर्थ निम्न-लिखित हैं।

प्रथम संहनन (वज्रऋषभ नाराच) तथा समचतुरस्र संस्थान-धारी, दिव्य गन्ध सहित एवं नख केश न बढ़ने वाला अर्हन्त भगवान का परमौदारिक शरीर होता है।

तथा मध्यवर्ती (२७वें) अक्षर की श्रेणी से जो संस्कृत श्लोक बनता है उसका अर्थ निम्नलिखित है—

अविरल (अन्तर रहित) शब्दों के समुदाय रूप, समस्त जगत के कलङ्क को धो देने वाली, मुनियों द्वारा उपास्य तीर्थ-रूप सरस्वती (जिन वाणी) हमारे पापों का क्षय करे।

तोसरा अध्याय

आ दिवेवनु आदियकालदि पेळ्द । साधनेयध्यात्म योग ॥ दादिय अ ज्ञानवळिद धर्मध्यान । साधित काव्य भूवलय ॥१॥
णे रदोळात्मनभ्युदय सौख्यवपोंदे । दारियुदोरेताग अ ज् ज ॥ सारा त्मशिखियेरि बरुवागयोगद । सारवैभवबु मंगलबु ॥२॥
हि तवादतिशय मंगलप्राभृत । सततबु भद्रपर्याय ॥ ज्ञा वज्ञात तत्वगळनेल्लव पेळ्व । ख्यातांक शिवसौख्य काव्य ॥३॥
म् नवनु सिंहपीठवनागिपकाव्य । दनुभव जिनमार्गवागे ॥ न नेकोनेवोगिसुत् अध्यात्मयोगद । घनसिद्धांत लेक्कदलि ॥४॥
अ रिवुदे ज्ञान तन्नरिविनोळ्नोळ्पुदे । सरुवज्ञ दर्शन् लि यॅंब ॥ परमनकाण्केइवेरडरोळ्बेरेबुदे । सरुवचारित्र अनंत ॥५॥

परमात्मनरिव अनन्त ॥६॥ करुणेयुबेरेद अनंत ॥७॥ वरसिद्धगोष्ठियनंत ॥८॥ अरिबु तन्नात्मअनंत ॥९॥
अरिदुनोडिदरिगनंत ॥१०॥ दोरेबुदेमूरुरत्नांक ॥११॥ सरससम्ख्यातदनंत ॥१२॥ सरमग्गियोळगसंख्यात ॥१३॥
बरुवुद गुणिसलनंत ॥१४॥ करगदनंत संख्यात ॥१५॥ परिशुद्ध चारत्रिदंक ॥१६॥ विरचित गणनेयनंत ॥१७॥

ण वशुद्ध चारित्रदतिशयदिंदलि । अवनियधरिसुव नव मि ॥ सवरदे मेरुवग्रदेनिल्वकुळितिर्प ॥ नवयोगशक्तियंकवदु ॥१८॥

नवशुद्द दर्शनयोग ॥१९॥ अवरु ध्यानिपशुद्धयोग ॥२०॥ अवनियमरेवसुज्ञान ॥२१॥ नवमांकदद्वय्तयोग ॥२२॥
सुविशाल पृथ्विधारणेय ॥२३॥ अवसरदोळ्बंद योग ॥२४॥ सविद्धंतअध्यात्मयोग ॥२५॥ नवदेवतेय काण्बयोग ॥२६॥
नवमांकदादिययोग ॥२७॥ अवरु साधिपशक्तियोग ॥२८॥

न् मसिद्धपरमात्मएन्नुतननदलि । ममकारवेन्नात्म राग ॥ समनिसेद्रव्यागम बंधदोळ् कट्टि । दमलात्मयोग चारित्र ॥२९॥
ते नम शुद्धात्मयोगायेन्नुत । आनत भावस्वभाव ॥ ध्यानान न्ददेंबाह्याभ्यंतर । वेनिल्ल परभाववेनुत ॥३०॥
हि तयोगवताळ्दवसरदोळ्योगि । अतिशय बहिरंतरंग ॥ धात्रियनेनहनेल्लव मरेदातनु । प्रीतियोळ्मेरुविनग्र ॥३१॥
म् थनिसिदध्यात्मयोग वैभवकॆंदु । सततदुद्योग पर नगि ॥ हितवेनगागेलोकाग्रवेरुवेरुवेनॅंब । मतियुतनागुत योगि ॥३२॥

हितदनुभवहोंदिबाग ॥३३॥ अतिशय शिवभद्रसौख्य ॥३४॥ सततदभ्यासद बुद्धि ॥३५॥ हितवीवचारित्रशुद्ध ॥३६॥
हतिसलुवीर्यांतराय ॥३७॥ हतबुदर्शनमोहनीय ॥३८॥ अथवाउपशमवागे ॥३९॥ अथवाक्षयवागलात्म ॥४०॥
हिनदेशुद्धात्मस्वरूप ॥४१॥ नुत शुद्धसम्यक्त्वसार ॥४२॥ नुतस्वसंवेद विराग ॥४३॥ अतिशय सबलविराग ॥४४॥
हितवदेतन्नस्वरूप ॥४५॥ हतकर्मलीनवात्मनोळु ॥४६॥ अथवास्वरूपाचरण ॥४७॥

गु रुगळाचरिसुव चारित्रसारद । परिये देशचारित्र ॥ दिरवि म अप्रत्याख्यान दुपशम । बरलथवा क्षयोपशमं ॥४८॥
णे रदे क्षयवागे देशचारित्रद । दारियु सकलचारित्र ॥ शूर ज्ञा निगळसोम्मागुवकालदे । मूरने क्रोधादिनाल्कु ॥४९॥
हि तवल्लदिरुवकषायगळुपशमं । अथवाक्षयदुपशम ना ॥ सततोद्योगद फलदिंदक्षयवागे । क्षिति पूज्यमहाव्रतबहुदु ॥५०॥
जु ण्णुजुण्णु रेनुवदिव्यध्वनि सारद । गणनेयसकलचारित्रा क्ष। क्षणक्षणकाव्रतउज्वलवागुत । कुरिणयुतबहुदात्मयोग ॥५१॥

त् नगेबंद ध्यानदनुभवदिंदलि । घनवाद यथाख्यात ज निसे ॥ गुणस्थानवेरुव परमावधियागे । जिनरयथाख्यातवदु ॥५२॥
तो रदेतोरुत जारुतबरुतिर्प । चारित्रदंतल्लवदु ॥ शूर न योगददारिइंदैतंद । चारित्रसार भूवलय ॥५३॥
सेरुत गुणस्थानदग्र ॥५४॥ सारात्म चारित्रयोग ॥५५॥ भूरिवेभवदात्मयोग ॥५६॥ दारियसिद्ध लोकाग्र ॥५७॥
नेर कषायवियोग ॥५८॥ शूर कषायद भाव ॥५९॥ दारिये शुद्धविशेष ॥६०॥ चारित्रवे यथाख्यात ॥६१॥
दूरपूर्णतेयाश्रयोग ॥६२॥ शूरश्रयोगीकेवलियु ॥६३॥ आरेंदु गुणास्थानदग्र ॥६४॥ शूररध्यात्मस्वातन्त्र्य ॥६५॥
गारादसंसारनाश ॥६६॥ नेरदेदेहवर्जितवु ॥६७॥ पूर्णदंडदे कपाटकवु ॥६८॥ सारत्रतर लोकपूर्ण ॥६९॥
वेरिद बळिक सिद्धत्व ॥७०॥

वि ष पूर्ण कुंभदेम्भत्नालकु लक्ष । वशद औंदमृत शरावे ॥ य श वदरोळगे अंधकनु आकाशदि । नेशेदचिंतामणि रत्न ॥७१॥
शु भ भद्रवागि बिद्दन्ते मानवदेह । अभवनागलु बट्टिदुद ला ॥ उभयभवार्थ साधनेय तद्द्वय । शुभमंगललोक पूर्ण ॥७२॥
द् र्शनज्ञान चारित्रमूरंग । स्वर्शमणि सोकलाग ॥ मर् क ट मानवनादन्ते मानव । स्वर्मनवळिवुदेनरिदे ॥७३॥
ध रणियमेलिर्दु धरेयन्तरंगद । परिपरियणुविनविष या ॥ वरिदुतन्नात्मन दर्शनवेरसिर्द । धरेयग्र लोकव होन्दे ॥७४॥
चा मरवादतिशयवावैभव । आमहात्मरिगिल्लवागे ॥ प्रेम च राचरवन्नेल्ल कारिणप । कामिनि मोक्षव पोन्दि ॥७५॥
भामेयोळ् कूडुवनात्म ॥७६॥ प्रेमादिगळगेल्द कामी ॥७७॥ श्रीमयसुख सिद्ध भद्र ॥७८॥ आ महात्मनु भूमियळिद ॥७९॥
सीमेयगडिदान्टिदभव ॥८०॥ नेमदे चिरकालविरुव ॥८१॥ स्वामियेजगदाद्यगुरुवु ॥८२॥ राम लक्ष्मण हृदयाब्ज ॥८३॥
नामरूपगळेल्लवळिद ॥८४॥ कामसंनिभनल्लि बेरेद ॥८५॥ गोमटेश्वरनय्य वृषभ ॥८६॥ श्री महासूक्ष्मस्वरूप ॥८७॥
आमहिमनु श्री अनंत ॥८८॥ भूमिकालातीत संज्ञा ॥८९॥ स्वामि अनन्तांकवलय ॥९०॥

रि द्धिवैभवदलि ज्ञान साम्राज्य । शुद्धदर्शनद अन् क् अ ॥ होद्दे चारित्रव देहद सेरेमने ॥ इद्दरुबंधवळिवुदु ॥९१॥
तु नुविद्दरेनवनमलात्म संपद । जिननन्ददे तानक् तु ब्ध ॥ दनुभव होन्दुवध्यात्मदोळिरुवाग । घनतेय देहवळियुव ॥९२॥
तो रुव मुनिमार्गदारैकेयिहदेह । सेरुतलात्मन बळिय ॥ सा रु बनावाग कारागृहवल्लि ॥ सेरिरुवात्मन बिडिसे ॥९३॥
भ यविनिसिल्लदे ध्यानदोळा योगि । नयमार्गवनु बिडदिरुव न॥नियतदोळात्मनोळ् बाळ्वाग ध्यानाग्नि । लयमाळ्पुदघवनेल्लवनु ॥९४॥
व शवागलाध्यान तनुवु कायोत्सर्ग । दसमान पल्यंकय मो॥ वशदेरडरोळोंन्दासनदोळगिर्दु । रस परिपूर्णनागुवनु ॥९५॥

वशद रागवनु चिंतिपनु ॥९६॥ स्वसमाधियोळगे निल्लुवनु ॥९७॥ स्वसंपूर्णनागुतलिवनु ॥९८॥
हुसिमार्गवनु तोरेदिहनु ॥९९॥ वशिवनु अपराधगळनुम् ॥१००॥ यसेवनु कर्म दंडवनु ॥१०१॥
होस दीक्षेवडेदनन्तिमनु ॥१०२॥ यशदे लक्ष्यवनु साधिपनु ॥१०३॥ होसदाद गुणदोळगवनु ॥१०४॥
रससिद्धियनु बेंडदिहनु ॥१०५॥ कुसुमकोदंडदल्लणनु ॥१०६॥ होसहोसपरियंचितिपनु ॥१०७॥

बसिरनु दंडिसुतिहनु ॥१०८॥ यशद चारित्रदोळिहनु ॥१०९॥ एसेवनु परद्रव्यगळनुम् ॥११०॥
हुसिय प्रेमव तोरेदिहनु ॥१११॥ रिसिय रूपिन भद्रदेहि ॥११२॥ असम भूवलयदोळिहनु ॥११३॥
यशद मंगलद प्राभृतनु ॥११४॥

भ यवेन्तेन्दु केळु तलायोगियु । जयिपपरानुरागवनु ॥ नयद लि चिंतिप आकुलितेय बिट्टु स्वयंशुद्ध रूपानुचरण ॥११५॥
य शवदु शाश्वतसुखवेन्दरियुत । असमान शान्तभावदलि ॥ त स स्थावर जीवहितवनु साधिप । हसवळिदेल्ल पौद्गलिक ॥११६॥
द लिबन्द सुखदुःखगळलि आकुलितेय । बलवेष्टिहुदेन्द म् अवनु ॥ बळिसार्द व्याकुलवेल्लव केडिपनु । कलिलहन्तकनात्मशुद्ध ॥११७॥
न् वपद धर्मद गणितव गुणिसुत । अवरोळगात्म गौरव ए ॥ ल्लवनुसाधिसुतिर्प कालदोळनुराग । दवयवविनिसिल्लदिहनु ॥११८॥
ज यजयवेन्नुत तन्न देहदोळिह । स्वयंशुद्धआत्मन न वनु ॥ भर्यादद बिंडसुत परद्रव्यदनुरागद् । जयवन्ने चिंतिसुतिहनु ॥११९॥
ग वपद योगवनदरोळ् रतियिर्द । सवियादंकाक्षर सार त ॥ नवमांक गणितदोळ् स्वद्रव्यवरिवनु । भवभय नाशनकरनु ॥१२०॥

अवतारविनिसिल्लदवनु ॥१२१॥ कविदकळ्तलेयनोडिपनु ॥१२२॥ अवनु निरंजनपदनु ॥१२३॥
सुविशाल धर्मसाम्राज्य ॥१२४॥ अवनु धर्मदबेट्टवेरि ॥१२५॥ कविकल्पनेगे सिक्कदिहनु ॥१२६॥
अववरिसुव तत्वगळनु ॥१२७॥ नववनु भागिपनेरडिम् ॥१२८॥ भवसागरवनु गुणिसुव ॥१२९॥
नवकार जपदोळगिरुवम् ॥१३०॥ नवस्वर्गगळ कूडिसुव ॥१३१॥ नवसिद्धकाव्य भूवलय ॥१३२॥

द रुसनमाड़े परद्रव्यंगळ । बरुवा कर्मद बंध ॥ वर स् म्यक्त्व शुद्धवागिसदेन्दु । अरिवरु मूवरु गुरुगळ् ॥१३३॥
च् रितेयोळात्मन संसारदिं कित्तु । अरहन्त सिद्धरम् म नके ॥ बरुवन्ते माडलु सिद्धतानक्केम्ब । परम स्वरूपाचरणर् ॥१३४॥
छो द्यवागिरुव चारित्रवम् सारिद । राद्तराचार्य श्रवर य् अ ॥ साध्य असाध्यवेम्बेरडनु तिळिदिह । आद्याचार्यरु हितवर् ॥१३५॥
म हर्वोरिदेवन वाणियिंबंदिह । महिमेयभद्रसौख्यवु श् री ॥ सहनेय धर्म निराकुलवेन्नुव । महिमेयंकाक्षर वाणी ॥१३६॥
ह रुषवर्द्धनवाद आ निराकुलितेय । सरमागे मंगलवर श् री ॥ करुणेय बेरेसिह गणितदे गुणिसिह । बरुव दयापर धर्म ॥१३७॥

अरहंतदेवर कृपेयु ॥१३८॥ बरुवुदु संख्यात गुणित ॥१३८॥ परमौषध रिद्धिय गणित ॥१४०॥
सरलांकं बुद्धियरिद्धि ॥१४१॥ परिपरियतिशय सिद्धि ॥१४२॥ गुरुगळाशिसुतिह सिद्धि ॥१४३॥
शरणु बंदवर पालिसुव ॥१४४॥ हरुषदायकवाद वाक्य ॥१४५॥ परिपूर्ण भरतद सिरियु ॥१४६॥
परम सम्यज्ञान निधियु ॥१४७॥ सरस साहित्यद गणित ॥१४८॥ अरिवु येळनूर्ह्द्नेंटु ॥१४९॥
परमभाषेगळेल्ल बरिव ॥१५०॥ अरहंत रोरेद भूवलय ॥१५१॥

वो रमहादववाणिय सर्वस्व । शूरदिगंबरमुनियु ॥ सारिद गु रुगळु दारिगोळ बरुवाग । नेरदध्यात्म भूवलय ॥१५२॥
षवळिद काव्यसिद्धसंपदकाव्य । आशेय भव्यभावुक रु ॥ लेसिनिभजिसुत बरुव निर्मलकाव्य । श्री शत गणितद काव्य ॥१५३॥

अ ष्ट कर्मगळं निर्मूलवंमाळ्प । शिष्टरोरेद पूर् वे काव्य ॥ दृष्टांतदोळगेल्ल वस्तुवसाधिप । अष्टमंगलविह काव्य ॥१५४॥
त् नुमन वचनद कृतकारितनुमोद । जित भक्ति न् वाद ॥ गुणकारवेन्नुव गणकरिंबंदिह । अनुभव वैभव काव्य ॥१५५॥
य ळथळिसुव दिव्य कलेगळरवत्त् नाल्कु । गेलुवंकद्नम न काव्य ॥ बळेसुत चारित्रव शुद्धगोळिसुत । बळियसारिपदिव्य काव्य ॥१५६॥

इळेय पालिप नव्यकाव्य ॥१५७॥ बेळेव सर्वोदय काव्य ॥१५८॥ घळिगे वट्टूटल दिव्य काव्य ॥१५९॥
सुळिय बाळेय दंग्र काव्य ॥१६०॥ तिळियादसरसाक काव्य ॥१६१॥ गिळिय कोगिले दनि काव्य ॥१६२॥
यळेवेण्णदनियंक काव्य ॥१६३॥ इळेगादि मनसिज काव्य ॥१६४॥ सुलिवल्ल सुलियद काव्य ॥१६५॥
इळेय कळ्तले हर काव्य ॥१६६॥ बळिय सेरलु व्रतकाव्य ॥१६७॥ गेलवेरिदर व्रत काव्य ॥१६८॥
नलविनध्यात्मद काव्य ॥१६९॥ सलुव दिगम्बर काव्व ॥१७०॥

क मंटक मातिनिंदलि बळेसिह । घर्म मूरुनूररुव तुमूर म् ॥ निर्मलवेन्नुत बळिय सेरिपकाव्य । निर्मल स्याद्वाद काव्य ॥१७१॥
त् नगे बारद मातुगळनेल्लकलिसुतम् । विनयदध्यात्मं अ चल ॥ घनदंकएळु साविरदिन्नुरु तोंबत्तु । एनलु अंतरदलि बरुव ॥१७३॥
ता नल्लिहत्तूवरे साविरअरवत्तारु । रानंदवेरडम् ह अ ॥ काणुवद् हदिनेंटुसाविरदेळनूर । काणदनलवत्तनाल्कंक ॥१७४॥
रो दनवेल्लवनळिसुव (ओडिप) सोहं । आदि ओंदोंबत्तु बंद आ॥ साधिसि मूरु काव्य वकूडिदक्षर । आदि जिनेंद्र भूवलयम् ॥१७४॥

इस तीसरे 'आ' अध्याय में ७२९० अक्षरांक हैं। अंतर काव्य में १०,५६६ अंकाक्षर हैं। कुल मिला देने से १७८५६ अंकाक्षर होते हैं। अथवा पहला और दूसरा अध्याय मिला कर २८७५५ और दस अध्याय के १७८५६ मिलकर ४६६११ अंक हुए।

इस अध्याय में आने वाली प्राकृत गाथा:–

आणेहिं अणन्तेहिं गुणे हि जुत्तो विशुद्धचारित्तो। भवभयदन्जणदच्छो महवीरो अत्थकत्तारो ॥

संस्कृत श्लोक:–

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं एन तस्मय् श्री गुरवेन्नमह ॥

इस श्लोक में एन के स्थान में व्यंजन "येन" रहना चाहिए था, किन्तु अंक भाषा में स्वर होने के कारण उसे ही रक्खा गया, है या यों समझिये कि धातूनामनेकार्थत्वात् धातुओं के अनेक अर्थ होने से एन, और येन दोनों समान ही हैं। अतः विद्वानों को इसकी शुद्धि न करके मूल कारण का अन्वेषण करना चाहिए।

यह भूवलय नामक अपूर्व चमत्कारिक ग्रन्थ सर्वभाषामयी होने के कारण प्रत्येक पेज ७१८ (सात सौ अठारह) भाषाओं से संयुक्त है अतः इस प्रकार व्यतिक्रम यदि आगे भी कहीं दृष्टिगोचर हो तो उसका सुधार न करके मूल कारणों का ही पता लगाना चाहिए। हो सकता है कि पुनरावृत्ति होने के समय यह स्वयं सुधर जाय। (संशोधक)

तीसरा अध्याय

कर्म भूमि के प्रारम्भ काल में श्री ऋषभनाथ भगवान ने भोले जीवों के अज्ञान को हटा कर अध्यात्म योग के साधनीभूत धर्म ध्यान को प्राप्त करा देने वाला जो प्रक्रम बताया था उसी को स्पष्ट कर बताने वाला यह भूवलय काव्य है ॥१॥

श्री आदिनाथ भगवान के द्वारा प्राप्त हुये उपदेश से अभ्युदय और निःश्रेयस का मार्ग जब सरलता से प्राप्त हो गया तब धर्म रूप पर्वत पर चढ़ने के लिए उत्सुक हुये आर्य लोगों को योग का मङ्गलमय सम्वाद प्रदान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥२॥

यह मंगल प्राभृत प्राणिमात्र का सातिशय हित करने वाला है। क्योंकि ज्ञात और अज्ञात ऐसो सम्पूर्ण वस्तुओं को बतलाकर ऐहिक सुख तथा पारमार्थिक सुख इन दोनों को सम्पन्न करा देने वाला है ॥३॥

यह मंगल प्राभृत मन को सिंहासन रूप बनाने वाला है। तथा काव्य-शैली के द्वारा जिन-मार्ग को प्रगट करते हुए अध्यात्म योग को भीतर से बाहर व्यक्त कर दिखलाने वाला है। तथा यह मंगल प्राभृत या भूवलय ग्रन्थ अक्षर विद्या में न होकर केवल गणित विद्या में विनिर्मित महा सिद्धान्त है ॥४॥

जानना ही ज्ञान है और अन्दर देखना ही दर्शन है। इन दोनों को पूर्णतया सर्वज्ञ परमात्मा ने ही प्राप्त कर पाया है। जानने और श्रद्धान करने के बीच में मिलकर रहने वाला चारित्र है जो कि अनन्त है ॥५॥

अब आगे अनन्त शब्द की परिभाषा बतलाते हैं—

अनन्त के अनन्त भेद होते हैं जिन सब को सर्वज्ञ परमात्मा ही देख सकता तथा जान सकता है और दूसरा कोई भी नहीं ॥६॥

पाप को भी अनन्त के द्वारा नापा जाता है और पुण्य को भी अनन्त के द्वारा नापा जाता है। याद रहे कि आचार्य श्री ने यहां पर अनन्त शब्द से दया धर्म को लिया है ॥७॥

सब जीवों में श्रेष्ठ श्री सिद्ध भगवान हैं उनको भी अनन्त से नापा जाता है ॥८॥

अपनी आत्मा को जानना भी अनन्त है, यानी उसमें भी अनन्त गुण हैं ॥९॥

यह सब जान कर अपने अन्दर ही देखना भी अनन्त गुण है ॥१०॥

अपने आप को प्राप्त करना सारे रत्नत्रय का अङ्क (मुख्य स्थान) है सो भी अनन्त है ॥११॥

सरलता से इस अनन्त को संख्यात राशि से भी गिनती कर सकते हैं। उदाहरण के लिए चौबीस भगवान में से प्रत्येक में अनन्त गुण हैं ॥१२॥

इसी रीति से असंख्यात से भी अनन्त को गुणा कर सकते हैं ॥१३॥

तथा अनन्त को भी अनन्त से गुणा किया जा सकता है ॥१४॥

परमोत्कृष्ट शुद्ध चारित्र का अङ्क यही है ॥१५॥

इन सभी बातों को ध्यान में लेकर अनन्त को रचना की गई है ॥१६॥

महामेरु पर्वत के शिखर पर अधर विराजमान योगिराज अपनी अपूर्व योगशक्ति के द्वारा इस अंक की महिमा को देख पाये हैं ॥१७॥ यहां पर योग शब्द से पृथ्वी धारणा समझना, जो कि विशुद्ध चारित्र के अतिशय से उपलब्ध हुई है ॥१८॥

जितना चरित्र अंक है उतना ही दर्शन योग का अंक है ॥१९॥

ऐसा संयमी महापुरुषों के शुद्धोपयोग ध्यान द्वारा जाना गया है ॥२०॥

यहां पर बताई हुई पृथ्वी धारणा या सुमेरु पर्वत से पृथ्वी या सुमेरुगिरि न लेकर अपने चित्त में कल्पित सुमेरु पर्वत या पृथ्वी को लेना, जो कि अपने ज्ञान में गृहोत हैं ॥२१॥

यह भूवलय ग्रन्थ भी उन्हीं योगियों के ज्ञान में योग के समय झलका हुआ है। भूवलय ग्रन्थ नवमाङ्क से बद्ध होने के कारण अद्वैत है। क्योंकि १ के बिना ९ नहीं होता और जहां पर ९ होता है वहाँ १ अवश्य होता है। एवं अद्वैत भी अनन्त है ॥२२॥

जो पार्थिवीय सुमेरु है वह एक लाख योजन परिमित माना गया है जो

कि असंख्यात प्रदेशी है। किन्तु योगियों के ध्यान में आया हुआ सुमेरु पर्वत तो इससे कई गुणा अधिक है, जो कि अनन्त रूप है ॥२३॥

उस कल्पित पृथ्वी के ध्यान किये विना अनन्त का दर्शन नहीं हो सकता ॥२४॥

इस कल्पित पृथ्वी की धारणा मूल पृथ्वी के विना नहीं होती अतः यह कथंचित् अर्द्धत भी है ॥२५॥

इस विशाल योग में अर्हत् सिद्धादि ९ देवताओं का समावेश हो जाता है ॥२६॥

जो ९ देवता इसी योग शक्ति के द्वारा अपने अनन्त गुणों को प्रकाश में लाये हुये हैं ॥२६॥

इस अद्भुत महत्वशाली योग को हम नवमांक का आदि योग कह सकते हैं ॥२८॥

"नम सिद्ध परमात्म" (सिद्धपरमात्मने नमः) ऐसा मन में कहते हुए, ममकार ही मेरा आत्म राग है, इस प्रकार अपने मन में भाते हुए द्रव्यागम बंधन में इसे बांध कर उसी में रमण करने का नाम अमल चारित्र है।

विवेचनः—यहां कुमुदेंदु आचार्य ने इस श्लोक में यह बतलाया है कि योगी जन बाह्य इंद्रिय-जन्य परवस्तु से समस्त ममकार अहंकार रागादिक को हटा कर इससे भिन्न अपने अन्दर योग तथा संयम तप के द्वारा प्राप्त करके देखे हुए शुद्ध आत्माके स्वरूपमें प्रीति करते हैं, उसी को अपना निज पदार्थ मान कर परवस्तु से राग नहीं रखते अर्थात् केवल अपने आत्मा पर आप ही राग करते और उसी में रत होते हुए द्रव्यागम में उसे बाँधकर उसी में रमण करते हैं। इसी को अमल अर्थात् निर्मल चारित्र बताया गया है।

द्रव्यागम क्या वस्तु है ?—

श्री वृषभनाथ भगवान ने अनादि काल से लेकर अपने काल तक चले आये हुए समस्त विषयों को उपर्युक्त क्रमानुसार नवमांक बंधन में बांध कर द्रव्यागम की रचना की। उसके बाद अपने संयम के सम्पूर्ण द्रव्यागम को विभिन्न विधि से नवमांक पद्धति के द्वारा रचा और पूर्व में कथित नवमांक में बांधकर मिला दिया। तत्पश्चात् आगे अनागत अनंत समय में होने वाले समस्त द्रव्यागम विषय को संक्षेप से तीसरे नवमांक बंधन में बांध कर रचा और उसे भी पूर्वोक्त नवमांक में मिला दिया, और जो तीन काल सम्बंधी द्रव्यागम को भिन्न २ रूप में रचना की गयी थी वह सभी इसी में एकत्रित होकर नवमांक रूप बन गयी। यह द्रव्यागम इस भरत क्षेत्र में लगभग अजितनाथ भगवान् के समय तक स्पष्ट तथा अस्पष्ट रूप में चला आया और अंतराल काल में नष्ट-सा हो गया। पुनः अजितनाथ भगवान् ने वृषभनाथ भगवान् के कथन को और अनादि कालीन कथन को मिश्रित कर चौथे नवमांक पद्धति का अनुसरण करके रचना करते हुए अपने समय के समस्त द्रव्यागमों को पूर्वोक्त क्रम में मिला दिया और संक्षेप में अनागत काल में होने वाले समस्त द्रव्यागम को छठवें तथा नववें बंध में बांधकर पूर्वोक्त सभी अनादि कालीन द्रव्यागम रूपी नवम बंध में बाँध कर सुरक्षित रक्खा। यह द्रव्यागम संभवनाथ के अंतराल काल तक चला आया, इसी क्रमानुसार सातवें नववें तथा आठवें नववें भंगादि रूप से भगवान् महावीर श्री कुंदकुंदाचार्य भद्रबाहु स्वामी, धरसेण आचार्य, वीरसेन, जिनसेन और कुमुदेंदु आचार्य तक चले आये। इस क्रम के अनुसार कुमुदेंदु आचार्य ने अपने समय के सम्पूर्ण विषय को नवमांक बंध विधि को अपने दिव्य अंक तथा गणित ज्ञान के द्वारा रचना कर भूवलय रूप से अनादि कालीन-सिद्ध द्रव्यागममें मिला दिया और अनागत काल के सम्पूर्ण द्रव्यागम को भिन्न नवमांक में संक्षेप रूप से बांध कर मिला दिया इसी तरह अतीत, अनागत और वर्तमान के समस्त द्रव्यागम एकत्रित करके सुरक्षित रखने की जो विधि है वह जैनाचार्यों की एक अद्भुत कला है।

आत्महित में संलग्न होने के अवसर में योगी अतिशय संपूर्ण विश्व की वाह्य और आभ्यंतर दोनों प्रकार की वस्तुओं से अपने ध्यान को हटाकर आत्मा में अत्यन्त मग्न होकर मेरु के शिखर के समान निश्चल स्थित होता है ॥३०॥

आत्महित करने के लिये स्वानुकूल योग धारण करते हुए वह योगी बहिरंग और अंतरंग अतिशय को प्रगट करने के लिये सम्पूर्ण विश्व की वस्तुओं को भूल कर उत्साह से महान मेरु पर्वत के अग्रभाग पर है ॥३१॥

मथन किये हुए अध्यात्म योग के वैभव की प्राप्ति के लिए प्रयत्न

शील होकर लोक के अग्रभाग पर विराजमान होने की इच्छा से ज्ञान युक्त योगी ॥३२॥

अन्तर श्लोक

हितानुभव के बाद ॥ ३३ ॥ अतिशय शिव भद्र सौख्य ॥ ३४ ॥ सर्वदा अभ्यास में रत रहने की बुद्धि । ३५ । हित करने वाले निर्मल चारित्र । ३६ । वीर्यान्तराय के नाश हो जाने पर । ३७ । दर्शन मोहनीय के नाश हो जाने पर । ३८ । अथवा मोहनीय के उपशम हो जाने पर । ३९ । अथवा मोहनीय के क्षय हो जाने पर आत्मा । ४० । हित कारक शुद्धात्म स्वरूप ।४१। प्रशस्त सम्यक्त्व का सार । ४२ । स्वसंवेदन का और विराग । ४३ । अतिशय सबल विराग । ४४ । वही हितकारक अपने स्वरूप । ४५ । में लीन आत्मा । ४५ । अथवा इसी स्वरूपाचरण में योगी रत होता है । ४७

गुरुजनों के द्वारा जो आचरण करने का सार है वही देश चारित्र का अंश है । देश चारित्र में प्रत्याख्यान का उपशम होने से अथवा क्षयोपशम से मुनियों के आचरण करने योग्य सकल चारित्र प्राप्त होता है । ४८ । सुगम रीति से प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम होकर देश चारित्र का जो मार्ग है वही सकल चारित्र है । जब सकल चारित्र की प्राप्ति होती है तब शूरवीर ज्ञानी दिगम्बर मुनि के तीसरे क्रोधादि चार कषायों का उपशम होता है ॥ ४९ ॥

अकल्याणकारी कषाय के उपशम अथवा क्षयोपशम के सतत उद्योग के फल से क्षय होकर तीन लोक में पूजनीय महाव्रत होता है ॥५०॥

जब सकल चारित्र होता है तब 'जुण जुण' अर्थात् वीणा ध्वनि के नाद के समान जुण जुण आवाज करते हुए दिव्य ध्वनि सार का गणनातीत सकल चारित्र उसी क्षण क्षण में महाव्रत रूप उज्वल होकर नाचता हुआ आत्म-योग उस मुनि में प्रगट होता है ॥५८॥

अपने को प्राप्त हुए अध्यात्म के अनुभव से महान सी यथाख्यात चारित्र उत्पन्न होकर गुणस्थान चढ़ने योग्य परम समाधि रूपी भगवान केवली जिनेश्वर के अत्यंत निर्मल यथाख्यात निर्मल चारित्र प्रगट होता है ॥५२॥

कभी दिखने वाला कभी आवरण में छिप जाने वाला यह चारित्र मुनियों के योग-मार्ग के द्वारा आया है उस चारित्र का सार नामक भूवलय है ॥५३॥

ऐसे चढ़ते चढ़ते सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थान तक चढ़ जाता है ॥५४॥

खाने पीने तथा चलने फिरने के व्रत नियम इत्यादि में जो व्यवहार चारित्र है ऐसा चरित्र यह नहीं है । यह केवल शुद्धात्म योग रूपी सार से उत्पन्न होकर आया हुआ सार-आत्म चारित्र है ॥५५॥

अर्थात् यह आत्म योग के साथ आने वाला अद्भुत आत्म-वैभव रूपी योग सार है ॥५६॥

लोकाग्र तक चढ़ जाने के लिए यही मार्ग है ॥५७॥

इसी मार्ग से सरलता पूर्वक चढ़ते हुए जाने से कषाय का नाश होता है ॥५८॥

संसार को बढ़ाने वाला अत्यंत शूरवीर एक कषाय ही है । उस कषाय को नाश करने वाला यह शुद्ध चारित्र योग है ॥५९॥

यह रास्ता शुद्ध है और इसमें विशेषता भी है ॥६०॥

इसी चारित्र का नाम यथाख्यात है ॥६१॥

अयोगी चौदहवां गुण स्थान अग्र अर्थात् अंतिम है ॥६२॥

जब अर्हंत भगवान अयोगी कहे जाते हैं तब इस गुणस्थान में अल्प काल तक स्थित रहता है ॥६३॥

आठवें अपूर्व करण गुण स्थान में दो श्रेणी होती हैं, एक उपशम और दूसरा क्षायिक, जब जीव इस आठवें गुण स्थान में प्रवेश करता है तो उसी एक एक क्षण में हजारों २ अद्भुत आत्मा के विशुद्ध परिणामों को देखता है । ऐसे परिणाम को अनादि काल से लेकर आज तक कभी भी इस प्रकार नहीं देखा, इसलिए इसका नाम अपूर्वकरण–गुणस्थान है जब यह संसारी मानव रूपधारी जीवात्मा संपूर्ण संसार या इंद्रिय-जन्य वाह्य और आभ्यन्तर समस्त वासनाओं को त्याग कर मुनि व्रत धारण करके एकाकी महान गहन जंगल, नदी, समुद्र तट इत्यादि किनारे पर आत्म-योग में स्त होकर जब अपने शरीर पर होने वाले अनेक परिषह तथा दुष्ट जन, और क्रूरतिर्यंच इत्यादि द्वारा

होने वाले उपसर्ग तथा धूप सर्दी बरसात इत्यादिक परीषहों को सहन करते हुए मन में विचार करता है कि जैसा मैंने पूर्व जन्म में कर्म किया था उसी के अनुसार पाप का उदय आकर मुझे फल देकर जा रहा है। इसे तो मुझे आनन्द के साथ सहन कर लेना चाहिए। ऐसा विचार कर वे मुनिराज एक दम उपशम श्रेणी पर चढ़ जाते हैं। तब इस मुनि को आकाश में गमन करने तथा जल के अन्दर गमन करने की ऋद्धि प्राप्त होती है तथा इन्हें यहां पर्वत के शिखर पर भूमि के अन्दर एवं आकाश मार्ग में गमन करने की शक्ति उत्पन्न होती है। ऋद्धि के मोह से दूसरे सासादन गुणस्थान में गिर जाता है।

वह मुनि दश पूर्व तक जिन वाणी का पाठी होकर भी फूटे हुए घड़े के समान होता है अतः वह भिन्न दश पूर्वी या भिन्न चतुर्दश पूर्वी कहलाता है। ऐसे लोगों को महान् आचार्य नमस्कार नहीं करते।

अब जो क्षपक श्रेणी प्राप्त कर आगे बढ़ने वाला अपूर्व करण गुणस्थानी जीव है वही वास्तविक अपूर्व करण वाला होता है क्योंकि वह आगे आगे अपूर्व यानी पहिले कभी भी प्राप्त नहीं होने वाले ऐसे परिणामों को प्राप्त होता हुआ अविच्छिन्न गति से बढ़ता चला जाता है। और वही अभिन्न दशपूर्वी या अभिन्न चतुर्दशपूर्वी होता है, उसी को महात्मा लोग नमस्कार करते हैं।

इसी विषय को गणित मार्ग से बतलाते हुए श्री आचार्य कुमुदेन्दु जी ने कहा है कि आठवां गुणस्थान अपूर्व करण है और उससे आगे जो छः गुण स्थान हैं उन दोनों को जोड़ने से चौदह होते हैं। अब उन चौदहों को भी जोड़ देने से एक और चार मिलकर पांच बन जाते हैं। तथा पञ्चम गति मोक्ष है। उसी मोक्ष को अगति स्थान भी कहते हैं ॥६४॥

अध्यात्म साधन में जो मुनि इस प्रकार आगे बढ़ता चला जाता है यानी क्षपक श्रेणी में चढ़ता चला जाता है वह अनादि काल से खोये हुए अपने स्वातन्त्र्य को क्षण मात्र में प्राप्त कर लेता है ॥६५॥

तब संसार का अभाव हो जाता है ॥६६॥

अन्तिम भव का मनुष्य देह दूर होकर आत्मा अशरीरी बन जाता है। अथवा यों कहो कि शरीरी होते हुए अमूर्त्त ही रहता है।६७।

अब आगे केवली समुद्घात का वर्णन करते हैं:—

अरहन्त परमेष्ठी के जो चार अघातिया कर्म शेष रह जाते हैं उनमें से एक आयु कर्म की स्थिति कुछ न्यून तथा नामादि कर्मों की स्थिति कुछ अधिक होती है तो वे अरहन्त परमेष्ठी अपनी आयु के शेष होने में अन्त मुहूर्त बाकी रहने पर केवली समुद्घात करना प्रारम्भ करते हैं। सो प्रथम एक समय में अपने आत्म-प्रदेशों को चौदह राजू लम्बे और अपने शरीर प्रमाण चौड़े ऐसे दण्ड के आकार में कर लेते हैं। फिर एक समय में उन्हीं आत्म प्रदेशों को पूर्व से पश्चिम वात-वलयों के प्रान्त तक फैला लेते हैं कपाट की तरह। इसके बाद एक समय में आत्म-प्रदेशों को उत्तर से दक्षिण में फैलाते हैं जिसको प्रतर कहा जाता है। इसके भी बाद में एक समय में उन्हीं आत्म प्रदेशों को वातवलयों तक में भी व्याप्त करके लोकपूर्ण कर लेते हैं इस प्रकार चार समयों में करके फिर इसी क्रम से चार समयों में अपने आत्म-प्रदेशों को वापिस स्वशरीर प्रमाण कर लेते हैं ऐसे आठ समय में केवलि समुद्घात करते हैं। इस क्रिया से नामादि तीन अघातिया कर्मों की स्थिति आयु कर्म के समान हो जाती है। इसको स्पष्ट करने के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने दृष्टान्त देकर समझाया है कि जैसे गीले कपड़े को इकट्ठा करके रखे तो देरी से सूखता है किन्तु उसी को अगर फैला देवें तो वह शीघ्र ही सूख जाया करता है उसी प्रकार आत्मा भी अपने अघातिया कर्मों को समान बनाकरके खपाने में समर्थ होता है।

तब अघाति कर्म को नाश कर सिद्ध परमात्मा होता है।६८-७०।

किसी एक स्थान में विष से परिपूर्ण चौरासी ८४ लाख घड़े रखे हुए हैं उनके बीच में एक अमृत भरा हुआ कलश है। किसी अंधे पुरुष ने आकाश से इच्छित फल को देने वाले चिंतामणि रत्न को फेंक दिया।७१।

वह चिंतामणि रत्न शुभ भाग्य से उस अमृत कुंभ में गिर जाता है, उसी प्रकार चौरासी लाख जीव-योनि इस जगत में हैं। उसके भीतर अमृत से भरे हुए कुंभ के समान एक मनुष्य योनि ही है। उस मानव योनि में पूर्व जन्म में किये हुए अल्पारंभ परिग्रह रूपी शुभ कर्मोदय से अंधे मनुष्य के हाथ से गिरे हुए रत्न के समान मनुष्य देह रूपी अमृत कुंभ में भद्रता पूर्वक जीव गिर जाता है। यह मनुष्य भव कैसा है? सो कहते हैं:—

चौथा अध्याय

इ※ ष्टोपदेशव नष्ट कर्मातिव । रुपष्टवे अप्रकाशक सागर जी मुद्रित री ॥ अष्टगुणान्वित सिद्धर स्मरिसिद । अष्टमजिन सिद्ध काव्य ॥१॥
य※ शश्वतिदेविय करविडिदादि । वृषभजिनेशन काव्य ॥ अश री※ र सिद्धत्व वडर्दु बाळुव काव्य । ऋषिवंशदादि भूवलय ॥२॥
मू※ रुवेळेयोळु सामायिकदेनिल्व । वीरजिनेन्द्रदारियद ॥ सेरि प※ द्धतियतिशयदनुभव । सारभव्यर दिव्य काव्य ॥३॥
ल※ क्षणवरियुत स्वसमयवद सारि । अक्षरदंकदोळ्वे र सि※ ॥ शिक्षेयोळैंदिंद्रिय मत्तु मनवनु । लक्षणदिंस्तब्धगोळिसि ॥४॥
त※ नुवनु मरेयुत जिनरूपे नानेंब । घनविद्येयनुभववागे ॥ म※ नवेसिम्हासनवागिरलमलात्म । जिननंते कमलदासनदि ॥५॥

घनवैभवदिंद कुळितु ॥६॥ जिननंते कायोत्सर्गदलि ॥७॥ अनुदिनदभ्यासबलदि ॥८॥
दिनदिनयोगहेच्चुतिरे ॥९॥ इननंतैतण्पिन ज्योति ॥१०॥ घनवागि बेळगुतलिरलु ॥११॥
तनगेताने ब्रह्मनेनुव ॥१२॥ जिन धर्मदनुभव बरलु ॥१३॥ ऋणद देहव मरेतिहरु ॥१४॥
एणिकेगे बारद्ध्यात्म ॥१५॥ घनप्रतिक्रमण तानागे ॥१६॥ चिनुमय मुद्रेयंदोदगे ॥१७॥
घनरत्न मूरर बेळकु ॥१८॥ तनगेताने बंदु बेळगे ॥१९॥ मनुमथनुपटल करगे ॥२०॥
जिननाथनोरेद भूवलय ॥२१॥ तनुविनोळात्म भूवलय ॥२२॥ वेनुंतितु निलुव कुळ्ळिरुव ॥२३॥
तनुवदे स्वसमय सार ॥२४॥

नृ※ अवदकंदंते स्वयम् परिपूर्णद । अवयववदे शुद्ध गु※ णद ॥ अवतार स्थानद हृदिनाल्करत्नद । चिनुमय सिद्ध सिद्धांत ॥२५॥
त※ नुवनु परवेंदरियुत आपर । दनुरागवनु तोरेदाग ॥ जिन र※ सिद्धर रूपिननुभव हेच्चुत । तनु रूपिनंतात्म रूपु ॥२६॥
क※ रगुवुदात्रव बरुव बंधवदिल्ल । निराकुलतेय पद्म वे※ ळु ॥ सरमालेयंते तन्नेदेयलिकाण्बाग । अरुहनपददंग गुणित ॥२७॥
त्※ रतरवाद अद्भुतपरिणामद । सरस संपदवेल्त्न अव न※ ॥ हरुषवनेरिप समयद लब्धियु । बरुवागआ अंतरात्म ॥२८॥

वरुवाग अवनतंरात्म ॥२९॥ परिणाम लब्धियागुवदु ॥३०॥ बरलरहंत तानेनुव ॥३१॥
वरुषवर्द्धनकादि एनुव ॥३२॥ बरे वरुवाग तन्नात्म ॥३३॥ गुरुवादे जगकेएंदेनुव ॥३४॥
अरहंतरनु कंडेनेनुव ॥३५॥ परिशुद्ध नाने एंदेनुव ॥३६॥ परमात्म पदवडर्देनुव ॥३७॥
गुरुपद दोरेयिंतेंदेनुव ॥३८॥ सिरियाय्तुज्ञानवें देनुव ॥३९॥ परममंगलनाल्कु एनुव ॥४०॥
परमात्म चरण भूवलय ॥४१॥

ता※ नु तन्नंद पडेव कार्यदोळिर्प । आनन्द शाश्वत सुख म※ ॥ तानु तन्निंदले तनगागि पोंदुव । तानल्लदन्यरिगरिया ॥४२॥
सि※ वनव शाश्वत निर्मल नित्यनु । भववनेल्लव केडिसुव् ह※ ॥ अविरल सुखसिद्धियवने महादेव । अवनादि मंगल भद्र ॥४३॥
रि※ द्धियाशेय होद्धदिरुव चिन्मयनु । शुद्धत्ववेल्लमह श्※ री ॥ बुद्धिद्धियाचार्य पाठक साधुवु । शुद्ध सम्यक्त्वदसारा ॥४४॥

वी॥ तरागनु निरामयनु निर्मोहियु । कातरविनितिल्लदिह ॥ ख्यात रो॥ योळु बाळुव भव्यरिगाश्रय । पूत पुण्यनु शुभ सौख्य ॥४५॥
रों॥ ष तोषगळिल्ल क्रोध मोहगळिल्ल । आशेयनंतानुबंध ॥ प॥ असरिसलेडेयिल्लदवननुभव काव्य। श्री शन सिद्ध भूवलय ॥४६॥

श्री शनाडिद दिव्य वाणि ॥४७॥ घासि अप्रत्याख्यान ॥४८॥ राशि कषायगळिगुम् ॥४९॥
मासुत प्रत्याख्यान ॥५०॥ रोषद सूक्ष्मसम्ज्वलन ॥५१॥ लेसिन जलरेखेयन्ते ॥५२॥
आशाजलद संज्वलन ॥५३॥ लेसिनि भावदोळ् मेरेये ॥५४॥ तासुतासिनोळगनन्त ॥५५॥
राशिकषायभेदगळ ॥५६॥ घासिय माडुतवहुदु ॥५७॥ लेसिन जलरेखेयन्ते ॥५८॥
मासदे बन्दुसेरुवुदु ॥५९॥ आसेय भेदविज्ञान ॥६०॥ राशिमाळ्पुदु तुषगळनु ॥६१॥
माषदकाळिनन्तात्मा ॥६२॥ श्री सनन्ददलि योगदोळु ॥६३॥ श्री सिद्धालयवे अल्लिहुदु ॥६४॥
आसिद्धालयद अनन्त ।७५॥ राशिय सिद्ध भूवलय ॥६६॥

इ॥ दरोळगिरुव षड्द्रव्यगळेल्लव । हुदुगिसिकोन्डिह प द॥ ग ॥ पञ्चाप्पा जीवगे संघासिकायदे । अदु मत्ते एळु तत्वगळ ॥६७॥
नृ॥ वपदार्थगळेम्ब अवसर वस्तुव । नवयवदोळु तुम्बि म॥ रळि ॥ अवनेल्लवनोन्दकूडिसि तिळियुव । अवुगळ लेक्कवे जीव ॥६८॥
द॥ रुशन ज्ञान चारित्रव वशगोन्डु । सरमाले इवनेल्ल मुरु गु॥ ॥ शरदओम्वत्तेळु ऐदारु कूडलु बरुवु द्दिप्पत्तेळरंक ॥६९॥
भू॥ वलय सिद्धान्त दिप्पत्तेळु । ताबेल्लवनु होन्दिसि रु॥ व ॥ श्री वीरवाणियोळ्वह "इ" मंगल काव्य । ईविश्वदूर्ध्वलोकदलि ॥७०॥
दि॥ वगळग्रद तुत्ततुदियलि बेळगुव । शिवलोक सलुव मान ब्॥ बरु ॥ धवल छत्राकार दग्रदगुरुलघु । सवियात्म गुणदोळगिहरु ॥७१॥

अवरव्याबाध गुणरु ॥७२॥ नवनवोदित सूक्ष्म घनरु ॥७३॥ अवरवगाहदोळिहरु ॥७४॥
सवियनन्तद ज्ञानधररु ॥७५॥ नव सम्यक्त्व दर्शनरु ॥७६॥ अवरनन्तानन्त बलरु ॥७७॥
अवरनागत सुखधररु ॥७८॥ अवरती तद ज्ञानधररु ॥७९॥ सविरुपिनशरीर घनरु ॥८०॥
अवरुशाश्वतरुचिन्मयरु ॥८१॥ अवरावागलु नित्यर् ॥८२॥ अवरसुखवु बेकेन्देनुव ॥८३॥
नवपद काव्य भूवलय ॥८४॥

वि॥ श्वदग्रके गमनवनिट्टु आ योगि । विश्वेश्वर सिद्धवर वे॥ ॥ दस्वरूपरध्यानिसुत भावदोळिर्प । विश्वज्ञ काव्यदग्रविदु ॥८५॥
प्॥ रमामृतकाव्य अरहन्त भाषित । गुरु परम्परे यादि प॥ दद ॥ गुरु सिद्धपदप्राप्तियागबेकेम्बर्गे । सरसविद्यागम काव्य ॥८६॥
प॥ द्धतियोळु चक्रबंध हंसदबंध । शुद्धाक्षरांक र॥ क्षेयनु ॥ होद्दिद अपुनरुक्ताक्षर पद्मद । शुद्धद नवमांक बंध ॥८७॥
व॥ र पद्म महापद्म द्वीप सागर बंध । परम पल्यद अ स्॥ बु बंध ॥ सरस सलाके श्रेणिय अंकदबंध । सरियागेलोकदबंध ॥८८॥
रो॥ मकूपद बंध क्रौंच मयूरद । सीमातीतद बन्ध ॥ कामन प॥ दपद्म नख चक्रबंधद । सीमातीतद लेक्क बन्ध ॥८९॥

ने मदकिरणदबंध ॥९०॥ स्वामिय नियमदबन्ध ॥९१॥ हेमरत्नद पद्मबन्ध ॥९२॥ हेर्मसिंहासन बन्ध ॥९३॥
ने मनिष्टेय व्रतबन्ध ॥९४॥ प्रेमरोषव गेल्दबन्ध ॥९५॥ श्री महावीर नबन्ध ॥९६॥ ई महियतिशयबंध ॥९७॥

सिद्ध हो जाने पर सम्पूर्ण कामनाओं से रहित हो जाने से स्वयं ही कमनीय हो गया ।८५।

ऐसे गुण विशिष्ट कौन हैं ? तो कहना होगा कि वे युग के प्रारम्भ में होने वाले गोम्मटेश्वर के पिता जगद् गुरु आदिनाथ भगवान हैं ।८६।

वे सबसे महान हैं तो भी सबसे सूक्ष्म हैं ।८७।

अनन्त गुणों के स्वामी होने के कारण वे महान है ।८८।

क्षेत्र और माला की परिधि से रहित हैं ।८९।

अनन्त अंकवलय से वेष्टित हैं अर्थात् इनके अनन्त गुणों को अनन्त अंकों के वलयों से ही जान सकते हैं ।९०।

अर्हंत अवस्था में ऋद्धियों का वैभव था, सम्पूर्ण ज्ञान साम्राज्य प्राप्त था, और चारित्र में लीन थे इसलिए परमौदारिक देह में रहने पर भी देह के विकारों से अलिप्त थे इसीलिए उन्होंने अन्त में देह बन्ध को तोड़ दिया ।९१।

जिनका मन अपने आत्म सम्पत्ति में लीन है वह हमेशा भगवान जिनेश्वर के समान अक्षुब्ध अर्थात् राग रहित वीतरागी होकर अपने आत्मानुभव में लीन रहता है। इस प्रकार से अक्षुब्ध आत्मानुभव में रत रहने वाले के अत्यन्त निबिड कर्मों की अनन्त निर्जरा होती है।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

विवेचन—

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस श्लोक में शुद्धात्म रत ध्यानी योगी के योग सामर्थ्य का वर्णन इस प्रकार किया है कि ज्ञानी योगी के शरीर होने पर भी न होने के समान है, कारण यह है कि जिस योगी का मन सदा आत्म-सम्पत्ति रूपी सम्पदा में मग्न रहता है वह हमेशा वीतराग जिनेन्द्र भगवान के समान अक्षुब्ध है, ऐसे शुद्धात्म अनुभव में रहनेवाले योगी के अनादि काल से लगे हुए अत्यन्त कठिन कर्मों के पिघलने में क्या देरी है ? अर्थात् कुछ नहीं ।

इसप्रकार श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने यहां तक सिद्ध भगवान तथा अर्हंत भगवान के गुणों का वर्णन किया। अब ९३ तिरानवे श्लोक से आचार्यादि तीन परमेष्ठियों के स्वरूप का वर्णन करेंगे।

संसारी जीव को अपने शरीर की रक्षा करने के लिए तेल, साबुन, मर्दन, कपड़े लत्ते, कोट कम्बल इत्यादि अनेक प्रकार के चीजों की जरूरत पड़ती है। जब वह संसारी जीव मुनि व्रत धारण करता है तब उसे अपनी आत्म रक्षा करने के लिए शरीर की रक्षा करना पड़ता है। अनादि काल से शरीर रूपी कारागृह में बन्धे हुए आत्मा को बाहर निकाले बिना उसकी सेवा नहीं हो सकती क्योंकि शरीर की सेवा वास्तविक सेवा नहीं है क्योंकि उसकी सेवा जितनी ही अधिक की जाती है उतनी ही और आकांक्षा दिनों दिन बढ़ती जाती है पर यदि आत्मा की सेवा एक बार भी सुचारु रूप से हो जाय तो पुनः कभी भी उसकी सेवा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः आत्मा को शरीर से मुक्त करना ही यथार्थ सेवा है ॥९३॥

तिल मात्र भी भयभीत न होते हुए जब ध्यान में रत होकर नयमार्ग को न छोड़ने वाले नियम से आत्मा में रत होने वाला योगी ध्यानाग्नि के द्वारा अनन्त कालीन पापकी निर्जरा करले, इसमें क्या आश्चर्य है ? अर्थात् नहीं है।

निर्भय होकर योगी नये मार्ग पर बढ़ता चला जाता है। नियम से आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन होता है तब ध्यानाग्नि द्वारा अनन्त राशि संचित पाप कर्मों का नाश कर देता है। इसमें कुछ भी आश्चर्य नही है ।९४।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस श्लोक में यह बतलाया है कि—

योगी समस्त मदों से दूर रहकर व्यवहार और निश्चय दोनों नय मार्ग का आश्रय लेता हुआ स्व वशीकृत खड्गासन अथवा पद्मासन से ध्यान में रत होता है और तब स्वरस से परिपूर्ण हो जाता है ।९५।

स्वरस में परिपूर्ण हो जाने पर अपने वशीभूत हुए मार्ग का ही चिंतवन करता है ।९६।

स्वसमाधि में स्थिर हो जाता है ।९७। स्व में सम्पूर्ण हो जाता है ।९८। समस्त मिथ्या मार्गों को छोड़ देता है ।९९। पूर्वकृत अपराधों को बहा देता है ।१००। कर्म रूपी दंड को जला देता है ।१०१। नवीन दीक्षित को जैसे आनन्द का अनुभव होता है वैसा आनन्दानुभव होने लगता है ।१०२। यश को पैदा करने वाले लक्ष्य को सिद्ध कर लेता है ।१०३। नवीन गुणों की वृद्धि से युक्त होता है ।१०४। इस सिद्धि की इच्छा से रहित होता है।

भावार्थ—संसारी जीव जिस प्रकार नाना ऋद्धियों की इच्छा से

आकुलित रहता है इस प्रकार वह किसी भी ऋद्धि की इच्छा से आकुलित नहीं रहता। यहां उपयोगी होने से श्रीभर्तृहरि और शुभ चंद्रो चार्य का कथानक लिख देना उचित है। एक राजा के दो पुत्र थे, एक का नाम भर्तृहरि और दूसरे का नाम शुभचन्द्र था संसार की दशा का विचार कर दोनों वैरागी हो बनवासी हो गये। भर्तृहरि रस आदि ऋद्धियों के साधन करने वाले गुरु के शिष्य हो गये और शुभचन्द्र किसी भी ऋद्धि को न चाहने वाले आत्म योगी वीतराग साधु के शिष्य बने। भर्तृहर ने बहुत वर्षों की साधना के बाद रस ऋद्धि को प्राप्त की अर्थात् इस-पारद को सिद्ध कर लेने के कारण सुवर्ण बनाने लगे।

एक दिन उन्हें अपने भाई का ख्याल आया कि मैंने तो रस सिद्धि प्राप्त करली है और मेरे भाई ने क्या सिद्ध किया है इसलिए एक शिष्य को शुभचंद्र की तलास में भेजा। इधर उधर खोजते हुए शिष्य ने शुभचंद्र को दिगम्बर (वस्त्र आदि के आवरण से रहित) वेष में देखा और मन में सोचा कि हमारे गुरु के तो बड़े ठाठबाट हैं परन्तु इनके शरीर पर तो वस्त्र तक नहीं हैं। अस्थि-मात्र शेष हैं, आहारादि भी नहीं मिलता। इस तरह मन में दुःखित हो शिष्य गुरु भर्तृहरि के पास लौट गया और सब वृत्तान्त कह सुनाया।

भर्तृहरि ने अपने भाई की यह दशा सुनकर सिद्ध रस तूंबड़ी में भर भेजा और कहलाया इससे मन चाहा सोना बनाकर वस्त्र आहार आदि आवश्यक वस्तुओं की प्राप्त करना।

शिष्य सिद्ध रस से भरी तूम्बड़ी लेकर शुभचंद्र के पास पहुंचा और गुरु का वक्तव्य कह सुनाया। शुभचंद्र ने यह सब सुना, मन में भर्तृहरि की बुद्धि पर दया भाव किये और शिष्य से कहा कि इस रस को फेंक दो तो वह श्रम साध्य सिद्ध रस को इस प्रकार निरर्थक फेंकने के लिए राजी न हुआ। परन्तु वापिस रस को ले जाने से गुरु नाराज हो जायेंगे इस बात से इसको शिला पर फेंक देना पड़ा। वापिस लौटकर जब गुरु भर्तृहरि से सब वृत्तांत कहा तो वे बड़े दुःखित हुए और स्वयं भाई के पास पहुंचे। शुभचन्द्र को अत्यन्त दुर्बल देखकर आश्चर्य में आ गये और सिद्ध रस लेलेने का आग्रह करने लगे। भर्तृहरि की भ्रांति को दूर भगाने के उद्देश्य से शुभचंद्र ने रस भरी तूंबडी पत्थर पर पटक दी जिससे सब रस फैल गया। अब तो भर्तृहरि के हाहाकार का ठिकाना न रहा वे अपने रस सिद्धि की कठिनता और उसके लिए किये गये परिश्रम का बार बार बखान करते हुए उलाहना देने लगे।

यह देखकर शुभचन्द्र तो जमीन पर से धूलि चुटकी में उठाई और शिला पर डाल दी जिससे सम्पूर्ण शिला सोने की बन गई और भाई भर्तृहरि से बोले कि—भाई! तुमने अपने इतने समय को व्यर्थ ही रस सिद्धि के फेर में पड़कर गवां दिया। सोने से इतना प्रेम था तो अपने राज महल में वह क्या कम था। वह वहां अपरिमित था। उसे तो आत्म गुण की पूर्णता प्राप्त करने के लिए हम लोगों ने छोड़ा था। आत्मसिद्धि हो जाने पर वह जड़ पदार्थ अपने किस काम का है? इसलिए यह सब छोड़कर आत्म सिद्धि में लगाना उचित है।

शुभचन्द्र की यह यथार्थ बात सुनकर भर्तृहरि को यथार्थ ज्ञान होगया और वे दिगम्बर वीत रागी यथार्थ साधु बन गये।

इसीलिए योगी आत्मसिद्धि करते हैं और इस सिद्धि की तरफ लक्ष्य नहीं करते।१०५।

रस सिद्धि जब नहीं चाहते तब काम देव का प्रभाव उनपर पड़ ही कैसे सकता है? अर्थात् कामवासना उनको नहीं सताती।१०६।

योगी उस समय नवीन नवीन पदार्थों का ध्यान में चिंतवन करता है।१०७। क्षुधा आदि परिष हैं पर विजय करते हुए शरीर से दंडित करता है।१०८। कीर्ति देने वाले चारित्र में स्थिर रहना है।१०९। पर द्रव्यों को फेंक कर पृथक् कर देना है।११०। दिखावटी प्रेम से रहित होता है।१११।

इसी प्रकार के ऋषि रूप को धारण करने वाले भद्र देही होते हैं।११२।

इस मध्य लोक की पृथ्वी पर रहकर भी आत्म रूपी भूवलय में रहता है अर्थात् अपने शुद्धात्म स्वभाव में रत रहता है।११३।

विश्व से ख्याति को आत्मा को फैलाने वाले मंगल प्राभृत में रहता है।११४।

विशेषार्थः—समस्त मंगल प्राभृत में २०७३६०० अक्षर अंक है वे ही पुनः पुनः घुमा फिरा कर समस्त भुवलय में प्रयुक्त हुए हैं इसलिए भूवलय ही

मंगल प्राभृत है और मंगल प्राभृत ही भूवलय है। इसी भूवलय के अक्षरों को भिन्न भिन्न प्रणालि से भिन्न भिन्न पृष्ठों के पढ़ने पर ३२४०० भूवलय बन जाते हैं।

सर्व जीवों के भय को निवारण करने वाले योगी को भय कहां से आयेगा। जिस योगी ने परानु राग को जीत लिया है इन योगी राज को भय कहां से होगा, स्वयं शुद्ध रूपानु चरण में रत रहने वाले योगी को भय कहां? सम्पूर्ण नय मार्ग की आकुलता को छोड़कर आत्म चितवन में रहने वाले योगी पूछता है कि भय कैसा है ॥११५॥

जो योगी असमान शान्त भाव में रहने के कारण त्रस स्थावर जीवों के हित को साधन करने वाला होता है, वह योगी शाश्वत मुक्ति सुख को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि वह योगी देहादिक संसार के सम्पूर्ण पोद्गलिक पदार्थों को अपने से भिन्न समझता है और वह योगी विचार करता है कि इन पौद्गलिक पर पदार्थों में होने वाले सुख दुःख की आकुलता का कितना बल है इसको मैं देख लूंगा। इस प्रकार धैर्य धारण करते हुए सम्पूर्ण कर्म मल को नाशकर शुद्धआत्मा बन जाता है ॥११६-११७॥

अर्हंत्सिद्धादि नव पदों को गुणा कार रूप अपने आत्म गौरव को बढ़ते हुए वह योगी अपने आत्मस्वरूप को शुद्ध बनाता है तो उसके पास पर पदार्थों के प्रति तिलमात्र भी राग नहीं रह जाता है ॥११८॥

हे आत्मन ! जय हो जय हो ! इस प्रकार परम उल्लास को प्राप्त होते हुए तथा पर पदार्थों के लगाव को दूर हटाते हुए केवल अपने शुद्ध आत्मा के चितवन में ही लीन हो रहा है ॥११९॥

वह योगी–जब अर्हंत्सिद्धादि नव पदों के चितवन में एकाग्रतापूर्वक तल्लीन होता है एवं नवम अङ्क की महिमा को प्राप्त करता है तब उस समय उस नवम अङ्क की महिमामय अपने आप को ही अनुभव करते हुए तथा नवम अङ्क और अक्षर को समान देखते हुये वह भव भय का नाश करने वाला होता है ॥१२०॥

जब तक कि यह संसारी जीव नवम अंक और अक्षरों में भेद समझता जा रहा था तभी तक इसको जन्म मरण करना पड़ रहा था। अतः जब उन दोनों में अभेद स्थापना कर लेता है तो सहज में जन्म मरण से रहित हो जाता है। ॥१२१॥

अज्ञान रूपी जो अंधकार था अब वह नष्ट हो गया अर्थात् उसको भगा दिया ॥१२२॥

वह योगी निरंजन पद का धारी होता है ॥१२३॥

उनको विशाल धर्म साम्राज्य मिल जाता है ॥१२४॥

धर्म रूपी पर्वत की शिखर पर पहुंच जाता है ॥१२५॥

अर्थात् धर्म द्रव्य लोक के अन्त तक है इस लिये यह आत्मा उसके अन्त तक पहुंच जाता है।

उसकी कवि कल्पना भी नहीं कर सकता है ॥१२६॥

अपने आत्म-तत्व के साथ अन्य संपूर्ण तत्व को जानता है ॥१२७॥

सभी गणित शास्त्र तत्वज्ञों का यह कथन है कि नव अंक को दो अंक से विभाजित करने पर शेष शून्य नहीं आता है किन्तु जैनाचार्यों ने असाध्य कार्य को भी साध्य कर दिया है, अर्थात् नव को दो से विभाजित करके शेष शून्य को बचा दिया है। इसका विवरण दूसरे अध्याय के विवेचन में कर चुके हैं, वहां से समझ लेना ॥१२८॥

यह योगी अनादि काल से चले आये भव समुद्र के जन्म रूप जल के कणों को ऊपर रहे हुए गणित रूप से जान लेता है।

नवकार मंत्र को जपते रहता है ॥१२०॥

अ. इ. उ ऋ ऌ ए ऐ. ओ. औ. इन नव स्वरों को मिला देता है। ऐसे

योगियों का गुण गान करने वाला यह भूवलय है। परद्रव्य के दर्शन करने से जिस कर्म का बंध होता है वह कर्म सम्यक्त्व को शुद्ध नहीं करता है ऐसा अरहंत, आचार्यादि, गुरुओं ने समझाया है। परम स्वरूपाचरण में रहने वाले आत्मा को संसार से निकाल कर सम्यक्त्व चारित्र में रहने के कारण मन की ओर अरहंत और सिद्धों को लाकर स्थिर करने से सिद्ध पद प्राप्त होता है। ऐसा अरहंत परमेष्ठियों ने कहा है। अर्थात् कानड़ी काव्य का १ छन्द सांगत्य २ चरित्र में ही गर्भित है ऐसा भी इसका अर्थ होता है।

जिन जिन भावों में जो असाध्य है, इस बात को वृषभ सेन आदि आचार्यों ने साध्य कहा है भव्य जीवों को आचार विचार चारित्रादि में स्थित करने वाले अन्य आगम में किसी प्रकार उधृत नहीं किया है ॥१३५॥

सभी आचार्यों ने परम्परा परिपाटी के अनुसार मंगल तथा सुख मय निराकुलतायें सराहनीय धर्म को अंकाक्षर मिश्र रूप से उत्पन्न होने वाली वाणी की परम्परा पद्धति के अनुसार ही भगवान महावीर की वाणी से लिया है, इसलिये यह वाणी यथार्थ रूप है ॥१३६॥

यह निराकुल अर्थात् आकुलता रहित मार्ग मंगल रूप होने के कारण संतोष की वृद्धि करने वाला है। और परम अर्थात् उत्कृष्ट करुणामय गणित से निकल आता है, इसलिए इसका दूसरा नाम दयामय धर्म भी है ॥१३७॥

यह धर्म अरहंत भगवान के मुख कमल से प्रकट हुआ है ॥१३८॥

संख्यात अंकों से भी गुणा कर सकते है ॥१३९॥

उत्कृष्ट औषध ऋद्धि गणित को यह बतलाने वाला है ॥१४०॥

आठ प्रकारों की बुद्धि ऋद्धि को सुलभ अंकों से बतलाने वाला है ॥१४१॥

भिन्न भिन्न अनेक अतिशय युक्त सिद्धि को प्राप्त करा देने वाला है॥१४२॥

भव्य जीवों का उपकार करने के लिए आचार्यों ने लिखा है ॥१४३॥

संसार सागर में अनेक बार भ्रमण करते करते अत्यंत भय भीत होते आये हुए जीवों की रक्षा करता है सभी जीवों को हर्ष उत्पन्न करने वाला यह वाक्य है। यह वाक्य सम्पूर्ण भरत खंड की सम्पत्ति है ॥१४६॥

परमोत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान की निधि है ॥१४७॥

सुलभ साहित्य का गणित है ॥१४८॥

परम उत्कृष्ट ज्ञान को ७१८ भाग में विभाजित किया गया है ॥१४९॥

उन अनेक प्रकार की विधियों को भाषाओं के नामसे अंकित किया है वे सभी इस भूवलय में हैं ॥१५०॥

इसलिये अरहंत देव ने ही इस भूवलय का कथन किया है ॥१५१॥

इस श्री महावीर की सर्वांग सुन्दर दिव्य ध्वनि को शूर दिगम्बर मुनियों ने मार्ग में विहार करते समय अध्यात्म रूप में लिखा तद्रूप यह भूवलय ग्रन्थ है॥१५२॥

इस काव्य को पढ़ने से सम्पूर्ण कषाय नष्ट हो जाती है। शेष को नष्ट कर सिद्ध पद को प्राप्त करता है। इस लिए भव्य भावक (जीवों) मनुष्य के द्वारा इसकी आराधना करते हुए गुणाकार रूपी काव्य है ॥१५३॥

इस भूवलय ग्रन्थ में साठ हजार प्रश्न हैं। इन प्रश्नों उत्तर को देते समय प्रत्येक प्रश्न पर दृष्टान्त पूर्वक विवेचन हैं। इस ग्रन्थ को चौदह पूर्व तथा उस से प्रकट हुई वस्तु भी कहते हैं। जिन्होंने अष्ट कर्मों को नष्ट किया है ऐसे भगवान ने कहा है। अतः इस भूवलय ग्रन्थ में अष्ट मंगल द्रव्य हैं ॥१५४॥

जिनेन्द्र देव की भक्ति करते समय मन वचन काय को कृत कारित अनुमोदना इन तीनों से गुणा करने से नौ गुणनफल आता है। फिर इन अंकों को अरहन्त सिद्धादि नौ पदों से गुणा करने से ८१ (इक्यासी) संख्या हो जाती है। इस प्रकार गणना करने वाले 'गणक' ऐसा कहते हैं। उन गणकों के अनुभव में आया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१५५॥

इस भूवलय में चौसठ कलायें है। यह सब चौसठ कलाऐं नौ अंक में ही अन्तर्गत हैं। यह नौ अंक समस्त जीवों के चारित्र को शुद्ध करते हुए

अपने आत्मा के समीप में लाने वाला यह दिव्य भूवलय काव्य है ॥१५६॥

जनता का पालन, सच्चरित्र द्वारा कराने वाला यह काव्य है ॥१५७॥

इस काव्य को पढ़ने से सर्व प्रकार की उन्नति होती रहती है इसलिये सर्वोदय काव्य है ॥१५८॥

काल को बताने वाली जल घटिका के समान यह दिव्य एक है॥१५९॥

केलों के पत्ते के उद्गम काल में जैसी कोमलता और सुन्दरता रहती है वैसे ही यह मृदु सुन्दर काव्य है ॥१६०॥

अत्यंत सूक्ष्म अक्षर वाला यह सरसांक काव्य है ॥१६१॥

तोता और कोयल के शब्द के सामान सुनने में प्रिय लगने वाला यह काव्य है॥१६२॥

कुमारी बालिका की बोली जैसे सुनने में प्रिय लगती है और मांगलिक होती है वैसे ही यह काव्य सुनने में प्रिय लगता है और मंगल को देता है ॥१६३॥

प्रथम कामदेव गोम्मटेश्वर का यह काव्य है ॥१६४॥

अदंत धावनदि अठाईस मूल गुणों को धारण करने वाले दिगम्बर मुनियों का यह काव्य है ॥१६५॥

सम्पूर्ण जगत के अज्ञान अंधकार का नाश करने वाला यह काव्य है। ॥१६६॥

इस काव्य का अध्ययन करने वाला मनुष्य व्रती बन जाता है ॥१६७॥

व्रत को उज्ज्वल करने वाला यह काव्य है ॥१६८॥

आनन्द को अत्यंत बढ़ाने वाला यह आध्यत्मा काव्य है ॥१६९॥

दिगम्बर मुनि विरचित यह काव्य है ॥१७०॥

जिसको कर्णाटक कहा जाता है उस भाषा का नाम वास्तव में कर्माटक है यह बात कर्णाटक राज्य के दो करोड़ आदमियों में आज भी प्रचलित है। भगवान की वाणी भी मूल में इसी भाषा में प्रचलित हुई थी इसलिए ग्रन्थ को कुमुदेन्दु आचार्य ने इसी भाषा में लिखा है।

इस भूतल पर तीन सौ त्रेसठ मत देखने में आ रहे हैं जो कि एक दूसरे से परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं और सदा ही लड़ते रहते हैं उन सब को एकत्रित करके मैत्रीपूर्वक रखने वाला स्याद्वाद है। एवं उस स्याद्वाद के द्वारा श्री आचार्य ने इस भूवलय ग्रन्थ में बड़ी खूबी के साथ शांतिपूर्वक उन सब को अपनाया है ॥१७१॥

इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से जिन भाषाओं का लाभ हमको नहीं हैं उन सब भाषाओं का ज्ञान भी सरलता पूर्वक हो जाता है। एवं विनय पूर्वक इसका अनुमान करने से अध्यात्मसिद्धि होकर वह आदमी अचल बन जाता है। इस प्रकार प्रतिपादन करने वाले इस तीसरे अध्याय में, ७२९० अङ्क हैं जिन में आ जाते हैं ऐसे दश चक्र हैं। उन्हीं दशचक्रों को दूसरी रीति से पढ़ने पर १०५६६ अंक और निकलते हैं। इनदोनों को मिलाने पर १४४ कम १८००० अंकाक्षर हो जाते हैं ॥१७२॥

सम्पूर्ण संसार के दुःख को नष्ट करने वाला सोऽहं यह अपूर्व मन्त्र हैं इसका अर्थ होता है कि युग के आदि में होने वाले भगवान ऋषभ देव की सिद्धात्मा का जैसा स्वरूप है वैसा ही मेरा भी स्वरूप है।

प्रश्नः-सिद्ध भगवान तो अनादि से हैं फिर श्री ऋषभदेव को ही क्यों लिया? इसका उत्तर यह है कि—श्री ऋषभ देव भगवान ने ही प्रारम्भ में अपनी पुत्री सुन्दरी को अंक भाषा में यह भूवलय ग्रन्थ पढ़ाया था। जो कि नौ ९ अंकों में सम्पादित किया हुआ है ॥१७४॥

इति तीसरा आ ३ प्लुत अ अध्याय समाप्त हुआ।

इस अध्याय के अन्तर्गत प्राकृत भगवद्गीता है उसको यहां उधृत करते हैं।

आणेहि अणन्तेहि गुणेहि जुत्तो विशुद्धचारित्तो।
भवभयदञ्जणदच्छो महवीरो अत्थकतारो।

अर्थ–आ (णा) णोहि यान ज्ञानादि अनन्त गुणों से युक्त विशुद्ध चारित्र वाले भव भय का नाश करने वाले भगवान महावीर ही इस ग्रन्थ के अर्थ कर्ता हैं।

इसी के अन्तर्गत यह निम्न लिखित मंगलाचरण का श्लोक निकलता

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं एन तस्मै श्री गुरु वेन्नमः॥

इस श्लोक में आये हुये 'एन' के स्थान पर संस्कृत भाषा की दृष्टि से 'येन' होना चाहिये परन्तु चित्र काव्य और श्लेषालंकार में एक तथा ये को एक ही मान लिया जाता है। इसी प्रकार गुरुवेन्न नमः के बारे में भी समझलेना।



चौथा अध्याय

इ* ष्टोपदेशव नष्ट कर्माशव । स्पष्टदे अरहंतरु श्* री ॥ अष्टगुणान्वित सिद्धर स्मरिसिद । अष्टमजिन सिद्ध काव्य ॥१॥
य* शश्वतिदेविय करविडिदादि । वृषभजिनेशन काव्य ॥ अश रीं* र सिद्धत्व वडर्दु बाळुव काव्य । ऋषिवंशदादि भूवलय ॥२॥
मू* रुवेळेयोळ् सामायिकदेनिलव । वीरजिनेन्द्रदारियद ॥ सेरि प* द्धतियतिशयदनुभव । सारभव्यर दिव्य काव्य ॥३॥
ल* क्षणवरियुत स्वसमयवद सारि । अक्षरदंकदोळ्बे र सि* ॥ शिक्षेयोळैंदिंद्रिय मत्तु मनवनु । लक्षणदिंस्तब्धगोळिसि ॥४॥
त* नुवनु मरेयुत जिनरूपे नानेंब । घनविद्येयनुभववागे ॥ म* नवेसिम्हासनवागिरलमलात्म । जिननंते कमलदासनदि ॥५॥

घनवैभवदिंद कुळितु ॥६॥ जिननंते कायोत्सर्गदलि ॥७॥ अनुदिनदभ्यासबलदि ॥८॥
दिनदिनयोगहेच्चुतिरे ॥९॥ इननंतैतण्पिन ज्योति ॥१०॥ घनवागि बेळगुतलिरलु ॥११॥
तनगेताने ब्रह्मनेनुव ॥१२॥ जिन धर्मदनुभव बरलु ॥१३॥ ऋणद देहव मरेतिहरु ॥१४॥
एणिकेगे बारद्ध्यात्म ॥१५॥ घनप्रतिक्रमण तानागे ॥१६॥ चिनुमय मुद्रेयंदोदगे ॥१७॥
घनरत्न मूरर बेळकु ॥१८॥ तनगेताने बंदु बेळगे ॥१९॥ मनुमथनुपटल करगे ॥२०॥
जिननाथनोरेद भूवलय ॥२१॥ तनुविनोळात्म भूवलय ॥२२॥ वेनुंतिनु निलुव कुळ्ळिरुव ॥२३॥
तनुवदे स्वसमय सार ॥२४॥

न्* अवदकंदंते स्वयम् परिपूर्णद । अवयववदे शुद्ध गु* णद ॥ अवतार स्थानद हृदिनाल्करत्नद । चिनुमय सिद्ध सिद्धांत ॥२५॥
त* नुवनु परवेंदरियुत आपर । दनुरागवनु तोरेदाग ॥ जिन र* सिद्धर रूपिननुभव हेच्चुत । तनु रूपिनंतात्म रूपु ॥२६॥
क* रगुवुदात्मव बरुव बंधवदिल्ल । निराकुलतेय पद्म वे* ळु ॥ सरमालेयंते तन्नेदेयलिकाणबाग । अरुहनपददंग गुणित ॥२७॥
त्* रतरवाद अद्भुतपरिणामद । सरस संपदवेल्त्न अव न* ॥ हरुषवनेरिप समयद लब्धियु । बरुवागआ अंतरात्म ॥२८॥

वरुवाग अवनतंरात्म ॥२९॥ परिणाम लब्धियागुवदु ॥३०॥ बरलरहंत तानेनुव ॥३१॥
वरुषवर्द्धनकादि एनुव ॥३२॥ बरे बरुवाग तन्नात्म ॥३३॥ गुरुवादे जगकेएंदेनुव ॥३४॥
अरहंतरनु कंडेनेनुव ॥३५॥ परिशुद्ध नाने एंदेनुव ॥३६॥ परमात्म पदवडर्देनुव ॥३७॥
गुरुपद दोरेयितेंदेनुव ॥३८॥ सिरियाय्तुज्ञानवें देनुव ॥३९॥ परममंगलनाल्कु एनुव ॥४०॥
परमात्म चरण भूवलय ॥४१॥

ता* नु तन्नंद पडेव कार्यदोळिर्प । आनन्द शाश्वत सुख म* ॥ तानु तन्निंदले तनगागि पोंदुव । तानल्लदन्यरिगरिया ॥४२॥
सि* वनव शाश्वत निर्मल नित्यनु । भववनेल्लव केडिसुव् ह* ॥ अविरल सुखसिद्धियवने महादेव । अवनादि मंगल भद्र ॥४३॥
रि* द्धियाशेय होद्धदिरुव चिन्मयनु । शुद्धत्ववेल्लमह श्* री ॥ बुद्धिद्धियाचार्य पाठक साधुवु । शुद्ध सम्यक्त्वदसारा ॥४४॥

वी* तरागनु निरामयनु निर्मोहियु । कातरविनितिल्लदिह ॥ ख्यात री* योळु बाळुव भव्यरिगाश्रय । पूत पुण्यनु शुभ सौख्य ॥४५॥
रो* ष तोषगळिल्ल क्रोध मोहगळिल्ल । आशेयनंतानुबंध ॥ प* असरिसलेडेयिल्लदवननुभव काव्य। श्री शन सिद्ध भूवलय ॥४६॥

श्री शनाडिद दिव्य वाणि ॥४७॥ घासि अप्रत्याख्यान ॥४८॥ राशि कषायगळळिगुम् ॥४९॥
मासुत प्रत्याख्यान ॥५०॥ रोषद सूक्ष्मसम्ज्वलन ॥५१॥ लेसिन जलरेखेयन्ते ॥५२॥
आशाजलद संज्वलन ॥५३॥ लेसिनि भावदोळ् मेरेये ॥५४॥ तासुतासिनोळगनन्त ॥५५॥
राशिकषायभेदगळ ॥५६॥ घासिय माडुतवहुदु ॥५७॥ लेसिन जलरेखेयन्ते ॥५८॥
मासदे बन्दुसेरुवुदु ॥५९॥ आसेय भेदविज्ञान ॥६०॥ राशिमाळ्पुदु तुषगळनु ॥६१॥
माषदकाळिनन्तात्मा ॥६२॥ श्री सनन्ददलि योगदोळु ॥६३॥ श्री सिद्धालयवे अल्लिहुदु ॥६४॥
आसिद्धालयद अनन्त ।७५॥ राशिय सिद्ध भूवलय ॥६६॥

इ* दरोळगिरुव षड्द्रव्यगळेल्लव । हुदुगिसिकोन्डिह प र* म ॥ पदप्राप्त जीवने पंचास्तिकायदे । अदु मत्ते एळु तत्वगळ ॥६७॥
न्* वपदार्थगळेम्ब अवसर वस्तुव । नवयवदोळु तुम्बि म* रळि ॥ अवनेल्लवनोन्दकूडिसि तिळियुव । अवुगळ लेक्कवे जीव ॥६८॥
द* रुशन ज्ञान चारित्रव वरागेन्नु । सरमाले नवनेल्ल मुरु गु* ॥ शरदश्रोम्वत्तेळु ऐदारु कूडलु बरुवु द्दिप्पत्तेळरंक ॥६९॥
भू* वलय सिद्धान्त दिप्पत्तेळु । तावेल्लवनु होन्दिसि रु* व ॥ श्री वीरवाणियोळ्वह "इ" मंगल काव्य । ईविश्वदूर्ध्वलोकदलि ॥७०॥
दि* वगळग्रद तुत्ततुदियलि बेळगुव । शिवलोक सलुव मान व्* वरु ॥ धवल छत्राकार दग्रदगुरुलघु । सवियात्म गुणदोळगिहरु ॥७१॥

अवरव्याबाध गुणरु ॥७२॥ नवनवोदित सूक्ष्म घनरु ॥७३॥ अवरवगाहदोळिहरु ॥७४॥
सवियनन्तद ज्ञानधररु ॥७५॥ नव सम्यक्त्व दर्शनरु ॥७६॥ अवरनन्तानन्त बलरु ॥७७॥
अवरनागत सुखधररु ॥७८॥ अवरती तद ज्ञानधररु ॥७९॥ सविरुपिनशरीर घनरु ॥८०॥
अवरुशाश्वतरुचिन्मयरु ॥८१॥ अवरावागलु नित्यर् ॥८२॥ अवरसुखवु बेकेन्देनुव ॥८३॥
नवपद काव्य भूवलय ॥८४॥

वि* श्वदग्रके गमनवनिट्टु आ योगि । विश्वेश्वर सिद्धवर वे* ॥ दस्वरूपरध्यानिसुत भावदोळिर्प । विश्वज्ञ काव्यदग्रविदु ॥८५॥
प्* रमामृतकाव्य अरहन्त भाषित । गुरु परम्परे यादि प* दद ॥ गुरु सिद्धपदप्राप्तियागबेकेम्बर्गे । सरसविद्यागम काव्य ॥८६॥
प* द्धतियोळु चक्रबंध हंसदबंध । शुद्धाक्षरांक र* क्षेयनु ॥ होद्दिद अपुनरुक्ताक्षर पद्मद । शुद्धद नवमांक बंध ॥८७॥
व* र पद्म महापद्म द्वीप सागर बंध । परम पल्यद अ म्* वु बंध ॥ सरस सलाके श्रेणिय अंकदबंध । सरियागेलोकदबंध ॥८८॥
रो* मकूपद बंध क्रौंच मयूरद । सीमातीतद बन्ध ॥ कामन प* दपद्म नख चक्रबंधव । सीमातीतद लेक्क बन्ध ॥८९॥

ने मदकिरणदबंध ॥९०॥ स्वामिय नियमदबन्ध ॥९१॥ हेमरत्नद पद्मबन्ध ॥९२॥ हेमसिंहासन बन्ध ॥९३॥
ने मनिष्टेय व्रतबन्ध ॥९४॥ प्रेमरोषव गेल्दबन्ध ॥९५॥ श्री महावीर नबन्ध ॥९६॥ ई महियतिशयबंध ॥९७॥

का मनगणितदबन्ध ॥९८॥ आ महामहिमेयबंध ॥९९॥ स्वामियतपद श्रीबन्ध ॥१००॥ सामन्तभद्रन बन्ध ॥१०१॥
श्री मन्तशिवकोटिबंध ॥१०२॥ आ महिमन तप्तबंध ॥१०३॥ कामितफलवीवबंध ॥१०४॥ नेमशिवाचार्य बंध ॥१०५॥
स्वामि शिवायनबंध ॥१०६॥ नेमनिष्ठेयचक्र बंध ॥१०७॥ कामितबंध भूवलय॥ १०८॥

उ* त्तम संहननद चक्रबंध म। त्तुत्कृष्ट देहद रा* ग ॥ चित्तजनन्दद संस्थान बंधदे ॥ सुत्तुवरिद दिव्यबंध ॥१०९॥
व* रदसम्यग्दर्शनदादिय बंध । गुरु परम्परेय आ चा* मूल । वरतपबंधद सरमग्गी कोष्टक । विरुवअध्यात्मदबंध ॥११०॥
त* पिसुत देहवुउपसर्ग केड़ेयागे । अपरिमितानन्दनव र्* आ । सुपवित्रभावद सत्यवैभव बंध उपशमक्षयदादि बंध ॥१११॥
न्* वपद्मबंधद कट्टिटनोळ्कट्टिटद । अवरसच्चारित्र य* बंध ॥ अवतारविल्लद अपुनरावृत्तिय । नवमांक बंध सुबंध ॥११२॥
ते* रसगुणठाणदोळगात्मनकूडि । सारधर्मवराशिमाड़ि ॥ वीर गु* णंगळअनन्तांकदोळु कट्टिट । सारवागिसिह भूवलय ॥११३॥

शूरवागिसिद भूवलय ॥११४॥ नूरारुनन्त भूवलय ॥११५॥ सारात्मरावास वलया ॥११६॥
धीररचारित्रयवलय ॥११७॥ दारियोळपवर्ग निलय ॥११८॥ सेरुवध्यात्म निर्ममव ॥११९॥
क्रूर कर्मारिविलयद ॥१२१॥ दारियतोर्वंक निलय ॥१२०॥ भूरिवैभवदसद्वलय ॥१२२॥
घोरोपसर्गदविलय ॥१२३॥ सारात्म शिखेयादिनिलय ॥१२४॥ क्रूरकार्मणदेह विलय ॥१२५॥
चारित्र सारसद्वलय ॥१२६॥ सारज्ञानामृतनिलय ॥१२७॥ दारैकेयवरंकवलय ॥१२८॥
घोर त्ववळिद भूवलय ॥१२९॥

क* रुणेय धर्म वर्द्धनवागेलोकदे । वरुव कष्ट गळेल्लक र गि* ॥ गुरुविगेशिष्यने गुरुवागुवागल्लि । दोरेवसमाधियोळ् मोक्ष ॥१३०॥
त्* नगेताने सिद्धियागुवकाल । जिन धर्मदतिशय बेळगि ॥ घन वे* दद्वादशदनुभववेरलु । जिन वर्द्धमानन धर्म ॥१३१॥
ता* रुण्यव होंदिमंगल प्राभृत । दारदंददेनवनम न* ॥ वेरलुवंदिह अध्यात्मवैभव । शूरमुनिगळदारिइह ॥१३२॥
रो* गशोकगळेल्लकरगुवयोगदे । सागर पल्यशलाके ॥ यागुव म* हिमेय नवमांक बंधद । साधनकर्म सिद्धान्त ॥१३३॥

श्रीगुरुपदद सिद्धान्त ॥१३४॥ नागनरामरकाव्य ॥१३५॥ आगपेळिदयोग काव्य ॥१३६॥
तागुवात्मध्यान काव्य ॥१३७॥ नागसंपगेपुष्पवैद्य ॥१३८॥ भोगयोगदसिद्धि काव्य ॥१३९॥
भोगदतृप्तिय कळेव ॥१४०॥ श्रीगुरुशिवकोट्याचार्य ॥१४१॥ आगवाळिद शिवायनन ॥१४२॥
रोगवकेडिसिदकाव्य ॥१४३॥ नागमल्लिगेकृष्णपुष्प ॥१४४॥ तागलुस्वर्ण सिद्धान्त ॥१४५॥
हेगेयुतप्पद योग ॥१४६॥ नागार्जुन सिद्धकाव्य ॥१४७॥ आगिर्दकक्षपुटांक ॥१४८॥
श्रीगुरुवर सेनगणदि ॥१४९॥ रागदिपेळ्दसिद्धान्त ॥१५०॥ साधन वहस्वर्णकाव्य ॥१५१॥
राग विराग भूवलय ॥१५२॥

अ* ष्टमहाप्रातिहार्य वैभववनु । स्पष्टगोळिसिदादि वर ह* ॥ इष्टार्थवेल्लात्म संपदावेन्नुव । अष्टमजिन सिद्धकाव्य ॥१५३॥

णु* णुपाद गुडुचाद धर्म कर्मदलोह । दनुभववदे स्वर्ण श्री* ॥ अनुभवगम्यद समवसरण काव्य । घनसिद्धरसदिव्यकाव्य ॥१५४॥
त* नुवनकाशकेहारिसिळिलिसुव । घनवैमानिक दिव्य काव्य ॥ प* नसपुष्पद काव्य विश्वम्भर काव्य । जिनरूपिनभद्र काव्य ॥१५५॥
न्* नेकोनेवोगिसि भव्यजीवरनेल्ल । जिनरूपिगेदिपकाव्य ॥ र* णकहळेय कूगनिल्लवागिप काव्य । दनुभवखेचर काव्य ॥१५६॥
ते* रनुयळेयुवदारियोळ् बरुवंक । दारैकेय मादलद । सार म* र्दवनु बेरसिमानुषिक्त । नूराररोग नाशकद ॥१५७॥

दारिय पुष्पायुर्वेद ॥१५८॥ मारनंगेयकेदगेय ॥१५९॥ सारहुविन दिव्य योग ॥१६०॥
सारान्गिपुट दिव्य योग ॥१६१॥ पारदपादरिपुष्प ॥१६२॥ पारद जयदग्नि योग ॥१६३॥
सारात्मशुद्धि पारदव ॥१६४॥ नूरारुसंपुटयोग ॥१६५॥ सारस्वतर वाहनद ॥१६६॥
एरिसितिळिव पारदद ॥१६७॥ श्रीरमेगिरियर्कणिकेय ॥१६८॥ सेरिसेबरुव हूवगळ ॥१६९॥
दारियगुणवृद्धियंक ॥१७०॥ मूररवर्ग शलाके ॥१७१॥ यारैके यिरुव भूवलय ॥१७२॥
शूररकाव्य भूवलय ॥१७३

से* रदमनवनु पारददोळु कट्टिट । नूरुसाविर हूवुगळ ॥ सारव त्* न्दुमाड़त रसमणियनु । सेरिसे भूवलय सिद्धि ॥१७४॥
स* रुवार्थसिद्धियग्रदश्वेत (शिलेयद) क्षत्रव । बरेदंकमार्ग म्* बरलु ॥ अरुहादि ओंबत्तम् बेरेसिह ताणदो (लरियिरिसिद्धान्तवदम्)
ळरिवसिद्धान्त भूवलय ॥१७५॥

आ* गममार्गदहृदिमूरु कोटिय । तागिदआयुर्वेद (प्राणावाय)॥ सागरवन् ने* रिअपुनरुक्तंकद (अपुनरुक्ताक्षर) । सागर रत्नमंजूष ॥१७६॥
इ* रुव भूवलय दोळेळ्नूरहदिनेंटु । सरस भाषेगळवतार ॥ न* ररिगे प्रथम संयोगदे बहुदेंव । शिरियिह सिद्ध भूवलय ॥१७७॥

सरियिह एरडने योग ॥१७८॥ सिरियिह मूरु संयोग ॥१७९॥ सिरियिह नाल्कु संयोग ॥१८०॥
परिवाह अरवत्तनाल्कुं ॥१८१॥ परमात्म कलेयंक भंग ॥१८२॥ परमामृतद भूवलय ॥१८३॥

रि* द्धियादामूरु आदिभंगदतेर । होददिकोंडिहअंकगळ ॥ म* द्दिनोळेळु साविरदिन्नूरतों बत्तु । सिद्धांक बागलु "इ"ल्लि ॥१८५॥
या* वश्रंतर आरेरडोम्बत्ताहत्तु । ईवक्षरगळेल्लवा ह* ॥ पावन दंकगळंतर काव्यव । नोवदे [भावदेबरुवंकवेल्ल]काव भूवलय ॥१८६॥

"इ" ७२९०+ अंतर = १०९२६ = १८२१६ अथवा अ । इ – ४६६११ +१८२१६=६४८२७ । अब पहले अक्षर से लेकर ऊपर से नोचे तक आ जाय तो प्राकृत भाषा भगवद्गीता अर्थात् पुरुगीता आती है सो देखिये, यिय मूल तंतकत्ता सिरिवीरो इंदभूदिविप्पवरो ।

उवतंते कत्तारो अणुतं ते सेसाआइरिया ॥४॥

इसी प्रकार संस्कृत भाषा भी निकलतो है–श्री परम गुरवे नमह । श्री परमगुरवे परंपराचार्य गुरवे नमह । श्री परमात्मने नमह ।

इति चतुर्थोध्यायः ।

चौथाअध्याय

यह भूवलय आत्मा के लिये इष्ट उपदेश है, यह अष्ट कर्म को नष्ट करने वाला है। अर्हन्त भगवान की लक्ष्मी को प्रदान करने वाला और अष्ट गुणों से युक्त सिद्ध परमेष्ठियों में सदा स्थिर रहने वाला अष्टम जिन (चन्द्रप्रभु) सिद्ध काव्य है ॥१॥

श्री वृषभ देव ने जब यशस्वती देवी के साथ विवाह किया उस समय का यह काव्य है और अशरीर अवस्था अर्थात् मुक्ति अवस्था प्राप्त कराने वाला यह काव्य है।

यह ऋषि वंश का आदि स्थान भूवलय है ॥२॥

यह तीन काल में होने वाले सामायिक को बताने वाला, उन वीर जिनों के मार्ग का अतिशय अनुभव करा देने वाला सार भव्यात्मक काव्य है ॥३॥

स्वशुद्धात्मा के कथन रूपी अक्षर को जानकर उसी शिक्षा के द्वारा मन और पांचों इन्द्रियों को लक्षण से स्थिर करके स्वशरीर को भूलकर "भगवान जिनेन्द्र देव के समान मैं स्वयं हूं" ऐसी महान् विद्या का अनुभव होकर निजमन ही भगवान के लिये सिंहासन स्वरूप प्रतीत होता है और मेरी आत्मा भगवान् जिनेश्वर के समान हृदय रूपी पद्मासन पर विराजमान होकर सुशोभित हो रही है ॥४, ५॥

जिस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र देव समवशरण में अष्ट महा प्रातिहार्य तथा ३४ अतिशयों से समन्वित होकर प्रशान्त मुद्रा से विराजमान हैं उसी प्रकार मेरी आत्मा भी हृदय रूपी पद्मासन पर विविध प्रकार के वैभव से सुशोभित हो रही है ॥६॥

इसी प्रकार मेरी आत्मा जिनेन्द्र देव के समान कायोत्सर्ग में खड़ी हुई है ॥७॥

कायोत्सर्ग में किसके बल से खड़ा है ?

कायोत्सर्ग में होने वाले ३२ दोषों से रहित निरन्तर सिद्धात्मा के अभ्यास के बल से योगी खड़ा है ॥८॥

जैसे जैसे अभ्यास बढ़ता जाता है वैसे वैसे योग भी बढ़ता जाता है ॥९॥

तत्पश्चात् शीतल चन्द्रमा के समान आत्म-ज्योति बढ़ती जाती है ॥१०॥

तब आत्मज्योति पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जाती है ॥११॥

ऐसा हो जाने पर यह अपने को आप ही ब्रह्मस्वरूप अनुभव करने लगता है ॥१२॥

इस प्रकार अनुभव करते हुए जब विशुद्ध जैन धर्म का अनुभव आता है ॥१३॥

तब अनादि काल से प्राप्त ऋण रूपी शरीर को भूल जाता है ॥१४॥

गणना में न आने वाले अध्यात्म को ॥१५॥

आप स्वयं महान् प्रतिक्रमण रूप होकर ॥१६॥

चिन्मय अर्थात् चित्स्वरूप मुद्रा प्राप्त होती है ॥१७॥

तत्पश्चात् उपर्युक्त सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी रत्न की ज्योति प्रगट हो जाती है ॥१८॥

तब वह ज्योति अपने पास पहुंचकर स्वयमेव अपनी आरती करती है ॥१९॥

ऐसा होते ही मन्मथ रूपी पटल पिघल जाता है ॥२०॥

मन्मथ रूपी पटल पिघलने के बाद जिस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र देव को संपूर्ण भूवलय दिखाई देता है उसी प्रकार उस आत्मरत योगी को सकल भूवलय दिखाई पड़ता है ॥२१॥

तब अपने शरीरस्थ आत्मरूपी भूवलय में समस्त भूवलय दिखाई पड़ता है ॥२२॥

इस प्रकार विचार करके अपनी आत्मा के निकट विराजमान हुये योगी को ॥२३॥

वही शरीर स्व-समय सार है ॥२४॥

जिस प्रकार ९ अंक के ऊपर कोई दूसरी संख्या न होने से ९ को परिपूर्ण अंक माना जाता है उसी प्रकार शुद्ध गुण अवयवों से सहित शुद्ध आत्मा भी परिपूर्ण है। वही परिपूर्ण शुद्धावस्था सिद्ध पद में है। वह सिद्ध पद चोदह

गुणस्थान के अन्त में चिन्मय सिद्ध स्वरूप है. ऐसा भूवलय सिद्धान्त का कथन है। इस प्रकार अनुभव होने के बाद अपने शरीर को पर मानते हुये उसे त्याग देने के पश्चात् श्री जिनेन्द्र भगवान् तथा सिद्ध भगवान के स्वरूप को अनुभव अपने आत्म में बढ़ते जाने से ऐसा प्रतीत है कि "इस आत्म का रूप ही मेरा शरीर है" ॥२५, २६॥

इस प्रकार जब आत्मरत योगी की भावना सिद्धात्मा में दृढ़ हो जाती है तब आने वाला कर्मास्रव तथा बंध रुक जाता है। तत्पचात् वह निराकुल होकर भगवान के चरण कमल के नीचे सात कमल को माला रूप में जब अपने हृदय में धारण करके देखता है तब अरहन्त भगवान के गुणाकार द्विगुण वृद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥२७॥

तब विविध भाँति के चित्र विचित्रित अद्भुत परिणामों के साथ सरस संपत्ति उस योगी के हृदय में हर्ष को बढ़ाने वाली काललब्धि जब प्राप्त हो जाती है तब उस अन्तरात्मा अर्थात् उस योगी की अन्तरात्मा को परिणाम लब्धि होती है ॥३०॥

विवेचन :—

श्री कुमुदेन्दु आचार्य जी ने इस भूवलय के "चतुर्थ" अध्याय में २७ वें श्लोक से लेकर ३० वें श्लोक तक इस प्रकार विवेचन किया है कि जब जिनेन्द्र देव तथा सिद्ध भगवान् के स्वरूप का अनुभव बढ़ता जाता है तब अपने आत्म रूपी शरीर में रत हो जाता है। तब सत्ता में रहने वाले कर्म स्वयं पिघल जाते हैं और बाहर से आने वाले नये कर्म रुक जाते हैं। तत्पश्चात् निराकुलता उत्पन्न करने वाले ७ कमलों की माला के समान जब अपने हृदय में योगी देखने लगता है तब अरहन्त भगवान् के चरण के नीचे सात कमलों के द्वारा अपने शुभ परिणामों को द्विगुण २ वृद्धि प्राप्त कर लेता है वह द्विगुण इस प्रकार है:

२२५ × २२५

११२५

४५०

४५०

५०६२५

तब विलक्षणपरिणमन सहित सरस संपत्ति के द्वारा उसके हर्ष को बढ़ाने वाली काय लब्धि प्राप्त होने से उस अन्तरात्मा को करण लब्धि होती है।

करण लब्धि भेदाभेद रत्नत्रयात्मक रूप मोक्ष मार्ग को दिखाती है, तथा सकल कर्मक्षय के लक्षण स्वरूप मोक्ष को दिखलाती है और आगे अतीन्द्रिय परम ज्ञानानन्दमय मोक्ष स्थल को अनेक नय निक्षेप प्रमाणों से खिदा देती है। उसे करण लब्धि कहते हैं। वह करण तीन प्रकार का है:—

अधः प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण तथा अनिवृत्ति करण। प्रत्येक करण का समय अन्तर्मुहूर्त होता है। उस अन्तर्मुहूर्त में पहले की अपेक्षा दूसरा संख्यात गुण हीन काल होता है जो कि अल्प समय में ही अधिक विशुद्धि को प्राप्त होता है और अधःप्रवृत्ति करण से प्रति समय अनन्तगुण विशुद्धि रूप धारण करते हुये अन्तर्मुहूर्त तक चला जाता है अर्थात् पहले समय में जितनी विशुद्धि प्राप्त हुई थी उससे अनन्त गुणी विशुद्धि दूसरे समय में प्राप्त होती है।

अधःप्रवृत्ति करण प्रत्येक समय में अनन्तगुण विशुद्धि करता हुआ निरन्तर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त चला जाता है। वहां पर होने वाली विशुद्धि असंख्यात लोक प्रमाण गणना का महत्व रखती हुई चरम काल पर्यन्त समान वृद्धि से होती जाती है।

प्रश्न—लोक तो एक ही है, फिर असंख्यात लोक की कल्पना कैसे हुई ?

उत्तर—एक परमाणु के प्रदेश में अनन्तानन्त जीव रहते हैं। उन अनन्त जीवों में से एक जीव के अनन्तानन्त कर्म होते हैं। ये समस्त जीव और अजीव एक परमाणु प्रदेश में भी रहते हैं। एक परमाणु प्रदेश में इतने ही जीव और अजीव समाविष्ट होने से असंख्यात परमाणु प्रदेशात्मक इस लोक में अनन्तानन्त पदार्थ रहने में क्या आश्चर्य है ? अर्थात् असंख्यात लोक प्रमाण हो सकते हैं।

स्थिति बंधापसरण का कारण होने से इस करण को अधःप्रवृत्ति करण कहते हैं। यहां पर भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम समान भी होते हैं। तदन्तर यहां से ऊपर अपूर्वकरण नामक करण होता है। उस करण में प्रति समय में असंख्यात लोक मात्र परिणाम होते हैं। जोकि क्रम से समान संख्या से बढ़ते हुए असंख्यात लोक मात्र हुआ करते हैं। जोकि स्थिति

बंधापसरण, स्थिति काण्डकघात, अनुभाग काण्डकघात, गुणसंक्रमण और गुण श्रेणी निर्जरा इत्यादि क्रिया करने का कारण होते हैं।

वहां से ऊपर अनिवृत्तिकरण में प्रति समय एक ही परिणाम होता है। स्थिति बंधापसरणादि क्रियायें पहले की भांति होती हैं। उस करण के अन्तिम समय में होने वाली क्रिया को देखिये: —

चारों गतियों में से किसी भी गति में जन्मा हुआ गर्भज, पंचेन्द्रिय, संज्ञी पर्याप्तक सर्वविशुद्धि वाला जागृत अवस्था में रहते हुये जीव प्रज्वलित होने वाली शुभ लेश्या को प्राप्त होकर, ज्ञानोपयोग में रहने वाला होकर अनिवृत्ति करण रूप शक्ति को प्राप्त होता है वह शक्ति वज्रदंडकघात के समान घात किये हुये संसार दुर्ग रूपी मिथ्यात्वोदय को अन्तर्मुहूर्त काल में विच्छेद कर सम्यग्ज्ञान लक्ष्मी के संगमोचित सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त होता है। सम्यक्त्व प्राप्ति का शुभ मुहुर्त यही है।

उस अन्तर्मुहूर्त के प्रथम समय में पापान्धकार को नाश करने के लिए सूर्य, सकल पदार्थों को इच्छा मात्र से प्रदान करने वाला चिन्तामणि, कभी भी न्यून न होने वाला, संवेगादि गुण की खानि ऐसा सम्यक्त्व होता है। और तब सम्यग्दर्शन हो जाने से संसार से मुक्त होने को स्वयं अरहन्त देव स्वरूप वह अंतरात्मा अपने को मानता है ॥३१॥

अनादि काल से आज तक अनन्त जन्म-मरण धारण किये और प्रत्येक जन्म में अनित्य जयन्तियां (वर्ष वर्द्धनोत्सव) मनाईं। परन्तु आज से (करण लब्धि हो जा पर) नित्य जीवन की प्रथम जयन्ती (वर्ष वर्द्धन महोत्सव) प्रारम्भ हुई, जो अनन्त काल पर्यन्त उत्तरोत्तर विजय देती हुई स्थिर रहेगी। इतना ही नहीं सब, संसारी जीव भी इसका जयगान करते हुये वर्षवर्द्धन महोत्सव मनाते रहेंगे ॥३२॥

इस प्रकार नित्य सुखानुभव के प्रथम वर्ष प्रारम्भ होने के पश्चात् अपने आत्मा में ॥३३॥

तीनों लोकों का मैं स्वयं गुरु बन गया, ऐसा चिन्तन करता है ॥३४॥

मैंने अपने अन्दर अरहंत भगवान को देख कर पहिचान लिया ॥३५॥

मैं समस्त परभाव रूप अशुद्धियों से रहित परम् विशुद्ध हूं ॥३६॥

अब हम अन्तरात्मा पद से परमात्मा बन गये ॥३७॥

अब हमें सच्चा पंचपरमेष्ठी का पद प्राप्त हो गया ॥३८॥

सम्पत्ति के दो भेद हैं। (१) अन्तरंग सम्पत्ति (लक्ष्मी) और (२) वाह्य सम्पत्ति (लक्ष्मी)। धन गृह, वाहन इत्यादि से लेकर समवसरण पर्यन्त समस्त वस्तुयें बहिरंग सम्पत्ति (लक्ष्मी) तथा ज्ञान, दर्शनादि अनन्त गुणों वाली अंतरंग सम्पत्ति (लक्ष्मी) है। इन दोनों सम्पत्तियों को प्राकृत और कानड़ी भाषा में 'सिरि' और संस्कृत, हिन्दी इत्यादि में श्री कहते हैं। लौकिक काव्य की रचना के प्रारम्भ और आत्म-शुद्धि के प्रारम्भ में या दीक्षा के प्रारम्भ में 'सिरि' और 'श्री' शब्दों का प्रयोग मंगलकारी मान कर किया जाता है। कहा गया है कि:—

"आदौ सकार प्रयोगः सुखदः"। अर्थात् आदि में सकार का प्रयोग सुखदायक होता है। 'सिरि' और 'श्री' ये दोनों शब्द हमें आत्म ज्ञान रूप में उपलब्ध हुये हैं, ऐसा वे योगी चिन्तन करते हैं ॥३९॥

मंगल चार प्रकार के होते हैं। [१] अरहंत मंगल, [२] सिद्ध मंगल, [३] साधु मंगल, (४) तथा केवलि भगवान प्रणीत धर्म मंगल ॥४०॥

ऊपर कहा हुआ जो भगवान का चरण है वही परमात्म-चरण रूप भूवलय है ॥४१॥

अपने आप के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले तथा उस कार्य में रहने वाले आनन्द से शासित जो आत्म रूप सुख है वह अपने आत्म ज्ञान-गम्य है, अन्य कोई जानने में अशक्य है ॥४२॥

वही शिव है वही शाश्वत है, निर्मल है, नित्य है और अनन्त भव को नष्ट करने वाले अविरल सुख सिद्धि को प्राप्त किया हुआ महादेव है। वही अनादि मंगल स्वरूप है ॥४३॥

वह ऋद्धि इत्यादि की आशा न करने वाला चिन्मय रूप है। अत्यन्त निर्मल शुद्धात्मा को प्राप्त हुआ बुद्धि, ऋद्धिधारी, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी है। यही शुद्ध सम्यक्त्व का सार है ॥४४॥

वह यही मेरी शुद्धात्मा वीतराग, निरामय, निर्मोही है। समस्त प्रकार के भय और चिन्ता से रहित है। संसारी भव्यजन के लिए इहलोक और परलोक

के सुख का साधन है, पवित्र है, पुण्यमय है तथा उत्तम सौख्य को देने के लिए आश्रयदाता है ॥४५॥

राग, द्वेष, क्रोध, मोह आदि से रहित है, क्रोध, मान, माया लोभ जो अनन्तानु बन्धी की चौकड़ी है उससे रहित तथा अन्य प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान, संज्वलन इत्यादि कषायों के भेदों से रहित आप अपने अन्दर ही अनुभव किया हुआ शुद्धात्म काव्य नामक शिरीर अर्थात् सिद्ध भगवान का यह भूवलय है॥४६॥

यही भगवान की दिव्य वाणी है ॥ ४७ ॥

प्रत्याख्यानावरण नामक ॥ ४८ ॥

कषाय के ढेर को ॥ ४९ ॥

भस्म करते आये हुए प्रत्याख्यान ॥ ५० ॥

संयम को न घातने वाला सूक्ष्म संज्वलन कषाय है ॥ ५१ ॥

वह निर्मल जल रेखा के समान है ॥ ५२ ॥

ऐसे निर्मल जल के समान उज्ज्वल कषाय के मन्दोदय-वाले आत्मानुभव में मग्न होते हैं ॥ ५३ ॥

अपने आत्मा के अन्दर हमेशा रमण करते हैं ॥ ५४ ॥

प्रति समय में अपने आत्मा के अन्दर ॥५५ ॥

कषाय राशियों के ढेर को ॥५६॥

नाश करते हुए आता है कि ॥५७॥

जैसे निर्मल जल रेखा के समान ॥५८॥

तब अत्यन्त निर्मल शुद्धात्म-स्वरूप अपने अन्दर जैसे निर्मल गंगा का पानी अपने घर में आकर पाइप के द्वारा प्रविष्ट होता है और पीने योग्य होता है उसी प्रकार जैसे-जैसे कषाय ढेरों का उपशम होता जाता है वैसे ही अपने अन्दर आकर निर्मल शुद्ध भावों का प्रवेश होता है ॥५९॥

तब उसी समय उस योगी को भेद-विज्ञान प्राप्त होता है। यानी सम्पूर्ण पर-वस्तुओं से भिन्न तथा अपने शरीर से भी भिन्न विज्ञानमय आत्मानन्द सुख स्वरूप का अनुभव वह जीव प्राप्त कर लेता है ॥६०॥

तब उस समय आत्म-ध्यान-रत योगी जैसे उड़द के ऊपर के छिलके को अलग कर देता है ॥६१॥

उसी तरह छिलके से भिन्न उडद की दाल के समान अत्यंत परिशुद्ध अपने आत्मा में रत होते हुए ॥६२॥

भगवान जिनेश्वर के समान निश्चल योग में स्थिर होकर बैठ जाता है ॥६३॥

इस प्रकार योगी अपने योगानं में जिस समय रत रहता है उस समय अपने आत्मा के अन्दर ही सिद्धालय को प्राप्त हो जाता है अर्थात् मैं इस समय शुद्धस्वरूप हूं और अन्य किसी स्थान में नहीं हूं। शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर मैं सच्चे सिद्धालय में विराजमान हूं ॥६४॥

उस सिद्धालय के अनन्त ॥६५॥

राशि के तुल्य यह सिद्ध भूवलय है ॥६६॥

इस भूवलय में रहने वाले समस्त ६ द्रव्य पंचास्ति काय सप्ततत्त्व नौ पदार्थ नामक वस्तुओं को मिलाकर गणित के अनुसार जानने वाला परमात्म स्वरूप जीव ही गणित है ॥६७-६८॥

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इन तीनों को मिलाकर संकलित कर गुणा करने से अर्थात् ३ × ३ = ९ × ३ = २७ इस तरह करने से २७ अंक आता है। ६९॥

इस भूवलय सिद्धान्त के ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्व, ९ पदार्थ इन सभी को मिलाकर आया हुआ जो २७ है यही श्री भगवान महावीर की वाणी के द्वारा आया हुआ यह मंगल काव्य है। तीनों लोकों के अग्र-भाग में अनन्त, अनागत काल तक हमेशा प्रकाशमान होने वाला वह शिवलोक प्राप्त करने वाला मानव धवल छत्राकार के अग्र-भागमें अगुरुलघु आदिअत्यंत अमृतमय शुद्धात्म गुणों में चिरकाल पर्यन्त वास करता है। इसी प्रकार मेरी शुद्धात्मा भी धवल छत्राकार के मध्य में अगुरुलघु सहित अत्यन्त अमृतमय सिद्धात्मा के गुणों में विराजमान है ॥७०-७१॥

विवेचन—मोक्ष में परमात्मा के अगुरुलघु नामक एक गुण है, यह गुण आत्मा का स्वभाविक गुण है, इस गुण के बल से आत्मा नीचे नहीं गिरता है और सिद्ध लोक से बाहर अलोक आकाश में भी नहीं जाता है। इस प्रकार इस अगुरुलघु गुण का स्वभाव है। यह अगुरुलघु नामक जो गुण है आत्मा के

आठ गुणों में से एक गुण है। इसी तरह आगम में आठ कर्मों को आपस में गुणाकार करके निकालते समय नाम कर्म के अनेक भेदों में से एक अगुरु लघु नामक शब्द भी आता है वह नहीं समझना चाहिए। क्योंकि सिद्धों के आठ गुणों में जो अगुरुलघु शब्द आया है उसे 'अगुरुलघुत्व' कहते हैं इसलिए दोनों भिन्न-भिन्न हैं। वह अगुरुलघुत्व गुण कर्म से रहित है और जो अगुरुलघु है वह कर्म से सहित है।

सिद्ध भगवान अव्याबाध गुण से युक्त हैं।

अव्याबाध—

जिस जगह में हम बैठे हैं उस जगह में दूसरे मनुष्य नहीं बैठ सकते हैं इतना ही नहीं किंतु हमारे पास भी नहीं बैठ सकते हैं, इसका कारण यह है कि उनके शरीर का पसीना हमको अपाय कारक होता है अर्थात् दोनों जनों का पसीना आपस में विरोध रूप है। परन्तु सिद्ध भगवान के एक ही जगह में अनन्त सिद्ध भगवान होने पर भी हमारे शरीर धारी के समान उनको कोई भी बाधा नहीं होती है। श्री महावीर भगवान सर्व जघन्यावगाह के सिद्ध जीव हैं। उनके जीव प्रदेश में अनन्तानन्त सिद्ध जीव एक क्षेत्रावगाह रूप से हमेशा रहते हुए भी परस्पर बाधा रहित हैं ॥७२॥

सूक्ष्मत्व गुण—

प्रत्येक सिद्ध जीव में सूक्ष्मत्व नामक एक गुण है। इस गुण से महान गुणों से युक्त अनन्त जीवों में रहने वाले अनन्तानन्त गुणों के समूह को एक ही जीव ने अपने अन्दर समावेश कर लिया है इसी का नाम सूक्ष्मत्व है।

उदाहरणार्थ एक कमरा लीजिए उस कमरे को चारों ओर से बन्द करके उसके भीतर हजारों विद्युत दीपक रखिये। पहले समय में एक बल्ब का बटन दबाया जाय तो एक दीपक जलता है तब उस दीपक का प्रकाश कमरे के आकाररूप फैल जाता है, अर्थात् जिस समय उस बल्ब का प्रकाश फैल जाता है उस समय उस कमरे के अन्दर रखी हुई कोई चीज बिना प्रकाश से बच नहीं सकती, सभी पदार्थों पर प्रकाश पड़ता है। उसी समय अगर उसी कमरे के अन्दर दूसरा बटन दबाया जाय तो उतना ही प्रकाश उसमें ही समावेश हो जाता है और उसमें भिन्न प्रकाश मालूम न होकर एक रूप दीखता है। इसी तरह हजारों बल्बों के बटनों को दबाते जायें तो उन सबका भी प्रकाश उसी में शामिल होते हुए उसमें भिन्नता दिखाई नहीं देती है। तब इन हजारों बल्बों का प्रकाश जैसे एक ही प्रकाश में समा गया? सबसे पहले जो एक दीपक का अखंड प्रकाश था, उसमें जितने-जितने और प्रकाश पडते गये उतने-उतने पहले के दीपक सूक्ष्म रूप होते हुए प्रकाश गुण बढ़ता जाता है। जहां मूर्ति रूप पुद्गल में यह शक्ति देखने में आती है, तो अमूर्त रूप सिद्धों में अन्य सिद्धों का सूक्ष्मत्व गुण के कारण समावेश होनेमें कौनसा आश्चर्य है? अर्थात् नहीं है ॥७३॥

अवगाहगुण का विवेचन—

एक क्षेत्र में अनेक पदार्थों का समावेश हो जाना अवगाहन शक्ति है। जैसेकि ऊंटनी के दूध से भरे हुए घड़े में चीनी समा जाती है उसके बाद उसमें भस्म भी समा जाती है। कोई किसी को रुकावट नहीं पहुंचाती, उसी प्रकार जिन आकाश के प्रदेशों में एक आत्मा के प्रदेश हैं उन्हीं में अनन्त आत्माओं के प्रदेश भी समा जाते हैं और धर्म अधर्म आकाश काल और पुद्गल परमाणु भी बने रहते हैं। इसी को अवगाहन गुण कहते हैं। इसी प्रकार इस भूवलय में जितने प्रतिपाद्य विषय हैं उनके वाचक शब्द हैं और भिन्न-भिन्न अर्थ हैं, वे सब एक दूसरे को न तो बाधा देते हैं और न विरुद्ध अर्थ कहते हैं, सब विषय परस्पर में एक दूसरे की सहायता करते हुए रहते हैं ॥७४॥

जैसे सिद्ध भगवान में अनन्त ज्ञान रहता है, उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ में भी अनंत ज्ञान भरा हुआ है ॥७५॥

जिस प्रकार सिद्धों में अनन्त दर्शन, सम्यक्त्व रहता है उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ में सम्यक्त्व तथा अनंत दर्शन विद्यमान है शब्द रूप में अनंत बल सहित है ॥७६-७७॥

वे सिद्ध अनागत सुख के धारक हैं ॥७८॥

वे अतीत ज्ञान के धारक हैं ॥७९॥

शरीर रहित होने पर भी उनका आकार चरम शरीर से किंचित् ऊन है और आत्मघन प्रदेश रूप है ॥८०॥

वे शाश्वत और चित्स्वरूप हैं ॥८१॥

वे हमेशा नित्य हैं ॥८२॥

उनका सुख हमको प्राप्त हो ॥८३॥

इन सब को बतलाने वाला यह नव पद काव्य नामक भूवलय है ॥८४॥

प्रश्न ?

६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्व, ९ पदार्थ ये मिलकर २७ हुए। २७ चक्र कोष्ट भूवलय में हैं तब आप नवपद भूवलय कैसे कहते हैं ?

उत्तर—२७ सत्ताईस संख्या के अंक ७+२ जोड़ देने से ९ होते हैं इस लिए नव पद से निर्मित भूवलय है।

सिद्ध लोक के अग्रभाग की तरफ गमन अर्थात् उपयोग करने वाले योगी-राज विश्व के अधिपति हुए, सिद्ध परमात्मा वेद अर्थात् जिन वाणी रूप हैं। ऐसे ध्यान करते हुए अपनी आत्मा को प्रफुल्लित करने वाला यह विश्वज्ञ काव्य सभी काव्यों में अग्रसर है, अर्थात् यह अग्रायणीय पूर्व से निकला हुआ काव्य है ॥८५॥

यह काव्य अरहंत परमेष्ठी की दिव्य वाणी के अनुसार और श्री वृषभ-सेनादि आचार्य परंपरा के आदि पद से आने के कारण परमामृत काव्य अर्थात अत्यन्त उत्कृष्ट अमृतमय काव्य है। अपने को गुरु या अरहंत या सिद्ध पद प्राप्ति की जो इच्छा रखता है उन्हीं को यह भूवलय काव्य रास्ते में सरस (सुगम) विद्यागम को पढ़ाते हुए अंत में परम कल्याण कर देने वाला है ॥८६॥

विवेचन—यहां तक कुमुदेन्दु आचार्य ने ८६ श्लोक तक अरहंत की अंतरंग सम्पत्ति के बारे में, सिद्ध भगवान के गुणों के बारे में और तीनों गुरु आदि समस्त आचार्यों के शीलगुणादिक के वर्णन में ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ सात तत्व और नौ ९ पदार्थादिक के वर्णन में बहुत सुन्दरता के साथ लिखे हैं। ये सब तीन लोक के अंतर्गत हैं; इतने महान होते हुए भी इनका एक जीवात्मा के ज्ञानके अंदर समावेश है। ऐसे जीव संख्या में अनन्त हैं। उन अनंतों में से प्रत्येक जीव के अंदर ऊपर कहे हुए समस्त विषय समाविष्ट हैं। उन सब विषयों को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने एकत्र रूप में अपने भूवलय ग्रन्थ में समाविष्ट किया है। यह किस तरह से समाविष्ट है ? इस का उत्तर निम्नलिखित श्लोकों में निरूपण किया है। हम पहिले से ही लिखते आए हैं कि इस भूवलय में कोई भी अक्षर नहीं है। यदि भिन्न-भिन्न ग्रन्थों की रचना जैसे का तैसा भिन्न-भिन्न करते तो उन ग्रन्थों में इतने विषय समावेश नहीं कर सकते थे, परन्तु अनादि काल से चले आये दिव्य ध्वनि के आधार से सम्पूर्ण विषयों को आदि से लेकर अनंत काल तक ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ अंकों में गर्भित करते हुए उन अंकों में परस्पर गुणाकार करते हुए अनंत गुणाकार तक अर्थात् सिद्ध-भगवान के अनंत ज्ञान तक ले जाकर उस महान् अंक राशि को अर्धच्छेद रूप गणित रूपी शस्त्र द्वारा काटते हुए जघन्य संख्या से २ तक लाकर दिखाने के लिए चक्र बंध रूप २७×२७ कोठा बना कर अनेक प्रकार की पद्धति से निकाल कर अंक रूप कोष्ठक में भरा है। वह कोष्टक अनेक विकल्प रूप है। वे विकल्प कितने प्रकार के हैं ? जितनी अर्धच्छेद-शलाकायें हैं उतने मात्र हैं। वे अर्धच्छेद-शलाका कितने प्रकार की हैं ? इसके उत्तर में आचार्य समाधान करते है कि हमने उसे अनन्त राशि से लिया है। हमारे अनंत बार अर्धच्छेद करते चले आने पर भी वह शलाकाछेद भी अनन्त होना अनिवार्य है, अर्थात् वह अनन्त अर्धच्छेद हैं। इन समस्त अनन्त राशियों को उपर्युक्त कोष्ठकों में संख्यात रूप से हम भर चुके हैं। इसलिए समस्त भूवलय में समस्त विषयों को गर्भित करने में हम समर्थ हुए। मंगल प्राभृत के इस चौथे 'इ' अध्याय के अक्षर रूपी काव्य में जो भिन्न २ प्रकार की भाषायें और विषय उपलब्ध होते हैं, वे बड़े महत्वशाली तथा रुचिकर श्लोक हैं। इसे देखकर पाठकगण को स्वाभाविक रूप से आनन्द प्राप्त होगा ही, किन्तु उन्हें सावधान रहकर केवल प्रस्तुत आनन्द में ही रत नहीं हो जाना चाहिए क्योंकि यदि वे केवल इसी में मग्न रहेंगे तो आगे आने वाले अत्यन्त सूक्ष्म विषय को समझ नहीं सकेंगे।

नम्म ज्ञानवदेष्टु निम्म ज्ञानवदेष्टु, नम्मनिमेल्लरगें पेळ्व।
नम्म सर्वज्ञ देवन ज्ञान वेष्टेंब हेम्मेय गणित शास्त्र दोळु।
नम्मय गणित शास्त्रदोळु। निम्मय गणित शास्त्र दोळु॥
इत्यादि--

अर्थात् हमारा ज्ञान कितना है, तुम्हारा ज्ञान कितना है तथा हम सब को सदुपदेश देकर सन्मार्ग पर लगाने वाले सर्वज्ञ भगवान् का ज्ञान कितना है ? इन सब को बताने वाला गौरव शाली यह गणितशास्त्र भूवलय है। यह गणित

शास्त्र हमारे ज्ञान की भी गणना करता है, आपकी (हम से भिन्न जीव के) भी गणना करता है। इस प्रकार यह गणित शास्त्र हमारे गौरव को बढ़ाता है। आपके गौरव को बढ़ाता है और सबके गौरव को बढ़ाता है।

भूवलय रचना चक्रबन्ध पद्धतिः—

इसकी पद्धति में (१) चक्रबन्ध, (२) हंसबन्ध, (३) शुद्धाक्षर बन्ध, (४) शुद्धांक बन्ध, (५) अक्षबंध (६) अपुनरुक्ताक्षर बंध (७) पद्म बन्ध (८) शुद्ध नवमांक बन्ध (९) वर पद्म बन्ध (१०) महा पद्म बन्ध (११) द्वीपबंध (१२)सागर बन्ध (१३) उत्कृष्ट पल्य बन्ध (१४) अम्बु बन्ध (१५) शलाका बन्ध (१६) श्रेण्यंक बन्ध (१७) लोकबन्ध (१८) रोम कूप बन्ध (१९) क्रौञ्च बंध (२०) मयूर बन्ध (२१) सीमातीत बंध (२२) कामदेव बन्ध [२३] काम-देव पद पद्मबन्ध [२४] कामदेव नख बन्ध [२५] कामदेव सीमातीत बन्ध [२६] गणित बन्ध [२७] नियम किरण बन्ध [२८] स्वामी नियम बन्ध [२९] स्वर्ण रत्न पद्म बन्ध [३०] हेमसिंहासन बन्ध [३१] नियमनिष्टाव्रत बन्ध [३२] प्रेमरोषविजय बंध [३३] श्री महावीर बन्ध [३४] मही-अतिशय बंध [३५] काम गणित बंध [३६] महा महिमा बंध [३७] स्वामी तपस्वी बंध [३८] सामन्तभद्रबंध [३९] श्रीमन्त शिवकोटि बंध [४०] उनकी महिमा तप्त बंध [४१] कामित फल बंध [४२] शिवाचार्य नियम बंध [४३] स्वामी शिवायन बंध [४४] नियमनिष्ठा चक्र बन्ध [४५] कामित बंध भूवलय "९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५.९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८।

छह प्रकार के संहनन होते हैं, ४४ आदि का बंध उत्तम संहनन है। ४४ संहनन का अर्थ हड्डी की रचना है उत्तम संहनन का अर्थ वज्र के समान निर्माण हुए हड्डी और संधि बंधन इत्यादि जो चीजें हैं ये सभी वज्र के समान बने हुए हैं। यह संहनन तद्भव अर्थात् उसी भव में मोक्ष जाने वाले भव्य मनुष्यों को होता है। तद्भव मोक्षगामी वज्र समान संहनन वाले मनुष्य के शरीर को किसी मामूली शस्त्र के द्वारा काट नहीं सकते हैं। जैसे शरीर आदि भूवलय के कर्ता गोमटेश्वर अर्थात् वृषभनाथ भगवान के पुत्र बाहुबली का भी था। वही बाहुबली भूवलय ग्रन्थ के आदि कर्ता थे। उनका शरीर जैसा था वैसी ही दृढ़ इस भूवलय चक्र बंध की रचना की है। इसलिये इस बंध का नाम उत्तम संहनन चक्रबंध उत्कृष्ट शरीर का राग उस बाहुबली के शरीर संस्थान ४५ समचतुर संस्थान अर्थात् सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार अंगोपांग की सबसे सुन्दर रचना की है। इस भूवलय ग्रन्थ के अनेक बंध हैं। इन सभी बंधों में से एक ४६ सूत्र वलय बंध है ४७ प्रथमोपशम सम्यक्त्व बंध, ४८ गुरु परम्परा आचाम्ल व्रत बंध, ४९ सत् तप बंध, ५० कोष्ठक बंध, अध्यात्म बंध, ५१ सोपसर्ग तथा तपो बंध, ५२ (उपसर्ग आने पर भी तप जैसे उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता है, उसी प्रकार वक्तव्य विषय में बाधा पड़ जाने पर भी अपने अपने अर्थ को स्पष्ट बतलाता है) ५३ उत्तम सुपवित्र भाव को देने वाला सत्य वैभव बंध है, ५४ उपशम क्षयादि बंध है।

५५ नव पद बंधन से बंधा हुआ योगी जनों का चारित्र बंध है। ५३ अवतरण रहित अपुनरावृत्ति नवमांक बंध होने से यह सुबंध है। तेरहवाँ गुणस्थान प्रदान कर आत्मा के सार धर्म की राशि को एकत्रित कर वीर भगवान के अनन्त गुणों में सम्मिलन कर देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१०९ ॥११०॥१११॥११२॥११३॥

अनन्त पदार्थों से गर्भित यह भूवलय है शुद्धात्मा का सार यह भूवलय है धीर, वीर पुरुषों का चारित्र बल है। भव्य जीवों को अपवर्ग देने के लिए यह आवास स्थान है। निर्ममत्व अध्यात्म को बढ़ाने वाला है, क्रूर कर्म रूपी शत्रु का नाश करने वाला है, भव्य जीवों को मार्ग बतलाने वाला यह भूवलय है। अनेक वैभव को देने वाला सत्यवलय अर्थात् भूवलय है। अनेक महान उपसर्ग को दूर करने वाला भूवलय है, शुद्ध आत्मा के रूप को प्राप्त कर देने वाला आदिवलय है। अत्यन्त क्रूप कामादि को नाश करने वाला भूवलय है, चारित्र सार नामक यह सद्वलय है। अत्यन्त ज्ञान रूपी अमृत से भरा यह भूवलय है। हमेशा जागृतावस्था को उत्तम करने वाला भूवलय है। अत्यन्त सम्पूर्ण कठिन कर्मों का नाश करने वाला भूवलय है। संसार में अनेक प्राणी निर्भयता से परस्पर विरोध करते हुये दूसरे जीवों के प्रति अनेक प्रकार के कष्ट पहुंचाकर अन्त में क्रूर परिणाम के साथ मरकर कुगति में जाते हैं अर्थात् आपस में विरोध करते हुये पापमय धर्म को अपना धर्म मानकर निर्दयता पूर्वक अनेक जीवों को घात

पहुंचाते हुये अपना जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे समय में इस संसार में पुण्य मय दया धर्म के प्रचार के साथ फैलाते हुए आने वाले के सम्पूर्ण कष्ट नाश होते हैं। उस समय मोक्ष मार्ग खुल जाता है। जिस समय संसार में मनुष्य के अन्दर सुख का मार्ग मिलता है तब जीव संसार से छूटने की इच्छा करते है, तब उनको ठीक समाधि से मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा होती है। जब मोक्ष प्राप्त करने की समाधि उन्हें प्राप्त हो जाती है तब गुरू और शिष्य का भेद समाप्त हो जाता है ॥ १३० ॥

उसी समय अपने अन्दर शुद्ध होने का समय प्राप्त होता है। तब उसी समय जिन धर्म का अतिशय चारों ओर प्रसारित होता है जब महान द्वादश अंगों का द्वादश अनुभव वृद्धि प्राप्त कर लेता है उसी का नाम जिन वर्द्धमान भगवान का धर्म है: ॥१३१॥

समाधि के समय में मंगल प्राभृमयि यौवनावस्था को प्राप्त होता है जैसे कि चरखे पर कातने से रूई का धागा बढ़ता जाता है उसी तरह अध्यात्म वैभव भी तारुण्य को प्राप्त होता जाता है। यही शूरवीर मुनि का मार्ग है।

इसी प्रकार नवमांक में अपने अन्दर ही तारुण्य को प्राप्त कर अपने अंदर ही दृढ़ रहता है ॥१३२॥

यौवनावस्था में यदि कोई रोग हो जाये तो जैसे वह स्वास्थ्य को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जब अध्यात्म योग समाधि को प्राप्त हो जाता है तब रोग, क्रोधादि सब को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार नवमांक बन्ध सागर पल्य शला का रूप होते हुए भी अपने अन्दर रहता है। ऐसा कथन करने वाला कर्म सिद्धांत बन्ध है ॥१३३॥

श्री गुरु पद का सिद्धांत है ॥१३४॥

यह नाग, नर, अमर काव्य है ॥१३५॥

उसी समय कहा हुआ योग काव्य है ॥१३६॥

यह आत्मध्यान काव्य है ॥१३७॥

नाग पुष्प, चम्पा पुष्प, वैद्य काव्य है ॥१३८॥

योग, भोग को देने वाला सिद्ध काव्य है ॥१३९॥

अतृप्त, भोग को नाश करने वाला काव्य है ॥१४०॥

श्री शिवकोटि आचार्य शिवानन के रोग को नाश किया हुआ यह काव्य है।

नाग पुष्प, कृष्ण पुष्प स्पर्श होने से स्वर्ण बनाने वाला सिद्धांत काव्य है। कभी भी असत्य न होने वाला काव्य है।

नाग अर्जुनक द्वारा सिद्ध किया हुआ काव्य है, अर्थात् नाग अर्जुन के कक्षपुट में रहने वाला कक्षपुटांक है ॥१४१।१४२।१४३।१४४।१४५।

श्री गुरू सेनगण से चला आया है। प्रेम से कहा हुआ सिद्धांत है।

महान सुवर्ण को प्राप्त करा देने वाला काव्य है।

राग और विराग दोनों को बतलाने वाला भूवलय है ॥१४६, १४७ १४८, १४९, १५०, १५१, १५२॥

ऊपर कहा हुआ अष्टमहा प्रातिहार्य वैभव का हमने यहाँ तक विवेचन कर दिया है। यह काव्य अष्टम श्री जिनचन्द्रप्रभु तीर्थंकर से सिद्ध करने के कारण यह अन्तिम आत्म सम्पत्ति नामक अष्टम जिनसिद्ध काव्य है ॥१५३॥

अब आगे श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि रसमणि सिद्धि तथा आत्म सिद्ध का एक ही श्लोक में साथ साथ वर्णन करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

आत्मा मृदु है और स्वर्ण मृदु है लोहा कठिन है, और कर्म भी कठिन है जब लोहा और कर्म दोनों ही मृदु होते हैं तो वह समवशरण का वैभव बन जाता है जब कर्म नर्म हो जाता है तो आत्मा जाकर समवशरण में विराजमान हो जाता है और जब लोहा नर्म होता है तो वह स्वर्ण बन जाता है ऐसे दोनों को एक साथ अनुभव करा देने वाला यह काव्य समीकरण काव्य अथवा घन सिद्ध रस दिव्य काव्य है ॥

विमान के समान शरीर को उड़ा कर आकाश में स्थिर करने वाला यह काव्य है।

यह पनस पुष्प का काव्य है।

यह विश्वम्भर काव्य है।

यह भगवान जिनेश्वर रूप के समान भद्र काव्य है।

भव्य जीवों को उपदेश देकर जिन रूप प्राप्त कराने वाला काव्य है।

सिद्ध रसमणि के प्रताप से आकाश में उड़ कर लड़ती हुई सेनाओं के युद्ध को बन्द कर देने वाला काव्य है। आकाश में गमन करने वाले खेचरता के अनुभव का काव्य है ॥१५६॥

मादल (विजौरा)—जैसे एक रथ को रस्सी पकड़ कर हजारों आदमी खीचते हैं वैसे ही मादल रस से बने हुए रसमणि के आश्रय से हजारों रोग नष्ट हो जाते हैं ॥१५७॥

पुष्पायुर्वेद से यह काम सिद्ध हो जाता है ॥१५८॥

बाहुबलि अपने हाथ में केतकी पुष्प रखते थे। उस केतकी पुष्प के सिद्ध हुए पारद में भी सैकड़ों रोगों को नष्ट करने की शक्ति रहती है ॥१५९॥

आयुर्वेद के वृक्ष आयुर्वेद, पत्र आयुर्वेद, पुष्प आयुर्वेद, फल आयुर्वेद आदि अनेक भेद हैं, उनमें से यह पुष्प-आयुर्वेद है। श्रेष्ठ पुष्प-निर्मित दिव्य योग है ॥१६०॥

अग्निपुट के चार भेद हैं:—१ दीपाग्नि, २ ज्वालाग्नि, ३ कमलाग्नि, ४ गाढ़ाग्नि। यहां चारों ही अग्नियों का ग्रहण है ॥१६१॥

पादरी पुष्प से भी रस सिद्ध होता है ॥१६२॥

पारा अग्नि का संयोग पाकर बढ़ जाता है, परन्तु इस क्रिया से उड़ नहीं पाता ॥१६३॥

सर्वात्म रूप से शुद्ध हुए पारे को हाथ में लेकर अग्नि में भी प्रवेश किया जाता है ॥१६४॥

सैकड़ों अग्नि पुट देने से पारे में उत्तरोत्तर गुण वृद्धि होती जाती है ॥१६५॥

जो इस क्रिया को जानता है वह वैद्य है ॥१६६॥

तैयार किया हुआ शुद्ध निर्मल पादरस को साफ से कमरे में अग्नि के ऊपर रखकर थोड़ी देर के बाद ऊर्ध्व गमनरूप में उड़ाकर जैसे कमरे के नीचे दीपक जलता रहता है उसी प्रकार यह पारा उड़कर छत से नीचे के दीपक के समान चमकता हुआ छत्राकार में स्थिर रहता है; उस समय वह व्यक्त रूप में आंखों से देखने में नहीं आता अर्थात् जैसे शरीर को छोड़कर प्राण निकल जाते समय आंखों से दीखता नहीं है, उसी प्रकार पारा भी नहीं दीखता है। बहुत से विवाद करने वाले अज्ञानी लोग इसके मर्म अर्थात् भेद को न जानने वाले उसे यह समझते हैं कि यह आकाश में उड़ गया अर्थात् नष्ट हो गया और अपना काम बेकार हुआ ही समझते हैं। परन्तु वह पारा कहीं भी नहीं जाता है जहाँ का तहां ही है, किंतु विद्वान लोग, पारा उड़ते समय उसके नीचे की अग्नि को हटा कर तुरन्त ही उसके नीचे कागज का सहारा लगाते हुए जहां पारा ठहरता है वहा तक कागज नीचे पकड़े रहते हैं। तब वह पारा उस कागज में आकर ठहर जाता है। इसी प्रकार जंगल में आकाश स्फटिक भी रहता है। सूर्योदय के समय में जैसे सूर्य क्रमशः ऊपर २ गमन करता है, और जब ठीक बारह बजे के समय ठीक बीच में आता है और स्थिर रहता है तब उसके बाद पश्चिम की तरफ उतर जाता है और सायं काल में अस्त होता है। उसी प्रकार यह आकाश स्फटिक भी नीचे उतरते-उतरते संध्या काल में जमीन में प्रवेश भीतर ही भीतर करता जाता है। रात के बारह बजे तक इसी क्रमानुसार चलते २ एक स्थान पर स्थिर हो जाता है। इस को अधो-गमन या पाताल-गमन कहते हैं।

यदि आकाश स्फटिक मणि पर सिद्ध रसमणि सहित पुरुष बैठ जाय तो मणि के साथ-साथ सूर्य के साथ २ आकाश में और पृथ्वी के अन्दर गमन कर सकता है अर्थात् आकाश में ऊपर उड़ सकता है और नीचे पृथ्वी के अंदर घुसकर भ्रमण कर सकता है ॥१६७॥

गिरिकर्णिका नामक एक पुष्प है। इस पुष्प के रस से पारा सिद्ध किया जाता है जो ऊपर बताये हुए आकाश गमन और पाताल गमन दोनों में ठीक काम देता है ॥१६८॥

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न पुष्पों के रस से पारा सिद्ध किया जा सकता हैं ॥१६९॥

उससे भिन्न-भिन्न चमत्कारिक कार्य किये जा सकते हैं ॥१७०॥

उन भिन्न पुष्पों के नाम तीन अंक के वर्ग शलाकाओं से जो अक्षर प्राप्त हों उनसे मालूम हो सकता है ॥१७१॥

इस प्रकार कार्य-क्रम को बतलाने वाला यह भूवलय है ॥१७२॥

शूरवीर दिगम्बर मुनियों के द्वारा सिद्ध किया हुआ काव्य भूवलय नामक है ॥१७३॥

जैसे दिगम्बर मुनि अपने चंचल मन को बांध लेते है अर्थात् स्थिर कर लेते हैं उसी तरह सैकड़ों हजारों पुष्पों के रस से पारा स्थिर किया जाता है। इस तरह भूवलय से मन और पारा दोनों स्थिर किये जाते हैं ॥१७४॥

सर्वार्थसिद्धि के अग्रभाग में सिद्धशिला है उसके श्वेत छत्राकार रूप में लिखा हुआ अंक मार्ग जो आता है उसी अंक को अरहंतादि नौ अंकों से मिश्रित अपने अंदर देखना, जानना ही भूवलय नामक सिद्धांत है ॥१७५॥

परमागम मार्ग से आयुर्वेद को निकाल दिया जाय तो—१३.०००००० करोड़ पदों को मध्यम पद से गुणाकार करने से २१२५२८००२५४४०००००० इतने अक्षर आगम मार्ग से सिद्ध हैं अर्थात् निकल आते हैं। ये अंक एक सागर के समान हैं। तो भी यह अंकाक्षर अपुनरुक्त रूप है। इसलिए यह सागर रूप 'रत्न मंजूषा' नाम से प्रसिद्ध है ॥१७६॥

इस भूवलय में ७१८ भाषाओं के अवतार हैं, यह अवतार प्रथम संयोग से भी निकल आता है ऐसा कहने वाला यह सिद्ध भूवलय नामक काव्य है॥१७७॥

दूसरे संयोग से भी आता है ॥१७८॥

तीसरे संयोग से भी आता है ॥१७९॥

चौथे संयोग से भी आता है ॥१८०॥

६४ अक्षर संयोग से भी आता है ॥१८१॥

इससे परमात्म कला अंक भी देख सकते हैं ॥१८२॥

इसलिए यह परम अमृतमय भूवलय है ॥१८३।

इस तरह [१] ६४×१=६४ [२] ६४×६३=४०३२

[३] ६३×६२=२४९९८४ [४] ६२×६१=१५२४९०२४

इस क्रम के अनुसार है। इस प्रकार महाराशि को बतलाना ही परमात्मा का अर्थात् केवली भगवान की ज्ञानरूपी कला है। यह कला इसमें गर्भित होने के कारण यह भूवलय ग्रन्थ परमात्म-रूप है।

उत्तरोत्तर ऋद्धि प्राप्त योगी मुनि के समान पहले के तीन अंकोंने समस्त अंकों को अपने अंदर समावेश कर लिया है। उसी तरह यह चौथा अध्याय भी यहां ७२९० अंकों को अपने अंदर गर्भित कर नौ अंक में सिद्धांक रूप होकर श्रेणी रूप में स्थित है, अर्थात् १० चक्र के अंदर यह गर्भित है ॥१८४॥

इतने अंकों में से और भी अंतर रूपसे निकाल दिया जाय तो १०९२६ इतने और भी अंक आ जाते हैं, इतने अंकों को अपने अंदर गर्भित करता हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥१८५॥

'इ' ७२९०+ अंतर १०९२६=१८२१६।

अथवा 'आ' – ई = ४६६११+१८२१६=६४८२७।

इति चौथा 'इ' अध्याय समाप्त हुआ।

———

चौथे अध्याय के प्रथम अक्षर से लेकर ऊपर से नीचे तक पढ़ते जांय तो प्राकृत गाथा निकल आती है उस का अर्थ इस प्रकार है—

इस भूवलय ग्रन्थ के मूल तन्त्र कर्ता श्री वीर भगवान हैं। उनके पश्चात् इन्द्रभूति ब्राह्मण, उपतंत्र कर्ता हुए, कुमुदेन्दु आचार्य तक सभी आचार्य अनुतंत्र कर्ता हैं। अब आगे इस अध्याय के बीच में आने वाले संस्कृत गद्य का अर्थ कहते हैं :—

श्री परम पवित्र गुरु को नमस्कार, श्री परमगुरु और परम्परा आचार्यों को नमस्कार, श्री परमात्मा को नमस्कार।

पांचवां अध्याय

ई※ ग आवाग हिन्दण मुन्दके बहा । नागतकाल वेल्लवनु ॥ आग स※ दन्तव सागुत काणुव । श्री गुरुवय्वर ज्ञान ॥१॥
य※ वेयकाळिन क्षेत्रवळतेयोळडगिसि । अवरोळनंत वस क※ लान् ॥ कवनवदोळ् सवियागिसिपेळुव । नव सिरिइरुव भूवलय ॥२॥
म※ र्मद सम्यज् ज्ञान वात्मनरूपु । निर्मलानन्तद अ सक ल※ धर्मव परसमयद वक्तव्यतेयलि । निर्मलगोळिसुव ज्ञान ॥३॥
णा※ णवरणीय कर्मवळियलु । तानु केवल ज्ञानियागि ॥ आनन्द क※ रनु आत्म स्वरूपव ताळ्व । श्री निलयान् क ओम्बत्तु ॥४॥
या※ वाग नोडिदरावागअललिये । ठाविनपूर्णान्कवेनसि ॥ तावुका लु※ ष्यव होन्दुवन्कगळनु । तीविकोन्डिरुवात्म नवम ॥५॥
पावन परिशुद्ध नवम ॥६॥ ईविश्व परिपूर्ण नवम ॥७॥ साविर लक्षान्क नवम ॥८॥ पावन सूच्यग्र नवम ॥९॥
श्री विश्वदादियु नवम ॥१०॥ साविर कोटिगळ् नवम ॥११॥ सावु वाळ्विकेयोल्ल नवम ॥१२॥ सावु नोवुगळल्लि नवम ॥१३॥
नावुगळरियद नवम ॥१४॥ श्री वीरनरिकेय नवम ॥१५॥ दावानल कर्म नवम ॥१६॥ ऋवागमवर्प नवम ॥१७॥
ओविद्यासाधन नवम ॥१८॥ पावनवागिप नवम ॥१९॥ करुवेल्लवनु ह नवम ॥२०॥ तावुताविनोळेल्ल नवम ॥२१॥
श्रीवीर सिद्धान्त नवम ॥२२॥ श्री वीरसेनर नवम ॥२३॥ नावुगळळेयुव नवम ॥२४॥ कावुतलिरुव भूवलय ॥२५॥
व※ रद हस्तद नवपदद निर्मलदन्क । गुरुगळय्वर इ ष※ टदन्क ॥ सरससाहित्यदवर्णनेगादिय । वरवकेवललब्धियन्क ॥२६॥
हा※ रदग्रवरत्न नायक मणियन्क मूरु । मूर्ल ओम्बत्त् अ※ न्क न्नुरु सावित लक्ष कोटियोळ् ओम्दम् । दारिदेगेयलोम्बत् अन्क॥२७॥
रि※ द्धि सिद्धिगळनु कूडिसि कोडुवन्क । होद्दि वरुव दिव्यव् वि※ द्ये ॥ अध्यात्मसिद्धियसाधिसिकोडुवन्क । शुद्धकर्माटकदन्क॥२८॥
य※ शस्वतिगाडुव प्राकृत लिपियन्क । रसद समस्कृत ध※ रव्यदन्क॥ असमानद्रविडआन्ध्र महाराष्ट्र। वशदलिमलेयाळदन्क२९
रिसिय गुर्जर देशदंक ॥३०॥ रससिद्ध अन्गद अन्क ॥३१॥ यशद कळिन्गद अन्क ॥३२॥ रसद काश्मीरान्गबन्क ॥३३॥
ऋषिय कम्भोजादियंन्क ॥३४॥ वसनद हम्मीरदन्क ॥३५॥ यश शौरसेनीयदन्क ॥३६॥ रस वालियन्क दोम्बत्तु ॥३७॥
वशवा तेबतियादियन्क ॥३८॥ रसवेन्गि पळुविन अन्क ॥३९॥ असमान वन्ग देशान्क ॥४०॥ विषहर ब्राम्हियाद्यन्क ॥४१॥
रस नेमि विजयार्धदन्क ॥४२॥ व्यसनवळिप पद्मदन्क ॥४३॥ रस सिद्धि वय्दर्भ्यरन्क ॥४४॥ वशद वय्शालियाद्यन्क ॥४५॥
रसद सौराषट्र दाद्यन्क ॥४६॥ यशद खरोष्ट्रिय अन्क ॥४७॥ वशद निरोष्ट्रद अन्क ॥४८॥ वशदापभ्रम्शिकदन्क ॥४९॥
दिशेय पय्शाचिकरन्क ॥५०॥ यशद रक्ताक्षरदन्क ॥५१॥ वशवादरिष्ट देशान्क ॥५२॥ कुसुमाजियर देशदन्क ॥५३॥
रसिकर सुमनाजियन्क ॥५४॥ रसदय्नद्रध्वजदन्क ॥५५॥ रस जलजद दलदन्क ॥५६॥ वशद महा पद्मदन्क ॥५७॥
रसदर्ध मागधियन्क ॥५८॥
आ※ रस पारस सारस्वतदन्कम् । बारस देशदाद्यन्क ॥ वीर व※ शद देशदारय् के सेरिद । शूर मालव लाट गवुड ॥५९॥
इ※ वुगळ नेरेनाड मागध देशान्क । अवराचेय विहारान्क ॥ नव म※ दक्षरद उत्कल कन्याकुब्जान्क । सविय वराह नाडन्क ॥६०॥
रि※ द्धिय वय्श्रमणर नाडिनन्कवु । शुद्ध वेदान्तदाद्य स※ र । इद्लुले इरुव सन्दर्भद नाडन्क । एद्दु बरुव चित्रकरद ॥६१॥
य※ डगय्य नाडन्क वेन्देने ब्राम्हिय । एडगय्य सरद क※ न्नडद मडुविनन्कदे बेरेसलु अय्दय्वादन्क ॥ एडबलसन्दरियन्क ॥६२॥

५४ में १ मिलकर = ५५ = १० (यह सौंदरिय अन्क) पोडविय हदिनेन्दु लिपिय ॥६३॥ बिडिसलार् ओम्बत्तरन्क ॥६४॥
गडिय मूरल मूररन्क ॥६५॥ सडगरदलि हदिनेन्दु ॥६६॥ डिडिगळनोड गूडिदन्क ॥६७॥ कडेगे ऐवत्नाल्करन्क ॥६८॥
ओडगूडे त्रयहदिनेन्दु ॥६९॥ नडेय मूरर ओम्बत्तन्क ॥७०॥ अडविय बनवासियन्क ॥७१॥ मडदिय त्यागिगळन्क ॥७२॥
इडिदु कूडिदर् ओम्दे अन्क॥७३॥ बिडिसि नोडिदरोम्दे अन्क ॥७४॥ गुडियोळाडुव ज्ञानदन्क ॥७५॥ नुडियु करमाटकद्अन्क ॥७६॥
हिडिय मातुगळ भूवलय ॥७७॥ ओडगूडे करमाटकद्अनक ॥७८॥

प* रमम् पेळिद हदिनेन्दु मानिन । सरसद लिपि ई नवम ॥ वर मृ* न्गल प्राम्रुतदोळु अन्कव । सरिगूडि बरुवे भाषेगळम् ॥७९॥
र* सवु मूलिकेगळ सारव पीर्वन्ते । होस करमाटक भाषे ॥ रस श्* री नवमान्कवेल्लरोळ्बेरेयुत । होसेदु बन्दिह ओम् ओम्दन्क ॥८०॥
सृ* रम्वादा ओम्कार दोळडगिद । सर्वज्ञ वाणियम् होसेये ॥ श् रे* यम् पोन्दुतगणितबन्धदोळ् कट्टि । धर्म साम्राज्यदन्कदोळु ॥८१॥
प* दवागिसि पद पद्मवनागिसि । हृदय पद्मा दलरि ॥ सद य* त्ववेनिसिमेदुळ होक्कु केल्वर । हृदयके कर्मदाटवनु ॥८२॥
रा* गव वय्राग्यवनोम्दे बारिगे । तागिसे कर्णाटकद ॥ बागिल सा* लिनिम् परितन्द कारण । श्री गुरु वर्धमानान्क ॥८३॥

९×६ = ५४ ईगदु सम्ख्यातदन्क ॥८४॥ तागल सम्ख्यातदन्क ॥८५॥ वेगदनन्त समृख्यान्क ॥८६॥ रागद मध्यमानन्त ॥८७॥
तागलु उत्कृष्टानन्त ॥८८॥ आगुवनन्तानन्तान्क ॥८९॥ श्री गुरु मध्यमानन्त ॥९०॥ ओम् गुरु उत्कृष्टानन्त ॥९१॥
आगर रत्नत्रयान्क ॥९२॥ चागर शाश्वतानन्त ॥९३॥ जागरविरुव भूवलय ॥९४॥

ग* मनिसे 'अथवा प्राकृत संस्कृत । विमल 'मागध पिशाच' मृ* भा ॥ सम 'भाषाश्च शूरसेनी च' द । क्रमदे' षष्टोतर' दभूरि ॥९५॥
द* रुशिसे 'भेदोपेशविशेष्आ'द । वर'विशेषादपभ्रम्शह ॥ परम् प* द्धतियिन्तिवरनु मूररिम् । परि गुणिसलु हदिनेन्दु ॥९६॥
म* रळिसलथवा 'कर्णाट मागध'वरे। बरलु'मालव लाट गौड' । वरि* यिरि 'गुर्जर प्रत्येक त्रवमित्य' । वरद 'ष्टादश महा भाषा' ॥९७॥
म* रळि मरलि बेरे विधदिन्द पेळुव । गुरुवर सन्ध भेदगळ ॥ व* र काव्य सरणिय शय्लियन्तिरळीग । सरस सव्न्दरिय रिदन्क ॥९८॥
ण* वमान्क गणनेयोळ् भूवलय सिद्धांत । अवरनुळोमवव र* नक ॥ नवमवु प्रतिलोमवागिसि बन्दन्क । सविय भूवलय सिद्धांत ॥९९॥
सा* विरदेन्दु भाषेगळिरलवनेल्ल । पावन महावीर वाणि ॥ काव ध* र्मांकवु ओम्बत्तागिर्पाग । तावु एळ्नूर् हदिनेन्दु । १००॥

६×३=१८ । १८×३ =५४ काजुदु हम्सद लिपियम् ॥१०१॥ नावरियद भूत लिपियु ॥१०२॥ श्री वीर यक्षिय लिपियु ॥१०३॥
ठाविन राक्षसि लिपियु ॥१०४॥ तावलिज ऊहिया लिपियु ॥१०५॥ कावे यवनानिय लिपियु ॥१०६॥ कावद तुर्किय लिपियु ॥१०७॥
पावक द्रमिळर लिपियु ॥१०८॥ पावेय सइन्धव लिपियु ॥१०९॥ ताव मालवणीय लिपियु ॥११०॥ श्री विधकीरिय लिपियु ॥१११॥
पावन नाडिन लिपियु ॥११२॥ देव नागरिधाद लिपियु ॥११३॥ वय्विध्य लाडद लिपियु ॥११४॥ काविन पारशि लिपियु ॥११५॥
काव आमित्रिक लिपियु ॥११६॥ भूवलयद चाणक्य ॥११७॥ देवि ब्राह्मियु मूलदेवि ॥११८॥ श्री वीर वाणि भूवलय ॥११९॥
देवि सव्न्दरिय भूवलय ॥१२०॥

पु* ट्ट भाषेगळेळु नूरन्क मातिन । गट्टिय लिपिगळिल्लदं न् क* हुट्टदनक्षर भाषेय नरियुव । हुट्टलिल्लद लिपियन्क ॥१२१॥
व्* र 'सर् वभाषाम इ भाषा' एन्नुव । अरहन्त भाषितव् वाक्य भृ* वर 'विश्व विद्यावभासिने'(एन्नुव)एन्देम्बा परिभाषेय अंक ॥१२२॥
वा* सवरेल्लराडुव दिव्य भाषेय । राशिय गणितदे कट्टि ॥ आशा ध* र्माम्रुत कुम्भदोळडगिसि श्रीशनेळ्नूरन्क भाषे ॥१२३॥
इ* दरोळु हुदुगिह हदिनेन्दु भाषेय । पदगळ गुणिसुत बरुव र्* सदनव तोरेदु तणोवनवनु सेरे । हृदय के शान्ति ईवन्क ॥१२४॥

रि※ षिगळेल्लरु कूडि महिमेय लिपिगळ । वशगोन्डु भाषेय सर
या※ व भाषेगळलि एष्टन्क वेन्नुव । ठाविन शन्केगे तावु ॥ तावु
ई विश्ववाळुव अन्क ॥१२७॥ श्री वोरवाणिय अंक ॥१२८॥
पावन स्वसमयदंक ॥१३१॥ आविद्य काव्यद अंक ॥१३२॥
तीविकोन्डिह दिव्य अंक ॥१३५॥ सावनळिसुव चक्रान्कम् ॥१३६॥
आ※ विश्वदंक 'त्रिषष्टिहि चतुहषष्टि' । पावनवादा अंक
रा※ 'पिस्वय्स् प्रोक्ताह स्वयम्भुवा' । आपद विरुवन्कद्अ
णु※ णुपाद ब्राह्मिय एडगय्योळंकित । गुणनद सरमाले ब
स※ रस सउंदरिय बलद कय्योळच्चोत्ति । अरवत्नाल्कु
र※ सयुतवा 'अकारादि हकारान्ताम्' । वश 'शुद्धाम् मुक्तावली' म्
ण※ वर 'षीम् अयोगवाह' द 'परयंताम् सर्व' । विवर 'विद्यासु'
म्※ नु 'ताम् समवादि दधत्ब्राह्मि मेधा । विन्यति सुन्दरो, वर
क※ र ततो भगवतो वक्त्रानिहिस्रुता । क्षरावलीम् सिद्ध
द※ रुशनमाडलन्याचार्य वान्गमय । परियलि ब्राह्मियु व
म्※ रळिद दोष उपरिका मूरदु । वराटिका नाल्कने अंक ॥ सर्व
सर उच्चतारिका एळुम् ॥१४८॥ सर पुस्तिकाक्षर एन्दु ॥१४९॥ वरद भोगयवत्ता नवमा ॥१५०॥ सर वेदनतिका हत्तु ॥१५१॥
सिरि निन्हतिकाहन्मोंदु ॥१५२॥ सर माले अंक हंनेरडु ॥१५३॥ परम गणित हदिमूरु ॥१५४॥ सर हदिनाल्कु गान्धर्व ॥१५५॥
सरि हदिनय्दु आदर्श ॥१५६॥ वर माहेश्वरि हदिनारु ॥१५७॥ बरुव दामा हदिनेळु ॥१५८॥ गुरुवु बोलिदि हदिनेन्दु ॥१५९॥
इरुविवेल्लवु अंक लिपियु ॥१६०॥
ति※ रियन्व नारकररियद हदिनेन्दु । परिशुद्ध लिपियंक
र※ सभाव काव्य सनदर्भदुचित नुडि । यशस्वती देविय
य※ शस्वतियम्मन तन्गि सुनन्देय । वसरलि बनद् अन्गजन
ण※ वमन्मथ रोळगादिय मन्मथ । अवनादि केवलिनम्अ
अवधरिसुत तन्गिर्दन्क ॥१६५॥ छवियोळु काणब सत्यान्क ॥१६६॥ नवमन्मथरादियन्क ॥१६७॥
भवभय हरण दिव्यान्क ॥१६८॥ अवरोळु प्रतिलोमदन्क ॥१६९॥ अवनु कूडलु ओम्बत्त् ओम्दु १७०॥
नवकार मन्त्रवु ओम्दु ॥१७१॥ सवर्ण धर्मान्क ओम्दु ॥१७२॥ सवियागिसिरुव भूवलय ॥१७३॥

अनुलोम १-२-३-४-५-६-७-८-९
प्रतिलोम ९-८-७-७-५-४-३-२-१

लब्धान्क १-१-१-१-१-१,१-१-१-० ओम्गत्ओम्दु

ण्※ जद हत्तनु ओम्बत्तागिसिदन्क । अदरनुलोमान्कपद
म※ हसगोळिसुत ईगण हिन्दण मुन्दे । वशवप्प मातुगळन्क ॥१२५॥
स※ मन्वयगोळिसि समाधान । वीव सिद्धान्त भूवलय ॥१२६॥
साविरलक्षशन्केगळ ॥१२९॥ ठाविन उत्तरदन्क ॥१३०॥
कावनाडुव भातिनंक ॥१३३॥ ई विश्वाध्यात्मदंक ॥१३४॥
धावल्य बिन्दुविनन्क ॥१३७॥
म※ तीवि 'र्वावर्णाह शुभमतेमताह'द। काव 'प्राकृतेसंस्कृतेचा'।१३८।
ब※ न् ॥ धापद सम्योगदोळु अरवत्नाल्कु । श्रीपदपद्म सम्गुणिसे ॥१३९॥
न※ धापद सम्योगदोळु अर्वत्नाल्कु । श्री पद पद्म सम्गुणिसे ॥१४०॥
ध※ दणुविनोळ् आदीशवरेदखरोष्टिय । तनियाद वृषभांकितवु ॥१४१॥
क※ रस 'मिवस्वर व्यन्जनमीदेन द्वि । वश 'दाभेद युपय्यु ॥१४२॥
म※ 'सर्ग'॥ नव 'ताम्अयोगाक्षरसम्भूतिम्'। सवि नय्कबीचाक्षरयश्चि
भ※ घन 'सुन्दरी गणितम्स्थानम्'स'क्रमहि । धनवह'सम्यगधास्यत्।१४४।
व※ ह 'नमइ'। सरतिव्यक्तसुमनगलाम् सिद्ध' गुरु मातृकाम् 'स भूवलय
य※ दे । हिरियळादुदरिन्द मोदलिन लिपियंक । एरडनेयदु यवनांक१४६
जे※ खरसापिका लिपि अइदंक । वरप्रभारात्रिका आरुम् ॥१४७॥
सर वेदनतिका हत्तु ॥१५१॥
परम गणित हदिमूरु ॥१५४॥ सर हदिनाल्कु गान्धर्व ॥१५५॥
बरुव दामा हदिनेळु ॥१५८॥ गुरुवु बोलिदि हदिनेन्दु ॥१५९॥
व※ वनु । बरेयलु बहुदुहेळ केळलु बहुदव । सरसान्क अक्षर लिपियोळ्१६१
म※ गळ ॥ होसदाद रीति देसिक दरिकेयनेल्ल । हेसरिट्टकलियलु बहुदु१६२
न※ । यशद कामायुर् वेददोळ् त्यागव । रससिद्धियिम् काणबहुदु ॥१६३॥
ह※ सुविशाल कायद परमात्म रूपनु । अवनिन्द सवन्दरि कन्डु ॥१६४॥
पू※ अ ॥ अदरलिबरुवसोन्नेय बिट्टओम्बत्तु । पदगळकाव्यभूवलय ।१७४।

मि॰ क्कि॰ह एळ्नूरु नक्षरभाषेयम् । दक्कि॰प द्रव्याग्र अम र॰ तक्क ज्ञानव मुन्दकरियुव आशेय । चोक्क कन्नाड भूवलय ॥१७५॥
त रुणनु दोर्बलियवरक्क ब्राम्हियु । किरियसौन्दरि अरि ति॰ र्द ॥ अरवत्नाल्कक् षर नवमान्कसोन्नेय । परियिह् काव्य भूवलय ॥१७६॥

सरमग्गिकोष्टक काव्य ॥१७७॥ गुरूगळिम् परितन्दगणित ॥१७८॥ गुरुगळय्वरगणितान्क ॥१७९॥
अरहन्तरीरेदिह् गणित ॥१८०॥ सिरि वृष भेशवर गणित ॥१८१॥ गुरुवर अजित सिद्धगणित ॥१८२॥
परमात्म शम्भव गणित ॥१८३॥ सुपूज्य अभिनन्दनेश ॥१८४॥ गुरु नर वन्दय श्री सुमति ॥१८५॥
तिरियन्च गुरु पद्म किरण ॥१८६॥ नरकर वन्द्य सुपार्श्व ॥१८७॥ गुरुलिन्ग चन्द्र प्रभेश ॥१८८॥
सिरि पुष्पदन्त शीतलरु ॥१८९॥ गुरु श्रेयाम्स जिनेन्द्र ॥१९०॥ सरुवज्ञ वासुपूज्येश ॥१९१॥
अरहन्त विमल अनन्त ॥१९२॥ हरुषन श्री धर्म शान्ति ॥१९३॥ गुरु कुन्थु अर मल्लि देव ॥१९४॥
सिरि मुनि सुव्रत देव ॥१९५॥ हरि विष्टर नमि नेमी ॥१९६॥ वर पार्श्व वर्धमानेन्द्र ॥१९७॥
गुरु माले इप्पत्नाल्कुम् ॥१९८॥

त॰ रुण मन्मथनारु सोन्ने एरडु । सरियोम्दु अन्तर बो॰ ध ॥ सरस कव्य यागमदरवत् नाल्क क्षर । विरुव 'ई' काव्यवु ऐदु।१९९।
शिरसिनन्तिह् सिद्धराशि [भूवलय] ॥२००॥

म्॰ नविडेओम्बत् ओम्दुसोन्नेयु एन्दु । जिनमार्गदतिशय ध॰ र्म ॥ वेनुत स्वीकरिसलु नवपद सिद्धय । घनमर्म काव्य भूवलय ॥२०१॥

५ वा ई ८०१९+अन्तर १२००६=२००२५ अथवा अ-ई ६४,८२७+ई २०,०२५=८४,८५,२

पहले श्रेणी के सुरु के अक्षर से लेकर नीचे पढ़ते आचाय तो प्राकृत निकलता है—

ईयम्णाया वहारिय परम्परा गद्म् मणसा ।
पुव्वाइरिया आराणु सरणं कदं तिरयण निमित्तम् ॥५॥

बीच में लेकर ऊपर से नीचे के तरफ इसी श्लोक के समाण पढ़ने आजाय तो संस्कृत श्लोक निकलता है–

सकल कलुष विध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं ।
धर्म संबन्धकं भव्य जीव मनः प्रति बोधः ॥

९५ श्लोक से इनिर्वाटिड कामा तक पढ़ते जाय तो पुनः संस्कृत काव्य की दूसरी भाषा निकलती है। अर्थात्—

प्राकृक, संस्कृत, मागध, पिशाच, भाषाश्च, सूरशेनीच । षष्ठोत्तर भेदा देश विषेशादपभ्रंशह ॥
कर्णाट मागध मालव लाट गौड गुर्जर प्रत्येकत्रय मित्याष्टादश महा भाषा । सर्व भाषा मई भाषा विश्वविद्यालयाव भाषिणे ॥
त्रिषष्टिः चतुषष्ठिर्वा वर्णहा शुभमते मतह । प्राकृतेसंस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताह स्वयंभुवह ॥
अकारादि हकारांतां शुद्धाम् मुक्तावली-मिव । स्वरव्यंजन भेदेन द्विधाभेदमुपेयुषीम् ॥
अयोग वाह पर्यंतां सर्व विद्या सुसंगताम् । अयोगाक्षर संभूतिम् नंक बीजाक्षरैश्चिताम् ॥
समवादि ददत्ब्राम्ही मेधाविन्यति सुंदरी । सुंदरी गणित स्थानं क्रमैः सम्येग्हस्यत् ॥
ततो भगवतो वक्त्रानिहह श्रुताक्षरावलीं । नवइति व्यक्ति सुमंगलां सिद्ध मातृकाम् ॥

पांचवां अध्याय

अब हम पांचवें अध्याय का विवेचन करेंगे।

इस समय वर्तमान काल, बीता हुआ अनादि काल और इस वर्तमान के आगे आने वाला भविष्य काल, इन तीनों कालों के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं ईशान, वायव्य, आग्नेय और नैऋत्य, ऊर्ध्व आकाश और नीचे के भाग में यानी आकाश की सभी दिशाओं में, विद्यमान समस्त पदार्थ अर्हन्त सिद्ध परमेष्ठी के ज्ञान में स्पष्ट झलकते हैं। संसार का कोई भी पदार्थ उनके ज्ञान से बाहर नहीं है।

विवेचन:—अतीत (भूत) काल बहुत विशाल है, जितना-जितना पीछे जाते हैं, आकाश की तरह उसका अंत नहीं मिलता। इस लिये इस काल को अतीत काल या अनादि काल कहते हैं। इतना विस्तृत होने पर भी अनागत काल से भूतकाल बहुत छोटा है। अतीत काल को अनन्ताङ्क से गुणा करने पर जितना लब्धाङ्क आता है उतना अनागत काल है। इन दोनों कालों के बीच में वर्तमान काल समय मात्र है, यह वर्तमान काल बहुत छोटा होने के कारण भूतकाल और भविष्य काल को छोटी कड़ी के समान जोड़ता है। इसी तरह क्षेत्र भी है, क्षेत्र का अर्थ आकाश है। यह आकाश अनन्त–प्रदेशी होते हुए भी तीन लोक की अपेक्षा से असंख्यात-प्रदेशी भी है। परमाणु की अपेक्षा से संख्यातप्रदेशी (एक प्रदेशी) भी है।

एक घड़ा रक्खा हुआ है उसके बाहर किसी भी ओर देखा जावे आकाश ही आकाश मिलता है उस का अन्त नहीं मिलता, इसलिये आकाश को 'अनन्त-प्रदेशी' कहा है। घड़े के भीतर जो आकाश है वह सीमित है, क्यों कि वह घड़े के भीतरी भाग के बराबर है, अतः उसका अन्त मिल जाता है। फिर भी उस छोटे आकाश के प्रदेशों को अंकों से गणना नहीं कर सकते, इसलिये वह असंख्य प्रदेशी है। यदि उस घड़े के भीतर बहुत छोटा (संख्यात प्रदेशी) मिट्टी का बर्तन रख दिया जाय तो उस में जो आकाश के प्रदेश हैं वे संख्यात है, उनकी गिनती की जा सकती है। १, २, ३, ४, ५ आदि रूप से उनकी गणना कर सकते हैं। इस प्रकार अखण्ड आकाश को घट आदि पदार्थों की अपेक्षा के भेद से खण्ड रूप और आकाश की अपेक्षा अखण्ड रूप कह सकते हैं। उस छोटी मटकी के अंदर जो आकाश का प्रदेश है उसमें रक्खे हुए एक परमाणु को आकाश का सर्व-जघन्य प्रदेश कह सकते हैं। उस परमाणु को आदि लेकर १-२-३-४-५ आदि परमाणु बढ़ाते हुये समस्त आकाश के प्रदेशों की पंक्ति जानना केवली-गम्य है क्योंकि केवल ज्ञान के द्वारा समस्त विश्व के पदार्थ जाने जाते हैं ॥१॥

ऊपर कही हुई समस्त वस्तुओं को सरसों के दाने के बराबर क्षेत्र में छिपा कर उसमें अनन्त को स्थिर करके उस सकलांक को नौ अंक में मिश्रित करें, मृदु रूप में करने वाले नव श्री अर्थात् अर्हन्त सिद्धादि नव पद रूप में रहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥२॥

विवेचन:—असंख्यात प्रदेश वाले इस लोक में अनंतानन्त पुद्गल परमाणु परस्पर विरोध रहित अपने-अपने स्वरूप में स्थित हैं। (**परमाणु प्रदेशेष्वनन्तानन्तकोटयः जीव राशयः**) इस उक्ति के अनुसार वैद्य-शास्त्र के कर्ता वाग्भट्ट ने कहा है। जीव राशि में से प्रत्येक जीव में अनन्त कर्म वर्गणाओं का कैसे समावेश होता है ? इस बात का खुलासा पिछले अध्याय में कह चुके हैं। आकाश प्रदेश में अनन्त जीव और उनके कर्माणुओं को जानने के ज्ञान को नवमांक में बद्ध कर अनेक भाषात्मक रूप में व्यक्त करके उन सब को एकत्र करके इस भूवलय ने कथन किया है।

लोक में अनादि काल से ३६३ मत हैं, एक धर्म कहता है कि सम्पूर्ण जीवों की रक्षा करनी चाहिए। दूसरा धर्म कहता है जीवों का नाश करना चाहिए। तीसरा धर्म कहता है ज्ञान ही श्रेयस्कर है, तथा चौथा धर्म कहता है कि अज्ञान ही श्रेष्ठ है। इस तरह परस्पर हठ करके कलह करते रहते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतों में परस्पर संघर्ष होने के कारण जैनाचार्यों ने इन धर्मों को पर-समय में रखा है। इन सब पर-समयों को कहने के जो वचन हैं उसको पर-समय-वक्तव्य कहते हैं। जब इन सभी धर्मों को एकत्र करके कहने के लिए वाक्य की रचना होती है तब सभी धर्मों को **समन्वित करके छोड़ देता है।** यह समन्वय दृष्टि भूवलय का एक विशिष्ट रूप हुआ है। ३६३ इस अंक को

दाहिनी तरफ से मिलाने पर ६ और ३ = ९ आता है और बांयी तरफ से ३ और ६ मिला देने से ९ आता है। इस प्रकार इन अंकों में समन्वय कर देता है। यह क्रिया सम्यक् ज्ञान मात्र से ही साध्य है, अन्यथा नहीं। यही ज्ञान सभी मतों को समन्वय करने वाला है, और यही सम्यकज्ञान दर्शन चारित्र के साथ मिलकर रत्नत्रय स्वरूप करके छोड़ देता है। वह रत्नत्रय ही आत्मा का स्वरूप है। सम्पूर्ण मल दोषों से रहित होने के कारण अनंतानंत वर्ग स्थान के ऊपर जाकर सब को जान लेता है। इसी तरह अनंतानन्त वर्ग स्थान के नीचे उतर कर सर्वोत्कृष्ट असंख्यात तक आकर; वहां से जघन्य असंख्यात में उतर कर वहां से पुनः सर्वोत्कृष्ट असंख्यात तक आकर और पुनः वहां से २ अंक तक आकर वहां से गणनातीत होकर एक अक्षर रूप में होता है। अब कुमुदेन्दु आचार्य इस नवमांक की महिमा का वर्णन करते हैं ॥३॥

ज्ञानावरण कर्म का सर्वथा क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त कर अनन्त सुख देने वाला अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी का आश्रयभूत यह नवमांक है ॥४॥

यह नवमांक जहां भी देखें, सभी जगह पूर्णाङ्क दिखाई देता है नवांक से पहिले के अंक अपूर्ण और मलिन दीख पड़ते हैं। उन अंकों को अपने अन्त-र्मुख करके पूर्ण और विशुद्ध बनाने वाला यह नवमांक है ॥५॥

भावार्थः—नव ९ अंक से पहिले के अंक एक दो आदि सब ही अपूर्ण हैं क्योंकि उनसे अधिक-अधिक संख्या वाले अंक मौजूद हैं। एक नवमांक ही ऐसा है जहां संख्या पूर्ण हो जाती है क्योंकि उसके आगे कोई अंक ही नहीं है। यह नवमांक पावन और परिशुद्ध है ॥६॥

विश्व भर में व्याप्त यह नवमांक है ॥७॥

हजार, लाख आदि गिनती में भी नवमांक है ॥८॥

पावन सूच्यग्र में भी नवमांक है अर्थात् छोटे से छोटे भाग में भी नवमांक है और बड़े से बड़े भाग में भी नवमांक है ॥९॥

श्री विश्व अर्थात् अंतरङ्ग विश्व में भी नवमाङ्क है ॥१०॥

हजारों करोड़ों आदि रूप से रहने वाला नवमाङ्क है ॥११॥

जन्म मरण जिस प्रकार परस्पर सापेक्ष हैं, वैसे ही नवमांक की अपेक्षा अन्य सभी अङ्क रखते हैं। मरण अन्त को कहते हैं, संख्या का अन्त-मरण, नवमांक प्राप्त हो जाने पर हो जाता है। नवम अङ्क प्राप्त हो जाने के बाद ही संख्या का जन्म हो जाता है अर्थात् ९ के बाद एक, दो बोले जाते हैं इसी-लिए जन्म मरण रूप दोनों अवस्थाओं में नवमांक रहता है ॥१२॥

सुख दुःख दोनों में नवमांक काम आता है ॥१३॥

छद्मस्थ की बुद्धि के अगम्य नवमांक की गम्भीरता है ॥१४॥

श्री वीर भगवान का ज्ञान-गम्य यह नवमांक है ॥१५॥

कर्म वन के लिए दावानल के समान जलाने वाला नवमांक है ॥१६॥

ऋषि-सूत्र द्वादशांग नवमांक से बद्ध है ॥१७॥

समस्त विद्याओं का साधक नवमांक है ॥१८॥

वाणी को पवित्र करने वाला नवमांक है ॥१९॥

विश्व का रक्षक यह नवमांक है ॥२०॥

विश्व में व्याप्त नवमांक है ॥२१॥

श्री वीर भगवान का सिद्धान्त नवमांक है ॥२२॥

श्री वीरसेन आचार्य का सिद्धान्त नवमांक है ॥२३॥

हमारा (कुमुदेन्दु आचार्य का) सिद्धान्त नवमांक है ॥२४॥

इन सब ९ अङ्कों का रक्षक भूवलय है ॥२५॥

यह नवमांक वरद हाथ के समान है, नव पद पंच परमेष्ठियों का इष्ट है, सरस साहित्य के निर्माण में प्रधान है। क्षायिक नव केवल लब्धि (क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य) प्रदान करने वाला है ॥२६॥

रत्न हार की मध्यवर्ती प्रधान मणि के समान ही गणित का यह अङ्क प्रधान अंक (नव ९) है। ३ अंक को ३ अंक से गुणा करने पर यह नवमांक होता है। सौ, हजार, लाख, करोड़ आदि जितनी संख्या है उनमें एक संख्या घटा दी जाय तो नौ अंक ही सर्वत्र दिखाई पड़ता है। जैसे १०० में से १ घटा देने से ९९ हो जाता है, १००० में से १ घटा दें तो ९९९ हो जाता है, १०००-०० में से १ घटा दें तो ९९९९९ हो जाता है, १०००००० में से १ घटा दें तो ९९९९९९९ हो जाते हैं ॥२७॥

१०००००००००००००००००००

—१

९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९

केवलज्ञान आदि ज्ञान ऋद्धि- जंघा आदि से आकाश में गमन करा देने वाली चारण-ऋद्धि और अणिमादिक अतिशय प्रदान करने वाली समस्त ६४ ऋद्धियों की सिद्धि कर देने वाला यह नवमांक है। सदा साथ-साथ रहने वाला दिव्य विद्या रूप यह नवमांक है। अध्यात्म-सिद्धि का साधन करा देने वाला नवमांक है। अष्ट कर्मों को नष्ट कर देने वाला नवमांक है। अथवा शुद्ध कर्माटक भाषा का महानकाव्य है। अथवा घाति-कर्मों के नष्ट हो जाने के बाद बचे हुए ८५ अर्थात कर्मों का वर्णन करने वाला यह काव्य है। इसलिए (१) शुद्ध कर्माटक है ॥२८॥

यशस्वती देवी द्वारा बोली जाने वाली प्राकृत भाषा १, लिपि २, रस भरी सरस नित्य संस्कृत भाषा ३, अस्मान् द्राविड़ा ४, (१ कानड़ी, २ तामिल, ३ तेलङ्गी, ४ मलेयाल और ५ तुलु) इन पांच भाषाओं को पंच द्रविड़ भाषा कहते हैं ५, महाराष्ट्र ६, गुर्जर ७, अंगद ८, कलिंग ९, काश्मीर १०, काम्भोज ११, हम्मीर १२, शौरसेनी १३, खहाली (पाली) १४, तिब्बत १५, वेंगी इत्यादि सात सौ भाषायें हैं। वंग १६, विषहर ब्राह्मी। नेमि विजयार्द्ध १७, पद्म १८, वैधर्भी १९, वैशाली २०, सौराष्ट्र २१, खरोष्ट्र २२, नीरोष्ठा २३, अपभ्रंशिका २४, पैशाची २५, रक्ताक्षर २६, ऋष्ट २७, कुसुमाजी २८, सुमनाजी २९, ऐन्द्रध्वजा ३०, रसज्वलज ३१, महा पद्म ३२, अर्द्ध मागधी ३३। यहां तक ५८ श्लोक हो गये। आगे ५९ श्लोक से लिखेंगे ॥२९ से ५८ तक॥

३४ आरस, ३५ पारस, ३६ सारस्वत, ३७ बारस, ३८ वीर वश, ३९ मालव, ४० लाट (लाड देश में इस भाषा के अनेक भेद हैं) ४१ गौढ़ (गौड़ देश के पास रहने वाले मागध), ४२ मागध के बाहर का देश विहार, ४३ नी अक्षर वाले, ४४ कान्य-कुब्ज, ४५ बराह (वराड), ४६ ऋद्धि प्राप्ति को कर देने वाले वैश्रवण, ४७ शुद्ध वेदान्त भाषा तथा दो ढाई हजार वर्ष पहिले की संस्कृत भाषा को गीर्वाण भाषा कहते हैं। भूवलय के श्रुतावतार नामक दूसरे खण्ड के संस्कृत विभाग में गीर्वाण इसी को कहा है।

ऋग्वेद ऋषिमंडल स्तोत्र आदि इसी भाषा द्वारा श्री भूवलय में कहे गये हैं।

जिस देश में जो भाषा बोली जाती है, वह उसी देश में लोगों का उपकार करती है और उसे "संदर्भ" कहते हैं। ४८ 'चित्रक भाषा' (चित्रों द्वारा कही जाने वाली भाषा) अर्थात् चित्र बना कर अपना अभिप्राय बताना, सब देश में सफल रूप से लोगों का उपकार करती हैं। जैसे कि—चीनी भाषा चित्र भाषा है। कहीं लोगों में परस्पर गाली गलौज हो गयी तो वहां वाले अपने सामने दो स्त्रियों का चित्र लिख देते हैं। यदि 'मारपीट हो गई' यह कहना होता है तो तीन अर्थात् बहुतसी स्त्रियों का चित्र बना देते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि स्त्री का स्वभाव सब देशों में एक जैसा रहता है। जहां दो स्त्रियां इकट्ठी हुईं कि बातों-बातों में गाली देने लगतीं हैं और जहां तीन आदि ज्यादा एकत्र हुईं तो मारपीट भी करने लगती हैं। इसीलिए चित्र में २-३ आदि स्त्रियां दिखाते हैं।

भगवान ऋषभदेव ने अपनी बड़ी पुत्री को जो लिपि (अक्षर विद्या) दहिने हाथ की हथेली पर लिख कर सिखाई थी उसमें जो अक्षर हथेली के सीधे मार्ग पर लिखे गये थे उनका आश्रय लेकर बोली जाने वाली भाषा एक प्रकार की हुई और हथेली के निम्न भाग में लिखी गई लिपि (अक्षर) का आश्रय लेकर जो भाषा बोली गई वह दूसरी प्रकार की भाषा हुई। इसी प्रकार दक्षिण देश के भिन्न-भिन्न भागों में बोली जाने वाली आठ भाषायें हैं।

अथवा—

प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाय सूरासेनीय।
छट्टोत्तर भेदाहिदेशविशेषादपभ्रंशः॥

अर्थ—प्राकृत, संस्कृत, मागध, पिशाच, शौरसेनी तथा अपभ्रंश इन मूल ६ भाषाओं का ३ से गुणाकार करने पर १८ महाभाषाऐं क्रम से होती हैं ॥९५ ९६॥

पुनः—कर्णाटक, मागध, मालव, लाट, गौड और गुर्जर इन मूल ६ भाषाओं का ३ से गुणा करने पर १८ महाभाषायें हैं ॥९७॥

इस रीति से दिगम्बर जैन आचार्यों के संघ भेद के कारण काव्य रचना को पद्धति सरणी तथा शैली आदि बदलती रहती है किन्तु यह परिवर्तन हमें यहां इष्ट नहीं है अपितु भगवान ऋषभनाथ ने अपनी सुपुत्री सुन्दरी को जो कभी न बदलने वाली अंक विद्या सिखलाई थी, वही अंक विद्या हमें यहां इष्ट है ॥९८॥

क्योंकि नवमांक विद्या सदा एक ही रूप में स्थिर रहती है, इस कारण अनुलोम प्रतिलोम पद्धति द्वारा नवमांक से भूवलय सिद्धान्त की रचना हुई है ॥९९॥

जगत में प्रचलित हजारों भाषाओं को रहने दो । भगवान महावीर की वाणी नवमांक में व्याप्त होने के कारण नवमांक पद्धति से ७१८ भाषाओं का प्रगट होना क्या आश्चर्यजनक है ? ॥१००॥

इसी प्रकार ऊपर कहे अनुसार ४६ भाषाओं के अलावा और भी भाषा तथा लिपि कुमुदेन्दु आचार्य उद्धृत करते हैं—

हंस, भूत, वीरयक्षी, राक्षसी, ऊहिया, यवनानी, तुर्की, द्रमिल, सैंदव, मालवणीय, किरीय, नाडु, देवनागरी, वैविध्यन, लाड, पारसी, आमित्रिक, भूवलयक, चाणक्य, ये ब्राह्मी देवी की मूल भाषायें हैं। ये सभी भाषायें श्री भगवान् महावीर की वाणी से निकल कर भूवलय रूप बन गयी हैं।

यह सुन्दरी देवी का भूवलय है ॥११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२० ।

इस संसार (विश्व) में सात सौ क्षुद्र भाषाएं हैं, उन सब भाषाओं की लिपि नहीं हैं । शेष भाषाओं को बोलने वाले कहीं किसी प्रदेश में रहने वाले है । किसी देश में क्षुद्र भाषा बोलने वाले प्राणी नहीं हैं जहां हों वहां भाषा भी उत्पन्न हो सकती है । जो भाषा जहां उत्पन्न होने वाली है उसको वहां के प्राणी जान सकते हैं । क्योंकि यह भूवलय ग्रन्थ त्रिकालवर्त्ती चराचर वस्तु को देखने वाले महावीर भगवान की वाणी से निकला है । इसलिए इससे जान सकते हैं ॥१२१॥

अर्हन्त भगवान की वाणी को सर्व-भाषामयी भाषा कहते हैं । सम्पूर्ण जगत में जो भाषाएं है वे सभी भगवान महावीर की वाणी से बाहर नहीं । अतः अर्हन्त भगवान की दिव्य भाषा को विश्वविद्याभाषिणी भी कहते हैं । इस भूवलय ग्रन्थ में चौंसठ अक्षर होने के कारण विश्व की सर्व विद्याओं की प्रभा निकलती है । इसलिये विविध भाषाओं को कुमुदेन्दु आचार्य ने अंक में बद्ध कर दिया है ॥१२२॥

स्वर्गों में प्रचलित भाषा को दिव्य भाषा कहते हैं । उन सब भाषाओं की एक राशि बनाकर के गणित के बंध से बांधते हुए जिनेन्द्र देव की दिव्य वाणी सात सौ भाषाओं में मिलती हुई धर्मामृत कुम्भ में स्थापित हुई है ॥१२३॥

इस कुम्भ में समावेश हुई सब भाषाओं में रहने वाले पदों को गुणा करके बुद्धिमान दिगम्बर जैन ऋषि जब अठारह भाषा के लिपिबद्ध के महत्व को तपोवन में अध्ययन करते हैं तब उनके हृदय को शान्ति मिलती है ॥१२४॥

इन महिमामयी लिपियों को अपने हाथ में लेकर महा ऋद्धि-प्राप्त ऋषियों ने सुन्दर काव्य रूप बनाया है । वर्तमान अतीत और अनागत काल में होने वाली सब भाषाओं के अंक इसमें हैं ॥१२५॥

किस भाषा में कितने अंक हैं और कितने अक्षर हैं इन सब को एक साथ आचार्य जी ने कैसे एकत्रित किया । इन शंकाओं को समन्वय रूपात्मक सिद्धान्त रूप से उत्तर कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१२६॥

इस भूवलय ग्रन्थ में सर्वोपरि रहने वाला जो नौ अंक है, वह विश्व का आधिपत्य करने बाला है ॥१२७॥

श्री भगवान महावीर की अनक्षरी वाणी इन्हीं नौ अंक रूप में थी ॥१२८॥

शंका अनेक प्रकार की होती हैं । शंका में शंका ही उत्तर रूप से अर्थात् पूर्ण से उत्तर न मिलने वाला और उत्तर मिलने वाला इत्यादि रूप से अनेक समाधान होते हैं । उन सबका ॥१२९॥

जिस जगह में शंका उत्पन्न होती है उसी जगह में समाधान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१३०॥

इस भूवलय में स्वसमय-वक्तव्यता, परसमय-वक्तव्यता और तदुभय-वक्तव्यता ऐसे तीन प्रकार की वक्तव्यता का अर्थ प्रतिपादन करना है । स्वसमय

का अर्थ आत्म-द्रव्य है। स्वसमय वक्तव्यता में केवल आत्म द्रव्य का कथन है। पर-समय का अर्थ पुद्गल आदि द्रव्य हैं। उसका जहां वर्णन हो उसे 'पर-समय वक्तव्यता' कहते हैं। जिसमें 'स्व' यानी आत्म–द्रव्य की और पर पुद्गल द्रव्य की बात आई हो उसे उभय वक्तव्यता कहते हैं।

इन तीनों तरह की वक्तव्यताओं में से इस भूवलय ग्रन्थ में स्वसमय-वक्तव्यता की प्रधानता है ॥१३१॥

यह भूवलय—सहज अंकमय काव्य को उत्पन्न करने वाला है ॥१३२॥

इस भूवलय ग्रन्थ को सबसे पहले गोम्मट देव ने प्रकट किया था ॥१३३॥

यह भूवलय ग्रन्थ समस्त जीवों के लिए अध्यात्म विद्या को प्रगट करने वाला है ॥१३४॥

इसके सिवाय और भी समस्त प्रकार की विद्याओं को सिखलाने वाला है ॥१३५॥

मरण को जीतकर नित्य जीवन देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१३६॥

इस भूवलय में जो चक्रांक हैं सो सब धवल बिन्दु के समान हैं ॥१३७॥

श्री स्वयम्भू भगवान के बताए गए हुये ६३ अथवा ६४ अक्षर प्राकृत भाषा में तथा संस्कृत भाषा में विद्यमान हैं ॥१३८॥

ये सभी अक्षराङ्क पवित्र हैं और विश्व को नापने वाले हैं। इन अक्षरों को परस्पर संयोगात्मक करके अनेक प्रकार के बन्धनों में बाँध कर चक्राकार पद्म रूप में बनाने वाला यह भूवलय है। चक्र के भीतर २७×२७ = ७२९ आरे बनते हैं ॥१३९॥

इस भूवलय काव्य को आदिनाथ भगवान ने श्री ब्राह्मी देवी की हथेली में लिख कर प्रगट किया था ब्राह्मी देवी की हथेली अत्यन्त मृदु थी इसलिए यह भूवलय भी अतिशय कोमलरूप है। उपर्युक्त अक्षरों को गुणाकार रूप में लाकर रत्नहार की भांति उनसे गुंथा हुआ यह भूवलय काव्य है। इस भूवलय ग्रन्थ को श्री भगवान ने ब्राह्मी देवी की हथेली में लिखा था और कागज, कलम तथा स्याही की सहायता के बिना सिर्फ अपने अंगुष्ठ से लिखा था और आठ-आठ अक्षरों वाली आठ पंक्तियों में लिखा था जो कि लेख कहलाया। इसलिए उसका दूसरा नाम 'खरोष्ठ' पड़ गया ॥१४०॥

इसी ६४ अक्षर मय काव्य–बन्ध को श्री ऋषभदेव भगवान ने सुन्दरी की हथेली में एक आदि नौ अंकों में गर्भित करके लिखा था जिन नौ अंकों को पहाड़ों के प्रस्ताव रूप में करने से उन में विश्व भर को महिमा आजाती है जिस की लिपि अंक गणित कहलाती है ॥१४१॥

अथवा प्राकृत संस्कृतमागधापिशाचभाषाश्च।
षष्ठोत्तर [९५] भेदो देशविशेषादपभ्रंशः। [९६]
कर्णाटमागधमालवलाटगौडगुर्जरप्रत्येकत्रय–
मित्यष्टादशमहाभाषा [९७]
सर्वभाषामयीभाषा विश्वविद्यावभासिने ।११२।
त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिवांवर्णाः शुभमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चा [१३८] पिस्वयं प्रोक्ताःस्वयम्भुवा ।१३९।
अकारादिहकारान्तां शुद्धां मुक्तावलीमिव।
स्वरव्यंजनभेदेन द्विधा भेदमुवैयु-।१४२।षीम्।
अयोगवाहपर्यन्तां सर्वविद्यासु सङ्गताम्।
आयोगाक्षर सम्भूतिं नैकबीजाक्षरैश्चि-[१४३] ताम्।
समवादी दधत् ब्राह्मोमेधाविन्यपि सुन्दरी।
सुन्दरी गणितस्थानं क्रमैः सम्यगधास्यत ॥१४४॥
ततो भगवतोवक्त्रा निःसृताक्षरावलीम्।
नम इति व्यक्तांसुमंगलां सिद्ध मातृकाम् ॥१४५॥

अर्थ—भगवान ऋषभनाथ के मुख से प्रगट हुए अ कार से हकार तक अयोगवाह अक्षरों (क़ ख़ ग़ फ़) सहित शुद्ध मोतियों की माला की तरह वर्ण-माला को ब्राह्मी ने धारण किया। जो (वर्णमाला) कि स्वर और व्यंजनों के भेद से दो प्रकार है, समस्त विद्याओं से संगत है, अनेक बीजाक्षरों से भरी हुई है, नमःसिद्धेभ्यः से प्रगट हुई सिद्धमातृ का है। भगवान ऋषभ नाथ की दूसरी पुत्री सुन्दरी ने क्रम से ९ अंकों द्वारा गणित को मोतियों की माला की तरह धारण किया।

ब्राह्मी देवी वृषभनाथ भगवान की बड़ी पुत्री होने के कारण ब्राह्मी लिपि को ही पहली लिपि माना गया है। दूसरी लिपि यवनांक लिपि है ऐसा अन्य आचार्यों का भी मत है ॥१४६॥

"दोषउपरिका तीसरी भाषा है, वराटिका (वराट) चौथी है। सर्वज्ञी, अथवा खरसापिका लिपि पांचवीं है। प्राभृतिका छटी है ॥१४७॥

उच्चतारिका सातवीं हैं, पुस्तिकाक्षर आठवीं है, भोगयवत्ता नौवीं हैं। वेदनतिका दशवीं है। निन्हतिका ११ वीं, सरमालांक १२वीं, परम गणिता १३ वीं है, १४ वीं गान्धर्व, १५ आदर्श, १६ माहेश्वरी, १७ दामा १८ बोलिदी ये सब अङ्क लिपियां जाननीं चाहिए ॥१४८॥

दिगम्बर मुनियों के संघ भेद के कारण भाषाओं में भी भेद देखने में आया है। परन्तु इन में भेद रूप समझकर परस्पर विरोध रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जितनी भी प्रचलित भाषायें हैं उनमें भेद मानना चाहिए ॥१४८ —१६०॥

ऊपर कही हुई बातों को नारकी जीव, तिर्यंच जीव नहीं जानते हैं। परिशुद्ध अंक को देवता लोग, मनुष्य जान सकते हैं। कोई लिपि न होने पर भी ध्वनि शास्त्र के अवलम्बन से केवल नौ अंकों से ही लिख सकते हैं कह भी सकते हैं और सुन सकते हैं, ऐसे सरसांक लिपि को अक्षर लिपि रूप में परिवर्तन कर सकते हैं ॥१६१॥

विवेचन—श्री भूवलय ग्रन्थ में एक भी अक्षर नहीं है १ से लेकर ६४ तक अङ्क रूप में रहने वाले १२७० चक्र हैं। उन चक्रों के द्वारा १६००० अंक चक्रों को निकाला जाता है।

भगवान ऋषभनाथ ने यशस्वती और दोनों पुत्रियों ब्राह्मी, सुन्दरी को अक्षर तथा अंक पद्धति से भूवलय पढ़ाया था। उनकी देशभाषा में आने वाला काव्य रस, शब्द रीति आदि जो उस समय थी उसको हम आज भी भूवलय द्वारा पढ़ सकते हैं। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं ॥१६२॥

विवेचन—यह भूवलय ग्रन्थ आधुनिक शैली में लिखा गया है अतः आज कल के विद्वान इसको दशवीं शताब्दी का मानते हैं अथवा अमोघवर्ष नृपतुंग के तथा इन्द्रनंदी श्रुतावतार के ग्रन्थ के तथा और भी कुछ श्लोक भूवलय में मिलते हैं। अतः यह सर्व भाषामय न होकर यदि एक ही भाषा में होता तो उसी के अनुसार इसका प्रचार हो सकता था। ऐसा कुछ लोग कहते हैं परन्तु अनेक भाषायें कनड़ी से सम्मिश्रित होकर गणित रूप से उनका प्रादुर्भाव होता। दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु ने अपने स्वतन्त्र अनुभव द्वारा यद्यपि इस भूवलय की रचना की है फिर भी यह काव्य परम्परा से भगवान जिनेन्द्र देव के मुख से प्रगट हुए शब्दों में से चुन कर बनाया गया है। इस तरह प्रामाणिक परम्परा से यह भगवान की वाणी रूप काव्य है। चौथे काल में भी यह अंकमयी भाषा थी। इसलिए आचार्य कुमुदेन्दु 'उस काल की भाषा को भी गणित से ले सकते हैं, ऐसा लिखा है।

यशस्वती देवी की छोटी बहिन सुनन्दा के गर्भ से पहले कामदेव बाहुबली का जन्म हुआ। वे काम शास्त्र तथा आयुर्वेद के ज्ञाता थे। किन्तु उन्होंने उन दोनों विषय में त्याग तथा रस सिद्धि को बतलाया ॥१६२॥

श्री गोम्मटदेव (बाहुबली) कामदेवों में पहले कामदेव (अपने समय में सबसे अधिक सुन्दर) थे। इसके सिवाय वे प्रथम केवली भी थे, अतः उनको हमारा नमस्कार हो।

प्रश्न—भगवान ऋषभनाथ को बाहुबली से पहले केवल ज्ञान हुआ था अतः बाहुबली को प्रथम केवली कहना उचित नहीं।

उत्तर—बाहुबली भगवान ऋषभनाथ से पहले मुक्त हुए हैं अतः उनको प्रथम केवली कहा गया है।

सुन्दरी ने अपने पिता से भी २५ धनुष अधिक ऊंचे अपने भाई बाहुबली को देखकर भक्ति को ओर जगत में यही सबसे अधिक विशालकाय परमात्मा हैं, ऐसा अनुभव किया ॥१६४॥

सुन्दरी देवी ने अपने बड़े भाई से चक्रबन्ध गणित को जाना और १० के भीतर ९ अंक को गर्भित हुआ समझा ॥१६५॥

उस गणित के मानचित्र (छवि) में अन्तर्भूत सत्मांक है ॥१६६॥

समस्त कामदेवों में प्रथम बाहुबली द्वारा कहा हुआ यह अंक है ॥१६७॥

जन्म मरण रूपी भवभय को हरण करने वाला यह अंक है ॥१६८॥

उन अंकों में प्रतिलोम अंक को स्थापित करना, उसके ऊपर अनुलोम अंक को स्थापित करना ॥१६९॥

उन दोनों को जोड़ देने पर नौ बार १-१ तथा एक बिन्दी आती है ॥१७०॥

इस रीति से नवकार मंत्र एक ही है ॥१७१॥

दिगम्बर मुनियों का धर्मांक १ है ॥१७२॥

इस रीति से मृदु-काव्य रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१७३॥

अनुलोम १२३४५६७८९

प्रतिलोम ९८७६५४३२१

१११११११११०

इस रीति से जो १० अंक आये वह दस धर्म का रूप हैं इसलिए वह परिपूर्णांक ९ में गर्भित है। वह कैसे ? समाधान-बिन्दीको छोड़ देने से ९ रह गया। इस प्रकार परिपूर्णांक ० से बना यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१७४॥

शेष ७०० भाषाऐं अंकों द्वारा लिखे हुए होने के कारण अनक्षरी भाषाऐं हैं। द्रव्य प्रमाणानुगम के ज्ञाता दिगम्बर मुनि उन भाषाओं को जानते हैं। उनके ज्ञान को आगे दिखावेंगे। ऐसा प्रतिपादन करनेवाला यह कर्माटक भूवलय हैं ॥१७५॥

बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी ने जो अपने पिता भगवान ऋषभनाथ से ६४ अक्षर तथा बिन्दी सहित ९ अंक सीखे थे, उसे अब बतावेंगे ॥१७६॥

उस सबको पहाड़े रूप गणित से जाना जा सकता है ॥१७७॥

यह सब गुरु-परम्परा से आया हुआ गणित है ॥१७८॥

पाँच परमेष्ठियों से अर्थात् ५ से गुणा किया हुआ यह गणित अंक है ॥१७९॥

सबसे पहले तीर्थंकरों ने इसे सिखाया ॥१८०॥

सबसे पहले भगवान ऋषभनाथ ने इस गणित को सिखाया ॥१८१॥

फिर भगवान अजितनाथ ने इसका प्रतिपादन किया ॥१८२॥

इसी प्रकार श्री सम्भवनाथ ने इसे सिद्ध किया ॥१८३॥

तत्पश्चात् देवों द्वारा वन्दनीय श्री अभिनन्दननाथ तीर्थंकर ने इसे बतलाया ॥१८४॥

देव, मनुष्यों द्वारा पूज्य श्री सुमतिनाथ ने इसे कहा ॥१८५॥

तत्पश्चात् श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ने इसको बतलाया ॥१८६॥

श्री सुपार्श्व नाथ तीर्थंकर धर्म प्रचार करके अन्त में शेष कर्म क्षय करके मोक्ष चले गये। नारकी जीव इनकी वाणी को स्मरण करते हैं ॥१८७॥

चन्द्रप्रभतीर्थंकर की दिव्य ध्वनि सुनकर उन्हें 'चन्द्रशेखर' अथवा 'शिव, गुरु लिंग' इत्यादि नामों से पूजते हैं ॥१८८॥

इसी प्रकार पुष्पदन्त और शीतलनाथ भगवान का उपदेश क्रम समझना चाहिए ॥१८९॥

श्री श्रेयांश तीर्थंकर का भी यही क्रम है ॥१९०॥

श्री वासुपूज्य का क्रम भी यही है ॥१९१

श्री अरहनाथ तीर्थंकर, विमलनाथ, और अनन्तनाथ का भी यही क्रम रहा ॥२९२॥

श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ का क्रम भी इस तरह है ॥१९३॥

श्री कुंथुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ तीर्थंकर का भी यही क्रम है ॥१९४॥

श्री मुनिसुव्रततीर्थङ्कर का क्रम भी इसी तरह था ॥१९५॥

श्री नमि और नेमिनाथ तीर्थङ्कर का क्रम भी इसी प्रकार समझना चाहिए ॥१९६॥

और पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर तथा श्री वर्द्धमान तीर्थङ्कर का क्रम भी इसी प्रकार था ॥१९७॥

इस प्रकार चौबीस तीथङ्करों ने भूवलय को रचना (अपनी दिव्य-ध्वनि द्वारा) की थी इसलिए यह भूवलय ग्रन्थ की परिपाटी प्रमाण रूप में अनादि काल से चली आई है ॥१९८॥

अब इस पांचवें अध्याय को कुमुदेंदु आचार्य संकेत रूप करते हुए अंक से सम्पूर्ण विषयों को बतलाते हैं। इसी अंक से इस अध्याय के समस्त अंक का भी ज्ञान होता है। वह इस प्रकार है:—

बाहुबली ने अपनी तरुण अवस्था में इस भूवलय काव्य में गर्भित अन्तर काव्य का परिज्ञान कर लिया था। ६००२१ अथवा १२०६ यह अंक ६४ अक्षर का ही भंग है, इससे अत्यन्त सुन्दर सरस काव्यागमरूप भूवलय निकल आता है। इस लिए इस अध्याय का नाम "ई" अध्याय लिखा है ॥१९९॥

जगत के अग्र-भाग में सिद्ध समुदाय है। जोकि तीन लोक रूपी शरीर के मस्तक स्वरूप है। इसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी मस्तक के समान महत्व-शाली है ॥२००॥

जिन मार्ग का अतिशय मानकर स्वीकार करने से नव पद सिद्धि के घन मर्म रूपी पांचवां अध्याय भूवलय नामक काव्य श्रेणी में ग्यारहवां चक्र है। इसके सब अक्षरांक ८०१९ हैं। २०१

पाँचवें "ई" ८०१९॥+अन्तर २२००६=२००२५

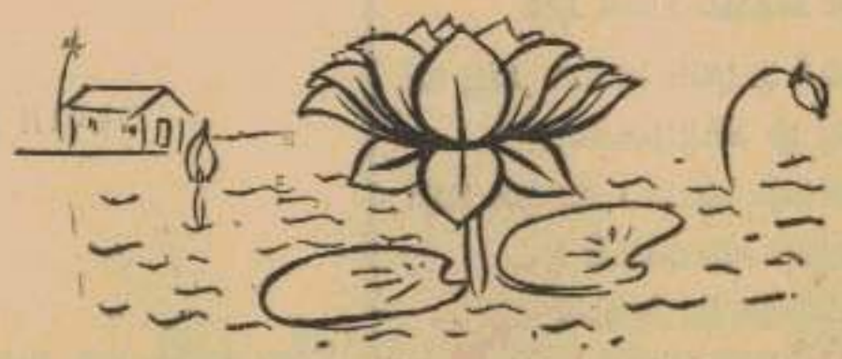
अथवा अ–ई ६४, ८२७+ई २०, ०२५= ८४, ८५, २।

जो इस अध्याय में श्रेणी-बद्ध प्राकृत गाथा निकलती है उस गाथा को और उसका अर्थ यहाँ दिया जाता है।

"ऊपर कहे हुए" अनुसार यह भूवलय ग्रन्थ आचार्य परम्परा से चला आया है उन सब मुनियों की संख्या तीन कम नौ करोड़ कहते हैं। उनके द्वारा कहे हुए इस भूवलय ग्रन्थ को समस्त भव्य जीव अध्ययन करें, सुनें और मनन करें। इसका भक्ति तथा त्रिकरण शुद्धि-पूर्वक अध्ययन करने से इस लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति होती है अन्त में मोक्ष प्राप्त होती है।

मध्यम श्रेणी के संस्कृत काव्य का अर्थ:–

यह भूवलय काव्य पढ़ने से समस्त कर्म रूपी कलंक नाश होकर श्रेयोमार्ग की प्राप्ति होगी। सदा धर्म का सम्बन्ध तथा अभ्युदय को देने वाला यह काव्य है। एवं हमेशा भव्य जीवों को प्रतिबोध करने वाला यह भूवलय काव्य है।



छटा अध्याय

अ※ रि गण मुन्दणानागत हिन्दण । सागिद कालवेल्लरलो ॥ सागु तका※ णुव सर्वज्ञदेवन । योगव काण्व भूवलय ॥१॥
स※ र्वज्ञदेवनु सर्वांगदिम् पेळ्द । सर्वस्व भाषेयस र※ णि ॥ पर्वदन्ददलि हब्बुत होगि लोकाग्र । सर्वार्थसिद्धि वळसि ॥२॥
मु※ क्तियोळिह् सिद्ध जीवर तागुत । व्यक्ताव्यक्तवदागि ॥ स क※ लवु कर्माटदणुरूप होन्दुत । प्रकटदे ओम्दरोळ् अडगि ॥३॥
ह※ दिनेन्टु भाषेयु महाभाषेयागलु । बदिय भाषेगळ् एळ्ळुनूर मू※ ल्वयदोळडगिसि कर्माट लिपियागि । हुदुगिसिदन्क भूवलय ॥४॥
ग्※ ळ गान्धर्व किन्नर किम्पुरुषा । नरक तिर्यंच पु※ ळिन्द ॥ नररू देवतेगळनक्षर भाषेय । तिरुगिसि गणिसळु बहुदु ॥५॥
ग※ मकद कलेयोळु तोर्ष वय्विध्यद । सम् विषमान्कद आग ण्※ य ॥ विमलव समलव क्रम मूरमग्गिय । गमकदि तिळियलु बहुदु ॥६॥
ह※ कसेरलेन्टेण्टु समगळ्एरड कूडे । सकळवु विषम एळुव य※ ॥ हकद वन्धद बन्ध पाहुड भेदव । नकलन्क सूक्षान्क दरिविम् ॥७॥
प्रकटिसलध्यात्म योगि ॥८॥ सकलद्वि सम्योग भंग ॥९॥ विकलांक सम्योग भंग ॥१०॥ सकलवु अपुनरुक्तांक ॥११॥
निखिल द्रव्यागमदंग ॥१२॥ ओक्टि ओम् ओण्णु ओम् अंक ॥१३॥ प्रकटित सर्व भाषांक ॥१४॥ विकलवागिहसर्व बंध ॥१५॥
सकल नोसर्व उत्कृष्ट ॥१६॥ अकलंक अनुक्तरुष्ट बंध ॥१७॥ निखिल जघन्य अजघन्य ॥१८॥ सकलवु सादि अनादि ॥१९॥
सकलवु ध्रुव अध्रुवांक ॥२०॥ निखिलवु बंध स्वामित्व ॥२१॥ शकमय बंधद काल ॥२२॥ प्रकट बंधांतर काल ॥२३॥
हक बंध सन्निकर्षांक ॥२४॥ शक भंगविचय विभाग ॥२५॥ सकल भागाभाग क्षेत्र ॥२६॥ निखिलद परिमाण स्पर्श ॥२७॥
सकल कालांतर भाव ॥२८॥ सकलांक अल्पबहुत्व ॥२९॥ सकल बंधद नाल्कु गुणित ॥३०॥
व※ रद प्रकृति स्थिति अनुभाग सरणिय । सरिय प्रदेशद् प्※ रकृति॥ विरचित गुणकार'एन्टेन्दु'बन्दुदा मरळि अदम् 'एन्ट'रिंद ॥३१॥
य※ शदिन्द गुणिसलु बर्पएळ्नूर्र । वशदोळ्उन्आल्क र※ कळेये ॥ यशस्वति देविय मगळरिदेळ्नूर । पशु देव नारक भाषे ॥३२॥
ण※ वदन्दद ई भाषेगळेल्लवु । अवतरिसिदि कर्मदाट ॥ सव का※ येन्देन्नदे सवियागिसिकोन्डवि वरद काव्य भूवलय ॥३३॥
सृ※ नुमथनरवत्त नाल्कुकलेय बल्ल । जिन धर्मदनुभवद् श्※ रधि ॥ घन कर्माटकदादियोळ् बहभाषे । विनयत्व वळवडिसिहुदु ॥३४॥

८८×८ = ७०४–४=७०० ।

सुनयदुर्नयवडगिहुदु ॥३५॥ जिन धर्मवदु मानवर ॥३६॥ तनुवनेल्लव होक्क बहुदु ॥३७॥ मनदोषवनु कोल्लुवुदु ॥३८॥
घन भाषेगळ लेक्कबहुदु ॥३९॥ धनद सम्पदवेल्ल बहुदु ॥४०॥ मनुजर मोक्षकोय्युवुदु ॥४१॥ तनियाद भाषेगळिहुदु ॥४२॥
कोनेगे मतगळकूडिपुदु ॥४३॥ जिनमार्गदणुव्रत बहुदु ॥४४॥ घनवादेळ्नूर्हदिनेन्टु ॥४५॥ जिन वर्धमान भाषेगळ ॥४६॥
ननेकोनेपोगिसुव भाव ॥४७॥ जिनर भूवलयदोळि हुदु ॥४८॥ घनकले अरवत्तनाल्कु ॥४९॥
तनगे ताने तन्नोळगे ॥५०॥ जीवि सितुम् बिरुव भूवलय ॥५१॥
भू※ वलयद सिद्धांतद अंकवम् तीविकोन्डा अक्षरद ॥ पाव क※ रेल्लर्गे मूरारु मूरर । आ विश्वधर्मवेल्लवनु ॥५२॥
व※ शगोन्डु द्वय्ताद्वय्त (वनेल्लव) अनेकांत । रसदोळु ओम्कारद मृ※ कम् ॥ यशवादक्षरदोन्दिगे बेसेदिह । होसदादनादिय ग्रन्थ ॥५३॥

ल॒ व मात्रवादरू भेदवम् तोरदे । शिव विष्णु जिन ब्रह्म भू पा॒ भवभय हरिसेम्ब रत्न मूरन्कदे । नवकैलाश वैकुण्ठ ॥५४॥
य॒ शसत्य लोक वीमूरन् कदग्रद । सु सौभाग्य दध्यात्म वनु ॥ प॒ सरिप समवसरण दिद होरबन्दु । दिशेगळ्हत्तनु व्यापिसिरुव ॥५५॥
म्॒ हावीरवाणि येम्बुदे तत्वमसियागि । महिमेय मंगलवदु प॒ रा ॥ भ्रुहत्वबग्रणुविनोळ् तोरुव । महिमेयवहिसिहदिव्यप्राभृतद॥५६॥
मह सिद्धि काव्य वेनुदेनिप ॥५७॥ सहनेयम् दयेयोडवेरसि ॥५८॥ महिमेय समतावाददलि ॥५९॥ सिहि समन्वयदोडवेरसि ॥६०॥
कहियन् कवम् कळेदिरिसि ॥६१॥ महिय भूवलयदोळ् वहिसि ॥६२॥ सहनेय विद्येयोळ् कूडि ॥६३॥ षहदन्कवदनेल्ल गुणिसि ॥६४॥
महिमेय भाग सम्ग्रहिसि ॥६५॥ इह परवेरडरोळ् कट्टि ॥६६॥ रहमदन्कव नेलेगोळिसि ॥६७॥ वहिसिद धर्मदोळ् इरिसि ॥६८॥
छह खण्डदागम विरिसि ॥६९॥ णहदंक अपुनरक्त लिपि ॥७०॥ टहवद तिरुगिसि विडिसि ॥७१॥ गहनद विषयव वहिसि ॥७२॥
इहदोळु मोक्षव वांहिसि ॥७३॥ अहमोन्दर पदविय सहिसि ॥७४॥ महावीर सिद्ध भूवलय ॥७५॥ महिमेय त्रय्रत्न वलय ॥७६॥
दो॒ षवु हदिनेन्टु राशियागिर्दाग । ईशरोळ् भेद तोरुवुदु ॥ राशि र॒ त्नत्रयदाशेय जनरिगे । दोषवळिद बुद्धि बहुदु ॥७७॥
स॒ हवास सम्सार वागिर्प काल । महिय कळ्तले तोरुवुदु ॥ मह णा॒ णावरणीय दोषवदळियलु । बहु सुखविह मोक्ष बहुदु ॥७८॥
वि॒ ष हरवागलु चैतन्यवप्पन्ते । रससिद्धि अमृतद श॒ क्ति ॥ यशवागे एकान्त हटवदुकेट्टोडे । वशवप्पनन्तु शुद्धात्म ॥७९॥
र॒ तुनत्रयदे आदियद्वैत । द्वितीयवु द्वैत वेम्बन् क॒ तृतोयदोळने कांतवेने द्वैताद्वैतव। हितदि साधिसिद जैनांक ॥८०॥
हि॒ रियत्वविवु मूरु सर मणिमालेय। अरहंत हारदरत्न म्॒ सरपणियन्ते मूरर मूर ओम्बत्त । परिपूर्ण मूरारु मूरु ॥८१॥
य॒ शदन्कवदरोळगोम्दम् कूडलु । वशदा सोन्नेगे ब्राम्ह्, इ॒ वेसरिन लिपियंक देवनागरियेम्ब । यशवदे ऋग्वेददंक ॥८२॥
म्॒ नुजराडुव ऋक्कु दिविजराडुव ऋक्कु । दनुजराडुव ऋक्कु द॒ न्द॥ विनयवु गोब्राह्मणेभ्यह शुभमस्तु। जिनधर्मसमसिद्धिरस्तु ॥८३॥
घनद प्राकृत वृद्धिरस्तु ॥८४॥ जिनवर्धमानांक नवम ॥८५॥ एनुवंक लिपिय अक्षाम्श ॥८६॥ एनुव समस्त शून्यांक ॥८७॥
दनुज मनुजरय्क्यदंक ॥८८॥ सनुमत धर्मदय्क्यांक ॥८९॥ अनुदिन बाळ्विके यन्त्र ॥९०॥ मनुजरेल्लर धर्मदंक ॥९१॥
कोनेयादि परिपूर्णदंक ॥९२॥ मनु मुनिगळ ध्यानदंक ॥९३॥ कनसिनोळ् शुभदादियंक ॥९४॥ मनुमथराद्यन्तदंक ॥९५॥
जिनरूप साधनेयन्क ॥९६॥ इननंते ज्योतियाद्यन्क ॥९७॥ घन कर्माटक रिद्धियंक ॥९८॥
तनुविन परिशुद्धदन्कम् ॥९९॥ कोनेयादि ब्राह्मि भूवलय ॥१००॥
सु॒ विशाल गणनेय पूर्वानुपूर्विय । सविषयवागलद्वैत म्॒ सवियादियदु पश्चादानुपूर्वियदागे । नवदन्ते कोनेगे अद्वय्त ॥१०१॥
द्॒ र्शनज्ञान चारित्रव् मूर रोळ् । परमात्मरूपडगिरला शा॒ सिरि मूर तदुभयवेने यत्रतत्रानु । वर पूर्वेय प्पुद्अद्वय्त ॥१०२॥
ध॒ र्मवदिन्तु समन्वयवागलु । निर्मलव्अद्वय्त्र शा स्॒ त्र ॥ शर्मरिगा मूरु आनुपूर्विगेबंदु । धर्मद ऐक्यवनु साधिपुदु ॥१०३॥
म्॒ नदर्थियिद अनेकांत जय्नर। जिन निरूपितवह शास् त्॒ र ॥ दनुभय द्वय्त कथन्चिदद्वय्तद । घनसिद्धियात्म भूवलय ॥१०४॥
सनुमत दिव्य सिद्धांत ॥१०५॥ जिन सिद्धरात्म भूवलय ॥१०६॥ कोनेयादियन्क भूवलय ॥१०७॥ घनधर्मदन्क भूवलय ॥१०८॥
जनरिगनन्त भूवलय ॥१०९॥ नेनेदाग सिद्ध भूवलय ॥११०॥ अणुमहान् काव्य भूवलय ॥१११॥ जिनरवाक्यार्थ भूवलय ॥११२॥

मन शुद्धियात्म भूवलय ॥११३॥ तनुविन अतनु भूवलय ॥११४॥ तनगात्म शुद्ध भूवलय ॥११५॥ कनकद कमल भूवलय ॥११६॥
आ* दिगनादिय कालवे निन्नेयु ई दिन नीनु बाळुवुदु ॥ आदियवश र* त्नत्रयगळ साधिप । नादि अनन्तवे नाळे ॥११७॥
ग* मनिसलेल्लर्गे सम्यक्त्व रत्नद । क्रमदन्कवधुनाम् हु* ट्टि॥ समतेय खड्गदिम् क्रोधमानवगेल्व विमलांकनाळेय दिवस ॥११८॥
म* नद दोषके शास्त्र तनुविन दोषके । घन हृदिमूरु कोटियवश् अ* जिनर वय्द्यागम वचन दोषके शब्द । वेनुवन्क मूरु भूवलय ॥११९॥
मि* दु मधुरतेयिंद ह्रुदयवाळुवदिव्य । हृदनाद मुदवीश्री व* यण ॥ ह्रुदयांक पद्मद दलवेरि नाळेय । हृदनकाणिसुवद्वैत ॥१२०॥
दि* नुविंदु वर्तमान निनेयतीतवु । घननाळे अनागतवा भू* तणवु द्वैताद्वैत जय्नव कूडिप । मनुज दिविज धर्मदन्क ॥१२१॥
जिन वर्धमान धर्मांक ॥१२२॥ मनुजरेल्रिगोम्दे धर्म ॥१२३॥ तनु विनोळात्म सद्धर्म ॥१२४॥ घननाळे इन्दु निनेगळ ॥१२५॥
कोनेयादियन्क मूरारु ॥१२६॥ जिन धर्मदैक्या सिद्धांत ॥१२७॥ मनुजरिग् ओम्दे सद्धर्म ॥१२८॥ मनुजर ज्ञानसूत्रांक ॥१२९॥
शणसदे वाळ्व(सूत्रांक)सम्यक्त्व ॥१३०॥अनुजरागिसुव सन्मन्तर ॥१३१॥ घन विराड्रूप सूत्रांक ॥१३२॥ जिन विष्णु शिव दिव्य ब्रह्म ॥१३३॥
तनयर सलहुव मन्त्र ॥१३४॥ घनबंध पुण्य सद्बंध ॥१३५॥ विनय सद्धर्मद् अहिम्से ॥१३६॥ घनसत्य भद्र भूवलय ॥१३७॥
प* रिशुद्ध व्रतगळम् अणु महान् एनुनुध । हनुमन्त जिन व* ररन्क॥ मुनिसुव्रतर कालदे बंद रामांक । जिन धर्म वर्धमानांक ॥१३८॥
रि* द्धियोळ् श्री वालि मुनिगल गिरियंक । शुद्ध सम्यक्त्व ल* क्षणद॥ बुद्धिरिद्धियोळगण यशद समन्वय । शुद्ध रामायणदंक ॥१३९॥
क* विगे वाल्मीकिय रसवूट उणिसुव । सविये महाव्रतदंक । य* वेय मुच्चुव कालदलि बहुदोषव । नवशुद्धिगोळिप दिव्यांक ॥१४०॥
हि* रिय दोषगळिगे अणु व्रतगळनित्तु । हिरिय महाव्रत सि द्धि ॥ धरेगे मंगलदप्राभृतद दर्शनदित्तु परिशुद्धवागिसिदंक ॥१४१॥
य* शस्वति देविय बसिरिन्द वन्दन्क । वशद ब्रह्माण्ड द्* अक्षरद॥ रसवनन्गय्य मूलदलि सुरिसिदंक ॥ विषहर नीलकंठांक ॥१४२॥
म* नमथ दोर्बलियादिय तंगिगे । घनद् नवमांक दर्शन धा* अनुभव वन्नित्तु जिनरादि ओम्बत्त । तनुजगें शून्यदोळ् तोरि ॥१४३॥
जिन धर्मद् ओमबत्तम् सारि ॥१४४॥ जिन स्मार्त विष्णुगळन्क ॥१४५॥ तनुविनोळात्मन तोरि ॥१४६॥
कोनेयलि 'सोन्ने' यागिसुत ॥१४७॥ तनुदोष ओम्दे एन्देनुत ॥१४८॥ सुनय दुर्नयगळ तोरि ॥१४९॥
कोनेगे दुर्नयगळ केडिसि ॥१५०॥ सुनयद अतिशयवेरसि ॥१५१॥ कोनेगे अनेकान्तवेरसि ॥१५२॥
चिनुमयत्वव तनगिरिसि ॥१५३॥ दनुजर हिम्सेयम् बिडिसि ॥१५४॥ जिनमार्ग सुन्दरवेनिसि ॥१५५॥
विनय धर्मांक भूवलय ॥१५६॥
ते* रस गुणस्तथानदन्त के बरुवाग । दारि सम्यक्त्ववेन्दे न्* ब॥ सार श्रीजिन वाणियनुभवबन्दाग । नूरुसागरकर्म केडुगु ॥१५७॥
ण* वपददादिय अरहंत ओम्दुम् । अवेरडरलि सिद्धम् त* नवदादि मूरन्क आचार्य नाल्कर । विवर उपाध्याय ऐदु ॥१५८॥
दु* रितद दहनवे साधु समाधिय । सरुव साधुत्व आररलि ॥ बरे ना* ळे सद्धर्म एळन्क आगम परिशुद्ध जिनबिम्ब एन्दु ॥१५९॥
क* विद गोपुर द्वार शिखर मानस्तम्भ । दवनिय बिम्बालय म* नवमवेन्देनुवरु आगम परिभाषे । विवरवे नव पददम्क ॥१६०॥
हि* रियाशे यिदरलि बयकेयद्वैतवु । वरमुन्द के द्वैत धे* नु॥ सरियवरिगे मुक्तियुभयमुक्तिय लाभ गुरुपदसिद्धि ईर्बरिगे ॥१६१॥

या* वाग दोरेवुदो आग अनेकांत । ताविन नयमार्ग दोरेये ॥ नावा य* श होन्दे जैनत्व लाभद । सावकाशवे हदिनाल्कु ॥१६२॥
आविध योग राहित्य ॥१६३॥ श्री विजयद [illegible] ॥१६४॥ काय्दे कैलास मुक्ति ॥१६५॥ श्री वीरवाणिय विद्ये ॥१६६॥
नावु बेकेन्नुव सिद्धि ॥१६७॥ कावन्क सत्यद लोक ॥१६८॥ पावन परिशुद्ध लोक ॥१६९॥ सावु हुट्टुगळिल्लदिह श्री ॥१७०॥
भाव अभाव राहित्य ॥१७१॥ नीवुगळाशिप मुक्ति ॥१७२॥ ई विश्व काव्य भूवलय ॥१७३॥
ह* रि हर जिन धर्मदरिवु मूरार्मूरु । सरसिजदलदक्षर म* ओम्॥ बरुवन्कगणनेयमूरुकालदोळ् कूडे। परिदुबंदिहकाव्यसिद्धि ॥१७४॥
व* शवागे ओम्बत्तु कामदम् जनरिगे। हसिवु बायारिके निर्द्र अ* देसेगेट्टु हदिनेन्टु इत्यादि भवरोग । हेसरि ल्लदन्ते होगुवुदु ॥१७५॥
न* वदन्क सिद्धियकरण सूत्राक्षर । दवयव सर्ववुव स* य ॥ सविय भाषेगळेन्टोम्देळर वस्य । अवुगळे मूरारुमूरु ॥१७६॥
ति* रेयु कालगळु ई बरुव मूरुगळलि । हरिव भव्यर भवदभ य* सरुवार्थसिद्धि सम्पदद एरडु भव। परिशुद्ध जीव स्वभाव ॥१७७॥
परदुगेय्यलु बंद लाभ ॥१७८॥ अरहन्त रूपिन लाभ ॥१७९॥ करुणेय मारिद लाभ ॥१८०॥ गुरु हम्सनाथ सन्मार्ग ॥१८१॥
अरहन्त रडरिद मार्ग ॥१८२॥ चिरकालविरुवसौभाग्य॥१८३॥ सरुवाराधित धर्म ॥१८४॥ गुरुपरम्परेयादि लाभ ॥१८५॥
धरसेन गुरुगळ अन्ग ॥१८६॥ हरुष वर्धनरादि भंग ॥१८७॥ मरणकालदेसिद्धकवच ॥१८८॥ हरिहर सिद्ध सिद्धांत ॥१८९॥
अरहन्तराशा भूवलय ॥१९०॥
त* त्वार्थ सूत्र महार्थ प्रसन्गद । सत्यार्थ दनुभव मू* रु ॥ रत्न प्रकाश वर्धन दिव्य ज्योतिय । तत्व एळ्र समन्वयद ॥१९१॥
च्* रितेय सान्गत्य रागदोळडगिसि । परितन्द विषयगळेल् ल्* अरहंत मुख पद्मवेने सर्व अन्गदिम् । होरदु बंदिह दिव्यध्वनिय ॥१९२॥
च* दुरिन 'अरी' भूवलय सिद्धांत दोळ् । हुदुगिसि पेळ्ददिव्य्आ ग्* र ॥ पद पददक्षरदंक अंकदरेखे । अदर क्षेत्रगळ स्पर्शनव ॥१९३॥
त्* निकाल कालद अन्तर भावद । कोनेगल्पबहुत्व विन्तह र* जिन धर्मवदु मानव जीवराशिय । घन धर्मवागिसिदंक ॥१९४॥
मनुजरोळ्यक्य वप्पन्द ॥१९५॥ दिन दिन प्रेम व्रुध्यंग ॥१९६॥ घन दुष्कर्म विध्वम्स ॥१९७॥ जिन शास्त्र वेल्लर्गेम्बंग ॥१९८॥
विनयवेल्लरिगे समांग ॥१९९॥ जनपद नाडिन संग ॥२००॥ जनरिगय्दने काल (भंग) दंग ॥२०१॥ कोनेगाररोळु इल्लदंग ॥२०२॥
एनुवंगधर ज्ञानरंग ॥२०३॥ जनरिगे [बह अरी] वशवाद धर्म ॥२०४॥
थ्* ण थण थण वेम्ब द्वैत अद्वैतद । कोनेगे जैनर म न* त्र सेरि॥ जिनरेन्दु नाल्केळुएन्दुकाव्याक्षर । घनब्राह्मि सव्दरियंक ॥२०५॥
आ* गमविदर'अरी'भागदेबंदन्क। रागविरागसाम्राज्य ॥ आगु थ* एन्टेन्दु ओम्बत्तु ओम्दोम्दु । तागुवक्षरद भूवलय ॥२०६॥
ई ८७४८+ अन्तर ११९८८=२०,७३६=१८=९ अथवा अ-ई ८४८५२+२०,७३६=१०,५५,८८

पहले श्लोक के श्रेणीवद्ध काव्य—

ईस मुहग्गहवयणं भूवलय दोषवि रहियं शुद्धं । आगर्ममिदि परि कहियं तेणदु कहिया हवन्ति तच्चत्था ॥६॥

* कानडी काव्य के मध्यमें से निकलनेवाले संस्कृत श्लोक–

कारकं पुण्य प्रकाशकं पाप प्रणांशकम् इदं शास्त्र हुअव भूवलय सिद्धांतनामध्येयं अस्य मूल ग्रन्थ..... ॥

छठा अध्याय

विद्यमान वर्तमान काल, आने-वाला अनागत काल, और बीता हुआ अतीत काल, इन तीनों कालों के प्रत्येक समय में अनंत घटनायें घटित होती हैं तथा होंगी। उस-उस घटना के समीप जाकर प्रत्यक्ष रूप में दिखा देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है, तथा त्रिकालवर्ती अरहंत देव के योग को भी दिखाने वाला यह भूवलय है ॥१॥

प्रत्येक शब्द मुख आदि से उत्पन्न होकर अपने कानमें पहुंचने तक बेलके समान बढ़ते बढ़ते लोकाग्र (लोक शिखर) को स्पर्श कर (छू कर) सर्वार्थ-सिद्धि के चारों ओर होकर पुनः समस्त लोक में व्याप्त होते हुए कान को स्पर्श कर स्थिर हो जाता है। अर्थात् किसी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ शब्द संपूर्ण लोकमें घूमकर कान में पहुंचता है। शब्द वर्गणाओंमें इतनी तीव्र गमन करने की शक्ति है। तो श्री सर्वज्ञ भगवान के सर्वाङ्ग से निकली हुई वाणी के तीन लोक में व्याप्त होने में क्या आश्चर्य है ? अर्थात् कुछ आश्चर्य नहीं ॥२॥

विवेचन—अनादि काल से जितने भी शब्द निकले हैं वे सब कालाणु के साथ आकाश प्रदेश में हमेशा के लिए स्थित हैं। आगे होने वाले सभी शब्द राशि उन ही कालाणु के प्रदेश में घुसकर मिल जाती है। इस रीति से समस्त शब्द-राशि एक क्षेत्रावगाह रूप से स्थित हो जाती है। इसमें से हमको जिस वस्तु का नाम-निर्देश शब्द चाहिये उस को महर्षि गण अपनी योग दृष्टि से जानकर सूत्र रूप में रचना कर लेते हैं। उसको ज्ञापक सूत्र अथवा प्रज्ञापक सूत्र कहते हैं। उसके विस्तार रूप व्याख्या को सूत्रार्थ पौरुषी व्याख्यान कहते हैं। इस व्याख्यान को बुद्धि ऋद्धि आदिमें जो प्रवीण होते हैं, वे ही इसका अर्थ कर सकते हैं। हमारे समान छद्मस्थ ज्ञानियों से नहीं हो सकता।

दृष्टांत के लिए-भूवलयमें आया हुआ षट्खंड आगम और कषाय पाहुड़ आदि हैं। ग्रन्थ का विवेचन करते हुए 'कषाय' शब्द में रहने वाले तीन अक्षरों को "पेज्ज" शब्द के दो अक्षरों में संग्रह करके सूत्र-बद्ध कर दिया है। सूत्रके इन ही दो अक्षरों का वीरसेन, जिनसेन, आचार्यों ने साठ हजार श्लोकों में विस्तार कर दिया है। उन ही ६०००० साठ हजार श्लोकों को गणित पद्धति से मिला कर श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय में ७१८ अठारह भाषाओं में निबद्ध कर दिया है।

कषायपाहुड़ तथा जय धवल को गणित से निकाला है। और इसके प्रथमानुयोग कथन को गणित पद्धति से निकाल कर व्यास ऋषि ने जयाख्यान काव्य लिखा है, उसने २२ वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की दिव्य ध्वनि से प्रगट द्वादशांग शास्त्र का संग्रह करके हरिवंशी और कुरुवंशी राजाओं का कथन जिनवंश और मुनिवंश के कथन के साथ मिलाकर २५००० हजार श्लोकों के साथ जयाख्यान ग्रन्थ की रचना की थी।

व्यास से लेकर आज तक के विद्वानों ने अपने बुद्धि कौशल से घटा बढ़ा कर रद्दोबदल करते हुए उस महाभारत को सवा लाख श्लोकों में विस्तृत कर दिया। इसलिए द्वादशांग पद्धति के साथ में उसका मेल न खाने से अथवा नव-मांक गणित पद्धति में न आने से असंगत होने के कारण जैनों ने उसे नहीं माना।

यहां पर यह शंका होती है कि व्यास ऋषि को जिस प्रकार इस ग्रन्थ में मान्य किया है उसी प्रकार और जैन ग्रन्थों में इस का उल्लेख क्यों नहीं मिलता है ?

इसका समाधान यह है कि यहां पर व्यास शब्द से तीन कम नव करोड़ मुनियों को लिया गया है। उन्हीं में से किसी एक महर्षि के द्वारा इसका निर्माण हुआ है।

न्यूनकोटिनवाचार्यान् ज्ञानदृक्चरणार्चितान्।
ज्ञानदृक्सुखवीर्यार्थमानमानभ्यार्यवंदितान् ॥

अर्थात्—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारक तीन कम नव करोड़ मुनि महाराज लोग हैं जो कि अनन्त ज्ञान अनन्तदर्शन अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टयों के लाभ के लिए आर्य-लोगों के द्वारा वन्दना किये जाते हैं, उन महर्षियों को मैं नमस्कार करता हूं।

इस श्लोक के प्रारम्भ में जो तकार अक्षर आया हुआ है वह भगवद्गीता जयाख्यान और ऋग्वेद इन तीनों से सम्बन्ध रखने वाला है। क्योंकि ॐ तत्स-वितुर्वरेण्यं इत्यादि जो गायत्री मन्त्र है उसके एक एक अक्षर का सम्बन्ध यहाँ चौवन-चौवन श्लोकों तक चल कर जहां गायत्री मन्त्र पूर्ण होता है उसमें ऋग्वेद जयाख्यान गीता और भगवद्गीता ये तीनों आ जाते हैं। उन सब का समाहार रूप संग्रह इस भूवलय की गणित पद्धति के अनुसार एक तकार में आ जाता है। त् अक्षर नित्य सदा से चला आया है ॥२॥

जब भगवान् घाति कर्मों का नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं तो अपनी वाणी द्वारा विश्व भर को प्रतिबोधित करते हैं इसके बाद अघाति कर्मों का नाश करने के समय में उसके पूर्व में जब केवली समुद्घात करते हैं तो अपने आत्म-प्रदेशों द्वारा समस्त लोक का स्पर्श करके फिर वापिस हो शरीरमें आ जाते हैं इसका तात्पर्य यह है कि भगवान अपनी वाणी द्वारा पूर्व में विश्व को व्यक्त करते हुए अन्त में सम्पूर्ण कर्माटक के अणु रूप में होते हुये अव्यक्त रूपमें आ जाते हैं ॥३॥

जिस प्रकार केवली समुद्घात के समय केवली के आत्म-प्रदेश मोक्ष में रहने वाले सिद्ध जीवों को स्पर्श कर लेने पर (लोक पूर्ण समुद्घात के अनन्तर) पुनः अपने मूल शरीर में आ जाते हैं। इसी प्रकार कर्णाटक भाषा १८ महा-भाषाओं रूप होकर ७०० क्षुल्लक भाषाओं को अपने अन्तर्गत करके पुनः अपनी कर्णाटक लिपिबद्ध रूप बनाने वाला यह 'भूवलय' है ॥४॥

सात सौ क्षुल्लक भाषाओं को तथा १८ महाभाषाओं को उपर्युक्त गुणा-कार क्रम से ६४ अक्षरों के साथ गुणा करने पर सुपर्ण कुमार, (गरुड), गंधर्व, किन्नर, किम्पुरुष, नरक, तिर्यञ्च, भील (पुलिन्द), मनुष्य और देवों की भाषा आ जाती है ॥५॥

जिस प्रकार नाट्यशास्त्र में गमक कला द्वारा विविध नृत्य क्रिया प्रगट होती है उसी प्रकार उपर्युक्त ३ पहाड़े के अनुसार गुणा करते समयसम तथा विषम अंक निकलते जाते हैं। उन लब्धांक तथा भंग अंकों से विमल और समल पदार्थ प्रगट हो जाते हैं ॥६॥

जिस प्रकार ह् (६०) को क् (२८) का योग करने पर ८८ होता है फिर ८ और ८ को योग कर (जोड़) देने पर १६ होते हैं, उस १६ के अंक १ तथा ६ को परस्पर जोड़ने से विषम अंक ७ होता है। यह ह् क् बन्ध बंध-पाहुड़ से प्रगट हुआ है जहां पर सूक्ष्म अतिसूक्ष्म विवेचन है ॥७॥

जो अध्यात्म योगी हैं वे ही इस अंक-प्रक्रिया को बतला सकते हैं ॥८॥

संक्षेप में हम उस प्रक्रिया का नाम बतला देंगे। बन्ध-पाहुड़ में विषम योग भंग से प्रारम्भ होता है ॥९॥

विषम योगभंग में ही सम विषम अंक बन जाते हैं ॥१०॥

उन अंकों से जो शब्द बनते हैं वे सब अपुनरुक्त होते हैं ॥११॥

इस प्रक्रिया से समस्त द्रव्य आगम (द्वादश अंग) प्रगट हो जाता है ॥१२॥

वह द्रव्य आगम एक-एक राशि रूप हो जाता है। तब तेलगू भाषा में 'वकटि' कनड़ी भाषा में **'ओंदु'** तामिल भाषा में **'ओंनु'** तथा इसी प्रकार अन्य भाषाओं में 'ओम्' निकल कर आता है ॥१३॥

उन शब्द राशियों में सर्व भाषाओं के अंक प्रगट हो जाते हैं। अब ८८ बन्ध का नाम कहेंगे ॥१४॥

सर्वबन्ध, नौ सर्वबन्ध, उत्कृष्ट बंध, अनुत्कृष्ट बंध, जघन्य बंध, अजघन्य बन्ध, सादि बन्ध, अनादि बन्ध, ध्रुव बन्ध, अध्रुवबन्ध, निखिलबन्ध, बन्ध स्वामित्व, बन्ध काल, बन्धान्तर काल, ह् क् बन्ध सन्निकर्ष, मंगलिक्य, भागा-भाग, क्षेत्रबन्ध, परिमाण बंध, स्पर्शबन्ध, कालान्तर बंध, भाव बन्ध; अल्प बहुत्व बन्ध, इस तरह २२ बन्ध हुए ॥१५-२९॥

इन २२ ❀बन्धों को प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेश बंध से गुणा करने पर २२×४=८८ अठासी भेद हो जाते हैं ॥३०॥

❀ १ प्रकृति बंध, २ स्थिति बंध, ३ अनुभाग बंध और ४ प्रदेश बंध बंध के दो चार भेद हैं। इनमें भी प्रत्येक के १ उत्कृष्ट २ अनुत्कृष्ट ३ जघन्य, और ४ अजघन्य, इस तरह ज्ञानावरणादि कर्मों की प्रकृति (स्वभाव) ज्ञान को ढंकना आदि है। कर्मों के इन स्वभावों का आत्मा के सम्बन्ध को पाकर प्रगट होना प्रकृति है। और आत्मा के साथ कर्मों के रहने की काल-मर्यादा को स्थिति बंध कहते हैं। कर्मों में फल देने की शक्ति की हीनता वा अधिकता को अनुभाग

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध का प्रकृतिके द्वारा रचा हुआ ऊपर आया जो गुणाकार आठ-आठ ८, ८ है पुनः उसे आठ से अथवा आठ कर्मों से गुणाकार करें तो सात सौ चार (८८ × ८=७०४) होते हैं ॥३१॥

उसमें से चार कम कर दिया जाय (७०४—४=७००) तो ७००रह जाते हैं। इन क्षुल्लक भाषाओं का प्रमाण यशस्वती की पुत्री ब्राह्मी देवी ने पशु देव, नारकियों की भाषाओं को जो वृषभनाथ भगवान से सीखा है वे भाषाएं निकल आती हैं। ये भाषाएँ नव अंक रूप कर्म सिद्धांत के अवतार रूप होने के कारण कर्माटक भाषा रूप होकर परिणत हुई हैं। ऐसा कहते हुए रसायन के समान अपने भीतर समावेश कर लेने यह बालाभूवलय काव्य है ॥३२-३३॥

बाहुबली ने भगवान ऋषभन से चौंसठ कलाओं को समझ लिया था। कर्नाटक देश के आदि में आने वाली भाषा ने सम्पूर्ण विनयत्व को अपने भीतर गर्भित कर लिया है ॥३४॥

कर्माटक भाषा में कर्म की कथा और कर्म से मुक्त होने की कथा का वर्णन है अतः इसमें अनेक नय गर्भित हैं। उन सब को यदि संक्षेप में कहा जावे तो एक सुनय और दूसरा दुर्नय है। जगत में अनन्त नय होने के कारण अथवा ३६३ मत होने के कारण प्रत्येक मत और नय अपने आपको श्रेष्ठ तथा शेष सबको कनिष्ठ कहती है, अतः वह दुर्नय है, क्योंकि जिस अंश को वह कहती है पदार्थ उतना ही नहीं है, और अंश भी पदार्थ के हैं उन अवशिष्ट अंशों की उपेक्षा करने के कारण वह दुर्नय सिद्ध होती है। इस कारण इस दुर्नय को एकान्त पक्ष कहते हैं। सुनय इससे विपरीत है वह विविध अपेक्षाओं से पदार्थ के समस्त अंशों का समावेश तथा समन्वय करती है। इसलिए उसको सुनय, सम्यग्नय, प्रमाणाधीन नय, आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। इस तरह सुनय तथा दुर्नय है। समस्त दुर्नयों को और समस्त सुनयों को बतलाकर सबका ठीक समन्वय करने वाली कर्माटक भाषा है। समस्त संसारी जीवों को ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों ने अपने आधीन कर लिया हैं उन सब अनादिअनन्त जीवों का कथन करने वाली यह कर्माटक भाषा है, इसलिए इसमें सुनय और दुर्नय अन्तर्भूत है ॥३५॥

जब इस भूवलय ग्रन्थ का स्वाध्याय श्रद्धा-पूर्वक किया जाता है तब दुर्नय निकलकर कल्याणकारी केवल सुनय मात्र शेष रह जाती है ॥३६॥

जब यह मानव सुनय और दुर्नय के स्वरूप को समझ लेता है तो जैन धर्म में रुचि प्राप्त करता है यानी उसके अन्तरङ्ग में जैन धर्म प्रविष्ट हो जाता है ॥३७॥

इस मानव का मन स्पर्शनादि पांचो इन्द्रियों में प्रवृत्त होता है उससे मनमें जो चंचलता उत्पन्न होती है, उसको यह भूवलय ग्रन्थ निर्मूल करने वाला है ॥३८॥

जब उपर्युक्त दोष दूर होकर मन परिशुद्ध हो जाता है तब इस भूवलय की गणित पद्धति के द्वारा समस्त भाषाओं में तत्व को जानने की शक्ति उसे सहज प्राप्त हो जाती है ॥३९॥

जब गणित शास्त्र का सम्पूर्ण रहस्य प्राप्त हो जाता है तब फिर तीन लोक का सम्पूर्ण ऐश्वर्य हस्तगत होने में क्या देर लगती है ॥४०॥

इस प्रकार यह गणित शास्त्र इस जीव को मोक्ष देने वाला है ॥४१॥

इस भूवलय शास्त्र में विश्व की समस्त भाषाओं का समावेश है। यानी इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाऐं बन जाती हैं ॥४२॥

इस भूतल पर नाना प्रकार के परस्पर विरुद्ध जो मत प्रचलित हैं उन सबको यह भूवलय एकता के सूत्र में बांध कर सार्थक तथा सफल बनाने वाला है ॥४३॥

इस भूवलय ग्रन्थ के अध्येता को कम से कम जिन-मत-सम्मत अणुव्रत धारण करने की योग्यता तो अवश्य प्राप्त हो जाती है ॥४४॥

बंध कहते हैं तथा बंधने वाले कर्मों की परमाणु संख्या को प्रदेश बंध कहते हैं। उत्कृष्ट आदिक भेदों के भी १ सादि (जो छूटकर पुनः बंधा हो) २ अनादि बंध (अनादि काल से जिसके बंध का अभाव न हुआ हो) ३ ध्रुवबंध अर्थात् जिसका निरन्तर बंध हुआ करे और ४ अध्रुवबंध अर्थात् जो अंत सहित बंध हो, इस प्रकार चार भेद हैं। इन बन्धों को नाना जीवों की तथा एक जीव की अपेक्षा से गुणस्थान और मार्गणा स्थानों में यथासंभव घटित कर लेना चाहिए।

जब वह अणुव्रतों पर रुचि प्राप्त कर लेता है तब फिर उसको इस बात का भी पूर्ण विश्वास हो जाता है कि भगवान महावीर की वाणी में सात सौ अठारह भाषा होती हैं जैसा कि इस भूवलय ग्रन्थ में है ।४५-४६।

जब यह विश्वास होता है कि भगवान महावीर की वाणी सात सौ अठारह भाषाओं में सम्पूर्ण तत्व का प्रकाश करने वाली है तो उस जीव के चित्त में एक प्रकार का उल्लास होता है एवं उस उल्लास को पैदा कर देने की शक्ति जिन भगवान के इस भूवलय ग्रन्थ में है ।४७-४८।

भगवान जिनदेव की वाणी जो ६४ अक्षरों के गुणाकार-मय है वह निरर्थक नहीं है ।४९।

जब इस प्रकार की प्रतीति हो जाती है तब वह जीव उन चौंसठ अक्षरों को गुणाकार रूप से अपने अनुभव में लाता है एवं वह सहज में द्वादशाङ्ग का वेत्ता बन जाता है ।५०।

उस महापुरुष के अनुभव में जो कुछ आता है उसी को अभिव्यक्त करने वाला भूवलय है ।५१।

विश्व भर में बिखरे हुए जो भिन्न-भिन्न तीन सौ तिरेसठ मत हैं उन सब को चौंसठ अक्षरों के द्वारा नौ अङ्कों में बांधकर एकीकरण कर बतलाने वाला यह भूवलय है ।५२।

द्वैत यानी दो और अद्वैत यानी एक इन दोनों को मिलाने से तीन बनता है जोकि रत्नत्रय स्वरूप होते हुए अनेकान्त रूप है एवं ॐकार मय है जोकि अनादि से चला आया हुआ है उसी ॐकार के अङ्कको चौंसठ अक्षरों में अभिव्यक्त करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य ने इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की है इस लिए यह कथंचित् सादि तो कथंचित् अनादि रूप भी है ।५३।

इस जगत में शिव, विष्णु, जिन, ब्रह्मा आदि महान देव हैं जोकि सभी कैलाश, बैकुण्ठ सत्यलोक आदि में रहते हैं ऐसा कहकर अपने अपने अपने मान्य देव की श्रेष्ठता प्रगट करते हैं और पक्षपात करके परस्पर विरोध बढ़ाते हैं। परन्तु भूवलय के कर्त्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने उस विरोध को स्थान न देते हुए समस्त जीवों को अध्यात्म-मार्ग ही कल्याण कारी बताया है। तदनुसार समवशरण से मिलने वाले सिद्धान्त को जगत में दशों दिशाओं में फैलाकर पारस्परिक विरोध मिटाने का भूवलय द्वारा प्रयत्न किया है ।५४-५५।

जितने प्राभृत हैं वे सब द्वादशांग से ही निकले हैं प्राभृत का अर्थ अनादि काल के सम्पूर्ण वेद को अनुरूप में बतला देना है। इसलिए इसका नाम प्राभृत रखा गया है कि महान विषय को सूक्ष्म रूप से कहने वाला है। वह कैसे हैं सो कहते हैं—

भगवान महावीर की वाणी से 'तत्त्वमसि' यह शब्द निकला हुआ है उसका अर्थ यह है कि "तत्" 'वह' 'त्वं' 'तू' 'असि' यानी' है'। अर्थात् 'वह तू है'। ऐसा 'तत्त्वमसि' का अर्थ है। इससे यह सिद्ध हुआ कि तत् अर्थात् 'सिद्ध परमेष्ठी' 'त्वमसि 'हे आत्मन तू ही है ।५६।

"तत्त्वमसि" असि आ उ सा" इत्यादि महामहिमा-शाली मन्त्रों से भरे होने के कारण इस भूवलय को महासिद्धि काव्य कहते हैं ।५७।

किसी कारणवश लोग सहिष्णुता (सहनशीलता) की बात करते हैं। परन्तु असहिष्णुता (दूसरों की बात या काम न सहसकने का स्वभाव) होने से सच्ची सहिष्णुता प्रगट नहीं होती है। सहिष्णुता के लिए मनुष्य के हृदय में दया का होना आवश्यक है, दया के बिना सच्ची सहिष्णुता नहीं आ सकती कहा भी है कि "दयामूलो भवेद्धर्मः" यानी—जहां दया है वहीं धर्म है, जहां दया नहीं है वहां धर्म कहां से आवेगा ? आत्मा का स्वभाव दयामय है, अतः आत्मा का धर्म दयामय ही है। अतः जहां दया है वहां पर सहनशीलता स्वयं आ जाती है। दया के सुरक्षित रखने के लिए ही समस्त व्रतों का पालन किया जाता है। जैसे कि "अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रतं विशोधयेत्" यानी-अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए मूलव्रतों की शुद्धि करे ।५८।

संसार के सभी जीव कर्म-बन्धन की दृष्टि से समान हैं। दीखने वाला छोटा जीव जैसे कर्म जाल में फंसा हुआ है बड़ा जीव भी उसी प्रकार कर्म से पराधीन है। इसी कारण महान ज्ञानी योगी सब जीवों को अपने समान समझते हैं। इसी कारण वे सभी छोटे बड़े जीव पर दया भाव रखते हैं। जब सब जीवों की आत्मा एक समान है तब उनको दुःख का अनुभव भी एक समान होता है इसलिए सब पर दया करनी चाहिए ।५९।

हृदय में जब ऐसा भाव आता है तब समन्वय की बुद्धि उत्पन्न होती है। समन्वय बुद्धि वाला व्यक्ति ही समाज को, देश को, जाति धर्म, देव आदि

को समन्वय भाव से देखता है। तब वह समन्वय अमृतमय बन जाता है ।६०।

ऐसी भावना जब हृदय में जाग्रत होती है तब "मैं बड़ा हूं शेष सब प्राणी मुझ से छोटे हैं।" ऐसा छोटा भाव हृदय में नहीं रहता उस समय वह त्रिलोकपूज्य माना जाता है ।६१।

तब उसके जितने भी गुण हैं वे सभी भूवलय (जगत) के लिए प्रतिफलीभूत होकर पुनः प्रज्वलित अवस्था प्राप्त करा देते हैं ।६२।

तब वह जीव ५८ श्लोक में कहे अनुसार दयामय होने के कारण अपनी सहनशीलता के सभी गुणों को सुरस विद्यागम रूपी भूवलय में देखता हुआ संतोष से अपना आत्म-कल्याण कर लेता है ।६३।

इस भूवलय ग्रन्थ का अध्ययन करने से मनुष्य में सहनशीलता आती है जैसे कि—

किसी एक राजकीय बगीचे में आकर एक तरुण सुन्दर सुडौल ऋषि विराजमान हुआ। उसी बाग में राजा सोया हुआ था और उसकी रानियां इधर उधर टहल रही थीं। उन्होंने जब उस साधु को देखा तो सब इकट्ठी होकर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से उसके पास आकर बैठ गईं। मुनि ने उस समय उनको अहिंसा धर्म के अन्तर्गत क्षमा धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया।

इतने में उस राजा की आंख खुली तो उसने देखा कि—रानियां उस साधु के पास बैठी हैं। भ्रम से उसके मन में यह विचार आया कि यह नवयुवक साधु इन रानियों को भ्रष्ट करना चाहता है इसीलिए यह उनसे वार्तालाप कर रहा है। इस विचार से क्रोध में आकर राजा उस साधु के पास गया और बोला कि तुम इन रानियों के साथ क्या व्यर्थ बातें कर रहे हो ?

साधु सरल परिणामी थे। अतः उन्होंने राजा से मीठे शब्द में कहा कि 'मैं क्षमा धर्म का व्याख्यान कर रहा हूं।' परन्तु राजा के मन में तो कुछ और ही बात समाई हुई थी इसलिए उसने उस साधु के एक तमाचा जमा दिया और बोला कि मैं देखना चाहता हूं कि तुम्हारा क्षमा धर्म कहां है ?

साधु ने फिर शान्ति से उत्तर दिया कि—क्षमा धर्म मेरे हृदय में है। राजा को फिर क्रोध आया, अतः उसने दूसरी बार उस साधु के ऊपर एक दण्डा जमा दिया। साधु ने शान्ति-पूर्वक फिर कहा कि—राजन् ! क्षमा तुम्हारे इस दण्डे में नहीं, बल्कि वह तो मेरे मन के भीतर है।

राजा को उत्तरोत्तर क्रोध आता रहा अतः उसने तलवार से साधु के दोनों हाथ काट दिये और बोला कि—अब बता तेरी क्षमा कहां है ?

साधु ने शान्ति से फिर वही उत्तर दिया कि वह मेरे भीतर है।

राजा ने तब साधु के दोनों पैर भी काट दिये और बोला कि बता, क्षमा कहां है ?

इतने पर भी साधु की शान्ति भङ्ग नहीं हुई। वह बोला कि राजन् ! मैंने कह तो दिया कि वह मेरे हृदय के भीतर है, तुम्हारे इन शस्त्रों में वह नहीं हो सकती है

तब राजा को होश आया और वह सोचने लगा कि मैं बड़ा पापी हूं मैंने बिना बात इस साधु को कष्ट दिया परन्तु महान कष्ट होने पर भी साधु जी ने अपनी क्षमा नहीं छोड़ी। ये साधु महात्मा बड़े धीर गम्भीर हैं। ऐसा विचार करते हुए वह साधु महाराज के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाने लगा।

साधु बोले कि राजन् इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? तुमने अपना कार्य किया और मैंने अपना कार्य किया तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि प्रभो ! इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि आप क्षमा के भण्डार हैं।

तात्पर्य यह है कि क्षमा के आगे सबको सिर झुकाना पड़ता है परन्तु यह क्षमा धर्म अध्यात्म-विद्या के अध्ययन किये बिना नहीं आ सकता। वह अध्यात्म विद्या इस भूवलय का सञ्जीवन है, अतः यह भूवलय विश्वभर को क्षमा धर्म का पाठ पढ़ाने वाला है।

'ष' अर्थात् अट्ठावन और 'ह' यानी ६० इनको परस्पर जोड़ दिया जाय तो ११८ होते हैं इसका वर्ग करने पर १३९२४ होते हैं। उनमें से पुनरुक्त एक को कम करने पर १३९२३ रह जाते हैं जोकि नौ से विभक्त हो जाते हैं तो १५४७ लब्ध हुए इनमें उस पुनरुक्त एक को मिला दिया जाय तो १५४८ हो गये इनको नौ से भाग देने पर १७२ आते हैं इसमें से एक निकाल देने पर १७१ रह जाते हैं जोकि नौ से बंटकर १९ आते हैं उसमें से एक निकाल दिया जाय तो १८ रह गया जिसको परस्पर जोड़ देने पर (१+८=९) नौ हो जाते हैं। तात्पर्य

यह है कि इह सौख्य विषम है तथा परलोक का सौख्य सम है। इन दोनों को समान रूप से बतलाने वाला यह भूवलय शास्त्र है ।६६।

र ५४ 'ह' ६० म ४२ इन तीनों को मिलाने से —

५४ × ६० × ५२ = १६६

४

१७०

१

एक मिलाने से १७१

तीनों मिलाने से ९ नौ आता है।

१७० एक षट् खण्ड आगम मिलाने से ण ४२ और ह = ६० १ मिलाने से १७० षट् खंड आगम ९ मिलाने से १७९ + ४२ + ६० = २७८ + १ = २७९ २ + ७ = ९९ + १८ = ९ उपर्युक्त लिपि हुई।

इस प्रकार महान् महान् विषयों का सुलभ रीति से इस के द्वारा अनुभव होता है ॥ ६७ से ७२ ॥

यह भूवलय ग्रन्थ इस लोक में मोक्ष के सम्पूर्ण विषय को बतलाता है। परलोक में अहमिन्द्र पद को प्राप्त कराकर अन्त में मोक्ष प्रदान करता है ।७३-७४।

इस भूवलय को भगवान महावीर ने सिद्ध करके अन्त में मोक्ष फल प्राप्त किया ऐसी महिमा बतलाने वाले यह त्रय रत्न वलय यानी-रत्नत्रय रूपी वलय है ।७६।

क्षुधा तृषादि १८ दोष जिनकी आत्मा में प्रचुर मौजूद है उनको 'यह देव बड़ा है और यह देव छोटा है।' इस तरह उनको देवों में अनेक भेद दीखते हैं। किन्तु जिनके हृदय में १८ दोष नष्ट करने की तीव्र इच्छा है उनके मन में 'रत्नत्रय रूप आत्म धर्म ही स्वधर्म है' ऐसी धारणा होती है ।७७।

जिन्होंने विपरीत धारणा से संसार को ही अपना घर मान लिया है उनको स्वआत्म-धर्म में अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है जब उनका ज्ञानावरण कर्म नष्ट होता है तब उन्हें अन्तकाल तक सुख देने वाले मोक्ष की प्राप्ति होती है ।७८।

किसी मनुष्य को सर्प काटता है तो वह मुरदे के समान अचेत दीखता है यदि उसे सर्प-विष नाशक औषधि दी जावे तो वह तत्काल सचेत हो जाता है। पादरस में रहने वाले दोष नष्ट हो जाने पर पादरस में अमृत के समान शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसी तरह विपरीत मान्यता से जो देव में छोटा या बड़ा भाव रखता था वह अपनी विपरीत भावना (मिथ्या श्रद्धा) निकल जाने पर स्वस्थ शुद्ध आत्मा बन जाता है ॥७९॥

विवेचन—इस संसार में शुद्धात्मा को न जानकर यह मेरा देव है यह मेरा ब्रह्म है। इस संसार में एक ब्रह्म ही है दूसरा कोई नहीं है। इसलिए हमारा धर्म अद्वैत धर्म है। इत्यादि तरह से एकान्त पक्ष लेकर लोग सत्य का निर्णय नहीं करते, वे अन्धकार में स्वयं भटकते हैं और दूसरों को भी भटकाते हैं।

जब एक शैव शिव को जगत में बड़ा मानता है तब वैष्णव अपने विष्णु को बड़ा मानकर विष्णु के साथ लक्ष्मी को भी मानकर द्वैत रूप में अपने धर्म का प्रचार करता है। इस तरह दोनों देवों के भक्तों में परस्पर विरोध फैल जाता है। इस विरोध के निराकरण के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने उपर्युक्त दो श्लोक लिखे हैं।

आगे आचार्य श्री दोनों धर्मों का समन्वय करने के लिए श्लोक कहते हैं:—

रत्नत्रय धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों में आदि का सम्यक् दर्शन अद्वैत धर्म माना जाता है। परन्तु यह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र बिना पूर्ण नहीं होता।

तीर्थंकर जगज्ज्येष्ठा यद्यपि मोक्षगामिनः।
तथापि पालितं चैव चारित्रं मोक्षहेतवे ॥

जगत में श्रेष्ठ जन्म से ही मति, श्रुत, अवधिज्ञान के धारक तद्भव मोक्षगामी तीर्थंकर भी मोक्ष प्राप्ति के लिए चारित्र को आचरण कहते हैं तभी उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इसलिए सम्यग्दर्शन के साथ सम्यक्चारित्र धारण करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

ब्रह्म को अद्वैत धर्म कहने वाले की मान्यता को सुनकर द्वैतवादी वैष्णवों को खेद हुआ अतः वे बोले कि ब्रह्म अद्वैत धर्म ठीक नहीं है हमारा विष्णु धर्म ही (द्वैत धर्म ही) श्रेष्ठ है क्योंकि विष्णु के साथ लक्ष्मी रहती है। इस प्रकार दोनों धर्मों में स्पर्धा होने लगी। तब श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा कि भाई! विवाद मत करो आप यथार्थ बात सोचो। अद्वैत भी श्रेष्ठ है और द्वैत भी क्योंकि 'न द्वैत = अद्वैतं इस प्रकार कहने में दो का निषेध करके एक होता है अर्थात् दो के बिना एक नहीं होता।

विचार कर देखें तो अद्वैत शब्द का अर्थ ब्रह्म न होकर एक होता है तथा द्वैत शब्द का अर्थ विष्णु और लक्ष्मी न होकर दो होता है। एवं इन दोनों को मिला कर तीन का अंक जो बनता है वह अनेकान्त स्वरूप हो जाता है। तात्पर्य यह है कि कथंचित् एक, और कथंचित् दो ठीक होता है, अतएव दोनों का समावेश रूप रत्नत्रय धर्म अनेकान्त धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है और उसी को जैन धर्म कहते हैं। कर्मारातीन् जयतीति जिनः जो सम्पूर्ण कर्मों को जीतने वाला हो उसको जिन कहते हैं और उस जिन भगवान का जो धर्म-आचरण है, वह जैन धर्म है, ऐसा सुन्दर अर्थ होता है। यही प्राणी-मात्र का धर्म सार्व-धर्म है।

कर्मों को अपने अन्दर बनाये रखना न तो द्वैत वादियों को इष्ट है और न अद्वैतवादियों को इष्ट है। इसलिए जैन धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, यह सबको मानना पड़ेगा।

जैन धर्म रत्नत्रयात्मक है रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन पहले है जो कि एक होने से अद्वैत है और उसके अनन्तर ज्ञान तथा चारित्र है जो द्वैत रूप है। इस पर अद्वैतवादी कह सकता है कि पहले आने की वजह से हमारा धर्म प्रधान है परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि यहां पर जिस प्रकार पूर्वानुपूर्वी क्रम लिया जाता है वैसे ही पश्चादानुपूर्वी क्रम भी लिया जाता है। पूर्वानुपूर्वी में सम्यग्दर्शन रूप अद्वैत धर्म पहले आ जाता है तो पश्चादानुपूर्वी में चारित्र और ज्ञान रूप द्वैत धर्म पहले आ जाता है। इस युक्ति को लेकर सब का समन्वय करके एक साथ रखने वाला अनेकान्त धर्म है।

जैसे कि एक गाड़ी को वहन करने वाले दो चक्के होते हैं उन दोनों को एक साथ रखकर घुमाते हुये चले जाने वाला उनके बीच में धुरा होता है उसी प्रकार द्वैत और अद्वैत इन दोनों को टकराने न देकर एक साथ रखने वाला और दोनों को सफल बनाने वाला धुरे के समान यह अनेकान्त धर्म है ॥८०॥

अद्वैत द्वैत और अनेकान्त ये तीनों रत्नत्रय रूप महान धर्म हैं और अर्हन्त भगवान के हार के प्रमुख रत्न हैं। इस रत्नत्रय हार की मन, वचन काय, कृत कारित अनुमोदना रूप ३×३ = ९ परिपूर्ण अंक रूप कड़ियां हैं। इन परिपूर्ण ९ अंकों में ३६३ मतों का समावेश हो जाता है ॥८१॥

उसी परिपूर्ण ९ अंक के ऊपर एक १ का अंक मिलाने से एक सहित शून्य (१०) आता है। उससे ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति हुई है। उस ब्राह्मी लिपि को देव नागरी लिपि कहते है तथा उसी को ऋग्वेदांक भी कहते हैं।

एक से लेकर नौ तक अंकों द्वारा द्वादशांग की उत्पत्ति होती है उस ९ अंक में एक और मिलाने से उस १० दश अंक से ऋग्वेद की उत्पत्ति होती है। इसी को पूर्वानुपूर्वी, पश्चात् अनुपूर्वी कहते हैं। द्वादशांग रूप वृक्ष की शाखारूप ऋग्वेद है। इसलिए इस वेद का प्रचलित नाम ऋक् शाखा है ॥८२॥

ऋग्वेद तीन प्रकार का है मानव ऋग्वेद, देव ऋग्वेद तथा दनुज (दानव राक्षस) ऋग्वेद। इन वेदों द्वारा पशुओं की रक्षा, गो-ब्राह्मण की रक्षा तथा जैन धर्म की समानता सिद्धि हो, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य आशीर्वाद देते हैं ॥८३॥

विवेचन—प्रचलित ऋग्वेद का प्रारम्भ 'अग्निमीले पुरोहितम्' से होता होता है परन्तु भूवलय में ऋग्वेद का प्रारम्भ 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' से है। 'अग्निमीले पुरोहितम्' भी बाद में आ जाता है। अब तक वैदिक लोग जैनों को वेद न मानने के कारण वेद-बाह्य कहते थे। भूवलय के अतिरिक्त अन्य जैन ग्रन्थों ने वेदों में हिंसा का विधान होने से उस को अमान्य मानकर छोड़ दिया है। किन्तु भूवलय में उपलब्ध ऋग्वेद में हिंसा विधान, मद्यपान, द्यूत क्रीड़ा, दुराचार आदि नहीं है। यह दुराचार दानवीय ऋग्वेद में है, मानवीय तथा देवीय ऋग्वेद नहीं है। जैन ग्रन्थों में हिंसा का विशद विस्तृत वर्णन है उसके विपरीत हिंसा के त्याग रूप अहिंसा का वर्णन है क्योंकि हिंसा का विवरण बताने पर ही अहिंसा का विधान होता

हैं। दानवीय ऋग्वेद में मानवीय ऋग्वेद के हिंसा के विवरण के ही विधेय रूप से वर्णन किया है, अहिंसा का विधान छोड़ दिया है।

मानवीय ऋग्वेद के लुप्त हो जाने से दानवीय ऋग्वेद ही प्रचार में आता रहा, जैसे कि द्वादशांग वाणी विलुप्त हुई। मानवीय ऋग्वेद के लुप्त हो जाने पर मनुष्यों ने दानवीय वेद को अपना लिया। इस कारण पशु हिंसा आदि क्रियाएं वेद का आधार लेकर चल पड़ीं। इस वैदिक हिंसा को रोकने के लिए भगवान महावीर ने अहिंसा का प्रचार किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी वैदिक हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई। जब भूवलय में ऋग्वेद का समावेश उपलब्ध हुआ तब से स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी आर्य समाज की धारणा जैन धर्म या जैन समाज के प्रति बदल गई है।

तदनुसार आर्य मार्तण्ड, सार्वदेशिक पत्रिका आदि अपने मासिक पत्रों में आर्य समाजी विद्वानों ने भूवलय ग्रन्थ को प्रशंसात्मक लेखमालाएं प्रकाशित की हैं। उन लेख-मालाओं के आधार से कल्याण, विश्वमित्र, P.E.N. तथा आर्ग-नाईजर आदि विख्यात पत्रों ने भी भूवलय ग्रन्थ का महत्व विश्व में फैला दिया है। बेंगलोर आर्य समाज के प्रमुख श्री भास्कर पंत ने, अजमेर के प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम० ए० तथा विश्वविख्यात विद्वान् स्वा० ध्रुवानन्द जी को तथा अन्य आर्य विद्वानों को आमंत्रित करके सर्वार्थ-सिद्धि बेंगलौर में लाने का प्रयास किया। उन विद्वानों ने बेंगलौर में भूवलय ग्रन्थ का अवलोकन करके हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की तथा श्री डा० सूर्यदेव जी ने भूवलय की महिमा में निम्नलिखित श्लोक निर्माण किया—

अनादि निधाना वाक्, दिव्यमीश्वरीयंवचः ।
ऋग्वदोहि भूवलयः दिव्यज्ञानमयो हि सः ॥

अर्थ—भूवलय ग्रन्थ अनादि अनन्त वाणी स्वरूप है, दिव्य ईश्वरीय वचन है, दिव्य ज्ञानमय है और ऋग्वेद रूप है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य आशीर्वाद देते हैं कि इतिहास काल से पूर्व का प्रचलित वेद का ज्ञान प्रसार भविष्य में भी हो ॥८४॥

श्री जिनेन्द्र वर्द्धमानांक यत्र तत्रानुपूर्वी के क्रम से नवम है ॥८५॥

यह नवमी कही जाने वाली लिपि ही अक्षांश में है ॥८६॥

विंदी से प्रारम्भ होकर विंदी के साथ ही अंत होने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥८८॥

इसकी उत्पत्ति इस तरह है—

९ अंक शून्य से निष्पन्न हुआ है और वह शून्य भगवान के सर्वांग से प्रगट हुआ है। जिस प्रकार हम लोग वार्तालाप करते समय अपना मुख खोलकर बातचीत करते हैं उस प्रकार भगवान अपना मुख खोलकर नहीं करते। भगवद्-गीता में भी कहा गया है कि:—

सर्वद्वारेषु कौन्तेय प्रकाश उपजायते !

इसी प्रकार उपनिषद् में भी 'मौन व्याख्या प्रकटित परब्रह्म' इत्यादि रूप से कहते हैं। मौन व्याख्या का अर्थ भगवान के सर्वांग से ध्वनि निकलना है। अभी तक इसका स्पष्टीकरण नहीं हो सका था, किन्तु जबसे भूवलय सिद्धांत शास्त्र उपलब्ध हुआ तब से यह आधुनिक विचारज्ञों के लिये नूतन विषय दृष्टि-गोचर हुआ। ऋषभनाथ भगवान् ने अपनी कनिष्ठ कन्या सुन्दरी देवी की हथेली पर अमृतांगुली के मूल भाग से बायीं ओर एक बिन्दी लिखी। तत्पश्चात् उस बिन्दी को अर्द्धच्छेद शलाका से दो टुकड़ों में बनाया। उन्हीं दोनों टुकड़ों के द्वारा अंकशास्त्र को पद्धति के अनुसार घुमाते हुये ९ अंक बनाये, जो कि अन्यत्र चित्र में दिया गया है। किन्तु ९ अंक में रहने वाले दोनों टुकड़ों को यदि पर-स्पर में मिला दिया जाय तो पुनः बिन्दी बन जाती है।

यही बिन्दी श्री ऋषभदेव भगवान के बन्द मुँह से हूं इस ध्वनि के रूप में निकली जोकि भूवलय के ६४ अक्षरांकों में से इकसठवां अंकाक्षर है। यानी (०) अनुस्वार है न कि ५२ वां अक्षरांक (म्) है।

अब उस बिन्दी (०) को ठीक मध्य भाग से तोड़कर दो टुकड़े करने से उसके ऊपर का भाग कानड़ी भाषा का १ अंक बन जाता है, जोकि संस्कृतादिक द्राविड़ेतर भाषाओं में नहीं बनता। भगवान के सर्वांग से जो ध्वनि निकली वह भी उपर्युक्त बिन्दी के रूप में ही प्रगट हुई। इसलिए उसका लिपि आकार भी "०" ऐसा प्रचलित हुआ। इस प्रकार लिपि के आकार का और ध्वनि निकलने के स्थान का परस्पर में सम्बन्ध होने से इसी बिन्दी का दूसरा

नाम "गौड़" नाम पद है। इसी बिन्दी को कानड़ी भाषा में सोन्ने, प्राकृत में शून्य तथा हिन्दी भाषा में बिन्दी इत्यादि अनेक नामों से पुकारते हैं।

शून्य का अर्थ अभाव होता है और उस शून्य को काटकर ही कानडी भाषा के १ और २ बने। इन दोनों को मिलाकर ३ हुए और ३ को परस्पर में गुणा करने से ९ होते हैं, जोकि सद्भाव को सूचित करते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अभाव और सद्भाव कथंचित् अभिन्न और कथंचित् भिन्न हैं। एवं भिन्नाभिन्न ही स्याद्वाद का मूल सिद्धान्त है। यहां तक ८७ श्लोक का अर्थ समाप्त हुआ।

ऋग्वेद जोकि [illegible] देव का यशोगान करने वाला है उस ऋग्वेद को देव, मानव और दानव ये तीनों ही गाते रहते हैं परन्तु उनमें परस्पर में कुछ विशेषता होती है। मनुज और देव ये दोनों तो सौम्य प्रकृति हैं इसलिए गो, पशु और ब्राह्मण इन तीनों की रक्षा करने वाले तथा शुभाशीर्वाद देने वाले हैं एवं जैन धर्म की प्रभावना करने वाले हैं। किन्तु दानव क्रूरप्रकृति वाले होते हैं इसलिए उसी ऋगवेद को क्रूरता के रूप से उपयोग में लाने वाले एवं हिंसा का प्रचार करने वाले हैं। अब यह भूवलय अङ्क उन तीनों के परस्पर विरोध को मिटाकर उन्हें एकता के साम्राज्य में स्थापित करने वाला है।८८। तथा उपर्युक्त अद्वैत, द्वैत और अनेकान्त तीनों में भी परस्पर प्रेम बढ़ाकर समन्वय करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।८९।

यद्यपि ये तीनों धर्म परस्पर में कुछ विरोध रखने वाले हैं। फिर भी इन तीनों को यहां रहना है अतएव यह भूवलय ग्रन्थ उन तीनों को नियन्त्रित करके निराकुल करने वाला है।९०।

यह भूवलल ग्रन्थ हम लोगों को बतलाता है कि सम्पूर्ण प्राणी मात्र के लिए समान रूप से एक ही धर्म का उपदेश देने वाला ऋग्वेदाङ्क है।९१।

यह भूवलय ग्रन्थ आदि में भी और अन्त में भी परिपूर्णाङ्क वाला है। सो बताते हैं—यह भूवलय ग्रन्थ-बिन्दु से प्रारम्भ होता है अतएव आदि अंक बिन्दु है उस बिन्दु को काटकर कानड़ी लिपि के १-२-३ आदि नौ तक के अंक बनते हैं। अन्त में जो नौ का अङ्क है वह भी बिन्दु के दोनों टुकड़ों से बनता है। ऐसा हम पहले भी अनेक स्थानों पर बता चुके हैं। यह भूवलय आदि में और अन्त में एकसा है।९२।

मनु और मुनि इत्यादि महात्माओं के ध्यान करने योग्य यह भूवलय ध्यानाङ्क है।९३।

यह भूवलय ग्रन्थ-स्वप्न में भी सब लोगों को सुख देने वाला है अतएव शुभाङ्क है।९४।

सभी मन्मथों का यह आद्यन्त अंक है।९५।

जिनरूपता को सिद्ध कर दिखलाने वाला यह अंक है।९६।

जिस प्रकार चन्द्रमा के प्रकाश में आदि से लेकर अन्त तक कोई भी अन्तर नहीं पड़ता उसी प्रकार इस भूवलय में भी आदि से अन्त तक कोई अन्तर नहीं है।९७।

इस भूवलय की भाषा कर्मा (र्णा) टक है जोकि ऋद्धि रूप है और अपने गर्भ में सभी भाषाओं को लिए हुए है।९८।

शरीर को पवित्र और पावन बनाने वाला यह अंक है अर्थात् महाव्रतों को धारण करने की प्रेरणा देने वाला है।९९।

आदि से अन्त तक यह भूवलय ब्राह्मी (लिपि) अंक है।१००।

अद्वैत का प्रतिपादन करने वाला एक का अंक पूर्वानुपूर्वी में जिस प्रकार प्रारम्भ में आता है उसी प्रकार पश्चादानुपूर्वी में नौ के समान सबसे अन्त में आता है, इस बात को बताने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।१०१।

अद्वैत का अर्थ सम्यग्दर्शन है, क्योंकि सम्यग्दर्शन हो जाने पर यह जीव अपनी आत्मा के समान इतर समस्त आत्माओं को भी इस शरीर से भिन्न ज्ञानमय एक समान जानने लगता है। द्वैत का अर्थ सम्यग्ज्ञान है; क्योंकि ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण आत्माओं की या इतर समस्त पदार्थों की विशेषताओं को ग्रहण करते हुए आपापर का भेद व्यक्त हो जाता है। इसी प्रकार अनेकान्त का अर्थ सम्यक्चारित्र लेना चाहिए; क्योंकि वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान इन दोनों को एकता रूप करते हुए स्थिरतामय हो जाता है। अब पूर्वानुपूर्वी क्रम में सम्यग्दर्शन प्रथम आने से प्रधान है, तो पश्चादानुपूर्वी क्रम में सम्यक्चारित्र प्रधान बन जाता है। इसी प्रकार यत्रतत्रानुपूर्वी क्रम में सम्यग्ज्ञान मुख्य ठहरता

है। इस तरह अपने अपने स्वरूप में सभी मुख्य और पर रूप से देखने पर गौण बनते रहते हैं। इस स्याद्वाद पद्धति से स्याद्वाद, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का पूर्णतया प्राप्त होना ही परमात्मा का स्वरूप है। और यही अद्वैत है ।१०२।

इस प्रकार जो विद्वान पूर्वोक्त तीनों आनुपूर्वियों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसका हृदय विशाल बन जाता है, क्योंकि उसमें समस्त धर्मों का समन्वय करने की योग्यता आ जाती है। और उसके विचार में फिर सभी धर्म एक होकर परम निर्मल अद्वैत स्थापित हो जाता है ।१०३।

इस प्रकार अद्वैत का परम श्रेष्ठ हो जाना जैनियों के लिए कोई आपत्ति कारक नहीं है। क्योंकि हम यदि गम्भीरता से अपने मन में विचार करके देखें तो जैनियों के जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित यह भूवलय शास्त्र अनुभय रूप है। अर्थात् अथंचित् द्वैत रूप है, तो कथंचित् अद्वैत रूप है और कथंचित् द्वैताद्वैत उभय रूप है। अतएव अथंचित् दोनों रूप भी नहीं है। इस प्रकार उभय अनुभय इन दोनों की घनसिद्ध (समष्टि) रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ।।१०४।

इसलिए यह भूवलय दिव्य सिद्धान्त ग्रन्थ है। यानी सर्व-सम्मत ग्रन्थ है अर्थात् सबके लिए माननीय है ।१०५।

वस्तुतः यह भूवलय ग्रन्थ जिन सिद्धान्त ग्रन्थ है ।१०६।

प्रारम्भ से लेकर अन्त तक समान रूप से चलने वाला अंकमय यह भूवलय ग्रन्थ है ।१०७।

आत्मा का स्वरूप घन स्वरूप है इसलिए यह घन धर्मांक भूवलय है ।१०८।

अंक में संख्यात असंख्यात और अनन्त ऐसे तीन भेद होते हैं। अनन्त केवली-गम्य है। उस अनन्त राशि को जनता को बतलाने वाला यह भूवलय है ।१०९।

जब अनन्त अंक का दर्शन होता है तब सिद्ध परमात्मा का ज्ञान हो जाता है इसलिए नाम सिद्ध भूवलय है ।११०।

यह भूवलय ग्रन्थ बिन्दी से निष्पन्न होने के कारण अणुस्वरूप है और अनन्तानन्त अर्थात् ९ तक जाने के कारण महान् भी है। इसलिए यह अणु-महान् काव्य है ।१११।

यह भूवलय जिनेश्वर भगवान का वाक्यार्थ है ।११२।

यह भूवलय मन शुद्ध्यात्मक है ।११३।

शरीर विद्यमान रहने पर भी उसे अशरीर बनाने वाला यह भूवलय है ।।११६।।

जिसको कि तुम स्वयं अवगत किये हुए हो, ऐसे व्यतीत कल में अनादि काल छिपा हुआ है। आज यानी–वर्तमान काल में तुम मौजूद ही हो, अतः वह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार आने वाले कल में अनन्तकाल छिपा हुआ है। परन्तु जब तुम रत्नत्रय का साधन कर लोगे तो बीते हुए कल के साथ में आने वाले कल को एक करके स्पष्ट रूप से जान सकोगे। एवं अपने आप में तुम स्वयं अनाद्यनन्त हो जाओगे। अतः आचार्य का कथन है कि तुम भरसक रत्नत्रय साधन करने का सतत यत्न करो ।।११७।

इस प्रकार सच्चा रत्नत्रय प्राप्त हो जाने पर समतारूपी खड्ग के द्वारा क्रमशः क्रोध, मान, माया लोभ का नाश करके आत्मा विमलांक बन जाती है और इसी का नाम अनागत काल है। इसको बताने वाला भूवलय है ।।११८।।

मन के दोषों को दूर करने वाला अध्यात्मशास्त्र है, जो कि इस भूवलय में भरा हुआ है। वचन के दोषों को दूर करने वाला व्याकरण शास्त्र है, वह भी इसी भूवलय में गर्भित है। इसी प्रकार शारीरिक वातादि दोषों को दूर करने वाला १३ करोड़ मध्यम पदात्मक वैद्यक शास्त्र भी इस भूवलय में आ गया है। इसलिए मन, वचन व काय को परिशुद्ध बनाने वाला यह भूवलय है ।।११९।।

यह भूवलय भगवान् की दिव्य ध्वनि से प्रगट हुआ है। अतः यह भी (शोभावान्) वचन होने से अत्यन्त मृदु, मधुर और मिष्ट है। तथा हृदय कमल पर आकर विराजमान होने से मन को प्रफुल्लित करने वाला है और मन प्रफुल्लित हो जाने पर भविष्यत् काल रूपी कल पूर्ण रूप से अवगत हो जाता है तथा आत्मा अद्वैत बन जाती है ।।१२०।।

यह भूवलय ग्रन्थ भूत भविष्यत् वर्तमान कालों को एक कर के बतलाने वाला, द्वैत अद्वैत और जय इन तीनों को एक कर बतलाने वाला एवं देव,

दानव तथा मानन इन तीनों को एक साथ समता से रखने वाला है। इसलिये यह धर्मांक है ॥१२१॥

इन समस्त धर्मों को एकत्रित कर बतलाने वाले श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र भगवान् के धर्म का भी यह भूवलय प्रसिद्ध स्थान है। अतः धर्मांक है ॥१२२॥

वस्तुतः सभी मानवों का धर्म एक है, जिसका कि इस भूवलय में प्रतिपादन किया गया है ॥१२३॥

प्रति शरीर में जो आत्मा विद्यमान है, वह उत्तम धर्म वाली है ॥१२४॥

गत कल अनन्त काल तक बीता हुआ है और आने वाला कल भी अनन्त काल तक है अर्थात् आने वाला भूत काल से भी विशाल है इन दोनों को वर्तमान काल कड़ी के समान जोड़ता है ॥१२५॥

आदि में रहने पर भी आदि को देख नहीं सकते, और अंत में रहने पर भी अंत को नहीं देख सकते, ऐसा जो अंक है वह ३×३ = ९ नौ अंक है।

जैन धर्म में अनेक भेद हैं उन भेदों को मिटा कर ऐक्य करने वाला यह नव पद जैन धर्म नामक ऐक्य सिद्धांत है ॥१२६॥

जगतवर्ती समस्त प्राणी मात्र के कल्याण करने वाले सभी धर्म नहीं हो सकते यद्यपि दुनिया में अनेक धर्म हैं परन्तु वे सभी धर्म कल्याणकारी नहीं हैं ॥१२७॥

जिस धर्मसे समस्त प्राणीमात्र का कल्याण हो उसी को सद्धर्म अथवा धर्म कहा जाता है, अन्य को नहीं ॥१२८॥

सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद हैं, उन विभिन्न ज्ञानों की योग्यता को बताने वाला यह भूवलय है ॥१२९॥

हमारा ज्ञान अधिक है और तुम्हारा ज्ञान अल्प है, इस प्रकार परस्पर विरोध प्रगट करके झगड़ने वालों के विरोध को मिटा कर सम्यग्ज्ञान को बतलाने वाला यह भूवलय है। अर्थात् परस्पर विरोध को मिटाने वाला तथा सच्चा ज्ञान प्राप्त कराने वाला यह भूवलय है ॥१३०॥

देव लोग और राक्षस (सज्जन और दुर्जन) एक ही प्राणी के सन्तान हैं। जैन जनता भगवान महावीर की परम्परा संतान रूप से अनुगामिनी है अर्थात् उनकी भक्त है। परन्तु कलिकाल के प्रभाव से जैसे पांडव और कौरवों ने एकता को तोड़ कर आपस में विरोध पैदा किया उसी प्रकार जैन भाई आपसी प्रेम को नष्ट करके विरोध पैदा करके एक ही धर्म को अनेक रूप मानने लगे हैं। द्वेष भाव मिटा कर ऐक्य के लिए प्रेरणा देने वाला यह भूवलय है ॥१३१॥

अन्य ग्रन्थों में अक्षरों को कम करके सूत्र की सूचना हो सकती है। परन्तु भूवलय ग्रन्थ में इस तरह नहीं हो सकता क्योंकि इसमें एक भाषा के साथ अनेक भाषाएं और अनेक विषय प्रगट होते हैं, अतः अन्य ग्रन्थों के सूत्रों के समान इस ग्रन्थ के सूत्र नहीं बन सकते। भूवलय के एक एक अक्षर में अनेकों सूत्र बनते हैं। इसलिए भूवलय ग्रन्थ सूत्र रूप है तथा यह ग्रन्थ विराट रूप भी है ॥१३२॥

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये परमेष्ठी विभिन्न गुणों के कारण भिन्न रूप दिखने पर भी आध्यात्मिक देव दृष्टि से पांचों समान हैं इनमें कोई भेद नहीं है। अथवा समस्त तीर्थंकर देवत्व की दृष्टि से समान हैं, पूर्ण शुद्ध परमात्मा में जिन विष्णु शिव, महादेव और ब्रह्मा आदि नामों से कोई भेद नहीं होता ॥१३३॥

अर्हंदादि देवों के वाचक अक्षरों से बना हुआ मन्त्र भक्तों की रक्षा करता है ॥१३४॥

उपर्युक्त मन्त्रों को एकाग्रता के साथ जपने वाले को सातिशय पुण्य बन्ध होता है ॥१३५॥

इसी के साथ-साथ उनको विनत भाव और अहिंसात्मक सद्धर्म की भी प्राप्ति होती है ॥१३६॥

यह भूवलय ग्रन्थ परम सत्य का प्रतिपादन करने वाला होने से सभी के लिये कल्याणकारी है ॥१३७॥

यह भूवलय का नवमांक अणुव्रत और महाव्रत का स्पष्टरूप से प्रतिपादन करने वाला है इसलिये अण् महान् (हनुमान) जिन देव का कहा हुआ यह अङ्क है। उस हनुमान जिन देव की कथा रामाङ्क में आई हुई है और रामाङ्क यानी राम कथा भी मुनि-सुव्रतनाथ भगवान की कथा में आई है। श्री मुनि सुव्रतनाथ की कथा प्रथमानुयोग में अङ्कित है। प्रथमानुयोग शास्त्र श्री द्वादशाङ्ग वाणी का एक अंश है। यह भूवलय ग्रन्थ द्वादशाङ्गात्मक है, इसलिये यह जिन धर्म का वर्द्धमानाङ्क है ॥१३८॥

इस भूवलय ग्रन्थ में अनेक महान् ऋद्धियों का वर्णन है। ऋद्धियां जैन मुनियों को प्राप्त होती हैं। जिन ऋद्धियों के प्राप्त होने पर शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है और सम्यक्त्व परिशुद्ध हो जाता है उन्हीं ऋद्धि वाले महर्षियों में से एक श्री बालि महामुनि भी हैं जोकि राम-रावण के समय में हो गये हैं। जब अपने बलके अभिमान में आकर रावण ने कैलाशगिरि को उठाकर समुद्र में डालना चाहा था उस समय श्री बालि मुनि ने अपने पैर के अंगुष्ठ से जरा सा दबाकर कैलास पर्वत के जिन मन्दिरों को रक्षा की थी और रावण के अभिमान को दूर किया था। ऐसे शुद्ध सम्यक्त्व के धारक श्री बालि मुनि की बुद्धि ऋद्धि का यशोगान करने वाला यह भूवलय शुद्ध रामायणाङ्क है ॥१३९॥

द्वादशाङ्ग वाणी में जो शुद्ध रामायण अंकित है उसी रामायण को लेकर वाल्मीकि ऋषि ने कवि लोगों को काव्य रस का आस्वादन कराने के लिए काव्य शैली में लिखा और उसमें महाव्रतों की महिमा को बतलाया। उन महाव्रतों में परिस्थिति के वश होकर यथा समय में आने वाले दोषों को दूर हटाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ परिशुद्धाङ्क है ॥१४०॥

जो परिशुद्धाङ्क–संसारी जीवों के महादुखों को दूर हटाने के लिए अणुव्रतों की शिक्षा देता है, उन्हीं अणुव्रतों के अभ्यास से महाव्रतों की सिद्धि होती है। जो मनुष्य महाव्रतों को प्राप्त कर लेता है उसको मंगलप्राभृत की प्राप्ति हो जाती है। उस मंगलमय महात्मा का दर्शन कराकर सम्पूर्ण जनता को परिशुद्ध बनाने वाला यह भूवलयांक है ॥१४१॥

विविध मंगलरूप अक्षरों से समस्त संसार भर जावे फिर भी अक्षर बच जाता है। सबसे प्रथम उन सभी अक्षरों को भगवान आदिनाथ ने अमृतमय रस के समान यशस्वती देवी के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मी देवी की हथेली पर लिखा था वे ही अक्षर आज तक चले आये हैं। इन ६४ अक्षरों का ज्ञान होने से अनादि कालीन आत्माके विष के समान संलग्न अज्ञान दूर हो जाता है। इसलिये इन अक्षरों का नाम 'विषहर नीलकंठ' भी है। नीलकंठ का अर्थ ज्ञानावरणादि कर्म हैं। वे कर्म विषरूप हैं उन कर्मों का कथन करने वाला भगवान का कंठ है, इस कारण यह भूवलय का अंक नीलकंठ अंक है ॥१४२॥

आदि मन्मथ बाहुबली की बहिन सुन्दरी को इस नवमांक रूप भूवलय का दर्शन तथा अनुभव कराकर अरहंतादि नव देवता सूचक जो ९ नौ अंक है, उस ९ अंक को शून्य के रूप में अनुभव कराकर दिया हुआ ९ वां अंक है ॥१४३॥

जैन धर्म में कहे हुए अर्हंतादि नव पद के समीप आकर ॥१४४॥

स्मार्त अर्थात् स्मृतियों के धर्म को और वैष्णव धर्म को इन्हीं अंकों में समावेश और समन्वय करते हुए ॥१४५॥

इन धर्म वालों को अपने शरीर में ही अपनी आत्मा को दिखला कर नव अंक में शून्य बतलाकर इन धर्म वालों के शरीर के दोष एक हीसमान है कम अधिक नहीं है ऐसे बतलाते हुए सम्यग्नय और दुर्नय इन दोनों नामों को बतलाया। अंत में दुर्नय का नाश करके सुनय में अतिशय को बताकर अन्त में उस अतिशय को अनेकांत में सम्मिलित कर दिया फिर चैतन्यमय आत्म तत्व को अपने हृदय में स्थापित करके हिंसामय धर्म से छुड़ा अहिंसा में स्थापित कर देते हैं। इसी रीति से जिन मार्ग को सुन्दर बना कर और विनय धर्म के साथ सद्धर्मांक को जगत में फैलाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४६-१५६॥

चौथे गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुण स्थान तक उत्तरोत्तर आत्मा के सम्यक्त्व गुण की निर्मलता होती जाती है जिससे कि आगे आगे असंख्यात गुणी निर्जरा होती रहती है ॥१५७॥

ऊपर जो अनन्त शब्द आया है उसकी महिमा बतलाने के लिए सर्वजघन्य संख्यात दो है। इस बात का खुलासा ऊपर बताया जा चुका है तथा एक का अंक अनन्त है यह बात भी ऊपर बता चुके हैं। अब एक और एक मिलाकर दो होता है इसलिए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि सर्व जघन्य संख्यात भी अनन्तात्मक है। इतना होकर भी आगे आने वाली संख्याओं की अपेक्षासे बिलकुल छोटा है। इस छोटे से छोटे अंक को इसी से वर्गित सम्वर्गित करें तो ४ महाराशि आती हैं $\frac{2}{2}=4$ इसको आगम की परिभाषा में एकबार वर्गित सम्वर्गित राशि कहते हैं।

इस राशि (४) को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करें तो दो सो छप्पन ४×४×४×४=२५६ आता है। इसका नाम दुबारा वर्गित सम्वर्गित राशि है। अब इस राशि को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करें तो २५६ = ६१७ स्थानांक आते हैं इसको तीन बार वर्गित सम्वर्गित राशि कहते हैं।

२५६×२५६×२५६×२५६×२५६×२५६ इस प्रकार दो सो छप्पन बार गुणा करनेसे जो महाराशि उत्पन्न होती है उसका नाम ६१७ स्थानांक है ।

(१) २५६×२५६ इसी रीति से बार-बार दो सो छप्पन बार करना ।

(२) ६५५३६×२५६

(३) १६७७७२१६×२५६

इस तरह से सर्व जघन्य दो को सिर्फ तीन बार वर्गित सम्वर्गित करने से ही कितनी महान राशि हो गई । इससे भी अनन्त गुणा बढ़कर कर्म परमाणु राशि प्रत्येक संसारी जीव के प्रति संलग्न है । उन कर्म परमाणुओं को नष्ट कर दिया जावे तो उतने ही गुण आत्मा में प्रगट हो जाते हैं । अब सर्वोत्कृष्ट अनन्तानन्त संख्याङ्क को लाने की विधि श्री कुमुदेन्दु आचार्य बतलाते हैं—

उपर्युक्त तीन बार वर्गित सम्वर्गित राशि से वर्गित सम्वर्गित करें तो चार बार वर्गित सम्वर्गित राशि आती है । इस चार बार वर्गित सम्वर्गित राशि को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करने पर पांच बार वर्गित सम्वर्गित राशि बनती है इसी प्रकार छटवें वार, सातवें वार, आठवें वार और नौवें वार उत्तरोत्तर वर्गित सम्वर्गित करते चले जावे तो जो अन्त में महा-राशि उत्पन्न होती है उसका नाम नौ वार वर्गित सम्वर्गित राशि होता है । इस राशि का नाम उत्कृष्ट संख्यातानन्त है । इसके मध्य में दो से ऊपर जो भेद हुये सो सब मध्यम संख्यातानन्त के भेद हैं । इसमें एक और मिला देने से जघन्य असंख्यात होता है यह असंख्यात का एक हुआ । इस असंख्यात में इतना ही और मिलावें तो असंख्यात का दो हो जाता है । इस प्रकार करने पर उत्पन्न हुई महा राशि को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने असंख्यात के दो माने हैं । इस दो को इसी दो से वर्गित सम्वर्गित करें तो असंख्यात की वर्गित सम्वर्गित राशि ४ हुई । यह असंख्यात की प्रथम वार वर्गित सम्वर्गित राशि हुई । असंख्यात $^{3}= ४$ इस चार को इसी चार से चार बार गुणा करने पर जो महा राशि उत्पन्न हो वह असंख्यात की दुबारा वर्गित सम्वर्गित राशि असंख्यात ४× असंख्यात ४× असंख्यात ४× असंख्यात ४× = असंख्यात २५६ होता है। इसी असंख्यात महा राशि को इस महा राशि से इतनी ही वार वर्गित सम्वर्गित करने पर असंख्यात की तीन वार वर्गित सम्वर्गित राशि असंख्यात २५६ स्थानांक उत्पन्न होती है ।

इसी प्रकार चार बार असंख्यात सम्वर्गित, इत्यादि नौ बार वर्गित सम्वर्गित कर लेने पर जो महाराशि होती है वह उत्कृष्ट असंख्यातानन्त है । और इसके बीच के सब भेद मध्यम असंख्यातानन्त होते हैं । इसी में एक और मिला देने पर अनन्तानन्त का प्रथम भेद हो जाता है अर्थात् अनन्तानन्त का एक होता है और इसमें इतना ही और मिला देवे तब अनन्तानन्त का दो हो जाता है । इस दो को इसी दो से वर्गित सम्वर्गित करने पर अनन्तानन्त का ४ आता है जोकि अनन्तानन्त का एक बार वर्गित सम्वर्गित राशि होती है । अब इसको भी पूर्वोक्तरीत्य नुसार के पश्चात् नौ बार वर्गित सम्वर्गित करने से जो महाराशि होती है वह उत्कृष्टानन्तानन्त होता है । यह अनन्तानन्त परिभाषा तो गणना को अपेक्षा से बताई गई है इससे भी अपरिमित अनन्तानन्त और हैं जिन के नाम एकानन्त, विस्तारानन्त, शाश्वतानन्त इत्यादि ग्यारह स्थानों तक चलता है । जोकि छद्मस्थ के बुद्धि-गम्य न होकर केवलि-गम्य है । यह गणित-पद्धति विद्वानों के लिए आनन्द-दायक होनी चाहिए क्योंकि यह युक्ति-सिद्ध है ।

नवमांक में पहले अरहंत, दूसरे सिद्ध तीसरे आचार्य चौथे उपाध्याय, पांचवें में ॥१५८॥

पाप को दहन करने के लिए साधु समाधि में रत साधु छठा सच्चा धर्म, सातवां परिशुद्ध परमागम, आठवीं जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति ।१५९।

नौवां गोपुर द्वार, शिखर, मानस्तंभ इत्यादि से सुशोभित जिन मन्दिर है, आगम परिभाषा में ऊपर कहे हुए नौ को नव पद कहते हैं ॥१६०॥

इस नव पद का पहला मूल स्वरूप अद्वैत दूसरा द्वैत है इन दोनों से समान रूप से मोक्ष पद प्राप्त करने की जो प्रबल इच्छा रखते हैं । उनको एक ही समान द्रव्य और भाव मुक्ति के लाभ दोनों को ॥१६१॥

जब मिलता है तब अनेकांत का मूल स्वरूप नय मार्ग मिलता है । हम लोग इसी तरह जैनत्व को प्राप्त करेंगे तो चौदहवें गुणस्थान की प्राप्ति हो सकती है ॥१६२॥

तब उसमें मन वचन काय योग की निवृत्ति होती है । उसी समय विश्व के अग्रभाग पर यह आत्मा जाकर स्थित रहता है ॥१६३॥१६४॥

उसी सिद्ध अवस्था प्राप्त किये हुए स्थान को मोक्ष या बैकुण्ठ कहते हैं ।१६५।

यह श्री वीर वाणी विद्या है ।१६६।

इसी विद्या के सिद्धि के लिए हम अनादि काल से इच्छा करते थे ॥१६७॥

केवली समुद्घात के अन्तर्गत लोक-पूरण समुद्घात में भगवान के आत्म प्रदेश सर्वलोक को व्याप्त करते हैं उससमय केवली का आत्मा समस्त जीव राशि के आत्म प्रदेश में भी स्थित होने के कारण उस प्रदेश को सत्यलोक ऐसे कहते हैं ॥१६८॥

उस केवली भगवान के परिशुद्ध आत्म-प्रदेश हमारे आत्म-प्रदेश में सम्मिलित होने के बाद समस्त जीव लोक और भव्य जीव लोक इन दोनों लोक की शुद्धि होती है ॥१६९॥

उन भगवान के विराट् रूप का अन्तिम समय जन्म और मरण को नाश करने वाला है ॥१७०॥

और वही समस्त भाव और अभाव रहित है ॥१७१॥

इसलिए हे भव्य मानव प्राणियो ! तुम लोग इसी स्थान की हमेशा आशा करते रहो ॥१७२॥

इस प्रकार आशा को रखते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विश्वरूप भूवलय काव्य का महत्व बताया है ॥१७३॥

श्री विष्णु का कहा हुआ द्वैत धर्म, ईश्वर का कहा हुआ अद्वैत धर्म तथा जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ अनेकांत इन तीनों धर्मोंका ज्ञान हो जाय तो ३६३ अनादि काल के धर्म का ज्ञान होता है। उन धर्मों के समस्त मर्म के ज्ञानी लोग अपने हृदय कमल की पाखंडियों में लिखे हुए अक्षरों में ओं अंक को गुणाकार रूप से गुणनकर के आये हुए अंक में अनाद्यनंत काल के समयों को शलाका खंड के साथ मिला देने से आया हुआ जो काव्य सिद्ध है वही भूवलय है ॥१७४॥

भूवलय के नौ अंकों के रहस्य को जो कोई भी मनुष्य जान लेता है, इन को वश में कर लेता है उसके निद्रा भूख प्यास इत्यादि अठारह दोष जोकि संसार के मूल हैं, सभी नष्ट हो जाते हैं इनका नाम-निशान भी नहीं रहता है। उसको चतुर्थ पुरुषार्थ हस्तगत हो जाता है ॥१७५॥

वह नवमांक सिद्धि किस प्रकार होती है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि–इस भूवलय ग्रन्थ में द्रव्य प्रमाणानुगम अनुयोग द्वारान्तर्गत जो करण सूत्र है उसका पुनः-पुनः अभ्यास करके उपस्थित कर लेने से नवमांक की सिद्धि हो जाती है। और वह पुरुष विश्व भर में होने वाली सातसौ अठारह भाषाओं का एक साथ ज्ञाता हो जाता है। तथा तीन सौ त्रेसठ मतान्तरों का भी जानकार बन जाता है ॥१७६॥

इस संसार में यह जीव अनादि काल से अशुद्ध अवस्था को अपनाये हुए है, अतः तीन काल में एक रूप से बहने वाले अपने सहज भाव को न पहिचान कर भयभीत हो रहा है। इसलिए दोनों लोकों में सुख देने वाली अविनश्वर सर्वार्थ सिद्धि सम्पदा को प्राप्त करा देने वाले परिशुद्ध स्वभाव को प्राप्त नहीं किया है। इस भूवलय के द्वारा नवमांक-सिद्ध प्राप्त हो जाता है ॥१७७॥

विवेचन—परमाणु से लेकर तीनों वातवलय तक रहने वाले छः द्रव्यों से परिपूर्ण भरा हुआ क्षेत्र का नाम ही पृथ्वी है। एक परमाणु को जानने के लिए अनाद्यनन्त काल का परिचय कर लेने की भी जरूरत है। एक परमाणु के परिचय कर लेने में अनाद्यनन्त काल बीत जाता है तो असंख्यात अथवा अनन्तानन्त परमाणु के परिचय कर लेने में कितना समय लगेगा ? इस प्रश्न के बारे में श्री कुमुदेन्दु आचार्य से असंख्याता संख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के अर्द्धच्छेद शलाका से भी इस परमाणु के कथन को घटा नहीं सकते ऐसा कहा है। इस प्रकार का महान ज्ञान इस भूवलय में भरा हुआ है। उस सभी ज्ञान को एक क्षण में कह देने वाला केवल ज्ञान कितना बड़ा होगा ? इस विचार को आप लोग ही करें।

एक व्यापारी थोड़ा सा रुपया खर्च करके बहुत सा लाभ प्राप्त करलेता है उसके समान तीन काल और तीन लोक के ज्ञान को प्राप्त कर लेने के लिए जो थोड़ी सी तपस्या की जाती है उससे महान लाभ होता है, रंचमात्र भी नुकसान नहीं है ॥१७८॥

इन सब में जो सच्चा लाभ है वह एक अरहंत भगवान को ही प्राप्त हुआ है, ऐसा समझना चाहिए। अर्थात् वही सच्चा लाभ है ॥१७९॥

दया धर्म को बेचकर उसके द्वारा आया हुआ जो लाभ है वही यथार्थ लाभ है ॥१८०॥

दया धर्म का महत्व—

एक दयालु धर्मात्मा श्रावक अपने काम के लिए परदेश जा रहा था। बीच में भयानक जंगल पड़ा गर्मी के दिन थे और उस जंगल की जितनी घास थी वह सभी सूख गई थी। भयानक जंगल होने से उस में बहुत झाड़ और झाड़ियां उपजी हुई थीं। इसलिए उस जंगल में बहुत बड़े-बड़े हाथी और अन्य अनेक जानवर इत्यादि रहते थे। एकाएक जंगल में चारों ओर आग लग गई, आग लगते ही उस जंगल में रहने वाले जीव अग्नि के भय से भयभीत होकर चिल्लाने लगे। उस चिल्लाने की आवाज उस दयालु श्रावक ने सुनकर देखा तो चारों ओर आग लगी हुई थी। और सभी प्राणी भयभीत होकर चिल्ला रहे हैं। तुरन्त ही वह दयालु श्रावक पहुंचकर उन सभी प्राणियों को बचाने का उपाय सोचने लगा। अर्थात् अग्नि को बुझाने की युक्ति सोचने लगा परन्तु गर्मी के दिन होने के कारण वह अग्नि बढ़ती जाती थी बुझने की कोई उम्मेद नहीं थी। वह विचारता है कि अगर इस समय पानी बरस जाय तो अग्नि ठण्डी हो जायगी अन्यथा नहीं परन्तु आकाश साफ अर्थात् एकदम निर्मल दीख रहा है, पानी बरसने की कोई उम्मीद नहीं है। अब क्या उपाय करना चाहिए ऐसा मनमें सोचते हुए उसने विचार किया कि इस अग्नि को शान्त करने के लिए एकान्त में बैठकर प्रज्ञप्ति मंत्र का जाप जपना चाहिए ऐसा मन में निश्चय करके एक झाड़ के नीचे बैठकर एकाग्रता से मन्त्र का जाप करने लगा। ऐसे जाप करते-करते बहुत से जाप किये तब तुरंत ही बादल होकर खूब पानी बरसा जिससे अग्नि ठण्डी हो गयी और सभी जीव अपनी २ जान बचाकर शांत चित्त से विचरने लगे। परन्तु दयालु श्रावक अभी तक जाप में ही था जाप करते-करते उसी जाप में निमग्न होकर अपने शरीर को भूल गया। उसे तुरन्त सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करली। तत्काल कठिन तप के द्वारा उसने केवल ज्ञान को प्राप्त कर लिया। यही परजीव पर दया करने का फल है।

यह ऊपर लिखे अनुसार गुरु हंसनाथ का सन्मार्ग है।१८१।

सभी तीर्थंकर परम देवों ने इसी मार्ग को अपनाया है।१८२।

यह सदाकाल रहने वाला आत्मा का सौभाग्य रूप है।१८३।

यही धर्म विश्वकल्याणकारी होने से प्राणी मात्र के द्वारा आराधना करने के योग्य है। १८४।

यह अविच्छिन्न गुरु परम्परा से प्राप्त हुआ आदि लाभ है।१८५।

यही धरसेन गुरु का अंग है। अर्थात् काल दोष से जब अंग ज्ञान विच्छिन्न होने लगा तब श्रुत की रक्षार्थ अपने अन्तिम समय में बुद्धि विचक्षण श्री भूतबलि और पुष्प दन्त नामक महर्षियों की साक्षी देकर श्रुत देवता की प्रतिष्ठापना जिन्होंने की थी उन्हीं गुरु देव का अनुयायी यह भूवलय है।१८६।

जिन लोगों ने अपने जन्म में सत्य श्रुत का अध्ययन करके प्रसन्नता पूर्वक जन्म बिताया उन महापुरुषों कामूल भूत गणित भंग यह भूवलय है।१८७।

युद्धार्थी शूरवीर को जिस प्रकार कवच सहायक होता है उसी प्रकार परलोक गमन करनेवाले महाशय के लिए परम सहायक सिद्ध कवच है।१८८।

हरि अर्थात् सबको प्रसन्न करने वाला और हर अर्थात् दुष्कर्मों का नाश करनेवाला इनके द्वारा सिद्ध किया हुआ सिद्धान्त ग्रन्थ भी यही भूवलय है।१८९।

अरहन्त पदों की आशा को पूर्ण करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।१९०।

रत्नत्रय के प्रकाश को बढ़ाने वाला तथा सत्यार्थ का अनुभव करा देने वाला एवं सात तत्वों का समन्वय करने वाला तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ है। उस तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ को इतर अनेक विषयों के साथ में संगठित करते हुए इस भूवलय ग्रन्थ में भगवान के मुख तथा सर्वाङ्ग से निकली हुई वाणी का सम्पूर्ण सार भर दिया गया है। इसलिए यह ग्रन्थ दिव्य-ध्वनि स्वरूप है ।१९१-१९२।

यह छठवां ई इं नामक अध्याय है। इस अध्याय में सम्पूर्ण सिद्धान्त भरा हुआ है। इसलिए इसमें जो पद का अक्षर, अक्षर का अङ्क, अङ्क की

रेखा, रेखा का क्षेत्र. क्षेत्र का स्पर्शन, स्पर्शन का काल, काल का अन्तर, अन्तर का भाव और अन्तिम में अल्प बहुत्व इन अनुयोग द्वारों से उस महार्थ को मैंने बन्धन बद्ध किया है अतः जैन धर्म का समस्तार्थ इसमें है, जोकि मानव मात्र का धर्म है।१९३-१९४।

इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से सम्पूर्ण मानवों में परस्पर एकता स्थापित होती है।१९५।

जिस एकता से उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ता जाता है।१९६।

एकता और प्रेम के बढ़ने से सभी के दुष्कर्मों का नाश हो जाता है।१९७।

जैन शास्त्र किसी एक सम्प्रदाय विशेष के ही लिए नहीं किन्तु सबके लिये, है ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।१९८।

जैन धर्म में विशेषतः विनय धर्म प्रधान है जोकि सबके प्रति समानता का पाठ सिखलाता है। १९९।

सब देशों में रहने वाले तथा किसी भी प्रकार की भाषा के बोलने वाले सभी मनुष्यों के साथ में यह सम्बन्ध रखता है।२००।

यह धर्म पंचम काल के अन्त तक रहेगा।२०१।

छठे काल में धर्म नहीं रहेगा।२०२।

ऐसा कहनेवाले अङ्क धरों का ज्ञान ही यह भूवलय ग्रन्थ है।२०३।

दूसरे इ अध्याय में प्रतिपादन किये हुए धर्म का आराधन यदि सुगम नहीं है तो दुर्गम भी नहीं है किन्तु कुछ थोड़ा प्रयास करने पर प्राप्त हो जाता है।२०४।

प्रकाशमान हुआ द्वैत, अद्वैत और अनेकान्त इन तीनों का सूत्र ग्रन्थ इस अध्याय में अङ्कित है। इस अध्याय में आठ हजार सात सौ अड़तालीस श्रेणी में ब्राह्मी देवी का अक्षर और सुन्दरी देवा के इतने ही अंक हैं।२०५।

आगम के जानकार लोग इस ई इ अध्याय में से रागवर्द्धक और वैराग्य वर्द्धक दोनों ही प्रकार का मतलब ले सकते हैं। इसी अध्याय के अन्तर में ग्यारह हजार नौसौ अट्ठासी अंकाक्षर रखनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।२०६।

ई इ—८७४८+अन्तर ११९८८=२०७३६

अथवा आ—ई इ तक ८४८५२+२०७३६= १०५५८८

ऊपर से नीचे तक प्रथमाक्षर जो प्राकृत गाथा है उस गाथा का अर्थ यहां दिया जाता है—

भगवान के मुखारविन्द से निकले हुए वचनात्मक यह भूवलय ग्रन्थ होने से बिलकुल निर्दोष है और शुद्ध है। इसलिए इसका दूसरा नाम महर्षियों ने आगम ऐसा बतलाया है। यह भूवलय ग्रन्थ समस्त तत्वार्थों का प्रतिपादन करने वाला है।२०६।

इसी के बीच में से जो संस्कृत भाषा निकलती है उसका अर्थ लिखा जा रहा है—

(भव्य जीव मनः प्रतिबोधः) कारक होता है, पुण्य का प्रकाशक होता है, पाप का नष्ट करने वाला है ऐसा यह ग्रन्थ है जिसका नाम भवलय है इसका मूल ग्रन्थ —

सातवां अध्याय

उ※ पपाद शाय्येय मारणान्तिकवाद । सफलद त्रस कोकदन् क※ दुपरिम लोक पूरणदळतेयोळिह् । उपमेय त्रस नालियन्क ॥१॥
व※ रद समुद्घातदोळुलोकपूरण । सरिदोरि बरलात्म रूप॥ दो र्※ एताग अ इ उ ऋ ळ् ए ऐ ओ औ सर्व । बरेयलागद 'उ' भूवलय ॥२॥
वा※ द वय्खरियोळु साधिसिदात्मन । साधनेयडगिदयोग॥ मोदव ता※ गुव स्याद्वाद सिद्धिय । आदिगनादिय योग ॥३॥
द※ रुशनशक्ति ज्ञानद शक्ति चारित्र । वेरसिद रत्नत्व र※ व ॥ बरेयबारद बरेदरु ओदबारद । सिरिय सिद्धत्व भूवलय ॥४॥

परिशुद्धरात्म भूवलय (निर्मलद) ॥५॥ अरहन्त रूपळिदिरुव ॥६॥ गुरुवु सद्गुरुवाद नियम ॥७॥
हरि विरचिगळ सद्वलय ॥८॥ निरुपमवागिह् उपमा ॥९॥ सिरि सिद्धरूपिन परम ॥१०॥
अरहंत राशा भूवलय ॥११॥ परमाम्रतसिद्धनिलय ॥१२॥ पुरुदेवनोलिदश्रीनिलय ॥१३॥
हर सिव मंगल वलय ॥१४॥ बरेयलागद चित्र सरल ॥१५॥ करुणेय फलसिद्धि निलय ॥१६॥
परिपूर्ण सुखदादि वलय ॥१७॥ गुरुपरम् परेयाशा वलय ॥१८॥ धरसेन गुरुविन निलय ॥१९॥
परमात्म रूपिन निलय ॥२०॥ बरुवकालदशान्ति निलय ॥२१॥ इरुव वस्तुवनोळ्प बुद्ध ॥२२॥
मरणवागद जीव वरद ॥२३॥ परमात्म सिद्ध भूवलय ॥२४॥

मा※ न मायवु लोभ क्रोध कषायगळ् । तानव्प्र हदिनारु भन्ग ह्※ तानल्लि बिट्टोडे निजरूपदोळात्म । आनन्द रूपनागुवुदम् ॥२५॥
र※ त्न मूरर रूप धरिसिद आ शुद्ध । नूत्नान्तरन्गद वर श्※ री ॥ यत्नदिम् बन्द सद्धर्म साम्राज्य । नित्यात्म रूपवी लोक ॥२६॥
ण※ वदंक परिपूर्ण वागिसिदरहन्त । अवनिगे सिद्धत्व री※ ति॥ अवतारदादिये लोकाग्र मुकतिय । नवमान्क प्राप्तिय लोक॥२७॥
न※ रनु लोकद रूपपर्याय होन्दलु । हरि हर जिनरेम्ब सर स※ तिरेयग्र लोकाग्र मुक्तिय साम्राज्य । हरुषद लोकपूरणवु ॥२८॥
ति※ रेय रूपनु होन्दिदात्मन पर्याय । विरुवाग हदिनाल्कु स र्※ व ॥ वर साधु पाठक आचार्य ई मूरु । गुरुगळंकवु नवपदवु ॥२९॥
य※ शदग्र सर्वस्ववा ससुद्घात । दिशेयग्रवेनिसिद सर व※ यशवेल्ल श्रीमृदाद मूर्तिये जिन बिम्ब । हसनाद बिम्बदालयवु ॥३०॥

वशवाद सद्धर्म लोक ॥३१॥ यशद दिव्यध्वनि शास्त्र ॥३२॥ रससिद्धि नवकारर्थ ॥३३॥ विषहर सौख्यांक नवम ॥३४॥
असमान सिद्ध सिद्धान्क ॥३५॥ कुसुमाम्बुधन गेल्दन्क ॥३६॥ यसश्वतिदेविय पतिय ॥३७॥ यशद सुनन्देय पतिय ॥३८॥
रसऋषि व्रुषभनाथांक ॥३९॥ वशवादमृरुत निभान्क ॥४०॥ असद्रुशअजित नाथांक ॥४१॥ वशदशम्भवर दिव्यांक ॥४२॥
रस अभिनन्दन सुमित ॥४३॥ वशद पद्म प्रभ विमल ॥४४॥ स सुपार्श्व चन्द्रप्रभांक ॥४५॥ वश पुष्पदन्त शीतलर ॥४६॥
सश्रेयाम्स वासु पूज्यांक ॥४७॥ ऋषि विमलानन्त धर्म ॥४८॥ वश शान्ति कुन्थु श्री अरह ॥४९॥ यशमल्लि मुनिसुव्रतांक॥५०॥
यश नमि नेमि सुपार्श्व ॥५१॥ रस ऋषि वर्धमानान्क ॥५२॥ यशविन्तु वर्तमानांक ॥५३॥ यशदिप्पत्नाल्कु मत्पुनह ॥५४॥
विषहर काव्यदोळ् बहुदु ॥५५॥

ष※ द भूतकालद् इप्पत्नाल्वरन्क । पद श्री शान्ति सर्व ज※ ञ ॥ मुद इप्पत्मूरु अतिक्रान्त श्री भद्र । विदरंक वेप्पत्एरडु ॥५६॥

रि※ षि इप्पत् ओम्दु श्री शुद्धमति देव । रस ज्ञानमति सुज् ञ※ देव॥ वशदइप्पत् अन्ककरुण्णहत् ओम्बतम् । यशोधर हृदिनेन्टरंक ॥५७॥
ण※ वपद्म विमलांक हृदित्एळु परमेश । अब हृदिनार् एम्ब दे वा※ ॥ नवमत्तु आरम्क जिनह ज्ञानेश्वर । नव ऐदु उत्साहरंक ॥५८॥
द※ नवर वन्दित शिवगण हृदिमूरु । घन कुसुमान्जलि दे वा※ जिनरु हन्एरडंक सिन्धुवु हन्ओम्दु । जिनरु सन्मतियु हत्अनक ॥५९॥

जिनरु अनगोर ओम्बत्तु ॥६०॥ जिनरु उद्धररु एन्ट्नक ॥६१॥ जिन अमलप्रभरेळु ॥६२॥
घन सुदत्त् आन्कवु आरु ॥६३॥ जिन श्री धरान्कवु ऐदु ॥६४॥ जिन विमल प्रभ नाल्कु ॥६५॥
जिन देव साधु मूरन्क ॥६६॥ घन सागर एरडन्क ॥६७॥ जिनरु निर्वाण ओम्दन्क ॥६८॥
अनुगाल विनिताद अंक ॥६९॥ जिन् भूत वर्तमानांक ॥७०॥ एनुवाग वन्द भूवलय ॥७१॥

त※ नुवळिदतनुव गेल्दन्क विन्तागे । तनुवलिववरन्कम् स्※ व नव॥ एनुविप्पत्नाल्वरनागत तोर्थक। जिन सिद्धनाम स्वरवप ॥७२॥
स※ वण महापद्म मोदलागे सुरदेव । जिन एरडे सुसुपार्श्व ॥ त※ नि मूरु स्वयंप्रभ नाल्कु सर्वात्म भू । तनुजिन ऐदबरन्क ॥७३॥
लो※ कय्कर् देवपुत्राख्य आरन्कवु । आ कुल पुत्रर् सेरुवु दु※ ॥ श्री कर एळु महोदन्क एन्टागे । श्री कर नवम प्रोष्ठिलरु ॥७४॥
य※ श जयकीर्ति हत्ता मुनि सुव्रत ॥ ऋषिहत् ओम्दु एन्दुक् त※ अ । यश अरद्वादश पुष्पदन्तेशरु । वशवागे हृदिमूररन्क ॥७५॥

रस चतुर्दश विष्कपाय ॥७६॥ यश हृदिनय्दु श्री विपुल ॥७७॥ वश हृदिनारु निर्मलरु ॥७८॥
रिषि चित्रगुप्त सप्तदश ॥७९॥ यशहृदिनेन्दु समाधि ॥८०॥ वश गुप्त श्री जिनरन्क ॥८१॥
रस्वयम्भू हत्ओम्बत्अंक॥८२॥ यश अनिवृत्त इप्पत्तु ॥८३॥ रस विजयरु इप्पत् ओम्दु ॥८४॥
यशद विमल इप्पत् एरडु ॥८५॥ वश इप्पत्मूरु देवपाल ॥८६॥ असमान महानन्त वीर्य ॥८७॥
रस अनागतइप्पत् नाल्कु ॥८८॥ कुसुम कोदन्डदल्लणर ॥८९॥ रसदेप्पत् एरडन्क नेवम ॥९०॥
दिशेयन्क ओम्बत्तु काव्य ॥९१॥ रस काल तीर्थकरन्क ॥९२॥ यशदन्क काव्य भूवलय ॥९३॥
वशमूरु मूरळोम्बत्तम्॥९४॥ बेसदन्क काव्य भूवलय ॥९५॥

पू※ वोपाराजित कर्मव केडिसिद । पूर्वदिप्पत्नाल्कु इनि त※ ॥ निर्मलदोगण इप्त्नाल्कअन्कद । धर्म मुन्दण इप्पत्नाल्कु ॥९६॥
र※ सद ई कालद श्रीतीर्थनाथर । रस कूटदलि एरडेळु॥ बेस र※ त्नत्रय मूरु मूरल् ओम्बत्तु । वशवदे मूरु कालान्क ॥९७॥ २४×३=७२
णे※ रदे ई मूरु गुणकारदिम्बन्द । हारमणियत्गवद ॥ सार ग※ रन्थद हृदिनाल्कु गुणस्थान । दारदगुणकारदिन्द ॥९८॥ ३×३=९
ण※ वपद प्राप्तिय गुणकार मग्गियिम् । सविहृदिनाल्कन्क र सदिम् ॥ सवनिसेसाविरदेन्दुदलद पद्म । दवतारदक्षरदंक ॥९९॥
[७३×१४=१००८]
ग※ मनिसि साविरदेन्दु दलगळुळ्ळ । कमलगळ् एरड्उ काल् न※ नूरु ॥ कर्मपाद ओम्दरिम् गुणिसे सोन्नेयु आ, विमल सोन्ने एन्ट
आरेरडेरड्उ ॥१००॥ [१००८×२२५=२२६८००]

दो※ ष विनाशनवादओम्देपाद । दाशक्तियतिशयपुण्य ॥ राशिय य※ रतर गणितदोळात्मन । आ सिद्धरसव माडुवुदु ॥१०१॥
आशेयनेल्ल कूडिपुदुम् ॥१०२॥ राशिकर्मव कळेयुवुदु ॥१०३॥ श्रोशन माडुत बहुदु ॥१०४॥ लेसतु साविसलहुदु ॥१०५॥

राशि ज्ञानव होरडिपुदु ॥१०६॥ श्रो सिद्ध पदवसाधिपुदु ॥१०७॥ राशियनोम्दुगूडिपुदु ॥१०८॥ ईशत्ववदनु साधिपुदु॥१०९॥
ईषत्प्राग् भारकेय्दिपुदु ॥११०॥ राशि सूक्ष्मत्व साधिप्पुदु॥१११॥ आशेयव्याबाधवहुदु ॥११२॥ नाशत्वेल्लगेल्वुदु ॥११३॥
ओषध रूप वागिपुदु ॥११४॥ ओषधवस्रुत वागिपुदु ॥११५॥ राशिय वगाहवागिपुदु ॥११६॥ लेसिनगुरु लघुवहुदु ॥११७॥
लेसनेल्लरिगे तोरुवुदु ॥११८॥ आ शक्तियनुभव काव्य ॥११९॥ श्रीशक्तिगादयन्कवलय ॥१२०॥ भूषणवाक्य भूवलय ॥१२१॥

के* ळुव भव्यर नालगेयग्रद । सालिनिम् परितन्दुदनु ॥ काल क* लापद अरवत्तु साविर । लीलेयशन्के गुत्तरवम् ॥१२२॥
व* रदवागिसि अतिसरलवनागिसि। गुरु गौतमरिन्द हरिसि॥ स र्* वान्कद् अरवत्नाल्क् अक्षरदिन्द । सरिश्लोक आरु लक्षगळोळ् ॥१२३॥
लि* पियु कर्नाटक वागलेवेकेम्ब । सुपवित्र दारिय तोरि ॥ सप ता* ळलयगूडिद् आरुसाविर सूत्र । दुपसम्हार सूत्रदलि ॥१२४॥
णो* आगमद्रव्य शास्त्र वागिसिदन्क । ई आगम द्रव्य व र* द ॥ ऊ आगमद दिव्याक्षर स्वरदोळु श्री आगमद भूवलय ॥१२५॥
ता आगतद सिद्धान्त ॥१२६॥ को आगमवेनलेके ॥१२७॥ णो आगम भाव काल ॥१२८॥ णो आगमद (अनन्त) अन्तरवु ॥१२९॥
णो आगमतद्व्यतिरिक्त ॥१३०॥ श्री आगमक्षेत्र स्पर्श ॥१३१॥ णोआगमाल्प वहुत्व ॥१३२॥ श्रीआगतद सिद्धांत ॥१३३॥
गो आगम बंध द्रव्य ॥१३४॥ आ आगमद अबंध ॥१३५॥ श्री आगम सम्ख्यदन्क ॥१३६॥ श्री आगतदि वन्दिरुव ॥१३७॥
ई आगमद भूवलय ॥१३८॥

अ* ष्टमहाप्रातिहार्य वय्भववे । अष्टमहा पाडिहेरा ॥ उस ह* जिनेन्द्रादिगळिगे केवलज्ञान । वेसेद अशोकव्रुक्षगळ ॥१३९॥
व* रद नामगळोळु न्यग्रोधवु ओम्दु । वर सप्तपर्णान्क ग* ळु॥ एरडागेशालसरलप्रियन्गु प्रियन्गुम । बरलु मूर्नाळ्कल्दारु ॥१४०॥
ल* क्षणवा शिरीषवु एळु श्रीनाग । व्रुक्ष अक्षवु धूलियव ण* ॥ व्रुक्ष पलाश एन्टोम्बत्तु हत्अंक । लक्षिसे हन्नोम्दरम्क ॥१४१॥
म* रळि पाटलवु नेरिल दधिपर्णवु । वर नन्दिहन्एरड्अ ध* र ॥ सरणि हदिमूर्हदिनाल्कूहदिनय्दु । बरलु तिलक हदिनारु ॥१४२॥
बि* ळिमावु कनकेलि सम्पगे बकुल । बळिहन्एल्हदिनेन्दु ॥ सळ र* स विहत्तोम्बत्इप्पत्तु मेषशरुग । आळिमलेयोळग् इप्पत्ओम्दु ॥१४३॥
य* श धूलियुधव शांलविन्तिवुगळ । वशइप्पत् एरडु वर दे* रसद् इप्पत्मूरिप्पत्नाल्कू एनुवन्क । रस सिद्धिगादि अशोक ॥१४४॥

यशद मालेगळ तोरणदि ॥१४५॥ असमान घंटेय सरदिम् ॥१४६॥ वश मन मोहक वेनिप ॥१४७॥
असमान रमणीयवेनिसि ॥१४८॥ यशदन्ग राग पल्लवदि ॥१४९॥ यशवे पुष्प सम्कुलदि ॥१५०॥
वशवप्प रससिद्ध हूवु ॥१५१॥ रसमणि गादिय हूवु ॥१५२॥ यशस्वति देविय मुडिपु ॥१५३॥
कुसुम कोदन्डनम्बेच्चु ॥१५४॥ असदृश कामित फलद ॥१५५॥ यशद् बळ्ळिगळ हुट्टंग ॥१५६॥
विषहरवाद अम्रुतवु ॥१५७॥ कुसुमाजि मुडिदलन्कार॥१५८॥ रस घट्टिगादिय भन्ग ॥१५९॥
यशद कोम्बेगळ भूवलय ॥१६०॥

स्* वर्णत्वसिद्धिय शोकवादिय दिव्य । नवव्रुक्ष जातीयव् वा* द ॥ अवुगळु तमगिन्त हन्एरडष्टुद्द । नव रत्न वर्णशोभेगळ् ॥१६१॥
व्* र्णनवेके देवेन्दरनुद्यानदि । निर्वाहवागद् अगिडदे ॥ ह* र्षवनीवुदेन्दुदेनलेके साकदु । निर्मल तीर्थमन्गलव ॥१६२॥
व* रद हस्तद तेरनाद छत्र त्रय । अरहंत शिरदलिर् प्* आग॥ हरुषदचन्द्रमण्डल मुक्ताफलज्योति। वेरसि निंदिहुदु शोभेयलि।१६३

ज* यद सिम्हासन नालमोगर्दिदिह्। नयद निर्मलमार्गदि र* विम्। जयरत्न स्फटिकगळ् केत्तिरुवंकदे। नयप्रमाणगळु ओम्द् आगे॥१६४
गो* पुरदा हिन्दे इरुव सिम्हासन। रूपळिदिह ई गणित॥ श्रीप ति* यडियु सोन्किद दिव्य मंगल। श्री पाहुडद शोभेयलि॥१६५॥

कोपवळिद सिम्ह मुखगळ् ॥१६६॥ तापप्रतापद् अहिम्से ॥१६७॥ रूपदोळ् शौर्य प्रसिद्धि ॥१६८॥
व्यापित भव्याम्जहृदय ॥१६९॥ भूपरलेरिप शर्पित ॥१७०॥ श्री पद्धतिय पाहुडवु ॥१७१॥
आ पाहुडवे प्राभृतवु ॥१७२॥ रूपस्थ वीररासनवु ॥१७३॥ दीपद ज्योतियादि भंग ॥१७४॥
रूपनेल्लरिगे तोरुवुदु ॥१७५॥ श्री पददंग तोरुवुद ॥१७६॥ श्री पद्धतियाद्यंक ॥१७७॥
यापनीयर दिव्य योग ॥१७८॥ कापाडुवुदु शान्तियनु ॥१७९॥ रूपागिबहुदु भारतिगे ॥१८०॥
श्री पदवलय भूवलय ॥१८१॥ रूप्य के बहुदु भारतदि ॥१८२॥

ह्* रुषद स्फटिक सिम्हासन प्रतिहार्य। सरि मुन्दे देवर ग* णवु॥ निरुतवु कय्मुगिदिहप्रपुल्लितमुख। सरसिजविन्द सुत्तिहरु॥१८३॥
ओ* डुत बन्निारि दर्शनक् एन्नुवश्र। हाडो इदेम्ब दुन्दुभि ण* ॥ पाडिन गम्भीर नादविहुदु मुन्दे। नाडिन हूगळ मळेयु॥१८४॥
दि* वदिन्द बीळ्वुदु वर सूर्य शोभेय। सविय भामण्डल बन् ध* नव पूर्णचन्दर अथवा शन्खदन्तिह। सविय् अरवत्नाल् चामरवु॥१८५॥

नवस्वर ह्स्व दीर्घ प्लुत ॥१८६॥ अवर वर्णगळ् इप्पत् ऐदु ॥१८७॥ सवियह वेन्दु व्यन्जनवु ॥१८८॥
सञ्श्रम् अहक्ह यह योगवाह ॥१८९॥ विवरवदेन्तेम्ब शन्के ॥१९०॥ अवतार दुत्तर विन्तु ॥१९१॥
नव स्वरवर्णव्यन्जनद ॥१९२॥ विवरद् योगवाहगळिम् ॥१९३॥ सविय्ओम्दु अक्षचामरवुम् ॥१९४॥
अवुगळु अरवत्त नाल्कु ॥१९५॥ अवनेल्ल कूडलु ओम्दु ॥१९६॥ इवु अष्ट महाप्रातिहार्य ॥१९७॥
नवम बन्धद मंगलद ॥१९८॥ विवर मंगलद प्राभृतवु ॥१९९॥ कविगे मंगलद् आदि वस्तु ॥२००॥
शिव चन्द्रप्रभ जिनरन्क ॥२०१॥ नवमांक सिद्ध सिद्धांक ॥२०२॥ अवतार कामद बहुदु ॥२०३॥
शिव सव्ख्य रससिद्ध काव्य॥२०४॥ सवर्णगे अरवत्तनाल्कु ॥२०५॥ नवकार मंगल ग्रन्थ ॥२०६॥
भवहर सिद्ध भूवलय ॥२०७॥ नव मन्मथरादियन्क ॥२०८॥ नवब्राम्हिलिपिय भूवलय॥२०९॥

त* स लोकनालियोळडगिह भव्यर। वशगोन्ड सम्यक्तवद र* स॥ यशकाय कल्पद रससिद्धि हूगळो। कुसुम मंगलद पर्याय॥२१०॥
स* मतेयोळक्षरदंकव तोरुव। गमकद शुभ भद्रश्र वर दे* क्रमव सक्रमगेय्द चन्द्रप्रभ जिन। नमिसुव भक्तर पोरेयो॥२११॥
णा* शवागदलिह अक्षरांक वनित्तु। आ सिद्ध पदविगेरिसु वा* ॥ राशियन्कवदनु भाषाम्बत्तरोळ् कट्टि। दाशेय पाहुड ग्रन्थ॥२१२॥
ली* लांक ओम्बत्उ ओम्दु सोन्ने एन्टागे। मालेयल् अन्तर ह* रुष॥ दोलेयोळ्ओम्दुमूरोम्दुमूरोम्दुम्। बाळु'उ'काव्य भू(मिरय)वलय२१३

उ ८०१९+अन्तर १३१३१=२११६०=९,

अथवा अ–उ १०,५५,८८+२११५०=१,२६,७३८।

पहले श्लोक की श्रेणी से नीचे तक पढ़ते जाय तो प्राकृत निकलती है।

❖ उववाद मारणंतिय परिणदथसलोय पूरणेणगदो।
केवलिणो अवलंबिय सव्वजगो होदित्तसणाली॥

❖ बीच में से पढ़ने से संस्कृत भाषा निकलती है–
कर्तारह् श्री सर्वज्ञदेव स्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारह् गणधर देवहः।
प्रति गणधर देवाह्.....।

सातवा अध्याय

सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद जीव स्वर्ग में उपपाद शय्या पर जन्म लेने से पहले मारणांतिक रूप में त्रस नाली में गमन करते हैं। केवली भगवान के लोकपूरण समुद्घात का अवलम्बन करके इस त्रसनाली को नाप सकते हैं ॥१॥

जिस समय केवली भगवान समुद्घात में स्थित होते हैं तब एक जीव के परमोत्कृष्ट विस्तृत प्रदेशों में आत्मरूप दिखाई देता है। एक जीव की अपेक्षा इससे अधिक विस्तृत जीव प्रदेश नहीं होते इसी को विराट् रूप पुकारते हैं। "अ इ उ ऋ ल् ए ऐ ओ औ" इन स्वरों के उच्चारण समय में सम्पूर्ण भूवलय का ज्ञान हो जाता है। इस बात का "उ" अध्याय में उल्लेख न आने पर भी यहां लिखा है ॥२॥

अभी तक आत्मा सिद्ध करने के लिए वाक् चातुर्य का प्रयोग करना पड़ता था, पर अब वह वाक् चातुर्य बन्द हो गया है। अब स्याद्वाद सेआत्मा को सिद्ध किया जाता है। यह आत्मा आदि भी है और अनादि भी है ॥३॥

दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों की सम्मिलित शक्ति को रत्नत्रय शक्ति या आत्म-शक्ति कहते हैं। इन तीनों से उत्पन्न हुए शब्द को लोकपूर्ण समुद्घात के समय में नहीं लिखा जाता। कदाचित् लिखा भी जाय तो पढ़ नहीं सकते। ऐसे सम्पत्ति शाली सिद्धत्व की प्रथम सिद्धि यह भूवलय है ॥४॥

ऐसे परिशुद्ध आत्मा के लिए यह भूवलय ग्रन्थ है ॥५॥

अब तक सिद्ध होने से पहले तीर्थंकर अवस्था थी अब वह नष्ट हो गई ॥६॥

अरहन्त थे तब तक सबके गुरु थे अब सद्गुरु बन गये ॥७॥

हरि और विरंचि शरीरवों के द्वारा भी आराधना करने योग्य सद्वलय है ॥८॥

इस तरह से निरुपमहोकर भी उपमा के योग्य है क्योंकि यह त्रसनाली के भीतर है और सिद्ध परमात्मा रूप होने वाला है ॥९-१०॥

अरहन्त भगवान जिस अवस्था को प्राप्त करने के सम्मुख थे उस अवस्था रूप यह भूवलय है ॥११॥

परमामृत रूप सिद्ध भगवान का यह आदि स्थान है ॥१२॥

सबसे पहले आदिनाथ भगवान ने इस निलय को अपनाया था ॥१३॥

यह हर तथा शिव का भी मङ्गल वलय है ॥१४॥

यह चित्र लिखने में नहीं आ सकता फिर भी सरल है ॥१५॥

यह निलय दया धर्म का फल सिद्धि रूप है ॥१६॥

परिपूर्ण सुख को देनेवाला आदि वलय है ॥१७॥

गुरु परम्परा का आशा वलय है ॥१८॥

धरसेन गुरु का भी ज्ञान निलय है ॥१९॥

परमात्म स्वरूप का निलय है ॥२०॥

आनेवाले काल का शान्ति निलय है ॥२१॥

सम्पूर्ण वस्तुओं को देखने वाला होने से बुद्ध कहलाने योग्य है ॥२२॥

यह मरण को न प्राप्त होने वाला शुद्ध जीव है ॥२३॥

इस परमात्मा से सिद्ध किया गया हुआ यह भूवलय है ॥२४॥

विवेचन—लोक पूर्ण समुद्घात गत केवली भगवान के स्वरूप का वर्णन यहां तक हुआ। अब आगे अरहन्त भगवान से लेकर सिद्ध भगवान तक का वर्णन करेंगे ॥२४॥

क्रोध मान माया और लोभ इस तरह चार कषायें अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन रूप में परिणत होती हैं अतः कषाय के सोलह भेद हो जाते हैं। इन सबके नष्ट होजाने के बाद यह आत्मा अपने आत्म स्वरूप में लीन होकर आनन्द मय बन जाता है ॥२५॥

वह आनन्द रत्नत्रय का सम्मिलित रूप है। जोकि सर्व श्रेष्ठ, नूतनान्तरङ्ग श्री निलय रूप है। आत्मा अपने प्रयत्न पूर्वक सद्धर्म रूप साम्राज्य का आश्रय करते हुए इस रूप को प्राप्त कर पाता है। जब इस रूप को प्राप्त कर लेता है और अपने प्रदेशों के प्रसारण की पराकाष्ठा को यह आत्मा प्राप्त होता है उसी आकार में नित्य रहनेवाला यह लोक भी है ॥२६॥

यह पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ लोक का जो स्वरूप है वह अरहन्त वाणी से निकले हुए नवमांक के समान परिपूर्णतावाला है। जब अरहन्त दशा में यह परिपूर्ण अवस्था प्राप्त हो जाती है उसके अनन्तर यह आत्मा सिद्ध

बन जाती है ।अरहन्त अवस्था से जो सिद्ध दशा को प्राप्त होना है उसी का नाम अवतार है । इस प्रकार से आत्मा जब सिद्धावस्था के अवतार को प्राप्त कर लेता है तो नवमांक के जो दो टुकड़े हैं वे स्वयं आपस में मिलकर शून्य बन गये हों तादृश हो जाता है । जिस शून्य में सम्पूर्ण लोक समाविष्ट है ।२७।

इस उपर्युक्त दशा को प्राप्त हुआ आत्मा ही हरि, हर, जिन इत्यादि सरस नामों से पुकारने योग्य बनता है क्योंकि इससे वह लोक के अग्रभाग में मुक्ति साम्राज्य को प्राप्त कर लेता है ॥२८॥

जब जीव ने लोक पूरण समुद्घात किया था एवं लोक का सर्व स्वरूपबना था तो तेरहवें गुण स्थान में मिथ्या स्थान में होनेवाला लब्ध्यपर्याप्त कर निगोदिया जीव जो क्षुद्रभव धारण करता है वह जीव लोक का सर्व जघन्य रूप है और लोक पूरण समुद्घात दशा उसी का अन्तिम (उत्कृष्ट) रूप है जोकि तेरहवें गुण स्थान मय है । अब तक नवपद का जघन्य रूप तीन था जोकि साधु उपाध्याय और आचार्य मय है वह नवमांक आद्यंश है ॥२९॥

यह जीव सिद्धावस्था में न तो क्षुद्र भव ग्रहणकार रूप में रहता है और न लोक पूरणाकार रूप में किन्तु किञ्चिदून चरम शरीर के आकार में रहता है वही जिन विम्ब का रूप है और वह जहां पर जाकर विराजमान होता है वह सिद्ध स्थान ही वस्तुतः जिनालय है । उसी सिद्धालय का प्रतीक यह हमारा आजकल का जिनमन्दिर है और उस मन्दिर में विराजमान जो जिन विम्ब है वह सिद्ध स्वरूप है तथा वैसा ही वस्तुतः हमारा आत्मा भी है ॥३०॥

अर्हंत सिद्ध आदि नवपद की प्राप्ति एक जिनेश्वर भगवान विम्ब से ही होती है । अथवा समस्त सद्धर्म भी प्रसिद्ध होता है और सम्पूर्ण लोक का परिज्ञान होता है ॥३१॥

एक जिनेश्वर विम्ब के दर्शन से सम्पूर्ण दिव्य ध्वनि का अर्थ प्राप्त होता है ॥३२॥

इस संसार में रस सिद्धि ही सम्पूर्ण सिद्ध रूप है और वही नवकार मन्त्र का अर्थ है तो भी परमार्थ दृष्टि से देखा जाय तो नवकार मन्त्र का अर्थ आत्म-सिद्धि है और वह जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन से होती है ॥३३॥

यही विषय रूप विष का नाश करके सुख उत्पन्न करनेवाला नवमांक है । अर्थात् जिन विम्ब का दर्शन करने से सब तरह का सुख होता है ॥३४॥

उपर्युक्त सिद्धांक यानी सिद्ध दशा जो है वह अनुपम है इसकी बराबरी करने वाली चीज दुनियां में कोई नहीं है ॥३५॥

काम देव को भी जिसने जीत लिया है ऐसा यह अङ्क है ॥३६॥

विवेचन—अब आगे जिस-जिस नाम पर जिन विम्ब होता है उस बात को बतलावेंगे—

यशस्वती देवी के पति और सुनन्दा देवी के पति श्री ऋषभदेव का यश गाने वाला १ अङ्क है जो ऋषभदेव महर्षि हैं जिन्होंने सम्पूर्ण प्रजा को सञ्जीवित रहने का उपाय बतलाया था श्री ऋषभनाथ के विम्ब दर्शन से अमृत यानी मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

अजित नाथ भगवान का जो दूसरा अंक है वह भी असदृश्य है । सम्भव नाथ भगवान का तीसरा अंक है जोकि दिव्यांक है । चौथा अंक अभिनन्दन का, पांचवां सुमतिनाथ का, छठा पद्म प्रभ का, सातवां सुपार्श्वनाथ का, आठवां चन्द्र प्रभ का, नववां पुष्पदन्त का, दसवां शीतलनाथ का, ग्यारहवां श्रेयांसनाथ का, बारहवां वा सुपूज्य का, तेरहवां विमलनाथ का, चौदहवां अनन्त नाथ का, पंद्रहवां धर्मनाथ का, सोलहवां शान्ति नाथ का, सत्रहवां कुन्थुनाथ का, अठारह वां अरनाथ का, उन्नीसवां मल्लिनाथ का, बीसवां मुनि सुव्रतका, इक्कीसवां नमिनाथ का, बाईसवां नेमिनाथ का, तेईसवां पार्श्वनाथ का और चौबीसवां अंक श्री वर्द्धमान भगवान का है । ये ऋषभादि वर्द्धमानांत अंक हैं सो सब वर्तमान काल के अंक हैं जोकि चौबीस हैं । और भी चौबीस अंक इस विष हर काव्य में आने वाले हैं ।३७ से ५५ तक ॥

अब भूतकाल के चौबीस तीर्थंकरों का नाम बतलाते समय प्रतिलोम क्रम से कहने पर चौबीसवां भगवान शान्ति हैं. तेइसवां अतिक्रान्त वाइसवां श्रीभद्र इक्कीसवां श्रीशुद्धमती, बीसवां ज्ञानमति, उन्नीसवां कृष्णमति, अठारहवां यशोधर, सत्रहवां विमल वाहन, सोलहवां परमेश्वर, पन्द्रहवां उत्साह, तेरहवां शिवगण, बारहवां कुसुमाञ्जलि, ग्यारहवां सिन्ध, दसवां सन्मति, नौवां अंगर, आठवां उद्धर, सातवां अमलप्रभ, छठवां सुदत्त, पांचवां श्रीधर, चौथा विमलप्रभ, तीसरा साधु, दूसरा सागर और पहिला निर्वाण इस

रीति से चौवीस तीर्थंकर इस भरत क्षेत्र में हुए हैं तथा होते रहेंगे। अबतक भूत तथा वर्तमान भगवानों का कथन हुआ ऐसा कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है। ५६-७१ तक।

अब तक मन्मथ को जीतकर अशरीरी होने वाले भूतकालीन भगवान तथा वर्तमान कालीन भगवानों का कथन हुआ। अब मन्मथ को जीतकर अशरीरी बननेवाले आगामी कालीन चौवोस तीर्थंकरों का कथन कर देने से नवमांक पूर्ण हो जाता है॥७२॥

पहिला महापद्म, दूसरा सूरदेव, तीसरा सुपार्श्व, चौथा स्वयंप्रभ, पांचवां सर्वात्मभूत, छठा देव पुत्र, सातवां उदङ्क, आठवां श्रीकद, नवमां प्रोष्ठिल, दशवां जयकीर्ति, ग्यारहवां मुनि सुव्रत, बारहवां अर, तेरहवां पुष्पदंत, चौदहवां निष्कषाय, पन्द्रहवां विपुल, सोलहवां निर्मल, सतरहवां चित्रगुप्त, अठारहवां समाधिगुप्त, उन्नीसवां स्वयम्भू, बीसवां अनिवृत, इक्कीसवां विजय बाईसवां विमल, तेईसवां देवपाल, चौबीसवां अनन्त बीर्य, ये भविष्यत काल में होने वाले चौबीस तीर्थंकर हैं। ७३ से ८९ तक।

ये सब तीर्थङ्कर कुसुम बाण कामदेव का नाश करनेवाले होते हैं।७९।

उपर्युक्त तीन काल के तीर्थंकरों को मिलाकर बहत्तर संख्या होती है जिसको कि जोड़ने पर (७+२=९) नव बन जाता है॥९०॥

जिस काल में तीर्थंकर विद्यमान रहते हैं उसको महापवित्र काल समझना चाहिए। उन तीर्थङ्करों का यशोगान करनेवाला यह भूवलय काव्य है।

नवमांक गणित पद्धति से उपलब्ध होने के कारण इस काव्य को भी नवमांक कहते हैं।

नव का अंक विषमांक है जो कि तीन को परस्पर गुणा करने पर आता है। तीन का अंक भी विषमांक है जो कि तीनों कालों का द्योतक है एवं विषमांक से उत्पन्न होने के कारण इस भूवलय काव्य को विषमांक काव्य भी कहते हैं॥९१-९५॥

प्रत्येक प्राणी को अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का ज्ञान कराने के लिए भूत-काल चौबीसी बतलाई गई है तथा उन कर्मों को किस उद्योग से नष्ट करना है, यह बतलाने के लिए वर्तमान तीर्थंकरों का नाम निर्देश किया गया है। और आगामी काल में समस्त कर्मों को नष्ट करके आप भी उन तीर्थंकरों के समान निरञ्जन बन जावें, इस बात को बताने के लिए भावी तीर्थंकरों का निर्देश किया हुआ है।

३×३ = ९

२४×३ = ७२

ये तीन चौबीसी के मिलकर बहत्तर तीर्थंकर हुये जो कि एक माला के मणियों के समान हैं। इनको यदि चौदह गुण स्थानों के अंकों से गुणा कर लिया जाय तो एक हजार आठ हो जाते हैं, यही एक हजार आठ श्री भगवान के चरणों के नीचे आने वाले कमल के दल, होते हैं। इस १००८ को भी जोड़ दें तो नव हो जाता है। भगवान जब विहार करते हैं और डग भरते हैं तो हरेक डग के नीचे २२५ कमल होते हैं उन दो सौ पच्चीस कमलों के पत्तों को मिलाकर कुल २२५×१००८=२२६८०० पत्ते हो जाते हैं। ९६ से १०० तक।

उपर्युक्त दो लाख छब्बीस हजार आठ सौ दल भगवान के प्रत्येक ही चरण के नीचे होते हैं जो कि दूसरा चरण रखने के क्षण तक सब घूम जाते हैं। जब भगवान दूसरा रखते हैं उसके नीचे भी इतने ही कमल और इतने पत्ते होते हैं अतः उन दोनों को परस्पर गुणा करने पर लब्धांक ५१४३८२४०००० आये इन सब को परस्पर जोड़ देने पर भी नव ही आता है। इस प्रकार गुणा-कार करते चले जावें उतना ही अतिशय भगवान का उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है तथा उनके भक्त भव्य पुरुषों का पुण्य भी बढ़ता जाता है। इसलिए हे भव्य जीवो! इस भूवलय की पद्धति के अनुसार भगवान के चरण कमलों को गुणा करते हुये तुम लोग गणित शास्त्र में प्रवीण हो जावो।

जिस प्रकार रसमणि के सम्पर्क से हरेक चीज पवित्र बन जाती है उसी प्रकार इस गणित पद्धति का ज्ञान हो जाने से यह जीव भी परमपावन सिद्ध रूप हो जाता है॥१०१॥

यह गणित शास्त्र जीवों की सम्पूर्ण आशाओं को पूर्ण करने वाला है॥१०२॥

यह गणित शास्त्र दुष्ट कर्मों की महाराशि को नष्ट करने वाला है॥१०३॥

अन्तरात्मा को परमात्मा बनाने जाने वाला है ॥१०४॥

उत्तमार्थ को साधन कराने वाला है ॥१०५॥

ज्ञान की राशि को बढ़ाने वाला है ॥१०६॥

श्री सिद्ध पद का कारण भूत है ॥१०७॥

पुण्य पुञ्ज को बटोर कर इकट्ठा करने वाला है ॥१०८॥

ईशत्व प्राप्त करा देने वाला है ॥१०९॥

ईष आभार नाम की आठवीं भूमि जो सिद्ध शिला है वहां पर पहुंचा देने वाला है। क्योंकि आठवें चन्द्रप्रभ भगवान के चरण कमलों को स्मरण करके प्रारम्भ किया हुआ यह भूवलय है ॥११०॥

यह महा शास्त्र गणित की महाराशि को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम बना देने वाला है ॥१११॥

इस शास्त्र के द्वारा महाराशि को अल्पाति स्वल्प रूप में लाने पर भी उसमें कोई बाधा नहीं आती ॥११२॥

यह नाश को जीतने वाला है इसलिए अविनश्वर रूप है ॥११३॥

यही औषध रूप में परिणमन करने वाला है ॥११४॥

यह शास्त्र औषध के समान प्रारम्भ काल में कुछ कटु प्रतीत होने पर भी अन्त में अमृतमय है ॥११५॥

सिद्ध की आत्मा में जिस प्रकार अवगाहन शक्ति है जिस से कि एक सिद्धात्मा में अनन्त सिद्धात्माये विराजमान हो रहती हैं उसी प्रकार इस भूवलय शास्त्र में भी अनेक भाषाओं में होकर आने वाले अनेक विषयों को समाविष्ट करने की अवगाहन शक्ति है ॥११६॥

सिद्ध भगवान के समान यह शास्त्र भी अगुरुलघु गुण वाला है ॥११७॥

अतः यह शास्त्र सब जीवों को अच्छी से अच्छी दशा पर पहुंचा देने वाला है ॥११८॥

उस महान् अपूर्व शक्ति का अनुभव करा देने वाला यह काव्य है ॥११९॥

यह श्री शक्ति को बढ़ाने वाला है अर्थात् अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी को प्राप्त करा देने वाला यह आद्यांकवलय है ॥१२०॥

इत्यादि विशेषण वाक्यों से विभूषित यह महा काव्य है ॥१२१॥

भगवान की वाणी को सुनने वाले भव्य जीवों ने तात्कालिक परिस्थिति को लेकर जो साठ हजार प्रश्न किये थे। जिनमें कि प्रायः सभी विषयों की बात थी, उन प्रश्नों का उत्तर जो अत्यन्त मृदुल और मधुर भाषा में श्री गौतम गणधर ने दिया था। वह चौंसठ अंकाक्षरों के बानवें वर्ग स्थानान्तर्गत जिन वाणी में था। उसी को श्री गौतम गणधर के बाद में कुमुदेन्दु आचार्य तक होने वाले प्रत्येक बुद्ध महर्षियों ने छः हजार सूत्रों में उपसंहृत करके रखा था जोकि गहन था उसी विषय को सरल करते हुये श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने कन्नड भाषात्मक छह लाख सांगत्य छन्दों में वर्णित किया है। जो कि मृदुता ललयात्मक होने से श्रोताओं के लिये हृदयग्राही बन गया है, वही भूवलय है। जो पूर्व महर्षियों के द्वारा छः हसूत्रों में बद्ध हुआ था वह नौ आगम द्रव्य शास्त्र था। उसका अध्ययन करते हुए तत्पर्याय रूप से परिणत होकर कुमुदेन्दु आचार्य ने उसी के भाव छः लाख सांगत्य छन्दों में बद्ध किया। इसलिए इस भूवलय ग्रन्थ का नाम श्री आगम है जिसका कि यह सातवां "उ" नाम का अध्याय है ॥१२५॥

आगामी काल में यह भूवलय ग्रन्थ सदा बना रहेगा ॥१२६॥

इस भूवलय की रीति से बाहर का बना हुआ जो शास्त्र है वह आगम नहीं होगा ॥१२७॥

यह द्रव्यागम शास्त्र भाव, काल, अन्तर (अनन्त), तद्वितिरिक्त, क्षेत्र स्पर्शन, और अल्पबहुत्व इन अनुयोग द्वारा में बटा हुआ है। १२७-१३४ तक।

बन्द पाहुड के आगम अबन्ध पाहुड का विषय लिखा हुआ है ॥१३५॥

अबन्ध पाहुड को श्री आगम संख्याङ्क कहते हैं ॥१३६॥

भगवान के श्री मुख से निष्पन्न हुआ यह भूवलय नामक श्री आगम है ॥१३७॥

इसीलिए इस भुवलय को आगम ग्रन्थ कहते हैं ॥१३८॥

अष्टमहाप्रातिहार्य अर्थात :-

अशोकवृक्षः सरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च ।
भाभंडलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणि ॥

अशोकवृक्ष देवताओं के द्वारा भगवान के ऊपर पुष्प की वर्षा होना, दिव्य

वृक्षोंके १८००० जाति के पुष्पों की वर्षा होती है और इससे सकल रोग निवारण रूप दिव्यौषधि बनती है, इससे खेचरत्व सिद्धि, जल गमन, दुलेहि सुवर्ण सिद्धि इत्यादि क्रियाओं को बतलाने वाले भूवलय के चतुखंड रूपी प्राणवाय नामक विभाग में वर्णित है। इसे पुष्पायुर्वेद भी कहते हैं ७१८ भाषात्मक दिव्यध्वनि, [illegible] अक्षर रूपी चामर, मुख होने पर भी चतुर्मुख दीख पड़ने वाला सिंहासन, ज्ञानज्योति को फैलानेवाला भामंडल, प्रचार करनेवाली दुन्दुभि, भगवान के ऊपर रहकर तीनों लोकों के स्वामित्व को दिखाने वाला छत्रत्रय ये आठ प्रकार की भगवान की संपदायें समस्त जीवों को हित करने वाली हैं।

प्रश्न—यह कैसे ?

उत्तर—कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि प्राकृत में अष्टमहाप्राप्ति हार्यों को पाडिहेर कहते हैं उनमें सर्व प्रथम अशोक वृक्ष प्रातिहार्य है जोकि जनता के शोक का अपहरण करनेवाला है। उस वृक्ष का विवरण यों है —

ऋषभादि तीर्थंकरों को जिन जिन वृक्षों के मूल भाग में केवल ज्ञान प्राप्त हुआ उसको अशोक वृक्ष समझना चाहिए ॥१३६॥

न्यग्रोध १, सप्तपर्ण २, शाल ३, सरल ४, प्रियङ्गु० (श्वेता) ५, प्रियङ्गु० (रक्त) ६। ॥१४०॥

शिरीस ७, श्रीनाग ८, अक्ष ९, धूलि १०, पलाश ११। ।१४१।

पाटल १२, जामून १३, दधिपर्ण १४, नन्दी १५, तिलक १६। ॥१४२॥

श्वेताम्र १७, कङ्केलि १८, चम्पा १९, वकुल २०, मेषश्रृंग, २१ ॥१४३॥

धूलि (लाल) २२, शाल २३, धव २४, ये चौबीस क्रमशः अशोक वृक्ष हैं। इन वृक्षों के फूलों कीभावना देकर अग्नि पुट करने पर पारा सिद्ध रसायन रूप माणि बन जाती है ॥१४४॥

ये सब वृक्ष रसमणि के लिए उपयोगी होने के कारण माङ्गलिक होने से इन्हीं वृक्षों के पत्तों की बन्दन वार बनाई जाती है ॥१४५॥

उस वन्दन वार के बीच बीच में उस रस मणि का बना हुआ घण्टा लगा रहता है ॥१४६॥

यह वन्दनमाला देखने में अत्यन्त सुन्दर मन मोहक हुआ करती है।१४७।

इस बन्दन माला को छटा एक अनुपम रमणीय हुआ करती है जिसके प्रत्येक पक्ष में से राग की परम्परा प्रगट होती रहती है।१४८-१४९।

यह अशोक वृक्ष अधिक मात्रा में फल और पुष्पों से व्याप्त हुआ करता है।१५०।

अगर रससिद्ध करना हो तो इन वृक्षों के क्षुद्र पुष्प न लेकर विशाल प्रफुल्लित पुष्प लेना चाहिए ।१५१।

और उसी को फिर यदि रस मणि बनाना हो तो इन्हीं वृक्षों के क्षुद्र (मञ्जरी रूप) फूल लेना चाहिए।१५२।

सबसे पहलान्यग्रोध नाम का अशोक वृक्ष है। उसके फूल को यशस्वतीदेवी अपनी चोटी में धारण करती रहती थीं।१५३।

इसी प्रकार प्रथम कामदेव बाहुबलि भी कुसुमबाण प्रयोग के समय इसी फूल को काम में लेते थे।१५४।

इसीलिए सभी महात्माओं ने इस फूल को कामितफल देने वाला मानकर अपनाया है ॥१५५॥

इस फूल के उपयोग से भव्यों को जो सम्पदा प्राप्त होती है वह वृक्ष की बेल के समान उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है।१५६।

जिस किसी पुरुष ने विष पान किया हो तो उसकी बाधा को दूर करने के लिए इस फूल को औषधि रूप में देना।१५७।

श्री भरत चक्रवर्ती की पत्नी कुसुमाजी देवी अपने सब अलंकार इसी पुष्प द्वारा बनाती थीं।१५८।

पारा को धनरूप बनाना हो तो इस पुष्प को काम में लेना।१५९।

जिस प्रकार भगवान का अशोक वृक्ष अनेक शाखा प्रति शाखाओं को लिए हुए होता है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी अनेक भाषा तथा उपभाषाओं को लिए हुए है।१६०।

भगवान के जो अशोक वृक्ष बतलाये गये हैं वे सब अपने प्रत्येक भाग में नवरङ्ग मय होते हैं जोकि नवरस के उत्पादक माने गये हुए हैं। इस प्रकार के महत्व को रखने वाला अशोक वृक्ष श्रवण सिद्धि के लिए भी परम सहायक

होता है। और अपने अपने तीर्थंकर के शरीर से बारह गुणा समुन्नत होता है।१६१।

निर्मल तीर्थ तथा मङ्गल स्वरूप रहने वाले इन अशोक वृक्षों का वर्णन करें तो कहां तक करें।

जो अशोक वृक्ष सौ धर्मेन्द्र के उद्यान में गुप्त रूप से विद्यमान है और जो समवशरण रचना के समय में भगवान के पीछे में हुआ करता है उस वृक्ष की बात यहां पर नहीं है परन्तु भगवान ने जिस वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान पाया उसकी बात यहां पर की गई है। १६२ यहां तक अशोक वृक्ष का वर्णन समाप्त हुआ

वरदहस्त के समानभगवान अरहन्त के मस्तक पर जो छत्रत्रय होता है वह मोतियों की लूम से युक्त होता है अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मानों ताराओं से मण्डित पूर्ण चन्द्र मण्डल ही हो। १६३।

भगवान के सिंहासन प्रातिहार्य में जो सिंह होता है वह यद्यपि एक मुख वाला होता है फिर भी चार मुख वाला दीख पड़ता है, क्योंकि वह स्फटिकमणि निर्मित होता है। एवं वह सिंहासन भगवान के नय और प्रमाणमय सन्मार्ग का प्रतीक रूप से प्रतीत होता है।

उस सिंह के ऊपर एक हजार आठ दलका कमल होता है जिसकी लाल परछांई उस स्फटिकमणिमय सिंह में झलकती रहती है। इसीलिए दर्शकों को उसके रत्नमय होने में सन्देह नहीं रहता जहां पर कमल की परछाई नहीं रहती वहां पर सिंह सफेद रहता है।१६४।

बारह सभाके बहिर्भाग की ओर जो प्राकार है उसमें जो गोपुर द्वार होते हैं वहां से लेकर सिंहासन प्रातिहार्य तक एक रेखा कल्पित करके उस रेखा को अर्द्धच्छेद शलाका रूप से उतनी बार काटना जितने कि इस मङ्गल प्राभृत में अंकाक्षर हैं। मङ्गल प्राभृत में २०७३६०० इतने अक्षर हैं।१६५।

यद्यपि सिंह का मुख देखने में क्रूर भयावना हुआ करता है किन्तु भगवान के आसन रूप जो सिंह होता है वह लोगों को भय उत्पन्न नहीं करता प्रत्युत शौर्यप्रदर्शित करता है हिंसा को रोककर बल पूर्वक अहिंसा को अस्पष्ट करने वाला होता है। अव्रती लोग जब क्रूरता धारण कर लेते हैं तथा समवशरण में आते हैं तो उस सिंह का दर्शन करते ही उनका हृदय रूपी कमल प्रफुल्लित हो उठता है। और अपनी शक्ति की प्रबलता पर गर्व रखने वाले राजा महाराजा लोग जब इस सिंह के दर्शन करते हैं तो सरल होकर नतमस्तक ही रहते हैं।१६६ से १७० तक।

उपर्युक्त सिंह शरीर की शौर्यवृत्ति के धारक तथा अहिंसादि महाव्रतों के अक्षुण्णपालक श्री दिगम्बर जैन परमर्षि लोग ही इस मङ्गल प्राभृत की नवमांक पद्धति को पूरी तौर से जान सकते हैं। प्राभृत का ही प्राकृत भाषा में पाहुड हो जाता है। दिगम्बर महर्षि लोग जिस आसन से बैठकर इस मङ्गल प्राभृत को लिखते हैं या इसका उपदेश करते हैं उस आसन को ही वीरासन समझना चाहिए। इसी वीरासन का दूसरा नाम श्री पद्धति है। इस आसन के द्वारा ही मङ्गल प्राभृत की झांकी होती है। तथा यह आसन ही भगवान के रूप को स्पष्ट कर दिखलाने वाला है। इस आसन से मुनि लोग जब उपदेश करते हैं तो वह उपदेश दीपक के प्रकाश की भांति अपने आपको फैलाता है। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में ही यापनीय संघ नाम का एक मुनि संघ था। जो द्राविड देश में विचरण करता था उस संघ में इस वीरासन की बड़ी महिमा थी। उन लोगों की मान्यता थी कि इस वीरासन से अशान्ति मिटकर शान्ति होती है। तथा यह आसन भारत वर्ष की कीर्ति को बढ़ाने वाला है। यह भूवलय ग्रन्थ भी श्री पद अर्थात् भगवान के चरण कमल की गणित पद्धति से बना हुआ है। जिस गणित पद्धति को जान लेने पर श्वेत लोह से चान्दी बनाने की विधि भी भारतियों को प्राप्त हो जाती है।१७१ से १८२ तक।

भगवान के दिव्य स्फटिक मय सिंहासन से कुछ दूरी पर हाथ जोड़े हुए प्रफुल्लित मुख होकर वलयाकार रूप से देव लोग खड़े रहते हैं जोकि गम्भीर दुन्दुभिनाद करते रहते हैं सो सब आम जनता को मानो ऐसा कहते हैं कि दौड़कर आओ भगवान के दर्शन करो। भगवान के पीछे में जो अशोक वृक्ष होता है उसके फूलों की बरसा होती रहती है एक बार में अठारह हजार फूल बरसते हैं एवं बार-बार बरसते रहते हैं। भगवान के परमौदारिक शरीर में से जो कुण्डलाकार दिव्य अखण्ड ज्योति निकलती रहती है उसको भामण्डल कहते हैं। उसके आगे करोड़ों सूर्यों की ज्योति भी मात खा जाती है। अतः उस

भामण्डल को भानुमण्डल भी कहा जा सकता है। इस भामण्डल का तेज सूर्य के तेज के समान आँखों को अखरने वाला न होकर चन्द्रमा की ज्योति के समान प्रसन्नता देनेवाला होता है। उपर्युक्त अशोक वृक्ष के फूलों की जो वृष्टि होती है वह इस भामण्डल के दिव्य तेज में होकर आती है। अतएव दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता है मानो ये फूल देवलोक से ही बरस रहे हों। भगवान के दोनों बगलों में चमर ढुरते रहते हैं जोकि दोनों बगलों को मिला कर चौंसठ होते हैं और पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति वाले या शंख के समान धवल कान्ति वाले होते हैं। भगवान के चमर भी चौंसठ होते हैं तो अक्षरों का रङ्ग भी श्वेत ❖ माना हुआ है। अक्षर चौंसठ इस प्रकार हैं कि अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ये नौ स्वर हैं। जो कि ह्रस्व दीर्घ और प्लुत के भेद से सत्ताईस हो जाते हैं। कवर्गादि पांच के पच्चीस अक्षर हैं य र ल व श ष स ह ये आठ हैं (अं अः क ≍ प ≍ ०, ००, ००० प ००००) ये चार योग वाह अक्षर हैं १८६ से १८९ तक।

इन चौंसठ अक्षरों का लिपि रूप कैसा है ? यह प्रश्न हुआ ।१९०।

इसका उत्तर ऊपर पहले आ चुका है ।१९१।

अ कार से लेकर योग वार पर्यन्त चौंसठ अक्षरों का एक अक्षर (समूह) बन गया वही चामर का रूप है। इस प्रकार आठ प्रातिहार्यों का वर्णन हुआ। यह सब नवमांक बन्धन से बद्ध हुआ मङ्गल वस्तु रूप है। जिसका कि यहाँ वर्णन है इसलिए इस भूवलय के पहले विभाग का नाम मङ्गल प्राभृत है। मङ्गल काव्य बनाने के लिए कवि लोगों को यहां सब प्रकार की सामग्री प्राप्त हो जायेगी। १९२ से २०० तक।

शिव पद को प्राप्त किये हुये श्रीचन्द्र प्रभ जिन भगवान का यह अङ्क है ।२०१।

नवमांक से सिद्ध किया हुआ यह सिद्धांक है ।२०२।

यह सिद्ध परमेष्ठी का अङ्क होने से इच्छित वस्तु को देने वाला है ।२०३।

इस ग्रन्थ के अध्ययन करने से गणित पद्धति के द्वारा गुणाकार करने से रस सिद्धि होकर सांसारिक तृप्ति तथा आत्म योग प्राप्त होकर पारलौकिक सुख सिद्धि प्राप्त होती है ।२०४।

जैनियों के लिए तो भगवान का चौंसठ चामरों का दर्शन होने के साथ-साथ ही चौंसठ अक्षरों का ज्ञान हो जाता है।

विशेष विवेचन—

आचाराङ्गादि द्वादश अङ्ग और उत्पादादि चौदह पूर्व तथा धर सेनाचार्य तक कम होते हुए आया हुआ कर्म प्रकृति प्राभृत शास्त्र एवं गुणधरादि द्वारा बनाया हुआ कषाय पाहुड आदि महा ग्रन्थ, कुन्दुकुन्दु के द्वारा बनाये हुए समय सारादि चौरासी पाहुड ग्रन्थ और तत्वार्थ सूत्रादि सभी शास्त्रों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना एक असम्भव-सी बात है परन्तु कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि चौंसठ अक्षरों को जानकर उनके असंयोगी द्विसंयोगी इत्यादि चतुःष्टि संयोगी पर्यन्त करले तो परिपूर्ण द्वादशांग वाणी को जानकर सहज में हो सकता है जिसमें कि समस्त विश्वभर के शास्त्र समाविष्ट हो रहे हैं। तथा संसार में अनेक भाषायें प्रचलित हैं उनकी लिपियां भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं एक भाषा के जानकार को दूसरी भाषा तथा उसकी लिपि का बोध भी नहीं होता है परन्तु इस भूवलय की पद्धति के अनुसार अङ्क लिपि से लिखने पर हर भाषा के जानकार के लिए वह एक ही लेख पर्याप्त हो जाता है भिन्न-भिन्न लिखने की जरूरत नहीं पड़ती। मतलब यह है कि दुनिया भर में जितनी पाठशालायें है उनमें यदि भूवलय की अङ्क लिपि पढ़ाना शुरू कर दी जावे तो

❖ १ प्रसिद्ध कर्णाटक भाषा के व्याकरण के आदि रचियता श्री नागवर्म दिगम्बर जैनाचार्य ने अपने छन्दोंऽम्बुधि नामक ग्रन्थ में ऐसा लिखा है कि जब मानव को बोलने की इच्छा होती है तो नाभि मण्डल पर से शब्द उत्पन्न होकर प्राण वायु के संयोग से तुरई की आवाज के समान प्रवाह रूप होकर निकलता है उसका वर्ण श्वेत होता है। देखो— अनुकूल पवन निम् जीवनिष्टरिम् कहते पांगिन ओल नाभि पोगेदु पट्टुगु शब्द अदक्षण श्वेतं।

फिर उनको भिन्न-भिन्न लिपियां पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती ।२०५।

यह भूवलय ग्रन्थ नवकार मन्त्र रूप मङ्गल पर्याय से बनाया हुआ है ।२०६।

इस भूवलय के अध्ययन करने से संसार का नाश होकर सिद्धता प्राप्त हो जाती है ।२०७।

इस भूवलय ग्रन्थ के जो अंक हैं वे सब नवमन्मथ यानी आदि कामदेव श्री बाहुबली स्वामी के द्वारा प्रकट किये हुए हैं ।२०८।

तथा उन्हीं अङ्काक्षरों को भरत चक्रवर्ती ने सर्व प्रथम लिपि रूप में अवतरित किया था वह लिपि ब्राह्मी लिपि थी, जोकि कर्माष्टक भाषा रूप थी ।२०९।

वृद्ध से नौजवान बनने रूप काया कल्प करने वाली महौषधि उपर्युक्त चौबीस तीर्थंकरों के दीक्षा कल्याणक के वृक्षों के रस से बनती है (जिसकी विधि भूवलय के चौथे खण्ड प्राणावाय पूर्व में बतलाई गई है) परन्तु इस त्रसनाली में होने वाले समस्त संसारी भव्य जीवों का काया कल्प करने वाला एक सम्यक्त्व रूप महौषधि रस है। मङ्गल पर्याय रूप से उस सम्यक्त्व रूप महौषधि रस को प्रदान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ हैं ।२१०।

श्रीचन्द्रप्रभ भगवान ने समांक तथा विषमांक को एक कर दिखलाने कतिथा अङ्क और अक्षर को भी एक कर दिखलाने की पद्धति बतलाई जोकि पद्धति विश्वभरके लिए शुभ श्रेष्ठ और वरप्रद है तथा सर्व कलामय है ऐसा परमोत्तम उपदेश करनेवाले उन चन्द्रप्रभ भगवान को नमस्कार करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि हे भगवान हम सबकी आप रक्षा करें ।२११।

अब कुमुदेन्दु आचार्य उसी चन्द्रप्रभ भगवान की ही जयध्वनि रूप इस भूवलय श्रुतज्ञान को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि जिन वाणी माता हमें नाश न होने वाले अक्षरांक को दिया जिसको कि साधन स्वरूप लकर हम यह सिद्ध प्राप्त कर सकेंगे । सिद्धावस्था में जिस प्रकार अनन्त गुण एक साथ रहते हैं उसी प्रकार तुम्हारी कृपा से बने हुए इस भूवलय ग्रन्थ में भी नवमांक पद्धति के द्वारा तीन काल और तीन लोक के समस्त विषय समाविष्ट हैं इसीलिए यह पाहुड ग्रन्थ है ।२१२।

इस अध्याय में श्रेणि बद्ध काव्य में ८०१९ आठ हजार उन्नीस अक्षरांक हैं । अब इसी माला के अन्तर काव्य के पत्रों में १३१३१ तेरह हजार एक सौ इकतीस अक्षर हैं । इन सब अक्षरों से निर्मित किया हुआ यह भूवलय काव्य चिरस्थायी हो ।२१३।

उ ८०१९+अन्तर १३१३१=२११५०=९

अथवा

अ—उ १०, ५५, ८८+२११५०=१,२६,७३८

इस अध्याय के प्रथम श्लोक के आद्यक्षर से प्रारम्भ करके क्रमशः ऊपर से नीचे तक पढ़ते आवें तो जो प्राकृत श्लोक निकलता है उसका अर्थ कहते हैं—(उपपाद मारणान्तिक इत्यादि) ।

उपपाद और मारणान्तिक समुद्घात में परिणित त्रस तथा लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवली का आश्रय करके सारा लोक ही त्रसनाली है । विशेषार्थ-विवक्षित भव के प्रथम समय में होनेवाली पर्याय की प्राप्ति को उपपाद कहते हैं । वर्तमान पर्याय सम्बन्धी आयु के अन्तर्मुहूर्त में जीव के प्रदेशों के आगामी पर्याय के उत्पत्ति स्थान तक फैल जाने को मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं । (ति० द्वि० अः ८) इसी अध्याय के श्लोकों के अट्ठाईसवें अक्षर को क्रमशः ऊपर से नीचे तक लेकर लिखें तो इसी ग्रन्थ के अध्याय के अन्त तक आकर जो संस्कृत गद्य अधूरा रह गया था वहां से चालू होता है सो—'ग्रन्थ—कर्ता श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थ कर्तारह गणधर देवाह प्रति गणधर देवाह,' अर्थात् इस भूवलय नाम के ग्रन्थ के सर्व प्रथम मूल भूत कर्ता श्री सर्वज्ञ भगवान हैं उसके बाहु में इसको गणधर देव गौतमादि ने फिर उनको ईष्य प्रति गणधरों ने प्राप्त किया था ।

इति सप्तमो 'उ' नामक अध्याय समाप्त हुआ ।

आठवां अध्याय

ऊ※ नविल्लदे सिद्धवाद सिम्हासन । तानदु जिननेरिर्दागल् । ते※ नम वेम्बाग मूरने प्रतिहार्य । दानम्म बळकेयन्कगळम् ॥१॥
ण※ वंदु अष्टम सप्त सप्तान पन्तस । वदनु चतुर्थ त्रये षा※ म् ॥ सवण द्वितीयवु एकांक शून्यद । नवकार सिम्हासनद ॥२॥
प※ द सिद्धियागलु वरुवष्टु शन्केगे । ओदगे उत्तर काव्य स※ गळलि ॥ मुदवीव ओम्दने शन्केय पेळुव । पद पूर्वपक्ष सिद्धांत ॥३॥
मा※ टद सिम्हासन शब्द ओम्द् अरोळ् । कूटद सिम्ह आसवम् व※ कूटव बिट्आग ओम्दने सिम्हद । कूट सिद्धान्तद शन्के ॥४॥
ण※ ररु बेच्चुव जीव सहितद सिम्हवो । गुरु वर्धमान वाहन च※ आ ॥ मरद सिम्हवो जीव रहितद सिम्हवो । अरहंत नेरिद सिम्ह ॥५॥
म※ नुजरेरुव सिम्हासनदि बन्दिह सिम्ह । घन जाति सिम्हवो ना※ ना॥ वनदोळु चलिप सिम्हवो अल्लवो एम्ब। घनशन्केयागे भूवलय ॥६॥
मुनिगळ शन्के गुत्तरवु ॥७॥ तनगे बन्द आरु शन्केगळ ॥८॥ घनवादुत्तर सिद्धाविन्तु ॥९॥ तनि शन्केगे जीव रहित ॥१०॥
एनुव शब्ददे काण्ब दृष्टि ॥११॥ घन प्रातिहार्य सूरन्क ॥१२॥ घन सिम्हवदु शुद्ध स्फटिक ॥१३॥ मणियिन्द रचितवागिहुदु ॥१४॥
चिनुमयनेरिद सिम्ह ॥१५॥ कोनेय कर्माटक सिम्ह ॥१६॥ जिन मुनियन्ते सुशांत ॥१७॥ घन मुनिगळ शूर वृत्ति ॥१८॥
अनुभवदाटद सिम्ह ॥१९॥ कोनेय भवान्तर सिम्ह ॥२०॥ घनद पुराकृत सिम्ह ॥२१॥ जिन वर्धमानरु सिम्ह ॥२२॥
घनद सिम्हासन वलय ॥२३॥
द※ वनिय निज सिम्ह नाल्मोगवागिह । नव सिम्हमुख उद्दव नु※ अवभरिसलु आदिनाथ जिनेन्द्रर । नव बोहदष्टिह अळते ॥२४॥
न्※ व पादपद्मद केळगिह सिम्हद । विविधदुत्सेधवदनुम् सा※ अवरवरेने आदिनाथरिग् एनुरु । नवधनुवष्टिह अळत ॥२५॥
ड※ णडणरेन्नुव जयघंटे नादद । घन शब्ददनुभववस र※ जिननन्ग अजितनाना रिगेनाल्करे नूरु । एनुव धनुविनष्टु सिम्ह ॥२६॥
आ※ दआमेले शम्भवरिगे नाल्ऊरु । मोदद अभिनन्दनर ॥ आद मा※ टदसिम्ह मूरुनूर य्वत्तु । नाथ सुमुतिगे मूनूरु ॥२७॥
ऐदने जिनग्इन्नूररेयु ॥२८॥ मोद सुपार्श्व इन्नूर ॥२९॥ मोददेन्टके नूरय्वत्अम् ॥३०॥ आद ओम्बत्त के नूरु ॥३१॥
मोद शीतलर्गे तोश्बत्तु ॥३२॥ आदि अनन्त ऐवत्तु ॥३३॥ श्रीद हन्एरडे इप्पत्तु ॥३४॥ मोद विमल अरवत्तु ॥३५॥
आदि अनन्त ऐवत्तु ॥३६॥ आदि धर्मवुनलवत् ऐदु ॥३७॥ श्री दिव्य शांति नल्वत्तु ॥३८॥ आद कुन्थुवु मूवत्ऐदु ॥३९॥
आदाग अरवु मूवत्तु ॥४०॥ श्रीद मल्लियु इप्पत्ऐदु ॥४१॥ आदि इप्पत्तु इप्अत्तु ॥४२॥ मोदद नमि हदिनैदु ॥४३॥
आदि नेमिय अंक हत्तु ॥४४॥ श्रीधव पार्श्वव ओन्बत्तु ॥४५॥ आद्यन्त वीरांक एळु ॥४६॥ आदि इप्पत्एरळ् धनुष ॥४७॥
नेद अंक इगळेल्ल इनितु ॥४८॥ मोददन्तिमंगळु मोळवु ॥४९॥ साधित सिम्ह भूवलय ॥५०॥
को※ ष्टक बन्धांकदोळु कूडिदक्षर । दाशमिक क्रम गणित ॥ सा※ ष्टम निर्मल स्फटिकद बण्णद । भीष्टद सिम्ह वर्णगळ ॥५१॥
डि※ गद्अ गणितदे तेगेयालादी एन्दु । भगवन्त पुष्पदन्ता द्※ य ॥ सोगसिन कुन्दपुष्पद बण्ण एरडके । मिगिलाद सिम्हशरीर ॥५२॥
ति※ रेयेल्लि हरितवर्णपार्श्वव सुपार्शव । हरवर्ण नील य्※ सुव्रत । वरुवुदिदे नेमि पद्मप्रभ मत्तु । वरवासु पूज्यगे केम्पु ॥५३॥
य※ शदेन्दु सिम्ह बण्ण विळिदु हळदि । वशनीलकेम्पु इन्त् आ※ गे । ऋषि हदिनारर सिम्हगळ् चिन्नद । रसद स्फटिकद वर्णगळु ॥५४॥
म※ हवीर देवन सिम्हासन चिन्न । महद्आदि वृषभ जिनम् चा※ ॥ मिह सिम्हवदनोडे चिन्नद नाडाद । इहके नन्दियु लोक पूज्य ॥५५॥

महदादि गान्गेय पूज्य ॥५६॥ महावीर नन्दपुवकुलवु ॥५७॥ महति महावीर नन्दि ॥५८॥ इहलोकदादिय गिरिय ॥५९॥
सुहुमांक गणितदबेट्ट ॥६०॥ महसीदु महाव्रत भरत ॥६१॥ वहिसिदणुव्रत नन्दि ॥६२॥ सहनेय गुरुगळ बेट्ट ॥६३॥
सहचर मूरारु मूरु ॥६४॥ महनीय गुरुगण भरत ॥६५॥ महिय गन्गरसरगणित ॥६६॥ गहन विद्ययेगळाळ गिरियु॥६७॥
गहगहिसुव नगु भरित ॥६८॥ अहमीन्द्र स्वर्गवी भरत ॥६९॥ इह कल्पवृक्षद भरत ॥७०॥ महिय कल्वप्पु कोवळला ॥७१॥
महवीर तलेकाच गंग ॥७२॥ महदादि शिवभद्र भरत ॥७३॥ महिमेय मंग भूवलय ॥७४॥

ए※ ळु कमल मुन्देळु कमल हिन्दे । सालु मूवत्एरड् अन्क ॥ पाल र※ कूडिसल् कालूनूरु । श्री लालित्यद कवल ॥७५॥
क※ रुणेय्अ धवलवर्णद्अ पादगळिह । परमात्म पावद्व य※ दे ॥ सिरविहनाल्कंकवेरसितिम्हद मुख । भरतखंडद शुभ चिन्हे ७६
क※ विदिह मृगपक्षि मानव वर्गव । अवधरिसुत शान्तद श्※ री॥ अवतारवो इदु वोरश्री एन्देम्ब। सुविवेकि भरत चक्करांक॥७७॥
वी※ र जिनेन्दरन वाहनवी सिम्ह । मूरने पडिहारवदु ॥ सार श् री※ वीरश्री सारस्वत धीर । रारय्केवदनद सिम्ह ॥७८॥
स※ मचतुरस्र सम्स्थान सम्हननद । विमल वय्भवविह कु※ न्द॥ श्रमहरवर्णद धवल मंगल भद्र । गमकदशिव मुद्रे सिम्ह ॥७९॥
क्रमदन्क वेरडन्क सिम्ह ॥८०॥ अमलात्म हर शम्भु सिम्ह ॥८१॥ नमि से सौभाग्यद सिम्ह ॥८२॥ समवसरणदग्र सिम्ह ॥८३॥
क्रम नाल्कुचरण एन्टंक ॥८४॥ गमक केसर सिम्ह नाल्कु ॥८५॥ विमल सिम्हद प्रतिहार्य ॥८६॥ सम विषमान्कदे शून्य ॥८७॥
गमक लक्षणद अहिम्से ॥८८॥ श्रम हर पाहुड ग्रन्थ ॥८९॥ समद नाल्मोगदादि सिम्ह ॥९०॥ क्रमद महाव्रत सिम्ह ॥९१॥
क्रम सिम्हक्रीडित तपन ॥९२॥ श्रमहर गजदग्र क्रीडे ॥९३॥ नमिसिदर्गणुव्रत शुद्धि ॥९४॥ श्रमद महाव्रत शुद्धि ॥९५॥
विमलान्क काव्य भूवलय ॥९६॥

ल※ क्षण जारदे सिम्हगळ् बाळुव । तक्षणवेने आगाग ॥ लक्षा न※ क मीरिद वरुषगळेष्टन्क वीक्षितियोळगे बाळुवुवु ॥९७॥
क※ डिमेयायुविन श्री महावीर देव । नडिय सिम्हासनदल्लि ॥ श्री द※ गिद सिम्हदायुपु हत्तु वरुषवु । विडदे समवसरणदलि ॥९८॥
खा※ ति के यग्र पार्श्व जिनेन्द्र । ख्यातिय सिम्हद अयु ॥ पूत कु※ शल वर्षगळ् अरवत् ओम्बत्तु । नूतन मासगळ् एन्दु ॥९९॥
ण※ भदिह नेमि स्वामिय सिम्हदायुवु । शुभवर्ष एळ्नूरक्के न※ वे। शुभदऐवत्आरुदिनगळु कडिमेयु । विभुविन सिम्ह बाळुवुदु॥१००
म※ रळिश्री नमि देवर सिम्हदायुवु । एरड्वरे साविरके ॥ बर द※ ओम्बत्तु वर्षगळन्क कडिमेयु । सिरि सुव्रतर सिम्हदायु ॥१०१॥
परिदेळूवरे साविरवु ॥१०२॥ सिरि मल्लि जिन सिम्हदायु ॥१०३॥ बरे ऐद्नाल्केन्ट्सोन्ने सोन्ने ॥१०४॥ अरद्विसोन्ने नवेन्ट्उ नाल्कु ॥१०५॥
सिरि कुन्थुरळ्मूरेळ् मूर्नाल्कु ॥१०६॥ वरशान्तेरळ्नाल्नवेन्ट् नाल्कु ॥१०७॥ धर्म नवन्नाल्कु नाल्केरडु ॥१०८॥ धर्ममरंकवु बिडियारु ॥१०९॥
सिरि अनन्तवेन्टोम्वत्तु ॥११०॥ वरुष मुन्दे नव नाल्केळु ॥१११॥ गुरु विमल वेळोम्बत्तुगलु ॥११२॥ बरे नाल्कन् कवु नाल्कु ओम्दु ॥११३॥
वर वासुपूज्यरय्दु नव ॥११४॥ वरे मूरु ऐदन्क वरुष ॥११५॥ सिरि श्रेयान्सेन्दु नवगळ् ॥११६॥ बरे नाल्कन्कवु सोन्ने एरडु ॥११७॥
सिरि शीतल पूर्व अंग ॥११८॥ वरलोम्बत्तुगळय्द् मूरेन्दु ॥११९॥ वर वेलु नवव्र नाल्कुगळु ॥१२०॥ बरे मुन्दे मूरेन्दु वरुष ॥१२१॥
गुरु पुष्पदन्तरु पूर्व ॥१२२॥ वरुष ओम्बत्तुगळ् ऐदु ॥१२३॥ गुरु ववरन्क पूर्वाग्ग ॥१२४॥ अरुह् ओम्देळ्नव मूर् मूरेन्दु ॥१२५॥
वरुषवार्नवनाळ् मूरेंदु ॥१२६॥ वर चन्द्रप्रभ रोम्बत्तुगळु ॥१२७॥ सरि पूर्वेगळु मन्दग्ग ॥१२८॥ सरि एळु बिडियन्कय्दारु ॥१२९॥

बरे मूर् ओम्बत्तु मूरेन्दु ॥१३०॥ वृषव् अय्दोम्बत्तुगळ ॥१३१॥ बरेवुदु मूरु मत्तेन्टम् ॥१३२॥ सरि मास मुक्कालु वरुष ॥१३३॥
विरुवुदु आ सिम्हदायु ॥१३४॥ वरदु सुपार्शव पूर्वेगळ ॥१३५॥ बरुवुवु नवदन्क ऐदु ॥१३६॥ अरि मुन्दे पूर्वान्ग एळम् ॥१३७॥
बरे नव एळु मूरोम्बत् ॥१३८॥ सरि मूरु एन्दुगळन्क ॥१३९॥ बरि अन्गविनृइतागे गरुव ॥१४०॥ बरे ओम्दु नाल्नव मूरेन्दु ॥१४१॥
वरुषगळनृकवष्टिहुदु ॥१४२॥ गुरु पद्म प्रभर पूर्वेगळ ॥१४३॥ बरे ओम्बत्तुगळ नय्दु सल ॥१४४॥ इरे इन्तु पूर्वान्ग दंक ॥१४५॥
मुरेन्दु मूरोम्बत् मूरेन्दु ॥१४६॥ बरेवुदेम्भत् नाल्कु लक्ष ॥१४७॥ दिरविनोळोम्दून वरुष ॥१४८॥ वर सुमति नव वय्दपूर्व ॥१४९॥
अरि पूर्वांगदबिडिएळ ॥१५०॥ बरे आद्यन्त वेम्बत्तुमूर ॥१५१॥ सरिम ध्य नव नवम ॥१५२॥ अरि वर्ष विडियनृक एळ ॥१५३॥
गुरु सोन्ने एनृटोम्बत् नवव ॥१५४॥ अरि मत्ते नव मूरु एन्टम् ॥१५५॥ सर अभिनन्दन पूर्वे ॥१५६॥ बरुव पूर्वेगळ् ओमबत् ऐदु ॥१५७॥
अरि अंग नाल्नव मूरु एंदु ॥१५८॥ वरुषादि एरडेन्ट् ओम्बत्तु ॥१५९॥ बरे तोम्बत् ओम्बत् मूरेन्दु ॥१६०॥ वर शम्भवरउ नववय्दु ॥१६१॥
वर पूर्वगळ मुन्दे अंक ॥१६२॥ बरलादु देम्भत्नाल्लक्ष ॥१६३॥ दिरविनोळ् ऐदन्क ऊन ॥१६४॥ वरुषवे म्भत्नाल्कु लक्ष ॥१६५॥
दिरविगे हदिनाल्कु ऊन ॥१६६॥ एरडने अजितर पूर्वे ॥१६७॥ सरियाद् ओम्बत्तुगळ् ऐदु ॥१६८॥ वर अंगवेम्भत्नाल्लक्ष ॥१६९॥
दरविनोळे रडन्क ऊन ॥१७०॥ वरुषगळेम्भत्नाल् लक्ष ॥१७१॥ दिरविनोळून हन्नेरडु ॥१७२॥ पुरुवेव पूर्व लक्षगळ्गे ॥१७३॥
सिरियोम्दु ऊनवादन्क ॥१७४॥ वरुषवेम्भत्नाल्कु लक्ष ॥१७५॥ दिरविनोळ् साविर खन ॥१७६॥ इरुव सिम्हगळ् आयुविनितु॥१७७॥
भरत खण्डद सिम्हदायु ॥१७८॥ भरत सिम्हगळायु ॥१७९॥ सिरियु पश्चादानु पूर्वी ॥१८०॥ इरु वष्ट महाप्रातिहार्य ॥१८१॥
दिरविनोळ् पडिहार मूरु ॥१८२॥ बरुवन्क सिम्हलांछनवु ॥१८३॥ गुरु वीरनाथ भूवलय ॥१८४॥ गुरु मुनि सुव्रत नमिय ॥१८५॥
वर सिम्हदुपदेश वेरडु ॥१८६॥ परम्परे सिम्ह भूवलय ॥१८७॥

(पश्चादानु पूर्विय महावीर भगवान वाहन का सिम्ह और सिम्हासन के तीसरे प्रातिहार्यके सिम्हको जिन्दे वरुष (१०) दश,)
(पार्श्व नाथके ३ ने प्रातिहार्य की सिम्हद आयु वरुष ६९ ८, इसी तरह आगे भी गिनती कर लेनी चाहिए)

वा* सव निर्मित समवसरण बाळ्व । लेसिन कालदन्कगळम् ॥ आ* सरेयष्टिह भरत खण्डद सिम्ह । दाशेय प्रातिहार्यांक ॥१८८॥
स* म नाल्कु पादगळादरु एन्टिह । कर्म सिम्हव कायव्कव चा* विमल ज्ञानदवृषभादितीर्थंकयक्ष । रमल यक्षियर रक्षितवु ॥१८९॥
ट्* णटणवाद्य गोवदन चक्रेश्वरि । घन महायक्ष रोहिणी र्* आ । मणित्रिमुखनुप्रज्ञाप्तियक्षेश्वर । जिनयक्षिवज्रश्रृंखलेयु॥१९०॥
टि* तुम्बुर वज्रांकुश राग । मुद मातंग यक्षांक ॥ सद य्* अनातन पत्नि अप्रति चक्रेशि । ठिद विजय पुरुषदत्ते ॥१९१॥
नृ* व अजित मनोवेगे ब्रह्मनु काळि । सवण ब्रह्मेश्वरर् आ* द॥ नव ज्वालामालिनि दंवियु हत्तंक । छविकुमार महाकाळि ॥१९२॥
च* रितेय षण्मुखम् गउरि हन्नेरडंक । नव पातालरवर द्* यक्ष॥ अवन गान्धारियु किन्नर वइरोटि। नवकिम्पुरुष सोलसेयु ॥१९३॥
स* व गारुड मानसि देवि हदिनारु । नव गन्धर्व यक्षेश ॥ नव या* महा मानसि देविहदिनेळु । सवण कुबेर देवि जया ॥१९४॥
ह* रुषद वरुणनु विजया देवो । सिरि भृकुटि अपराजितेयु ॥ वर म्* हा गोमेध बहुरूपिणि देवि । सिरि पार्शव कुष्माण्डिनियु ॥१९५॥
स* रण मातंग पद्मावति देवियु । वर गुह्यक सिद्धायिनियु ॥ ना* रक तिरियुं गतिगे सल्लद इव्र । सार भव्यर जीव देवर ॥१९६॥
सा* विरदेन्दु वलगळ तावरेयनु । कावुत तलेयोळु हात्त ॥ तावु ई* नाल्मोग सिम्हरूपव काव्य । पावन यक्ष यक्षियरु ॥१९७॥

दवन यक्ष यक्षियरु ॥१९८॥ बेविन हूवनित्तवरु ॥१९९॥ तावरे हूविन रसदे ॥२००॥ ई विश्व रसव काय्दवरु॥२०१॥
जीवकोटिगळ काय्दवरु॥२०२॥ कावरु अणुव्रत गळनु ॥२०३॥ तावु बेट्टगळ तावरेय ॥२०४॥ ईवरु नेलद तावरेय ॥२०५॥
श्रीवीर जलद तावरेय ॥२०६॥ ई विध मूरु तावरेय ॥२०७॥ कविनोळ् रसमणिसिद्धि॥२०८॥ गोवरु हूविन वरव ॥२०९॥
कावरु हूवेप्पत्तेरडम् ॥२१०॥ तावु सिम्हगळ लेक्कदलि ॥२११॥ कावरु भरतार्य भुविय ॥२१२॥ कावरु महाव्रतिगळनु ॥२१३॥
श्री वीर विक्रम बलरु ॥२१४॥ जीव हिम्सेयनु निल्लिपरु ॥२१५॥ कावरहिम्हिसेय बलदि ॥२१६॥ तावु दर्शनिकरागिरुत ॥२१७॥
कावरु व्रतिकादि नेलेय॥२१८॥ श्री वीरवाणि सेवकरु ॥२१९॥ तावरे दलगळोळिहरु ॥२२०॥ देव वैक्रियर्कधि धररु ॥२२१॥
कावरु औदारिकर ॥२२२॥ देव देवियर तिद्दुवरु ॥२२३॥ पावन धर्म होत्तवरु ॥२२४॥ नोवुगळळलनिल्लिपरु ॥२२५॥
श्री वीर देव पूजकरु ॥२२६॥ तावु सिद्धरनु सेविसलि ॥२२७॥ श्री वीरगणितव काय्द॥२२८॥ दव देवियर भूवलय ॥२२९॥
श्री वीर सिद्ध भूवलय ॥२३०॥

इ* रुव श्री समवसरण नाल्मोग सिम्ह । अरुहन पाद कमल श्* री॥ सरद नालियहोत्तुतिरुगुत बरुतिर्प । सिरिय देवागम पुष्प॥२३१॥
गि* डवु अशोकवु पोडविय भव्यर । सडगरवनु वधिसिरे श् री* जडद देहद रोग आतंक वाधिक्य । गडिय सावुगळनु केडिसि ॥२३२॥
दा* नगळन्नेल ज्ञानदोळडगि । आनन्दवनेल्ल तरिसि ॥ शाने पु* ण्यवनीव पुष्पवृष्टियनोडु । वा नम्र प्रातिहार्याँक ॥२३३॥
ल* क्षणवाद चामर अरवत्नाल्कु । [illegible] अरवत्नाल्कु ॥ ष्* टक्षेयक्षरदंक नवम दिव्य ध्वनि । रक्षिपुद् ओम् ओमबत्तुगळ ॥२३४॥

तक्षण कर्म विनाश ॥२३५॥ सिक्षिप हन्नेरडंग ॥२३६॥ हक्वेळु मूवत् एरडम् ॥२३७॥ प्रकटवादेरडु काल्नूरु ॥२३८॥
ईक्षिप भामन्डलांक ॥२३९॥ लक्षद दुन्दुभिनाद ॥२४०॥ रक्षेयद्वादश गणवे ॥२४१॥ अक्षरदंक हन्नेरडु ॥२४२॥
अक्षर वेद हन्नेरडु ॥२४३॥ लक्षिप प्रातिहार्याष्ट ॥२४४॥ अक्षरदष्टु मंगलवु ॥२४५॥ शिक्षण काव्यांक वलय ॥२४६॥
श्रीक्षण मन्ग प्राभृतवु ॥२४७॥ अक्षरदन्क सान्गत्य ॥२४८॥ कुक्षि मोक्षद सिद्ध बंध ॥२४९॥ अक्षय पद प्रातिहार्य ॥२५०॥
शिक्षण लब्धान्क शून्य ॥२५१॥ अक्करदन्क भूवलय ॥२५२॥ शिक्षण ग्रन्थ भूवलय ॥२५३॥

वु* रितव हरिसुव अष्ट मन्गल द्रव्य । वेरसि पराभृत प* दवदनु ॥ परमात्म पादद्वयद एन्टक्षर बरेदिह पाहुड ग्रन्थ ॥२५४॥
ति* रेय जमबू द्वीपद् एरडु चन्द्रादित्य । रिहवष्ट रूप द* अमल॥ सरसिजाक्षरकाव्यगुरुगळ्ऐवर दिव्य। करयुगदानांक ग्रन्थ॥२५५॥
भा* रत देशदमोघ वर्षधनराज्य । सारस्वतवेम्बन्ग ॥ सारा न्* क गणित दोळक्षर सक्कद । नूरु साविर लक्ष कोटि ॥२५६॥
या* र्हतिराप्तसहाम्सिएन्टु[अष्टम]मुवकाल्। सारविकेरडेऊन॥स् त* र अन्तर हदिनेळु साविरगळ्गे। सार[नेर] नाल्वत्नाल्कुम्ऊनम् ॥२५७॥

८ ने ऊ ८७४८+ अन्तर १६९५६=२५७०४=१८=९ अथवा अ से 'ऊ' तक १,२६,७३८+ऊ २५७०४=१,५२,४४२।

ऊपर से नीचे तक प्रथमाक्षर पढ़ते आने से प्राकृत गाथा बन जाती है वह इस प्रकार है

ऊणपमाणंदंड कोडितियं एक बोसलक्खाणं । बासट्ठेचेसहस्साइगिदालदुति भाया ॥७॥

अगर बीच में से लेकर पढ़े तो–क्रमशः ऊपर से नीचे तक पढ़ने पर इस प्रकार संस्कृत निकलती है–

उनकी रचनानुसार लेकर, आचार्य श्री कुम्द कुम्द आचार्यादि आम्नाय से श्री पुष्पदंत...

आठवां अध्याय

अब इस अध्याय में सिंहासन 'नाम के प्रातिहार्य का 'विशेष' व्याख्यान के उपयोग में आनेवाले अङ्कों का वर्णन किया जा रहा है। नवम अङ्क जिस प्रकार परिपूर्णाङ्क है उसी प्रकार भगवान का सिंहासन भी परिपूर्ण महिमा वाला होता है। उस पर जबकि भगवान विराजमान हैं। अतएव भव्य जन तेनमः कहते हैं जो कि तीसरा प्रातिहार्य है।

श्री जिनभगवानसिंहासन पर विराजमान रहते हैं अतएव वह सिंहासन भी भव्य जीवों का कल्याण करने वाला होता है। जिनेन्द्र भगवान का होना तो बहुत मोटी बात है बल्कि जिन भगवान की प्रतिमा भी जिस सिंहासन पर विराजमान हो जाती है तो उस सिंहासन की महिमा अपूर्व बन जाती है। यदि स्वयं श्री जिन भगवान या उनकी प्रतिमा ये दोनों भी न हों तो अपने अन्तरङ्ग में ही भाव रुपी सिंहासन पर भगवान को विराजमान करके गणित से गुणा करते हुये उस काल की महिमा को प्राप्त कर लेना। १।

नवम, अष्टम, सप्तम, षष्ठ, पञ्चम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीत, प्रथम और शून्य इस रीति से नवकार सिंहासन❖ है। २।

इस प्रकार नवकार सिंहासन की सिद्धि के विषय में अनेक तरह की शंकायें उत्पन्न होती हैं। उन सब में पहली जो शङ्का है उसको हम यहां पर पूर्व पक्ष रूप में लिखते हैं। और उसका सिद्धान्त मार्ग से उत्तर देते हैं जो कि भव्य जीवों के लिये सन्तोष जनक है। ३।

सिंहासन यह समासान्त 'शब्द है जो कि सिंह और आसन इन दो शब्दों से बना हुआ है। उनमें से अगर आसन शब्द को हटा दिया जाय तो सिर्फ सिंह रह जाता है यही वाद विवाद का विषय है। ४।

सिंह जो कि वन में विचरण करता है जिसके कन्धे पर सटा की छटा रहती है जिसे देखते ही मानव भयभीत हो जाता है क्या यहां पर वही सिंह है? अथवा वर्द्धमान जिनेन्द्र का जो लाञ्छन (चिन्ह) रूप है वह सिंह है! या लेप्य कर्मात्मक (चित्र) सिंह है! अथवा अरहन्त भगवान् जिस पर विराजमान थे वह सिंह है? अथवा सर्व साधारण जिस पर बैठते हैं वह सिंह है? अथवा सजातीय विजातीय एक वर्णात्मक अनेक वर्णात्मक विभिन्न वनों में नाना प्रकार से निवास करते हैं वह सिंह हैं क्या? या इन सभी से एक निराले प्रकार का सिंह है? कौन सा सिंह! इन सब शङ्काओं का उत्तर नीचे दिया जाता है। ४-६-७।

ऊपर छह तरह की शंका है। ८।

उसके उत्तर में आचार्य महाराज कहते हैं कि यह निर्जीव सिंह है। फिर भी दर्शक लोगों के अन्तरङ्ग में जिस जिस प्रकार का कषायावेश होता है उसी रूप में उसका दर्शन होता है। ९-१०-११।

वह सिंह शुद्ध स्फटिक 'मणिका' बना हुआ है।

उस पर भगवान विराजमान होते हैं। १३ से १४ तक

जिस सिंहासन पर भगवान विराजमान होते हैं वह सिंह भी कर्माटक है कर्मों का नष्ट करने वाला है और जब भगवान उस सिंहासन पर से उतर कर चौदहवें गुण स्थान में पहुंच जाते हैं तब भगवान की कर्माटक (सर्वजीवों के कर्माष्टक को नष्ट कर देने वालो) भाषा रूपी दिव्यध्वनि भी बन्द हो जाती है। यह भगवान के आसन रूप में आया हुआ सिंह मुनि के समान शान्त दीख पड़ता है। १५ से १७।

यहां पर सिंह को आसन रूप में क्यों लिया? इसका उत्तर यह कि दिगम्बर जैन मुनि लोगसिंह के समान शूर वीरता पूर्वक क्षुधातृषादि बाईस परीषहों का सामना करते हैं और उन पर विजय पाते हैं। १८।

योगी लोग अपने आत्मानुभव के समय में इस सिंह के द्वारा क्रीड़ा किया करते हैं। १९।

संसार का अन्त करनेवाले चरम जन्म में इस सिंह को प्राप्ति होती है। २०।

अनादिकाल से आज तक के भव्यों को यह सिंह अन्तिम भव में ही मिलता आया है और आगे अनन्त काल तक होने वाले भव्य जीवों को भी अन्तिम

❖शून्य सिंहासन, दन्त सिंहासन, रत्न सिंहसन, शारदासिंहासन इत्यादि नामों से गुरु पीठ या राज पीठ आज भी दक्षिण में महिशूर (मैसूर) में क्रमशः चित्र दुर्ग, दिल्ली, मार्-मूद नरसिंह राज पुत, श्रवणबेल गोल और शृंगेरी आदि स्थानों में मौजूद हैं।

जन्म में ही इसकी उपलिब्ध होगी । २१ ।

वर्द्धमान जिन भगवान भी एक प्रकार से सिंह हैं । २२ ।

इस सिंहासन प्रातिहार्य से वेष्टित हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है । २३ ।

अब इस सिंह की ऊंचाई आदि के बारे में बतलाते हैं ।

भगवान समवशरण में एक मुख होकर भी चार मुख वाले दीख पड़ते हैं उसी प्रकार यह आसन रूप सिंह भी एक होकर भी चार चार मुँह दीखा करता है। इस सिंह की ऊँचाई भगवान के शरीर प्रमाण होती है । २४ ।

आदिनाथ भगवान के चरण कमलों के नीचे रहने वाले सिंह की ऊँचाई पाँच सौ धनुष की थी । २५ ।

घण्टा के बजाने से जो टन टन नाद होता है उसको परस्पर में गुणाकार करते जाने से जो गुणनफल आता है वही श्री अजितनाथ भगवान के साढ़े चार सौ (४५०) धनुष सिंह का प्रमाण है । २६ ।

तत्पचात् श्री संभवनाथ भगवान का ४०० धनुष श्री अभिनन्दन का साढ़े तीन सौ (३५०) धनुष तथा श्री सुमतिनाथ भगवान् का ३०० धनुष सिंह का प्रमाण है । २७ ।

श्री पद्मप्रभ भगवान् का २५० धनुषप्रमाण सिंह की ऊँचाई है । २८ ।

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का दो सौ (२००) धनुष ऊँचा सिंह का प्रमाण है । २९ ।

आठवें श्री चन्द्र प्रभु भगवान के सिंह की ऊँचाई १५० धनुष प्रमाण है ।३०।

नौवें श्री पुष्पदन्त भगवान के सिंह की ऊँचाई १०० धनुष प्रमाण है ।३१।

श्री शीतलनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ९० धनुष प्रमाण है । ३२।

श्री श्रेयांस नाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ८० धनुष प्रमाण है । ३३।

श्री वासुपूज्य भगवान के सिंह की ऊँचाई ७० धनुष प्रमाण है । ३४।

श्री विमलनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ६० धनुष प्रमाण है ।३५।

श्री अनन्त नाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ५० धनुष प्रमाण है ।३६।

श्री धर्मनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ४५ धनुष प्रमाण है । ३७ ।

श्री दिव्य शांतिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ४० धनुष प्रमाण है । ३८ ।

श्री कुंथुनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ३५ धनुष प्रमाण है । ३९ ।

श्री अर्हनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ३० धनुष प्रमाण है । ४० ।

श्री मल्लिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई २५ धनुष प्रमाण है । ४१ ।

श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर के सिंह की ऊँचाई २० धनुष प्रमाण है । ४२ ।

श्री नमिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई १५ धनुष प्रमाण है । ४३।

श्री नेमिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई १० धनुष प्रमाण है । ४४।

श्री पार्श्वनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ९ हाथ प्रमाण है । ४५।

अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान के सिंह की ऊँचाई ७ हाथ प्रमाण है । ४६ ।

उपर्युक्त २४ तीर्थंकरों में से प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान से लेकर २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान पर्यन्त धनुष की ऊँचाई है । ४७ ।

उपर्युक्त सभी अङ्क गुणाकार से प्राप्त हुये हैं । ४८ ।

श्री पार्श्वनाथ भगवान तथा महावीर भगवान के सिंह की ऊँचाई का प्रमाण धनुष न होकर केवल हाथ ही है । ४९ ।

इस अंक को साधन करने वाला भूवलय ग्रन्थ है । ५० ।

आगे भूवलय के कोष्ठक बंधांक में मिलने वाले अक्षर को दाशमिक (दशम) क्रम से यदि गणित द्वारा निकालें तो आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभु पर्यन्त जो सिंह का वर्णन किया गया है वह निर्मल शुभ्र स्फटिक मणि के समान है । इस प्रकार इस स्फटिक मणिमय वर्ण के सिंह का ध्यान करने से ध्याता को अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है । ५१ ।

इसी गणित को आगे बढ़ाते जाने से भगवान पुष्पदन्तादि दो तीर्थंकर के सिंह लांछन का वर्ण कुन्द पुष्प के समान है ५२ ।

श्री सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ भगवान के सिंह का वर्ण हरित है, श्री

सुव्रत तीर्थंकर के सिंह का वर्ण नील है तथा श्री नेमिनाथ, पद्मप्रभु और वासुपूज्य इन तीनों तीर्थंकरों के सिंह का वर्ण रक्त है। ५३।

आठ तीर्थंकरों के सिंहों का वर्ण श्वेत, पीत, नील तथा रक्त वर्ण का है किन्तु शेष सोलह तीर्थंकरों के सिंहों का वर्ण स्वर्ण रस तथा स्फटिक मणि के समान है।५४।

महावीर भगवान का सिंहासन स्वर्ण मय तथा आदि तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान का नन्दी पर्वत पर स्थित सिंहासन स्वर्ण मय है। क्योंकि यह स्वाभाविक ही है, कारण यह स्वर्ण उत्पत्ति का ही देश है। यह नन्दी पर्वत अनादि काल से लोक पूज्य है।५५।

गंग वंशीय राजा इस अनादि कालीन पर्वत को पूज्य मानते थे।५६।

महावीर भगवान के निकट नाथ वंशीय कुछ राजा दक्षिण देश में आकर नन्दी पर्वत के निकट निवास करते थे। वे "नन्द पुद" कुलवाले कहलाते थे।५७।

महावीर भगवान के कुल से सेव्य होने के कारण इस नन्दीगिरि को महति महावीर नन्दी कहते हैं।५८।

अनेक जैन मुनियों का निवास स्थान होने से इस पर्वत को इह लोक का आदि गिरि भी कहते हैं। ५९।

अनेक सूक्ष्म गणित शास्त्रज्ञ दिगम्बर जैन मुनि यहां निवास करते थे इसलिये इस गिरि का 'सुहुमांक गणित का गिरि' भी नाम है।६०।

इस पर्वत पर निवास करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय महर्षि लोग उग्र-उग्र तपस्या करने वाले हो गये हैं जिनको घोराति घोर उपसर्ग आये हैं फिर भी क्षत्रियत्व के तेज को रखने वाले उन महर्षियों ने उन उपद्रवों का सहर्ष सामना किया था और उन पर विजय पाई थी। इसलिए इसको महाव्रत भरतगिरि भी कहते हैं यहाँ पर भरत के माने शिरोमणि के हैं। ६२।

इन महर्षियों की सिंहनिःक्रीडितादिसरीखी तपस्या को देखकर आश्चर्य चकित होकर अनेक अव्रती लोग भी अणुव्रतादि स्वीकार करते थे इसलिये इस पर्वत को अणुव्रतनन्दी भी कहते हैं।

इस पर्वत पर रहने वाले मुनि लोग अनुपम क्षमाशील हो गये हैं इसलिये इस पर्वत को 'सहन करने वाले गुरुओं का गिरि' भी कहते हैं।६३।

इस पर्वत पर रहने वाले जैन मुनियों के पास सभी धर्मवाले आकर धर्म के विषय में पूछताछ करते थे और समाधान से सन्तुष्ट हो जाते थे इसलिए इसको तीन सौ त्रेसठ धर्मों का सहचरगिरि भी कहते हैं।६४।

मुनियों के नाना गण गच्छों की उत्पत्ति भी इसी पर्वत पर हुई थी इस लिये इस गिरि का नाम गुरु गण भरत गिरि भी है।६५।

जिन गङ्ग वंशी राजाओं का वर्णन ऋग्वेद में आता है वे सब राजा जैन धर्म के पालने वाले थे तथा गणित शास्त्र के विशेषज्ञ थे। उन सब राजाओं की राजधानी भी इस पर्वत के प्रदेश में ही परम्परा से होती रही थी इसलिए इस को गंग राजाओं के गणित का गिरि भी कहते हैं।६६।

विद्याधरों की भांति इस पर्वत पर अनेक मान्त्रिकों ने विद्यायें सिद्ध की थी इसलिए इसको गहन विद्याओं का गिरि भी कहते हैं।६७।

इस पर्वत के आठ शिखर बहुत ऊंचे ऊंचे हैं। इसलिए इसको अष्टापद भी कहते हैं। इस पर्वत पर से नदी भी निकल कर बहती है तथा इस पर्वत पर अनेक प्रकार की जड़ी बूटी भी हैं जिनको देखकर लोगों का मन प्रसन्न हो जाता है और हंसी आने लगती है। इसलिए इस पर्वत का नाम 'हँसी पर्वत' भी है।६८।

जिस प्रकार सभी अहमिन्द्र एक सरीखे सुखी होते हैं उसी प्रकार इस पर्वत पर रहने वाले लोग भी सुखी होते हैं। इसलिए इसको भूलोक का अहमिन्द्र स्वर्ग भी कहते हैं।६९।

कल्प वृक्ष कहां हैं ऐसा प्रश्न होने पर लोग कहा करते थे कि इस नन्दी गिरि पर है इसलिए इसका नाम 'कल्पवृक्षाचल' भी है।७०।

कल्वप्पूतीर्थ, कावलाला और तालेकाया यह सब नंदी गिरि पर राज्य करने वाले गंग राजाओं की राजधानी भी थी।७१-७२।

विशेष विवेचन—जहां पर जगदाश्चर्यकारी श्री बाहुबली की प्रसिद्ध मूर्ति है जिसको आज श्रवण बेलगोल कहा जा रहा है उस क्षेत्र को पहले कल्वप्पुतीर्थ कहते थे वह प्रदेश भी गंग राजाओं की अधीनता में था जो कि नान्दी गिरि से एक सौ तीस मील पर है और नन्दी गिरि से तीस मील की दूरी पर एक कोवलाला नाम तीर्थ था जिस को आज 'कोलार' कहते हैं जिस पर सोने

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

की खानि है तथा नन्दी गिरि से डेढ़ सौ मील दूर पर तालेकाडू नाम का गांव है जो कि पूर्व में इन गंग राजाओं की राजधानी था। इसके तालेकाडू के आस-पास में मलपूर नाम का एक पहाड़ है जिस पर पूज्यपादाचार्य के आदेश से इन्हीं गंग राजाओं के द्वारा बनाया हुआ विशाल जिन मन्दिर है तथा पद्मावती की मूर्ति भी है जिस मूर्ति की बड़ी महिमा है। जैन ही नहीं अजैन लोग अपना इच्छित पदार्थ पाने की इच्छा से उसकी उपासना किया करते हैं और यथोचित फल पाकर संतुष्ट होते हैं। इसी नन्दी गिरि से पांच मील दूर पर यलव नामक एक गांव है जो कि पूर्व जमाने में एक प्रसिद्ध नगर के रूप में था। वहीं पर कुमुदेन्दु आचार्य रहते थे। यलव के आगे भू लगाकर उसे प्रतिलोम रूप पढ़ने से भूवलय हो जाता है।

यह नान्दी गिरि प्राचीन काल से श्री वृषभनाथ के समय से बहुत बड़ा पुण्य क्षेत्र माना गया है।७३।

महावीर भगवान का सिंहासन सोने का बना हुआ था और महद आदि ऋषभ जिनेन्द्र की प्रतिमा के नीचे रहने वाले सिंहासन का सिंह भी सोने का ही है। क्योंकि इस पर्वत के नीचे सोने की खान पाई जाने से मंगल रूप बतलाने वाला सोने की वस्तु बनाने में क्या आश्चर्य है। इस पर्वत में ही भूवलय ग्रन्थ को आचार्य कुमुदेन्दु ने लिखा है।७४।

भगवान के चरणों के नीचे रहने वाले सिंह के ऊपर के कमलों की बत्तीस लाइनें हैं जिनमें एक-एक लाइन में सात-सात कमल हैं। (३२×७=२२४) कमल हुए। भगवान के नीचे रहने वाले एक कमल को मिलाकर २२५ कमल हो जाते हैं। उन कमलों का आकार स्वर्ण से बनाकर नन्दी पर्वत के अग्रभाग में बनाये हुए विशाल मंदिर में गंग राजा शिवमार ने रक्खा था।७५।

दया धर्म रूपी धवल वर्ण भगवान का पादद्वय कमल के ऊपर विराजमान था। वहाँ सिंह का मुख एक होते हुए भी चारों तरफ चार मुख दीखते थे, क्योंकि यह चतुर्मुखी सिंह के मुख का चिन्ह गंग राजा का राज्य चिन्ह अर्थात् भरत खण्ड का शुभ चिन्ह था।७६।

विवेचन—आज के भारत का जो राज्य-चिन्ह चौमुखी सिंह है वह अशोक चक्रवर्ती का राज्य चिन्ह था, ऐसी मान्यता प्रचलित है। अशोक से भी पूर्व गंग वंश के राज्य काल में भी यह चतुर्मुखी सिंह भारत का राज्य चिन्ह रहा है। यह सिंह ध्वज का लांछन चिन्ह चौबीसों तीर्थंकरों के समवशरण में रहने वाला होने के कारण अथवा प्रत्येक तीर्थंकर के समय में होनेवाले सिंह की आयु, मुख, प्रमाण, देह प्रमाण आदि का विवरण इस भूवलय ग्रन्थ के इसी अध्याय में आने वाला है। अतः प्रमाणित होता है कि यह चतुर्मुखी सिंह का चिन्ह बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा है।

इस मन्दिर के ऊपरी भाग में मृग, पक्षी, मानव आदि के सुन्दर चित्र बनाए हुए थे। उन सब में वीर श्री का द्योतक यह सिंहासन था। यह सब भरत चक्रवर्ती का चलाया हुआ चक्रांक क्रम था।७७

यह सिंह वीर जिनेन्द्र का वाहन (पगचिन्ह) था और प्रातिहार्य भी था। जैन धर्म, क्षत्रिय धर्म, शौर्य श्री, सारस्वत श्री इन सब विद्याओं का प्रतीक यह सिंह था।७८।

यह सिंह समचतुरस्र संस्थान और उत्तम संहनन से युक्त रचना से बना हुआ था, एवं मंगलरूप था, विमल था, वैभव से युक्त था, भद्रस्वरूप था तथा भगवान के चरणों में रहने से इस सिंह को शिव मुद्रा भी कहते हैं।७९।

ऋषभ आदि तीर्थंकरों से क्रमागत सिंह की आयु और ऊंचाई, चौड़ाई सब घटती गई है। अन्यत्र ईश्वर इत्यादि का वाहन भी सिंह प्रतीक दीख पड़ता है।८०-८१।

भगवान के इन सिंहों को नमस्कार करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है।८२।

सब सिंहों में समवशरण के अग्र भाग में रहने वाले सिंह को ही लेना।८३।

एक सिंह के चार पैर होते हैं। अब यहां चारों तरफ आठ चरण दीख पड़ते हैं।८४।

प्रत्येक सिंह के मुख पर केश विशालता से दीख पड़ते हैं।८५।

इस सिंह को इतना प्राधान्य क्यों दिया गया? इसका उत्तर यह है कि भगवान के ८ प्रातिहार्यों में एक प्रातिहार्य होने से इसका महत्व इतना हुआ।८६।

एक सिंह होते हुए भी चार दीख पड़ने से गणित शास्त्र के क्रमानुसार

समांक को विषमांक से भाग देने से शून्य आ जाता है ।८७।

नाट्य शास्त्र के अभिनय के लक्षण में इस सिंह का भाव प्रकट करें तो अहिंसा का भाव पैदा होता है ।८८।

पाहुड ग्रन्थों में इस सिंह प्रातिहार्य को श्रमहारक लांछन माना गया है ।८९।

चारों ओर रहने वाले सिंह के मुख समान होते हैं ।९०।

सिंह के समीप महाव्रतियों के बैठने के कारण इस सिंह का भी महाव्रती सिंह नाम आया है ।९१।

समवशरण में सिंहासन के पास महाव्रती बैठकर जो सिंह निष्क्रीड़ित तप करते हैं उसी के कारण इस को सिंह निष्क्रीड़ित कहते हैं ।९२।

इसका नाम गज अग्रक्रीड़े अथवा गजेन्द्र-निष्क्रीड़त तप भी है ।९३।

इस सिंह प्रातिहार्य को यदि नमस्कार करें तो अणुव्रत की सिद्धि हो जाती है ।९४।

इस गजेन्द्रनिष्क्रीड़ित❖ महातप को करने वाले महात्माओं के महाव्रतों में अपूर्व शुद्धि भी प्राप्त हो जाती है ।९५।

ऐसा कहने वाला यह निर्मलांक महाकाव्य भूवलय है ।९६।

मध्य सिंहनिष्क्रीडित एक से आठ अंक तक का प्रस्तार बनाना चाहिये। उसके शिखर पर अन्त में (मध्य में) नौ का अंक आ जाना चाहिये और जघन्य निष्क्रीडित के समान यहां भी दो दो अक्षर की अपेक्षा से एक एक उपवास का अंक घटाना बढ़ाना चाहिये। इस रीति से इस मध्य सिंहनिष्क्रीडित में जितनी अंकों की संख्या हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये अर्थात्

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ८ ९
१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
८ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

❖सिंहनिष्क्रीडित व्रत जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट भेद से तीन प्रकार का है। उनमें जघन्य सिंहनिष्क्रीडित इस प्रकार है। एक ऐसा प्रस्तार बनावे कि अन्त में (मध्य में) उसमें पांच का अंक आ जाय और पहिले के अंकों में दो से जितने इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडित में अंकों के जोड़ने पर संख्या सिद्ध हो उतने चाहिए अर्थात् इस प्रस्तार का

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ५ ५ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

पारणा करनी चाहिये। पश्चात् दो में से एक उपवास का अंक घट जाने से एक एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अंक घट जाने से दो उपवास एक चार में से एक उपवास का अङ्क घट जाने से तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास का अंक घटा देने पर चार उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास पांच का अंक आ जाने से पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ। आगे उल्टी संख्या से पहिले अंक घटा देने पर चार उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अंक बढ़ा पर तीन उपवास एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अंक घटा देने पर वास एक पारणा, दो में से एक उपवास का अंक घटा देने पर एक उपवास एक चाहिये। इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडित में अंकों की संख्या साठ है। इसलिए साठ अस्सी ८० दिन में जाकर समाप्त होती है।

दो अंकों की सहायता से एक एक अंक बढ़ता जाय और घटता जाय इस रीति तो उपवास समझना चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी

यह आकार है। यहां पर पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक उपवास एक पारणा, दो में एक उपवास का अंक बढ़ जाने से तीन उपवास पारणा, तीन में एक उपवास का अंक बढ़ जाने से चार उपवास एक पारणा, में एक उपवास का अङ्क बढ़ जाने से पांच उपवास एक पारणा, पांच में से एक का अंक बढ़ा देने पर पांच उपवास एक पारणा होती है। यहां पर अन्त में पांच उपवास एक पारणा करनी चाहिए। पश्चात् पांच में से एक उपवास का देने पर पांच उपवास एक पारणा, चार में से एक उपवास का अंक घटा देने दो उपवास एक पारणा, दो में से एक उपवास का अंक बढ़ा देने से तीन उप- पारणा, पश्चात् दो उपवास एक पारणा, एक उपवास एक पारणा करनी उपवास होते हैं और स्थान बीस हैं, इसलिये पारणा बीस होती है। यह विधि

इसके प्रस्तार का आकार इस प्रकार है। यहां पर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिए। पश्चात् दो में से एक उपवास का अंक घटा देने पर एक उपवास एक पारणा, दो में एक उपवास का अंक जोड़ देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन में से एक का अंक घटा देने पर दो उपवास एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अंक बढ़ा देने पर चार उपवास एक पारणा होती है। इसी प्रकार जघन्य सिंहनिष्क्रीडित के समान आगे भी समझ लेना चाहिये। इसमें अंकों की संख्या एक सौ तिरपन है। इसलिए एक सौ तिरपन तो उपवास होते हैं और स्थान तैंतीस हैं। इसलिये तैंतीस पारणा होती है। इसलिये यह मध्य सिंनिष्क्रीडित व्रत एक सौ छियासी दिन में समाप्त होता है।

उत्तम सिंहनिष्क्रीडित—एक से पन्द्रह अंक तक का प्रस्तार बनाना चाहिये। उसके शिखर पर अन्त में (मध्य में) सोलह का अंक आ जाना चाहिये और उपर्युक्त सिंहनिष्क्रीडितों के समान यहां पर भी दो दो अक्षरों की अपेक्षा से एक एक उपवास का अंक घटा बढ़ा लेना चाहिये। इस रीति से जोड़ने पर जितनी इसमें अंकों की संख्या सिद्ध हो उतनें तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहियें। इसके प्रस्तार का आकार

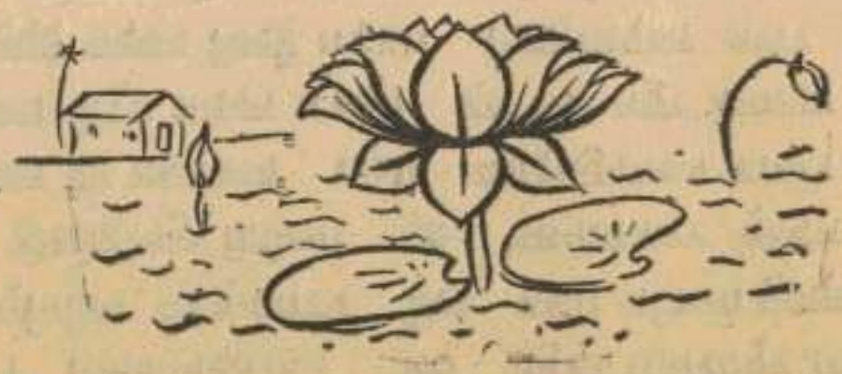
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ९ ८ १० ९ ११ १० १२ ११
१३ १२ १४ १३ १५ १४ १५ १६ १५ १४ १५ १३ १४ १२ १३
११ १२ १० ११ ९ १० ८ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

इस प्रकार है। यहां पर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिये। पश्चात् दो में से एक उपवास का अङ्क घटा देने पर एक उपवास एक पारणा, दो में एक उपवास का अंक बढ़ा देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अंक घटा देने पर दो उपवास एक पारणा, तीन में एक उपवास का अंक मिला देने से चार उपवास एक पारणा, चार में से एक उपवास का अंक घटा देने पर तीन उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अंक बढ़ा देने से पांच उपवास एक पारणा,

पांच में से एक उपवास का अंक घटा देने से चार उपवास एक पारणा, पांच में एक उपवास का अंक जोड़ देने से छै उपवास एक पारणा, छै में से एक उपवास का अंक घटा देने पर पांच उपवास एक पारणा, छै में एक उपवास का अंक बढ़ा देने पर सात उपवास एक पारणा, सातमें से एक उपवास का अंक घटा देने पर छै उपवास एक पारणा, सात में एक उपवास का अंक मिला देने से आठ उपवास एक पारणा, आठ में से एक उपवास का अंक घटा देने पर सात उपवास एक पारणा, आठ में एक उपवास का अंक मिला देने पर नौ उपवास एक पारणा, नौ में से एक उपवास का अंक घटा देने पर आठ उपवास एक पारणा, नौ में एक उपवास का अंक जोड़ देने पर दश उपवास एक पारणा, दश में से एक उपवास का अंक घटा देने पर नौ उपवास एक पारणा, दश में एक उपवास का अंक बढ़ा देने पर ग्यारह उपवास एक पारणा, ग्यारह में से एक उपवास का अंक घटा देने पर दश उपवास एक पारणा, ग्यारह में एक उपवास का अंक बढ़ा देने पर बारह उपवास एक पारणा, बारह में एक उपवास का अंक मिला देने पर तेरह उपवास एक पारणा, तेरह में एक उपवास का अंक बढ़ा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, चौदह में से एक उपवास का अंक घटा देने पर तेरह उपवास एक पारणा, चौदह में एक उपवास का अंक बढ़ा देने पर पन्द्रह उपवास एक पारणा, पन्द्रह में से एक उपवास का अंक घटा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, पुनः पन्द्रह उपवास एक पारणा और सोलह उपवास एक पारणा, सोलह में से एक उपवास का अंक घटा देने से पन्द्रह उपवास एक पारणा, पन्द्रह में से एक उपवास का अंक घटा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, चौदह में एक उपयास का अंक बढ़ा देने पर पन्द्रह उपवास एक पारणा, चौदह में से एक उपवास का अंक घटा देने से तेरह उपवास एक पारणा, इत्यादि रीति से आगे भी समझना चाहिये। इस रीति से इस उत्तम सिंहनिष्क्रीडित व्रत में अंकों की मिलकर संख्या चारसौ छियानवे है। इसलिए इतने तो इसमें उपवास होते है और स्थान इकसठ हैं इसलिये इकसठ पारणा होती है। यह व्रत पांच सौ सत्तावन दिन में समाप्त होता है।

ग्रन्थकार ने तीनों प्रकार के सिंहनिष्क्रीडित व्रतों की संख्या और पारणा गिनकर बतलाने की यह सरल रीति बतलाई है। जघन्यसिंहनिष्क्रीडित व्रत में सात उपवास और पारणा बतलाई है एवं उसका प्रस्तार पांच अंक तक

रखकर उनका आपस में जोड़ दें और जोड़ने पर जो संख्या आवे उसका चार से गुणा करदें, इस रीति से गुणा करने पर जो संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणा समझनी चाहिए अर्थात् इस जघन्य सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत में एक से पांच तक की संख्या जोड़ने पर १५ होते हैं और पंद्रह का चार से गुणा करने पर साठ होते हैं। इसलिए इतने तो उपवास हैं और स्थान बीस होते हैं इसलिए पारणा बीस हैं। मध्य सिंहनिष्क्रीडित में तिरेपन उपवास और तेंतीस पारणा बतला आये हैं और नौ के अंक को शिखर पर रखकर आठ अंक तक का प्रस्तार बतला आये हैं। वहां पर एक से लेकर आठ तक संख्या रखकर आपस में जोड़ दें और जोड़ने पर जितनी संख्या आवे उसका चार से गुणा करें तत्पश्चात् गुणित संख्या में जो नौ का अंक शिखर पर बतला आये हैं उसे जोड़ दें इस रीति से जितनी संख्या सिद्धहो उतने इस मध्यसिंहनिष्क्रीडितमें उपवास हैं और जितने स्थान हैं उतनी पारणा है अर्थात् एक से आठ तक की संख्या का जोड़ देने पर छत्तीस होते हैं। छत्तीस का चार से गुणा करने पर एकसौ चौवालिस होते हैं और उसमें नौ जोड़ देने पर एकसौ तिरपन हो जाते हैं। इसलिए इस व्रत में एकसौ तिरेपन तो उपवास होते हैं और स्थान तेंतीस हैं इसलिए तेंतीस पारणा होती हैं। उत्तम सिंहनिष्क्रीडित में चारसौ छियानवे उपवास और पारणा इकसठ कही हैं। इसका प्रस्तार सोलह के अंक को अधिक रखकर पंद्रह तक बतला आये हैं। वहां पर भी एक से लेकर पंद्रह तक की संख्या का आपस में जोड़ देने पर जितनी संख्या आवे उसका चार से गुणा करे और गुणित संख्या में जो सोलह का अंक अधिक बतला आये हैं उसे जोड़ दें और जोड़ गुणा करने पर जितनी संख्या निकले उतने इस व्रत में उपवास समझने चाहिए और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिए अर्थात् एक से पंद्रह तक जोड़ने पर एकसौबीस होते हैं। एकसौबीस का चार से गुणा करने पर (१२० × ४ = ४८०) चारसौ अस्सी होते हैं और इनमें जो सोलह अधिक बतला आये हैं उन्हें मिला देने से चारसौ छियानबे हो जाते हैं। सो चारसौ छियानबे तो इस व्रत में उपवास होते हैं और स्थान इकसठ हैं इसलिये पारणा इकसठ होती हैं। इस क्रम से जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडित की उपवास और पारणाओं की संख्या जाननी चाहिए। जो मनुष्य इस परमपावन सिंहनिष्क्रीडित व्रत का आचरण करता है उसे वज्रवृषभ नाराचसंहनन को प्राप्ति होती है, अनन्त पराक्रम का धारक हो, सिंह के समान वह निर्भय हो जाता है और शीघ्र ही उसे अणिमा महिमा आदि ऋद्धियों की भी प्राप्ति हो जाती है।



नौ अध्याय

ऊ※ काव्यदतिशय ज्ञान साम्राज्य । श्रीकर वय्भव भद्र ॥ भू※ करवाद भूवलय सिद्धान्तके । ऊ काव्यदादियोळ् नमिपे ॥१॥
व※ शवा लोक अलोक भूवलयद । त्रस नाळियोळहोरगिरुव ॥ यश त※ नियाद ज्ञानद घनवदनाळ्व । रसवे मन्गळद प्राभ्रुतवे ॥२॥
म※ नदि प्रकाशवागुव सूर्यनो एम्ब । जिनदेवनन्तरदन ब※ वनुभव तावरेयग्र सिम्हद अग्र । वनुमेट्टदिरुव नाल्वेरळ ॥३॥
व※ तियोळु निन्दिह अथवा कुळितिर्प । स्थितिय त्रलयवरिय ल※ कके॥ अतिशय मवनुनाल्कर काव्यद। हितदक्षरदन्क ई'ऊ' ॥४॥
र※ सिकद बेवरिल्ल निजदेह निर्मल । होसदेहरक्त बिळिया गु※ तसमानवज्र ब्रुषभ नाराचद । यशदादि सम्हननात्ग ॥५॥
वश·सम चतुरस्रवेनिप ॥६॥ असमान देह सम्स्थान ॥७॥ यशद्अनुपमरूप कान्ति ॥८॥ रसग्रन्थ सम्पगेयन्द ॥९॥
यशद साविरदेन्टु चिन्ह ॥१०॥ यश बल वीर्य अनन्त ॥११॥ हस मित मधुर भाषणवु ॥१२॥ दशभेदवु स्वाभाविकवु ॥१३॥
वशविवु जननातिशयवु ॥१४॥ रसद हत्त् अन्कद चिन्हे ॥१५॥ विषहरदम्रुत शरीर ॥१६॥ कुसुमदग्रद जिन-देह ॥१७॥
ऋषिगळाराधिप देह ॥१८॥ जसवे महोन्नत देह ॥१९॥ रससिद्धि गादिय देह ॥२०॥ बिशमसमान् कद देह ॥२१॥
कुशदग्र बुद्धिर्धिदेह ॥२२॥ रसरत्न मूरात्म देह ॥२३॥ उसहादि महावीर देह ॥२४॥ यशविह काव्य भूवलय ॥२५॥
भू※ वलयवनेल्ल नाल्कु दिशेगळलि । कावुत नूरु योजनद । ठाव ण※ मुभिक्षतेयन्उन्टु माडुत । ताउ आकाशदे गमन ॥२६॥
ब※ रे हिम्सेय् अभाव उण्णद लिरुवन्थ । परिपरियुपसर्ग ध※ रिस॥ दिरुवनाल्दिशेमुखनेरळुबोळदलिह। परियन्दरेप्पेयनोट ॥२७॥
ल※ क्षण विद्येगळेल्लर ईशत्व । रक्षिप उग्गुर कोळदिह ॥ र※ क्षिसि कूदलु समनागिर्प्पुदु । रक्षेय हदिनेन्टु भाषे ॥२८॥
य※ शद लिपियन्क क्षुद्र एळ्न् अन्क । वश सम्ज्ञरिजीव आ※ वाव॥ यशदन्काक्षर अक्ष भाषामय । वशभव्यर्ग्रुपदेशवीव॥२९॥
म※ नद असखलित स्वभावद अनुपम । वनधिघोषद दिव्य त र※ आद । जिनरदिव्यध्वनिमूरुसन्जगेबर्प । धनद्ओम्बत्सुहूर्तगळु॥३०॥
जनिसदु तुटियळाटदलि ॥३१॥ जनिसे सल्लुगळाट रहित ॥३२॥ घन तालु ओष्ट बेकिल्ल ॥३३॥ जनकेल्ल ओम्दे समयदि ॥३४॥
जिननुपदेशवागुवुदु ॥३५॥ घन ओम्दु योजन हरिदुम् ॥३६॥ गणधर परश्नेगुत्तरवे ॥३७॥ जिनवाणि बेकागे बहुदु ॥३८॥
मनुज चक्रियप्रश्नेयन्ते ॥३९॥ जिनवाणि युत्तर बहुदु ॥४०॥ कोनेमोदलन्नु तुळुवुदु ॥४१॥ घनद्रव्य आरम् पेळुवुदु ॥४२॥
घन तत्व एळर कथन ॥४३॥ दनुभव नववस्तु कथन ॥४४॥ तनि ऐद् अस्थिकायगळम् ॥४५॥ घन हेतुगळिम् पेळुवुदु ॥४६॥
जिन दिव्यध्वनि सार ॥४७॥ कोनेय प्रमाण भूवलय ॥४८॥
ति※ रेयोळाश्चर्यद हत्ओमद् अरतिशय वेरसिद जिन देव य※ शद॥ परियुकेवलज्ञानवागलुबरुवुदु । अरुहगे घातिय क्षयदि ॥४९॥
य※ वेय काळिन अष्टकर्मवु निलदिरे । सवेयदलिह अनुभव म※ । अवतारदनिशयहन्ओम्दर् अन्ककके । सवि घातिक्षयजातिशय ॥५०॥
र※ सदात्मनेनुवरहन्त पप प्राप्त । यशदिव्यात् मनन न※ ता॥ वश गुणसम्रुद्धनाद तेजोनिधि । रससिद्धिगादिय वस्तु ॥५१॥
ण※ वकार मन्तरद मूरुमूरलोम्बत्त । रवरलि गुणाकार च क※ षु॥ विवरदद्रुष्टिभेदगळनुतिळिदिह । नवकारदतिशय वस्तु ॥५२॥
३×३ = ९ जवननोडिप दिव्य चक्षु ॥५३॥ नवकारकादिय वस्तु ॥५४॥ सुविशाल जगद साम्राज्य ॥५५॥
नवनवोदित दिव्य ज्योति ॥५६॥ कविगे सिक्कद दिव्य रूप ॥५७॥ अवयव सुपवित्र पूतम् ॥५८॥

जवमृजव हरणद रूपु ॥५९॥ सुविशाल दिव्यवय् भवु ॥६०॥ गवसणिगेयळिद बेह ॥६१॥
सविवचनाम् रुत शरधि ॥६२॥ नवपद भक्तिय शुद्धि ॥६३॥ नवपद भक्तिय सिद्धि ॥६४॥
नवपद ज्ञानद शक्ति ॥६५॥ नवदमृक सिद्धि चारित्र्य ॥६६॥ अवसर्पिणियादि रूपु ॥६७॥
अवसर्पिणिय भव्यानृक ॥६८॥ नवदेरडने भागदनृक ॥६९॥ भवहर सिद्ध भूवलय ॥७०॥

सु※ रक्रुतर्हदिमूर् अतिशय काव्यदे । सिरि जिन महिमेगळर षु※ तिरुवल्लिमोदलिगेसनुख्यातयोजन । दिरुववनगळ वृरुक्षदोळु ॥७१॥
द्※ रुशिसल्अल्लि एलेयु हूवु हणगळउ । बरुवुवसमयदोळा ना※ परियतिशय ओमृदु मरळुमुळिळल्लद । धरेयोळु चलिसुव पवन ॥७२॥
धे※ नुवुहोक्कनृते सुखदायकवु । एनेमृबे एरडनेय महा ॥ ताना ग※ तवायु परिवुदु मूरने । तानुवय्रव बिट्टु जीवर् ॥७३॥
ण※ व नवोदित दिव्य प्रेमदिनृदिरुवरु नवरत्न केतृतिद ह※ सेय ॥ सुविशाल दर्पणदनृते होळेवनेल । दवनियु नाल्कनेयनृक ॥७४॥
दवनिय समवसरणवु ॥७५॥ कविगे नाल्कनेयतिशयवु ॥७६॥ नवरनृकणनेलेकट्टु ॥७७॥ दवनमोल्लेय चित्रदच्चु ॥७८॥
सवि गनृध माधव हूवु ॥७९॥ नवगनृध माधव बळ्ळि ॥८०॥ सुविशाल चित्रवल्लियदु ॥८१॥ नव समृपगे पडियच्चु ॥८२॥
नव गनृधराज बळ्ळिगळ ॥८३॥ अवयव कमल जातिगळ ॥८४॥ नवसणिगेय चित्रदच्चु ॥८५॥ नव कामकस्तुरि झल्लि ॥८६॥
विविध चेनृगणजिल वेला ॥८७॥ नवमालती मुडिवाळ ॥८८॥ नव पगडेय बनृधूक ॥८९॥ छवि ताळेयवतार चित्र ॥९०॥
भूविय पादरिय नामद हू ॥९१॥ दवनिय रेखेयनृतिहुदु ॥९२॥ दवनिय काव्य मूवलय ॥९३॥

ण※ व सुगनृधद पनृनीरिन मळेयनु । अवनिगे सुरिसुत सवन ॥ स्※ विजलवृरुष्टिय देवेनृद्र नाग्नेयिस् । भुविगे सुरिव मेघकुवर ॥९४॥
म※ ळेयु ऐदागे देवरु विक्रियेयिनृद । फल भार्अनमृरद शालि ॥ ति※ ळियाद पय्रनु हरडुवुद् आरअनृक । विविधजेवरनित्य सवृख्य ॥९५॥
मृ※ रेयबारद एळु देवर्विक्रियेयिनृद । सर तर्णपिन् वृआयु य※ शव॥ आरनिगेबीसुवुद्एनृट्अनृककेरेभावि। सिरिशुद्धजलपूर्णनवम ९६
सि※ डिलु कार्मोडउल्कापातविल्ल । विडियाद आकाशदशम ॥ वड ति※ यागिरे सर्व जीवर्गे रोगादि । भिडेयिल्लविहुदु हनृओमृदु ॥९७॥
गडिय दाटिहरु हरषवलि ॥९८॥ जडतेयनळिदिहरल्लि ॥९९॥ फडेगळिळ्लद निरामयरु ॥१००॥ गडिगळळिदु बाळुवरु ॥१०१॥
मृरुढ बाधेयळिदिहरेल्ल ॥१०२॥ एडरुगळळिवरु एल्ल ॥१०३॥ ओडवेगळळिवरु जनरु ॥१०४॥ कडवनु कळेदु कोळ्ळुवरु ॥१०५॥
जडतेयनळिदु बाळुवरु ॥१०६॥ झडतिय नळियदिहरेल्ल ॥१०७॥ तोडरुगळळिवरु जनरु ॥१०८॥ तडेगळिल्लदे सुखविहरु ॥१०९॥
सडगरवेनिल्लवल्लि ॥११०॥ कुडुकेगळळिदिहरळ्लि ॥१११॥ नडे मुडियलिदु बाळुवरु ॥११२॥ पडिगळ बाधेयल्लिळ्ल ॥११३॥
बडतनवेनिळ्ळवळ्लि ॥११४॥ मडिगळिळ्लदे बालुवरु ॥११५॥ यडरळिविहरु नोडळ्लि ॥११६॥ षडक्षरवलिद भूवलय ॥११७॥

ऊ※ नवळिद तेजवतिशय रत्न । काणुव बेळकिनुज्वलद ॥ ताण व्※ अमृधरिसिद धर्म चक्रवुनाल्कु ॥ आनन्दादम् यक्षेन्द्ररुगळ् ॥११८॥
णा※ णाविधदलनृकारव धरिसिह । जानपदद तेरदिन्द ॥ आनद रु※ चियदुहनृएरड् अनृकवु तानु मूवत्एरळ् विशेयोळ् ॥११९॥
ह※ रडिद एळेळु पन्कतिये हदिमूरु । बरे स्वर्ण कमलद ष※ रधि ॥ विरचितपादपीठवुहदिनाल्कवु । सरिपूजेवस्तुहुण्णमेयु ॥१२०॥
मृ※ न पादपीठ पूजाद्रव्य एरळ् पोगे । जिनर मूवत्नाल्कु शु भ※ द ॥ घनवादतिशयगळनेल्ल पेळुव । विनयावतारि यावनिह ॥१२१॥
जनरु भूतलदोळगिल्ल ॥१२२॥ जनरु भूतलदोळेल्लिहरु ॥१२३॥ सनुनय वादियारिहनु ॥१२४॥ जिन मार्गलक्षण धर्म ॥१२५॥

जनर कन्टक हरणान्क ॥१२६॥ घन भद्र मन्गल रूप ॥१२७॥ जिन शिव भद्र कय्लास ॥१२८॥ जिन विष्णु भवन वय्कुन्ठ ॥१२९॥
विनय सत्यद ब्रम्ह्लोक ॥१३०॥ जनतेय सर्वार्थ सिद्धि ॥१३१॥ जनरिगे सर्वान्क सिद्धि ॥१३२॥ इन चन्द्र कोटिय किरण ॥१३३॥
कनक रत्नगळ मेल्कट्टु ॥१३४॥ घन रस सिद्धिय मणियु ॥१३५॥ कुनय विनाशक मणियु ॥१३६॥ केनेवालन्तिह शुद्ध स्वर्ण ॥१३७॥
कोनेगात्म सिद्धिय नेलनु ॥१३८॥ तनय तनुजेयर त्याग ॥१३९॥ दनुज किन्नर शिल्प काव्य ॥१४०॥ घनपुण्यभवन भूवलय॥१४१॥

भ❋ वनामर व्यन्तरद ज्योतिष्कर। नव नव कल्पद सिरि वी❋ रवन भक्तरु जयध्वनियिन्द पाडुव सुविशाल कलरवरुतिय ॥१४२॥
व्❋ रदमन्गलद प्राम्रुतद महा काव्य। सरणियोळ् सिरि वी र❋ सेन॥ गुरुगळमतिज्ञानदरिविगे सिलुकिह। अरहंतकेवलज्ञान ॥१४३॥
व❋ शवागे मूवत्नाल्कउगळतिशय । ऋषि मार्ग धर्मव धरि से❋ असद्रुशवाद त्रय्लोकाग्र सिद्धियु वशवागलेमगेम्ब ज्ञान ॥१४४॥
ज❋ निसलु सिरि वीरसेनर शिष्यन। घनवादकाव्यद कथेय ॥ जि न्❋ असेन गुरुगळ तनुविन जन्मद । घनपुण्यवर्धन वस्तु ॥१४५॥
ण❋ णा जनपदवेल्लदरोळु धर्म। तानु क्षीणिसि मर्पाग ॥ तान् आ❋ ल्लि मान्यखेटद दोरे जिन भक्त। तानु अमोघवर्षांक ॥१४६॥
ण❋ व पद भक्तियिम् जन पदवेल्लवु। तव निधियागिसिर्दाग म्❋ अवर भव्यत्वद आसन्नतेयिन्द । नवदन्क मूर्तियादन्ते ॥१४७॥

सविवर मतिज्ञान धरनु॥१४८॥ अवनिय ज्ञान सम्प्राप्ति ॥१४९॥ भुवियतिशयद सव्भाग्य ॥१५०॥
नवविध ब्रह्मवनरिव ॥१५१॥ अवर पालिसुव सद्गुरुव् ॥१५२॥ सुविशाल कीर्तिय देह ॥१५३॥
नवनवोदित शुद्ध जयद ॥१५४॥ अवतारदाशा वसविय ॥१५५॥ भुवि कीर्तियह सेनगणदि ॥१५६॥
अवतरिसिदज्ञातवम्शि ॥१५७॥ अवन गोत्रवदु सद्धर्म ॥१५८॥ अवन सूत्रवु श्री व्रुषभ ॥१५९॥
अवन शाखेयु द्रव्यान्ग ॥१६०॥ अवन वम्शवदु इक्ष्वाकु ॥१६१॥ अवनेल्ल त्यजसिद सेन ॥१६२॥
नव गण गच्छव सारि ॥१६३॥ नव भारतदोळु हरिसि ॥१६४॥ सविय कर्माटक दोरेगे ॥१६५॥
विवरदोळ् कर्मव पेळ्द ॥१६६॥ अवनन्क काव्य भूवलय ॥१६७॥ भुवन विक्ख्यात भूवलय ॥१६८॥

प❋ दविगळ् ऐदु सन्जनिसिद राजगे। सधवलद् आदिम् व्रुध् या❋ स्पदवागे एरडने जयधवलान्कद। वदिगे मूरने महा धवल ॥१६९॥
दी❋ नत्ववळिसुत जनतेय पालिप। भूनुत वर्धमानान्क ॥ आन म्❋ अजनतेय जयशोल धवलद। शाने पदवियदु नाल्कु ॥१७०॥
व❋ शवादतिशय धवल भूवलयद। यशवागे ऐदने अंक ॥ रस वि स्मयवाद विजयधवलविन्तु । यशद भूवलयद भरत ॥१७१॥
म्❋ हिय गेल्दन्कव वशगेय्द राजनु। वहिसिद दक्षिणद् भ र❋ त ॥ सिहिय खण्डदकर्माटकचक्रिय। महिये मण्डलवेसरान्तु ॥१७२॥

कहिय हिम्सेयनोडि सिद ॥१७३॥ गहनद् अहिम्सेय मेरेसि ॥१७४॥ वहिसिदणुव्रत ख्याति ॥१७५॥
इह सौख्य करवाद ख्याति ॥१७६॥ छह खण्ड वशशास्त्र ख्याति ॥१७७॥ महियतिशय स्वर्गवेसरिम् ॥१७८॥
इहवे स्वर्गवो एम्ब तेरदिम् ॥१७९॥ वहिसि अमोघवर्षन्रुप ॥१८०॥ नहि नहि नृपनेनुवन्ते ॥१८१॥
दहिसुत कर्माष्टकव ॥१८२॥ मह विश्व कर्माटकव ॥१८३॥ विहरिसुतिरुव सद्धर्म ॥१८४॥
सिहिय अहिम् सेय राज ॥१८५॥ इह पर सुखद सर्वस्व ॥१८६॥ सहकार धर्म साम्राज्य ॥१८७॥
इहवेल्ल सौभाग्य रूप ॥१८८॥ महावीर धर्म मान्गल्य ॥१८९॥ गुहेय तपश्चर्य सिद्ध ॥१९०॥

कुहक विनाशक राज्य ॥१९१॥ सुह शिव भद्र वर्भाळ ॥१९२॥ महा सिद्ध काव्य भूवलय ॥१९३॥
महावीर नडियिट्ट राज्य ॥१९४॥

वो❀ दिनोळन्तर्मुहूर्तदि सिद्धान्त । दादि अन्त्यवनेल चि❀ वृत॥ साधिपराज अमोघवर्षन गुरु । साधितश्रम सिद्ध काव्य ॥१९५॥
च्❀ रितेय सान्गत्यवेने मुनि नाथर । गुरुपरम्परेय विरचि त❀ सिरि वीरसेन सम्पादित सद्ग्रन्थ । विरचितवाचक काव्य ॥१९६॥
छा❀ येयोळ् आचार्यनुसुरिद वाणिय । दायवनरियुत नानु॥ आय म्❀ न्गल पाहुडद क्रमान्कद । दायदि कुमुदेन्दु मुनि ॥१९७॥
मि❀ गिलादतिशयदेळ्नूर हदिनेन्दु । अगणितदक्षर भाषे ॥ श्❀ गणादि पद्धति सोगसिनिम् रचिसिहे मिगुव भाषेयु होरगिल्ल ॥१९८॥

सोगसाथ कर्माटदादि ॥१९९॥ सुगुण सम्पूर्णान्ग भाषे ॥२००॥ बगेयतिशय शुद्ध काव्य ॥२०१॥
जगदोळिन्निल्लद भाषे ॥२०२॥ अगणित जीवर भाषे ॥२०३॥ बिगिदिह सब्दरियन्क ॥२०४॥
सोगवीव श्री चक्रबन्ध ॥२०५॥ बगे बगेयतिशय बन्ध ॥२०६॥ मृरुग पक्षि भाषेय भन्ग ॥२०७॥
दिगिलळिदिह स्वर्ग बन्ध ॥२०८॥ अगणित गणित अनन्त ॥२०९॥ जगवेल्ल बिगिदिह भन्ग ॥२१०॥
मिगवु मानवनप्प भंग ॥२११॥ खगवु स्वर्ग्गके पोप भंग ॥२१२॥ जगवेल्ल सिद्ध भूवलय ॥२१३॥
युग परिवर्तनदन्ग ॥२१४॥

ति❀ रेय जीवरनेल्ल पालिप जिन धर्म । नर पालिसुवुद्ए न री❀ दे॥ गुरु धर्मदाचारवनु भीरदिह राज । धरेय पाळिवुदेनरिदे ॥२१५॥
लो❀ कद त्रस नालियोळगिह जीवर । साकुव जैन धर्म विहदु ॥ शो❀ करवेने सर्व लक्षण परिपूर्ण । नाक मोक्षव नीयुवुदु ॥२१६॥
य❀ श कर्मदुदयव तन्दीव जिन धर्म । रसेगे सौभाग्यवनित् ता❀ यशकाय जीवर शोकव हरिसुत । रससिद्धियन्तागिपुदु ॥२१७॥

विषहर गारुड मणिय ॥२१८॥ असद्रुश ज्ञान साम्राज्य ॥२१९॥ दिशेयन्तवदनु काणिपुदु ॥२२०॥
उसह सेनरनु तोरुवुदु ॥२२१॥ असमान सान्गत्य वहुदु ॥२२२॥ कुसुमायुध तापहरवु ॥२२३॥
कसद कर्मद तोलगिपुदु ॥२२४॥ विसमान्कवनु भागिपुदु ॥२२५॥ सुषम कालवनु तोरुवुदु ॥२२६॥
वशदात्म सिद्धि भूवलय ॥२२७॥

भू❀ तबल्याचार्य नवन भूवलयद् । अख्यातिय वैभव भद् र❀ नूतन प्राक्तन वेरडर सन्धिय । ख्यातिय सारुव सूत्र ॥२२८॥
व❀ र भूतबलि नामवदनतिशेयवेन् । दोरेवाग अतिशयवेनु ॥ ह❀ रुष वर्धनवाद भारत देशद । गुरु परम्परेयाद राज्य ॥२२९॥
ल❀ वण वारिधियदु बळसुत बन्दिरे । सविय श्वर्धमान पुर ॥ सा❀ विर पुरद नाडाद सौराष्ट्रद । ई विश्व कर्माट देश ॥२३०॥
अवरोळु मागधदन्ते ॥२३१॥ सवि विसिनीरिन बुग्गे ॥२३२॥ अवितिहुददरोळु रसवु ॥२३३॥ अवरुपयोगवु मुन्दे ॥२३४॥
य❀ शवदु भारत तृरिकळिन्गवेनिसिद । रसेयेल्ल कन्नाडद व❀ वशगेय्दन्तर हदिनय्दु साविर । दिशेगे नूररवत्तेन्टून ॥२३५॥
म्❀ नद 'अ' काव्यदोळेन्दु नाल्कोळिन् । टेनुवाग बन्दन्कव धा❀ जिनरूपिनाशेय कोनेगे ओम्बत्तन्क । एनुवष्टु (जिनर भूवलय)
महाप्रातिहार्य ॥२३६॥

ऊ ८, ७४८+अन्तर १४, ८३२=२३, ५८०। अथवा अ---उ ग, ५२, ४४२+२३,५८०=१, ७६, ०२२।

नौवां अध्याय

'ऊ' तो नवम् अंक है। इसमें अतिशय ज्ञान भरा होने से ज्ञान साम्राज्य-काव्य भी कहते हैं। अनेक वैभवों को मङ्गलरूप से प्राप्त करने वाला पृथ्वी रूप पर्याय धारण करनेवाला और आत्मा का स्वरूप दिखाने वाले इस भूवलय के सिद्धान्त काव्य को आदि में नमस्कार करता हूं ॥१॥

'भूवलय' के दो अर्थ हैं एक समस्त पृथ्वी और दूसरा आत्मा। समस्त पृथ्वी को भूलोक कहते हैं। लोक के बाहर अलोक को भी पृथ्वी ही कहते हैं। यह लोक त्रसनाली के अन्दर और बाहर रहता है। उन सबको जाननेवाला ज्ञान ही है। आत्मा ज्ञान घनस्वरूप है। ज्ञान का रस ही मंगल प्राभृत रूपी इस भूवलय का प्रथम खण्ड है ॥२॥

सूर्य तो बाहर प्रकाश करता है और मन के अन्दर जो प्रकाश होता है वह ज्ञान-सूर्य है। उस ज्ञान-सूर्य में जिनेन्द्र देव की स्थापना करनी चाहिए। जैसे जिनेन्द्र देव समवशरण में सिंहासन के ऊपर रहने वाले १००८ दल वाले कमल के ऊपर चार अंगुल अधर में स्पर्श नहीं करते हुए कायोत्सर्ग में खड़ा हुआ अथवा पल्यंकासन में बैठा हुआ ऐसे जिनेन्द्र देव की मन में स्थापना करनी चाहिए। जब जिनेन्द्र देव जी की स्थापना मन में होती है उस समय उनका पवित्र ज्ञान भी हमारे अज्ञान-तिमिर को नष्ट करता रहता है। उस जिनेन्द्र भगवान में ३४ अतिशय रहते हैं। अष्टमहाप्रातिहार्य के स्वरूप को पहले कह चुके हैं। अब ३४ अतिशय का वर्णन करने वाला यह "ऊ" अध्याय है।३-४।

कर्मोदय से दुर्गन्धरूपी पसीना शरीर से निकलता है। घातिया कर्मक्षय में यह पसीना आना भगवान का बन्द हो गया। इसलिए भगवान का परमोदारिक दिव्य शरीर निर्मल है। उस परमोदारिक शरीर में बहने वाला रक्त हमारे शरीर की भांति लाल नहीं है बल्कि उस रक्त का रङ्ग सफेद है। यह शुक्ल ध्यान की अन्तिम दिशा का द्योतक है। हड्डी की रचना में अनेक नमूने हैं। सबसे पहले की उत्तम हड्डी की रचना को वज्रवृषभ नाराचसंहनन कहते हैं। जोड़, आदि वज्र से बने रहने के कारण इसको वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं। यह वज्रवृषभ नाराच संहनन उसी भव में मोक्ष को जाने वाले प्राणी को होता है अन्य को नहीं। किसी तीक्ष्ण तलवार से आघात करने पर भी यह वज्रवृषभ नाराच संहनन से बना शरीर नष्ट नहीं होता है। दृष्टांत के लिए भगवान बाहुबली देव का शरीर लीजिए। जब भरत चक्रवर्ती ने अद्भुत शक्ति मान चक्र रत्न को रणभूमि में भगवान बाहुबलि पर छोड़ा तो वह चक्र कुछ नहीं कर सका, क्योंकि बाहुबलि जी का शरीर वज्रवृषभ नाराच संहनन से बनाया हुआ था। यहां अतिशय जन्म से ही था ॥५॥

संस्थान अर्थात् शरीर की रचना को कहते हैं। संस्थान भी विभिन्न हैं। इनमें प्रथम समचतुरस्र संस्थान है। शिल्प शास्त्रानुसार समस्त लक्षण से परिपूर्ण अङ्ग रचना को समचतुरस्र संस्थान कहते हैं, अर्थात् प्रत्येक अङ्ग की लम्बाई चौड़ाई की समानता होने को समचतुरस्र संस्थान कहते हैं। इसके दृष्टान्त के लिएदक्षिण में श्रवण बेलगोल में रहने वाली बाहुबलि स्वामी की विशालकाय मूर्ति ही है। ऐसा शिल्पशास्त्र से बना हुआ होने से भगवान का रूप वर्णनातीत है और अतिशय कांति वाला है। उनकी नाक चम्पे के पुष्प के समान है। श्रीमद् स्वस्तिका नन्द्यावर्ता आदि १००८ शुभ चिन्ह भगवान के शरीर में दीख पड़ते हैं। और भगवान में अनन्त बल तथा वीर्य रहता है। अनन्त बल अर्थात् चौदह रज्जु परिमित जगत को आगे पीछे हिलाने की शक्ति रहती है। लेकिन हिलाते नहीं। हिलाते रहें तो भगवान बच्चे के खेल खेलते हैं ऐसा कहने लगें ।६ से ११ तक।

भगवान हमारी तरह मुंह खोलकर जीभ हिलाते हुए दांतों का सहारा लिए वचन प्रयोग नहीं करते हैं। अपने सर्वांग से ही ये भाषण करते हैं। वह वचन बहुत सुन्दर होते हैं। जितनी बात करनी चाहिए उतनी ही करते हैं अधिक नहीं। वह भाषा मधुर होता है। यह दस भेद–(१) पसीना नहीं रहना [२] रक्त सफेद होना (३) वज्रवृषभ नाराच संहनन [४] समचतुरस्र संस्थान, [५] अनुपम रूप [६] चम्पा पुष्प के समान नासिका [७] १००८ शुभ चिन्ह, (८) अनन्त बल [९] अनन्त वीर्य [१०] मधुर भाषण भगवान में जन्म सिद्ध हैं तथा स्वाभाविक हैं। इसको जननातिशय कहते हैं।

इन दस अतिश्यों को ध्यान में रखते हुए भगवान के दर्शनकरना भगवान के जन्मातिशय का दर्शन करना है। भाव शुद्धि से यदि दर्शन करें तो शरीर में रहने वाले रोग नष्ट हो जाते हैं। १००८ पंखुड़ियों के अग्रभाग में रहने वाले जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से अपने शरीर में भी वह स्थिति प्राप्त होती है। महर्षि इस प्रकार दस अतिशयों से युक्त जिनेन्द्र भगवान की उपासना करते हैं। शरीर की ऊंचाई की अपेक्षा न रखते हुए महिमा की अपेक्षा से महोन्नत शरीर वाले भगवान की पूजा करते हैं। जब इस रीति से जिनेन्द्र भगवान को अपने मन में धारण करके प्रसन्नता से व्यावहारिक कार्य करें तो कार्य की सिद्धि होती है। इतना ही नहीं बल्कि पारा [एक धातु] की सिद्धि भी हो जाती है। भगवान के शरीर की इस दस विधि अतिशय को गुणन क्रम से सम और विषमांक को लेकर गिनती करते जायं तो परमोत्कृष्ट (**Higher Mathe matics**) गणित शास्त्र का ज्ञान भी हो जाता है उपरोक्त रीति से भगवान की आराधना करें तो बुद्धि ऋद्धि की कुशाग्रता भी प्राप्त होती है। ।६ से २२ तक।

अध्यात्म रस परिपूर्ण रत्नत्रयात्मक यह देह है।२३।

यही वृषभादि महावीर पर्यन्त तीर्थंकरों की देह है।२४।

ऐसा विशालकाय यह भूवलय ग्रन्थ है।२५।

एकसो योजन तक सुभिक्ष होकर उतने ही क्षेत्र में होनेवाले जीवों की रक्षा होती है। भगवान का समवशरण आकाश में अधर गमन करता है। ।२६।

हिंसा का अभाव, भोजन नहीं करना, उपसर्ग नहीं होना, एक मुख होकर भी चार मुख दीखना, आंखों की पलक नहीं लगना।२७।

समस्त विद्या के अधिपति, नाखून नहीं बढ़ना, बाल जैसा का वैसा ही रहना अर्थात् बढ़ना नहीं तथा अठारह महाभाषा ये भगवान के होती हैं।२८।

इसके अतिरिक्त सातसो छोटी भाषायें और सइनी जीवों के अंकों से मिश्रित अक्ष भाषायें और भव्यजनों सम्पूर्ण जीवों को उन्हीं के हितार्थ विविध भाषाओं में एक साथ उपदेश देने की शक्ति भगवान में विद्यमान रहती है।२९।

संसारी जीवों के मन को आकर्षित करने की शक्ति तथा, समुद्र की लहरों में उठने वाले शब्द के समान भगवान की निकलने वाली दिव्य ध्वनि है। यह दिव्यध्वनि प्रातः, मध्यान, शाम को इस प्रकार तीन संध्या समय में निकलती हैं। और यह दिव्यध्वनि ९ महूर्त प्रमाण तक रहती है। इसके अतिरिक्त यदि कोई भव्य पुण्यात्मा जीव प्रश्न पूछता है तो उनके प्रश्न के अनुकूल ध्वनि निकलती है।३०।

संसारी जीवों की जब ध्वनि निकलती है तब तो होठ के सहारे निकलती है। परन्तु भगवान को दिव्य ध्वनि इन्द्रियादि होंठ से रहित निकलती है।३१।

भगवान की दिव्यध्वनि दांत से रहित होकर निकलती है।३२।

भगवान की दिव्य ध्वनि तालू से रहित होकर निकलती है।३३।

अनेक भव्य जीवों को एक समय में ही जिनेन्द्र देव सभी को एक साथ उपदेशपान कराते हैं।३४-३५।

एक योजन की दूरी पर बैठे हुए समस्त जीवों को भगवान की दिव्य वाणी सुनाई देती है।३६।

शेष समय में गणधर देव के प्रश्न के अनुसार उत्तर रूप दिव्य ध्वनि निकलती है।३७।

इस प्रकार से भगवान की अमृतमय वाणी जब चाहें तब भव्य जीवों को सुनाई देती है।३८।

मानव में जो इन्द्र के समान चक्रवर्ती हैं उन चक्रवर्ती के प्रश्न के अनुसार उत्तर मिल जाता है।३९-४०।

आदि से लेकर अन्त तक समस्त विषयों को कहनेवाली यह दिव्य ध्वनि है।४१।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ द्रव्य हैं। ये ६ द्रव्य जिस जगह रहते हैं उसको लोक कहते हैं। दिव्य ध्वनि इन सम्पूर्ण ६ द्रव्यों के स्वरूप का विस्तार पूर्वक वर्णन करती है।४२।

जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

भगवान की दिव्य वाणी इन सात तत्वों का वर्णन करती हैं ।४३।

सात तत्त्वों में पुण्य और पाप को मिलाने से ९ तत्त्व होते हैं । भगवान की दिव्य वाणी उन ९ तत्त्वों का वर्णन करती है ।४४।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये पांच पंचास्त काय का भी वर्णन करती है ।४५।

इन सबको प्रमाण रूप से बतलाने के समय सुन्दर २ मार्मिक तत्व का वर्णन करती है ।४६।

जिनेन्द्र भगवान की दिव्य ध्वनि से ही यह दिव्य वाणी निकलती है अन्य के सहारे से नहीं ।४७।

यह दिव्य वाणी भगवान जिनेन्द्र देव की वाणी द्वारा निकलने के कारण अन्तिम प्रमाण रूप भूवलय शास्त्र है ।४८।

उपर्युक्त समस्त दस अविराम दुनिया को आश्चर्य चकित करने वाली हैं । अरहंत भगवान को घाति कर्मके (ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनी, अन्तराय) नाश होने से केवल ज्ञान की उत्पत्ति होती है और केवल ज्ञानके साथ ही इन दस अतिशयों के उत्पन्न होने से इसका नाम घाति क्षय और जाति क्षय भी है ।४९।।

जो क्षेत्र में भी कर्म रह गये तो यह अतिशय आत्मा को नहीं मिलता। ये आठ कर्म निर्मूल करने के मार्ग हैं और इसलिए इसका नाम घाति क्षय, और जाति क्षय पड़ा ।५०।

जीव को जब अरहंत पद प्राप्त होता है तब अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख इत्यादि अनन्त गुण प्राप्त हो जाते हैं। उन अनन्त गुणों से, आत्मा करोड़ों चन्द्र सूर्य प्रकाश जैसा तेजोनिधि हो जाता है। ऐसे अरहंत भगवान की पूजा करते हुये पारा की सिद्धि करने का प्रयत्न करना श्रेयस्कर है ।५१।

नवकार मंत्र के आदिमें तीन अंक हैं, तीन को तीन से गुणा कर दिये तो विश्व का समस्त अङ्क नौ आ जाता है । नौ का परिज्ञान ही दिव्य चक्षु है, और नौ अङ्क का विवरण करने से ही विश्व का समस्त दृष्टि भेद अर्थात् तीन सौ त्रेपठ धर्म का और उनमें रहने वाले भेद और अभेद का ज्ञान हो जाता है। अर्थात् अरहंत सिद्धादि नव पद का अतिशय वस्तु रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ।५२।

३×३ = ९ यह अतिशय से युक्त दिव्य चक्षु का प्रभा से यम धर्मराज (मृत्यु) भाग जाता है ।५३।

यह वस्तु नामक ज्ञान चक्षु अरहंत सिद्धादि नवकार मन्त्र का आदि मन्त्र है ।५४।

ज्ञानियों के अन्तर्गत ज्ञानरूपी विश्व का साम्राज्य यह भूवलय है ।५५

ज्ञानियों के ज्ञान में झलकने वाली नव नवोदित दिव्य ज्योति रूप यह महा काव्य है ।५६।

कवियों की कल्पना में न आनेवाला दिव्य रूप यह काव्य है ।५७।

इस ग्रन्थ का सर्वावियव अर्थात् सभी भाषाओं का ग्रन्थ परम पवित्र है ।५८।

यह सभी भाषाओं का ग्रन्थ संसारापहरण का मुख्य मार्ग है ।५९।

समवशरणादि महावैभव को दिखलाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।६०।

यह भूवलय ग्रन्थ दिगम्बर मुनियों के समान निरावरण है ।६१।

यह काव्य मिष्ट वचन रूपी जल बिन्दु से भरा हुआ ज्ञान का सागर है ।६२।

यह काव्य नव पद भक्ति को शुद्ध करनेवाला है ।६३।

यह भूवलय ग्रन्थ नव पद भक्ति द्वारा प्राप्त होने वाले फल को देने वाला हैं ।६४

नव पद के ज्ञान से समस्त भूवलय का ज्ञान आ जाता है ।६५।

नव अंक की सम्पूर्ण सिद्धि ही चारित्र की सिद्धि है ।६६।

यह भूवलय ग्रन्थ अवसर्पिणी काल के समस्त विषयों को दिखाता है ।६७।

यह काव्य अवसर्पिणी काल का सर्वोत्कृष्ट भव्यांक रूपी है ।६८।

इस काव्य के अध्ययन से गणित शास्त्र का मर्म मालूम होकर ९ अङ्क २ अङ्क से विभाजित हो जाता है ।६९।

इस रीति से समस्त विद्याओं को प्रदान करके अन्त में भव विनाश करके सिद्धि पद को देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।७०।

देव गण भगवान् के १३ अतिशयों को करते हैं। उसमें पहले के अतिशय संख्यात योजन तक रहने वाले सभी जंगली वृक्षों में पत्ते, पुष्प, फल आदि एक ही समय में लग जाते हैं और उतनी दूर तक एक भी कांटा तथा कण मात्र रेत का संचार न हो, ऐसी हवा चलने लगती है।

कामधेनु के द्वारा अपने घर के आंगन में अनेक सामान को प्राप्ति तथा पवन कुमार द्वारा चलने वाली अत्यन्त सुखकारक और आनन्ददायक हवा का चलना दूसरा अतिशय है।

समवसरण में सिंह, हाथी, गाय, पक्षी, सर्प इत्यादि ने अपने परस्पर वैर को छोड़कर जैसे एक ही जगह में रहते हैं वैसे अपने कुटुम्ब इत्यादिक जन वैर-रहित आपस में प्रेम से अपने-अपने स्थान में रहना तीसरा अतिशय है।

जैसे विवाह मंडप के बीच वर वधू को बिठाने के लिए नव रत्न से निर्मित वेदिका तैयार की जाती है उसी तरह स्फटिक मणि के प्रकाश के समान चमकने वाली यह भूमि चौथा अतिशय है। समवशरण में रहने वाला यह चौथा अतिशय कवि लोगों के द्वारा भी अवर्णनीय है।७१-७६।

उस भूमि के अतिशय को पांच पांच हाथ के नौ पार्ट के विभाग तक किया गया है।

अन्तर श्लोक का विवेचन—उपर्युक्त ९ भागों का विवेचन शिल्पशास्त्र और ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। शिल्प शास्त्र के विद्वानों का कथन है कि ऊपर के नियम से ही मठ, मन्दिर तथा महल मकान आदि बनाना चाहिये; क्योंकि यदि ऐसा न होकर कदाचित् अग्नि कोड़ में मकान एक इंच भी शास्त्रोक्त नियम से अधिक हो जाय तो गृह एवं गृह स्वामी दोनों के लिए अनिष्ट होता है। इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्रानुसार भली भांति शोधकर भवन निर्माण किया जाय तब तो ठीक है किन्तु यदि ऐसा न करके सूर्य चन्द्रादि नव-ग्रहों के विपरीत स्थान में बनाया जाय तो वह भी महान कष्टदायक होता है।७७।

वन वाटिका में दवन, जुही, मालती (मोल्ले) आदि सुगंधित पुष्पों के समूह रहते हैं।७८।

इसी प्रकार गन्ध माधव (गन्ध मादन) पुष्प भी उस पुष्प वाटिका में रहता है।७९।

इसी भांति नव जात गंध माधव लता भी वहां रहती है।८०।

वहां पर सुविशाल रूप से फैली हुई चित्रवल्ली नामक बेला भी रहती है।८१।

विवेचन:—श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस चित्रवल्ली नामक लता का वर्णन श्री भूवलयान्तर्गत चतुर्थ खण्ड में विस्तृत रूप से किया है और उसके संस्कृत विभाग में आया है कि—

नमः श्री वर्धमानाय विश्व विद्याऽवभासिने।
चित्रवल्ली कथाख्यानं पूज्यपादेन भासितम॥

विश्व विद्या के प्रकाशक श्री वर्धमान भगवान् को नमस्कार करके श्री पूज्य पाद स्वामी ने चित्रवल्ली का व्याख्यान किया है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने सूचित किया है कि इसी प्रकार मंगल प्राभृत के समस्त विषयों को सभी जगह जानना चाहिये।

समवशरण के अन्तर्गत पुष्प वाटिका भित्ती के ऊपर चम्पा पुष्प का भी वर्णन किया गया है।

नोट—इस चम्पक पुष्प के विषय में श्री समन्तभद्राचार्य ने बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।८२।

इसी प्रकार गन्धराज [सुगन्ध राज] का मेला भी वहां चित्रित है।८३।

कमल पुष्प के जल कमल, थल कमल आदि अनेक भेद हैं। उन सबका चित्र समवशरण में चित्रित है।८४।

वहां पर समस्त पुष्पों की कली चित्रित रहती है।८५।

कामकस्तूरी की टोकरी भी वहां बनी रहती है।८६।

उस वाटिका में कर्नेल के श्वेत और रक्त वर्ण के पुष्प बने रहते हैं।८७।

वहां पर नव मालती और मुड़िवाल् भी भित्तिका में चित्रित हैं।८८।

पाशा खेल में प्रयुक्त बन्धूक, ताड़ वृक्ष के चित्र तथा केतकी पुष्प,

भूपादरी आदि पुष्पों का समूह पृथ्वी के ऊपर अक्ष रेखा के समान प्रतीत होता है। इस समवशरण का वर्णन करने वाला यह भूवलय है ।८९-९३।

विवेचन—भूवलय के चतुर्थ खण्ड में श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने श्री समन्त भद्राचार्य के श्लोकों द्वारा केवड़ा पुष्प का विशेष महत्व दिखलाया है। उन श्लोकों का वर्णन निम्न प्रकार से है—

"कुप्या तं भरिताग्र केतकिसुमं कषोन्मुखे कुंजरम ।
चक्रं हस्तपुटे समन्त विधिना सिंधूर चन्द्रामये ।।

इत्यादि रूप से रहने पर विज्ञान सिद्धि के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। अतः इन श्लोकों का विशेष लक्ष्य से अध्ययन करना चाहिए। नित्य नये-नये सुगंधित गुलाब जल की जो वृष्टि श्री जिनेन्द्रदेव के ऊपर अभिषेक रूप से होती है वह सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देवों द्वारा होती है। ९४।

यह जलवृष्टि पांचवां अतिशय है। इसे देव अपनी वैक्रियिक शक्ति द्वारा बनाते हैं, फल भार से नम्रीभूत शाली [जड़हन] की पतली तथा हरे रंग की जड़ पृथ्वी पर उगना छठवां अतिशय है। विविध जीवों को सदा सौख्य देना सातवां अतिशय है ।९५।

देवगण अपनी विक्रिया शक्ति से चारों ओर ठण्डी वायु फैला देते हैं। यह आठवां अतिशय है। तालाब तथा कुयें में शुद्ध जल पूर्ण होना नौवां अतिशय है ।९६।

आकाश प्रदेश में बिजली [सिडलु] काले बादल उल्कापात आदि न पड़ना १०वां अतिशय है। सभी जीव रोग रहित रहें, यह ११वां अतिशय है ।९७।

समवशरण के चलने के समय में सभी जीव हर्षित रहते हैं ।९८।

समवशरण के विहार के समय में सभी जीव अपनी आलस्य को त्याग कर प्रश्न चित्त से रहते हैं ।९९।

रोगादि बाधाओं से रहित होकर सभी जीव सुखपूर्वक रहते हैं ।१००।

समवशरण में आते ही सभी जीव माया मोह इत्यादि सांसारिक ममता से विरक्त हो जाते हैं और उनको समवशरण के प्रति आस्था हो जाती है ।१०१

समवशरण में सभी जीव मृत्यु की बाधा से रहित रहते हैं ।१०२।

सांसारिक जीवों को चलते, फिरते उठते बैठते आदि प्रकार के कारणों से कष्ट मालूम पड़ता है परन्तु समवशरण के अन्दर आने से सभी कष्टों से जीव रहित हो जाता है ।१०३।

बहुत से व्यक्तियों में समवशरण को देखते ही वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वैराग्य पैदा होते ही वे लोग दीक्षा ले लेते हैं ।१०४।

संसार में रहते हुए कई जीव अनादि काल के कर्म रूपी धन को अपना समझ करके उसी में रत रहते हैं परन्तु वे जीव समवशरण के अन्दर आते ही उस कर्म रूपी धन से विरक्त हो गये ।१०५।

समवशरण में रहनेवाले जीवों को आलस्य नहीं रहता है ।१०६।

समवशरण में रहनेवाले जीव राग द्वेष से रहित रहते हैं ।१०७।

समवशरण में रहनेवाले जीवों के मार्ग में किसी भी प्रकार की अड़चनें नहीं पड़ती हैं ।१०८।

वहां रहनेवाले जीवों को सर्वदा सुख ही मालूम पड़ता है ।१०९।

वहां रहनेवाले जीवों को किसी भी कार्य में आतुरता इत्यादि नहीं रहतीं ।११०।

वहां रहनेवाले जीवों को सताना दुःख इत्यादि किसी भी प्रकार की बाधायें नहीं रहती हैं ।१११

समवशरण में रहनेवाले जीवों को धर्मानुराग के अतिरिक्त अन्य आलोचना नहीं रहती है ।११२।

हम बहुत ऊपर आगये हैं नीचे किस प्रकार से उतरें इस प्रकार की आलोचना भी जीवों को नहीं रहती ।११३।

वहां रहने वाले जीवों को दरिद्रता का भय नहीं रहता है ।११४।

हम स्नानादि से पवित्र है। और वह स्नानादि से रहित है इस प्रकार की शंकायें मन के अन्दर नहीं पैदा होती हैं ।११५।

बहुत वर्णन करने की आवश्यकता नहीं वहां पर सभी जीव सुख पूर्वक रहते हैं ।११६।

६ अक्षर अर्थात् ६ प्रकार के द्रव्यों का वर्णन इस भूवलय में है ।११७।

कान्ति कम न होनेवाला अतिशय प्रकाशमान रत्न रचित चार धर्म चक्र को यक्षदेव आनन्द से धारणा किये रहते हैं ।११८।

नाना प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित सांगत्य नामक छन्द जिस प्रकार सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म चक्र बारहवां अतिशय है और ३२ दिशाओं में अर्थात् एक एक दिशा में सात-सात पंक्ति रूप रहनेवाला स्वर्ण कमल तेरहवां अतिशय है। और भगवान के बाद पीठ में रक्खी हुई पूजन की सामग्री पूर्णिमा के समान सफेद वर्ण वाला चौदहवां अतिशय है ।११९-१२०।

पाद पीठ में रहनेवाली पूजन की सामग्री और उपकरण इन दोनों को घटा देने से चौंतीस शुभ अतिशय हो जाता है। इन सब अतिशयों का वर्णन करनेवाला विनयावतारी अर्थात् विद्वान् कौन है ।१२१।

इस प्रकार का वर्णन करनेवाले कवि लोग इस पृथ्वी पर कहीं भी नहीं हैं ।१२२।

इस प्रकार का व्यक्ति पृथ्वी पर कहां है बताओ ।१२३।

यदि नये मार्ग का ज्ञाता हो तो उनसे भी पूरा वर्णन नहीं हो सकता है।१२४।

जिनेन्द्र भगवान का बताया हुआ मार्ग धर्म को लक्षण देनेवाला है ।१२५।

यह भूवलय का जो अंक है वह अंक प्राणी के कष्ट को दूर करने वाला है ।१२६।

यह अंक भद्र स्वरूप है और मंगल रूप है ।१२७।

जिनेन्द्र भगवान को शिव शब्द से भी कहने से यह समवशरण कैलाश भी है।१२८।

जिनेन्द्र भगवान को विष्णु कहते हैं इसलिए समवशरण वैकुंठ भी है ।१२९।

इसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान को ब्रह्मा भी कहते हैं इसलिए यह समवशरण सत्य लोक भी है ।१३०।

यह समवशरण जनता का सर्वार्थ सिद्धि साधक होने से सर्वार्थ स्वर्ग भी यही है।१३१।

जनता को सब अंक के दिखलानेवाला होने के कारण यह समवशरण सर्वाङ्ग सिद्धि भी है ।१३२।

समवशरण में कोटि चन्द्र और कोटि सूर्य का प्रकाश भी रहता है। ।१३३।

स्वर्ण में रत्न मन्डित होकर तोरण में विराजमान रहता है ।१३४।

उन तोरणों में पारा को सिद्ध करके बनाया हुआ मणि भी लटका हुआ रहता है ।१३५।

जिस प्रकार समस्त दुर्गुणों को विनाश करनेवाला रत्नत्रय है इसी प्रकार रसमणि भी जनता के दरिद्रता को नाश कर देती है ।१३६।

स्वर्ण तो हल्दी के रंग के समान रहता है उस वर्ण को दूध के समान सफेद बनानेवाला यह पारा का मणि है ।१३७।

विवेचनः—इसी भूवलय में आने वाले श्री समंतभद्र आचार्य के वचनों को देखिये।

स्वर्णश्वेतसुधामृतार्थ लिखितिं नानार्थरत्ना कर्म। अर्थात् सफेद स्वर्ण बनाने की विधि अनादि काल से जैनाचार्य को मालूम थी। आज कल इसको पलाटिनम् कहते हैं और वह पल्टी पलाटिनम् बहुमूल्य है।

अन्तिम में आत्मसिद्धि को प्राप्त करनेवाला यह समवशरण भूमि है ॥१३८॥

लड़के लड़कियों को अर्थात् समस्त बन्धु बान्धवों को त्याग कराने वाला यह काव्य है ॥१३९॥

राक्षस और किन्नर इत्यादि देव लोगों ने इस समवशरण को बनाने की विद्या को सीखा है। उस विद्या को बतलाने वाला यह भूवलय काव्य है ॥१४०॥

इस प्रकार भव्य जीवों के पुण्य से बनाया हुआ महल रूपी यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४१॥

भवनवासी, व्यन्तरवासी, भवनामर, व्यन्तरामर, ज्योतिषक और स्वर्ग

लोक के सभी देव अर्थात् श्री महावीर भगवान के भक्त जन कलकलाहट के साथ जै जै शब्द का गाना गाते हैं ॥१४२॥

सम्पत्ति युक्त मंगलप्राभृत्त महाकाव्य के रास्ते से श्री गुरु वीरसेन आचार्य के मतिज्ञान में मिले हुए अरहंत भगवान का केवल-ज्ञान ही यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४३॥

ऊपर कहे हुये ३४ अतिशय यदि अपने वश में हो जायँ तो ऋषियों के मार्ग से धर्म धारण हो जाता है। तत्पश्चात् असदृश ज्ञान विकसित होकर आत्मा को मोक्ष सिद्धि हो जाने के समान भाव बढ़ जाता है ॥१४४॥

ऐसा ज्ञान बढ़ जाने के बाद हमें (कुमुदेन्दु मुनि को) अर्थात् श्री वीर-सेनाचार्य के शिष्य को भूवलय जैसे महान् अद्भुत काव्य की कथा विरचित्त करने की शक्ति उत्पन्न हो गई और श्री जिन सेनाचार्य का ज्ञान सहायक हुआ। इसीलिए इस भूवलय काव्य की रचना में हमारा अपूर्व पुण्य वर्धन हुआ। इसका नाम वस्तु है ॥१४५॥

इस भारत के कोने २ में धर्म की अवनति दशा में श्री जिनेन्द्रदेव का भक्त मान्यखेट का राजा श्री जिनदेव का भक्त अमोघवर्ष नामक राजा ने ॥१४६॥

नव पद भक्ति प्रदान करके समस्त जनता को धर्म में श्रद्धा उत्पन्न कराके धर्म की स्थापना की। उन समस्त धार्मिक प्रजाओं में भव्य जीव और भव्यों में आसन्न भव्य अपने भव्यत्व लक्षण को प्रकट करते हुये नवमांक सिद्धि हमें प्राप्त हो गई, ऐसा जानकर बड़े आनन्द के साथ रहने लगे ॥१४७॥

विवेचन—कन्नड़ भाषा में प्रकट हुये भूवलय ग्रन्थ के उपोद्घात में राष्ट्र-कूट राजा नृपतुङ्ग को अमोघवर्ष मानकर उपोद्घात कर्त्ता ने श्री कुमुदेन्दु आचार्य के समय की ८ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग अर्थात् कृस्ताब्द ७८३ माना है। अब उन्हीं महाशय ने इस नवम अध्याय का अथवा ४० अध्याय से ऊपर के विषयों का अध्ययन करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य नृपतुङ्ग के गुरु नहीं, बल्कि गंग वंश के राजा प्रथम शिवमार गुरु थे। उस शिवमार ने हैदराबाद के मड़खेड़ नहीं, मैसूर प्रांत के बेंगलोर से ३० मील दूरी पर मण्ये नामक ग्राम में राज्य किया। उनका समय कृस्ताब्द लगभग ६८० वर्ष था। इसलिये श्री कुमुदेन्दु आचार्य का समय ७८३ वर्ष नहीं बल्कि ६८० वर्ष है।

दूसरे शिवमार के पास अमोघ वर्ष नामक पदवी थी। उसे राष्ट्र कूट नृपतुङ्ग ने युद्ध में पराजित करके कारागार में डाल दिया था। चाहे वे वहीं पर ही मर गये हों पर ऐसी विकट परिस्थिति में भूवलय जैसे महान् ग्रन्थ का उपदेश वे कैसे दे सकते थे ? कदापि नहीं। किन्तु प्रथम शिवमार ने सम्पूर्ण भरत खण्ड को अपने स्वाधीन करके हिमवान पर्वत के ऊपर अपना विजय-ध्वज फहराया था इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रथम शिवमार ही श्री कुमुदेन्दु आचार्य के शिष्य थे।

अभिप्राय यह निकला कि कुमुदेन्दु आचार्य का समय प्रथम शिवमार का था, न कि द्वितीय का। इस विषय में इतिहास वेत्ताओं की मंत्रणा से मैसूर विश्व विद्यालय के अन्तर्गत की गई वार्तालाप का विवरण संक्षेप से यहां दिया गया है।

आचार्य कुमुदेन्दु द्वारा विरचित श्री भूवलय—

ऐतिहासज्ञों का कथन है कि १८-७-५७ को एक बातचीत में वाइस चांसलर डा० के० वी० पुटप्पा ने उनसे यह भाव प्रकट किया कि यदि कुमुदेन्दु विरचित श्री भूवलय का संक्षिप्त विवरण ३६ देशों के विद्वान और विद्यार्थियों की विश्व विद्यालय सेवा समाज में, जो कि २५-७-५६ को मैसूर में होने वाली थी, प्रस्तुत किया जाय तो अधिक उचित हो।

जब श्री भूवलय के कुछ हस्तलेख और छपे हुए लेख भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी को दिखाए गए तो उन्होंने अचानक इसे विश्व का आठवाँ आश्चर्य बताया और एक वाद-विवाद के समय डा० पुटप्पा ने कहा कि श्री भूवलय ग्रन्थ को विश्व का प्रथम आश्चर्य भी कह सकते हैं।

लेकिन दुर्भाग्य का विषय है कि इतना आश्चर्य जनक ग्रन्थ मैसूर रियासत तथा इसके बाहर के बहुत कम विद्वान तथा अन्वेषणकारी ही जानते हैं जो कि अभी भी इसके आश्चर्य से पूर्ण परिचित न होते हुए अपना मार्ग खोजने की कोशिश में हैं।

आज विश्व के अनेकों विद्वान महत्वपूर्ण प्रयत्नों द्वारा विभिन्न नवीन-ताओं की खोज में लगे हुए हैं। अतः यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि

भाषाओं के जन्म और विकास पर भी ध्यान दिया जाय। हमारा प्राचीन साहित्य, विज्ञान, आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र, धर्म, इतिहास, गणित आदि यदि पुनः प्रकाश में लाए जाएँ तो मानव जाति की अधिक उन्नति और उद्धार हो।

ऐसा कहा जाता है कि श्री कुमुदेन्दु जी बेंगलोर से ३८ मील दूर नन्दी पर्वत के समीप 'येलेवाली' के निवासी थे और भूवलय ग्रन्थ में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि श्री कुमुदेन्दु आचार्य राष्ट्रकूट के राजा अमोघ वर्ष और शिवमार गंग राजा के धर्म प्रचारकों के गुरु थे।

श्री भूवलय ८ — १२६, ९ — १४६
८ — ६६, और ७२

और यह भी वर्णित है कि प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ "धवल" के लेखक श्री वीरसेन जी भूवलय के रचयिता श्री कुमुदेन्दु जी के गुरु थे। ध्यानपूर्वक गणना के पश्चात् इस बात की जांच की गई है कि वीरसेन के धवल ग्रन्थ की समाप्ति के ४४ वर्ष पश्चात् उनके शिष्य कुमुदेन्दु जी ने अपना स्मरणीय ग्रन्थ श्री भूवलय को लिखकर समाप्त किया था।

लेकिन विद्वानों में धवल ग्रन्थ की समाप्ति और कुमुदेन्दु जी के जीवन काल तथा भूवलय की समाप्ति के समय के विषय में पर्याप्त अन्तर है। अतः समय को ध्यान में रखते हुए उनके विचारों में काफी विवाद है।

प्रो० हीरालाल जैन और डा० एस० श्री कन्था का विचार है कि धवल ग्रन्थ ई० सन् ८१६ के लगभग समाप्त हो गया होगा, जबकि जे० पी० जैन कहते हैं कि धवल ग्रन्थ ई० सन् ७८० के लगभग समाप्त हुआ था तथा अन्य विद्वानों का कथन है कि धवल ६३६ ई० में समाप्त हुआ था।

समंगद (Samangada) शिलालेख से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रकूट राजवंश ई० सन् ७५३ में राज्य कर रहा था।

तृतीय राष्ट्रकूट राजा गोविन्दा जो कि सर्वख्या अमोघवर्ष का पिता था ई० सन् ८१२ के अपने एक शिलालेख में लिखता है। डेन्टीदुर्गा भी अमोघ नाम से पुकारा जाता था और इस शिलालेख के समय सर्वख्या अमोघवर्ष एक बालक ही था इसलिए विद्वान निश्चित रूप से इस विषय का ज्ञान नहीं कर सके हैं कि वह कौनसा अमोघवर्ष था जिसे गोविन्दा राजा का पुत्र मानकर 'भूवलय ग्रन्थ' पढ़ाया गया था।

यह एक मान्य ऐतिहासिक सत्य है कि प्रथम शिविमार जोकि सत्यप्रिय भी पुकारा जाता था और नवकामा ने ई० सन् ६७९ से ई० सन् ७२६ तक राज्य किया था।

वीरसेन ने अपने धवल ग्रन्थ को विक्रमी राज्य (अट्ठाठीसाम्मी शिष्य विक्रम राय) के ३८ वें साल में समाप्त किया और यह विक्रम राय वही है जो कि गंग राजा विक्रम था। और सभी इतिहासज्ञों ने इसको भी सत्य-रूप ही मान लिया है कि विक्रम राजा ६०८ ई० में गद्दी पर बैठा था।

कनाड़ी भाषा का शब्द "अट्ठावीसाम्मी" कुछ विद्वानों द्वारा "अट्ठाटीसाम्मी" भी पढ़ा गया है।

श्री विक्रम राजा ई० सन् ६०८ में राजगद्दी पर बैठा था और यदि ई० सन् ६०८ में २८ साल जोड़ दिए तो "धवल ग्रन्थ" की पूर्ति का समय सन् ६३६ पड़ता है। नक्षत्र स्थिति जो कि "धवल" की पूर्ति के दिन वर्णित की गई थी वह कार्तिक सुदी त्रैयोदशी एक सम्वत् ५५८ को सिद्ध करने से ठीक ई० सन् ६३६ ठहरता है।

कुछ विद्वान सोचते हैं कि "श्री भूवलय" का समय ७ वीं शताब्दी के अंतिम चौथाई में होगा जबकि दूसरे विद्वान कहते हैं कि इसका समय दसवीं अर्ध शताब्दी होगा, कुछ अन्य विद्वानों का कथन है कि 'श्री भूवलय ग्रन्थ' का समय संगथ्या पीरियड में अर्थात् १२ वीं या १३ वीं शताब्दी रहा होगा। क्योंकि कुमुदेन्दु द्वारा रचित "श्री भूवलय ग्रन्थ" संगत्या छंद में ही लिखा हुआ है। और कुछ यहां तक भी कहते हैं कि यह ग्रन्थ अभी थोड़े ही समय का पुराना है अधिक नहीं क्योंकि श्री भूवलय की भाषा आधुनिक कन्नड़ भाषा से मिलती जुलती है।

समय की कमी के कारण अधिक विस्तार में न जाकर मैं इसी बात पर जोर देना चाहता हूं कि संगथ्या छंद बारहवीं और इसकी बाद की शताब्दी का नहीं है जैसा कि कुछ व्यक्ति गलती से सोचते हैं।

जिनसेन (Jinasene) अपने महापुराण में कहते हैं—

यमि···समम् तलम् रारांसु सांगत्य एव सगतिहि ॥

वह यह भी कहते हैं कि संगथ्या एक बहुत पुराना छंद था जिसका प्रयोग उनसे पहले होने वाले भी बहुत से बड़े बड़े कवियों ने किया था। इसीलिए समय जिनसेन के महापुराण का नवीं शताब्दी का प्रथम चौथाई भाग है।

और आधुनिक कन्नड़ भाषा का प्रयोग इस ग्रन्थ को अपनी प्राचीनता से नहीं हटा सकता क्योंकि आधुनिक कन्नड़ भाषा की तरह की ही भाषा निम्नलिखित शिलालेखों में मिलती है—

(१) भूविक्रम का बीडारपुर शिलालेख।

(२) नीति मार्ग का नरसापुर ग्रन्थ। अतः पाठकों को इस ग्रन्थ की पौराणिकता पर विश्वास करना ही पड़ेगा।

इस ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता के समय के विषय में जो विवाद है उसका प्रधान कारण चार अमोघवर्षों का होना है। डैन्टीदुर्गा भी अमोघवर्ष ही पुकारा जाता था। और शिवमार जोकि कुमुदेन्दु जी से सम्बन्धित था वह पहला शिवमार ही है द्वितीय नहीं।

अब ग्रन्थ को ही लीजिए। कुमुदेन्दु जी ने कन्नड़ भाषा के ६४ वर्ण बताए हैं जिनमें ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भी मिले हुए हैं और अपना गणित विभाग तथा पूर्ण ग्रन्थ कन्नड़, प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, तामिल, तैलगू आदि भाषाओं में लिखा।

डा० एस० श्रीकान्त जी कहते हैं कि यदि भूवलय के प्रकाशित भाग (चैप्टर १-३३) का संतोषजनक अध्ययन किया जाए तो निम्नलिखित बातें इस ग्रन्थ से पता लगती हैं—

(१) कनाड़ो भाषा और उसके साहित्य का ज्ञान कराने के लिये यह ग्रन्थ प्राचीन ग्रन्थों में से एक है तथा अन्य अनेकों विद्वानों के ग्रन्थों के विषय में भी, जो कि क्रिश्चियन शताब्दी के प्रारम्भ में ही लिखे गये थे, ज्ञान प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये यदि यह ग्रन्थ पूर्ण प्रकाशित हो जाये तो चूड़ामणि जैसे प्राचीन विद्वानों के ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

(२) संस्कृत, प्राकृत, तामिल और तैलगू भाषा के इतिहास के लिये यह हमारी आंखें खोलने वाला ग्रन्थ है।

(३) हमारे भारतीय दर्शन और धर्म तथा विशेष तौर से जैन धर्म को ज्ञान प्राप्त कराने के लिए यह अपूर्व ग्रन्थ है, इससे प्राप्त सिद्धान्त आज भी हमारे विचारों को विशुद्ध कर हमें सद्मार्ग पर ला सकते हैं।

(४) कर्नाटक और भारत के राजनैतिक इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ एक नवीन सामग्री प्रदान करता है। क्योंकि इसमें राष्ट्रकूट के राजा अमोघवर्ष और गंग राजा सैगोत शिवमार के विषय में वर्णन है।

(५) भारतीय गणित शास्त्र के इतिहास के लिए यह ग्रन्थ विशेष महत्व रखता है। वीरसेन जी की 'धवल ग्रन्थ' की टीका के आधार पर जो आजकल जैन गणित शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया गया है उससे पता लगता है कि अधिक पहले नहीं तो नवीं शताब्दी में ही भारतीयों ने गणित के अनेकों तरीके—स्थानांक मूल्य (Place value) जोड़ के तरीके, समयोग भंग, विभाजन के विशेष तरीके, परिवर्तन के नियम, ज्यामिति और रेखा गणित के नियम (Geometrical and mensuration formulas) अनंतांक गणित विधि—(Theouries of Infinily) प्रथम समयोग, द्वितीय समयोग आदि (The value of Permutation and combinatio[n]) को भी जानते थे। कुमुदेन्दु जी का ग्रन्थ 'भूवलय' वीरसेन जी के ग्रन्थ से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण और आगे है। इस ग्रन्थ के लिए गम्भीर अध्ययन की आवश्यकता है।

(६) हिन्दुओं के स्पष्ट विज्ञान के लिए भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण सहायता देता है क्योंकि इसमें अणु विज्ञान (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), जीव-विद्या (Biology), औषध शास्त्र (प्राणव्य और आयुर्वेद), भूगर्भ शास्त्र (Geology), ज्योतिष शास्त्र (Astronomy) इत्यादि का वर्णन है।

(७) भारतीय कला का इतिहास भी यह ग्रन्थ बतलाता है क्योंकि यह भारतीय मूर्तिकला, चित्र कला तथा (Ioonography) के लिए एक अपूर्व साधन है।

(८) रामायण, महाभारत और भगवद्गीता के दोहों की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, जोकि इस प्रकार से गुंथे हुए हैं कि यह पहचानना कठिन हो जाता है कि इसमें आधुनिक व्यक्तियों ने कितने नए क्षेपक

(झूठे पद अपनी तरफ से मिलाना) मिलाए हैं। कुमुदेन्दु जी के मतानुसार इस ग्रन्थ में लगभग एक से ८ या १० गीता के पद हैं जिनको पांच भाषाओं में समझ सकते हैं। नेमो तीर्थंकर के गोमट्ट को अनादि गीता, कृष्ण की गीता, व्यास की गीता जोकि अपने मौलिक रूप में व्याख्यान के नाम से महाभारत में पाई जाती है और कन्नड़ भाषा में कुमुदेन्दु जी की गीता है। इस ग्रन्थ में गीता की पैशाची भाषा में भी आलोचना मिलती है और वाल्मीकी रामायण के मौलिक पद भी इसमें पाए जाते हैं। आगे ऋगवेद के तीन पद (एक गायत्री मन्त्र से प्रारम्भ, तथा दो अन्य) भी इस ग्रन्थ के अध्यायों में पाये जाते हैं। भारतीय सभ्यता को पढ़ने और पहचाने के लिए ये तीन पद ही ऋगवेद के प्रमुख हैं।

(९) भारतीय सभ्यता के अध्ययन के लिए इस मनोरंजक ज्ञान के अतिरिक्त भूवलय में कुछ निम्नलिखित जैन ग्रन्थों के शुद्ध पद मिलते हैं— भूतबाली का सूत्र, उमास्वामी, समन्त भद्र का गंदहस्थी महाभाष्य, देवगामा स्तोत्र, रत्नकरंड श्रावकाचार, भरत स्वयंभू स्तोत्र, चूड़ामणी, समयसार, कुन्द-कुन्द का प्रवचन सार, सर्वार्थ सिद्धि, पूज्यपाद का हितोपदेश, उर्गदित्या का कल्याणकरिका, प्राकेश्री स्तोत्र, मंत्रवम्भर स्तोत्र, ऋषिमंडल, कुछ तांत्रिक अंग और अंग बाहिरा कानून, कुछ पारिभाषिक ग्रन्थ जैसे सूर्य प्राग्नेपति, त्रिलोक प्राग्नेपति, जम्बू द्वीप प्राग्नेपति आदि।

(१०) यह ग्रन्थ १८ बड़ी भाषाएँ और ७०० छोटी-छोटी भाषाओं को निहित किये हुये है। इस ग्रन्थ में जो भाषाएँ हैं उनमें कुछ प्राकृत, संस्कृत, द्रविड़, आंध्र, महाराष्ट्र, मलाया, गुजराती, हम्मीरा, तिब्बती, यवन, बोलिदी, ब्राह्मी, खरोष्टी, अपभ्रंश, पैशाची, अरिस्ता, अर्धमागधी टर्की, सैंधव, देवनागरी, पारसी आदि हैं। जितना यह ग्रन्थ छपा है उसमें से संस्कृत, विभिन्न प्राकृत, कन्नड़, तामिल, तैलगू को बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। यदि इस विषय पर अनेकों विद्वान गंभीर अध्ययन करें तो इससे और भी अनेकों भाषाएँ और उनके शब्द प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए भाषा विज्ञान के विषय में भी यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

सौभाग्य से इस सम्पूर्ण ग्रन्थ को माइक्रो फिल्म (Micro Filmed) कर लिया है और यह नई दिल्ली के राष्ट्रीय ग्रन्थ रक्षा गृह में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी के अधिकार में रखा हुआ है। और इसकी कुछ हस्तलिखित प्रतियां भी राष्ट्रकूट राजकुमार मल्लिकाव्वे के नेतृत्व और सहायता से की गई थीं अब वे छानबीन द्वारा सिद्ध की जाएंगी। बड़े-बड़े विद्वान और मुनि इस हस्तलिखित प्रतियों की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं।

इस ग्रन्थ में कुछ इस प्रकार की विद्या भी है जिससे कुछ ऐसे नम्बरों का पता लगता है जिनको कि यदि अक्षरों में लिखा जाए तो वह प्रश्न ही उस का उत्तर बन जाता है। किसी प्रश्न का उसके उत्तर में बदल जाना गणित शास्त्र का ही नियम है जोकि अभी पूर्ण रूप से विदित नहीं हुआ है। एक बार ओटी (Ooty) के कोफीप्लेंटर के किए गए प्रश्न के उत्तरमें ३०० ब्राह्मी षटपदी कविता बन गई थी।

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जोकि अपने भूत और भविष्य के विषय में सोचता ही रहता है। अपने हृदय में यदि वह कोई इच्छा न रखे तो उसका जीवन शून्य ही माना जाता है। लेकिन व्यक्ति जो कुछ भी अच्छा या बुरा सोचता है। वह उन सभी को कार्य रूप में परिणित नहीं कर सकता। और न ही वह इतना पराधीन भी है कि वह अपने विषय में सोच भी न सके। जिनका कुछ ऐसे नियम कर्म, ईश्वर के नाम पर बने है मनुष्य पालन करता है।

यदि 'श्री भूवलय' को व्यक्ति ठीक समझले और कुछ पाना चाहे तो मनुष्य की कल्पना, ज्ञान बढ़ना जरूरी है। 'भूवलय' ज्ञान का भंडार है।

कुछ समय पहले मैंने यह ग्रन्थ शिक्षामंत्री श्री ए० जी० रामचन्द्र राव को दिखाया व बताया था। उन्होंने कुछ आर्थिक सहायता और सरकारी कार्य की सहायता शीघ्रातिशीघ्र देने का वचन दिया था।

अन्त में, यदि मैसूर के रायल हाउस की पूर्ण सहायता भी मिलती रहे तो यह कन्नड़ ग्रन्थ (कुमुदेन्दु जी का भूवलय) राष्ट्र के लाभ के लिए छप सकेगा।

ओम सत संत

इस शिवमार का सैगोट्ट शिवमार नाम भी था। कानड़ी भाषा में सैगोट्ट शब्द का अर्थ कथा के श्रवण में केवल हाँ हाँ की स्वीकृति देना है। किन्तु कुमुदेन्दु आचार्य अपने शिष्य शिवमार सैगोट्टा को जब भूवलय की कथा सुनाते रहे और शिवमार आदि से लेकर अन्त तक भक्ति भाव से कथा सुनते रहे, तब उन्हें मतिज्ञान की सिद्धि हुई ॥१४८॥

मति ज्ञान प्राप्त हो जाने से पृथ्वी के सम्पूर्ण ज्ञान शिवमार को प्राप्त हो गये ॥१४९॥

ऐसे ज्ञान की प्राप्ति तत्कालीन भारतीयों के सौभाग्य का प्रतीक था ॥१५०॥

नवविध ब्रेह्म अर्थात् पंचपरमेष्ठी अक्षर और अङ्क रेखा वर्ण का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया, ऐसे शिवमार की रक्षा करके सद्गुरु अर्थात् कुमुदेन्दु आचार्य की कीर्ति बढ़ गई ॥१५१-१५२॥

कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि यह कीर्ति ही हमारा शरीर है ॥१५३॥

इस कीर्ति से शिवमार को जो विशुद्ध प्राप्त हुआ वह नव नवोदित था ॥१५४॥

वह कीर्ति दसों दिशाओं में वस्त्र के समान फैल गई, अर्थात् कु० दिगम्बराचार्य आशवसनी थे ॥१५५॥

भूवलय विख्यात कीर्ति वाले सेड़गण नामक गुरुपीठि के आचार्य थे ॥१५६॥

कुमुदेन्दु आचार्य का जन्म ज्ञातवंश में अर्थात् महावीर भगवान का वंश था ॥१५७॥

कुमुदेन्दु आचार्य का गोत्र सद्धमप्रकीर्णक था ॥१५८॥

उनका सूत्र श्री वृषभ सूत्र था ।१५९।

आचार्य की शाखा द्रव्यांग वेद की थी ॥१६०॥

उनका वंश इक्ष्वाकु वंशान्तर्गत ज्ञात वंश था ।१६१।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य जब दिगम्बर मुद्रा धारण करके सेनगण के आचार्य बन गये तब उन्होंने वंश, गोत्रसूत्र, शाखा आदि सभी को त्याग दिया। ।१६२।

अर्हद्बल्याचार्य के समय में जैसे गणगच्छ का विभाग हुआ तो इसी रीति से श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भी गणगच्छ की स्थापना की थी ।१६३।

इस गणगच्छ को ९ भाग में विभाजित हुए भारतवर्ष में सेनगण के ९ गुरु पीठ को स्थापित करके अखिल भारत में सर्वधर्म समन्वय ने दिगम्बर जैन धर्म को स्थिर रक्खा।

विवेचन:—आचार्य कुमुदेन्दु के समय में हमारा भारतवर्ष नौ भागों में विभक्त था। जिस प्रकार राज्य नौ भागों में विभाजित था उसी प्रकार धर्म राज्य अर्थात् गुरुपीठ भी नौ भागों में स्थापित हुआ था। अब इन गुरु पीठों में कोल्हापुर कांचीवर पेनांवड ये ही तीन गद्दियां चल रही हैं। रत्नगिरि दिल्ली इत्यादि का गुरुपीठ नामवशेष हो गया है।

कुमुदेन्दु आचार्य और उनके शिष्य शिवमार के राज्य काल में सारे भारत खण्ड में कर्नाटक भाषा राज्य थी। कर्नाटक भाषा में ही भूवलय ग्रन्थ लिखा गया है। उस कर्नाटक राजा का कर्म बिस्तार पूर्वक कर्म सिद्धांत का कुमदेन्दु आचार्य ने दिया ।१६५-१६६।

उनको पठाया हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ।१६७।

इस प्रकार से यह भूवलय ग्रन्थ विश्व में विख्यात हो गया ।१६८।

उस कर्माटक चक्रवर्ती सैगोट्ट शिवमार को पांच पदवी प्राप्त हुई थीं। पहले का पद धवल, दूसरा पद जयधवल, तीसरा महाधवल इसी रीति से बढ़ते हुए ॥१६९॥

जनता की दीनवृत्ति को नाश करके कीर्ति लक्ष्मी और शील को धवल रूप में बढ़ाते हुए आनेवाला अतिशय धवलापर नामधेय भूवलय रूपी चौथा और विविध भांति विस्मय कारक शब्दों से परिपूर्ण पांचवां विजय धवल है।

ये पांचों धवल भी भूवलय रूपी भरतखण्ड सागर को वृद्धिङ्गत करने-वाले पांच पद हैं। अर्थात् सैगोट्ट शिवमार नृप को राज्याभ्युदय काल में १-

धवल, २--जयधवल, ३--महाधवल, ४--अतिशय धवल (भूवलय) और पांचवां विजय धवल रूपी पांच पदवियां प्राप्त हुई थीं ॥१७०-१७१॥

इस प्रकार भरतमही को जीत करके सेंगोट्ट शिवमार दक्षिण भरत खण्ड में राज्य करता था। ३ कर्माटक चक्री उनका नाम पड़ा अर्थात् उस समय सारे भरत खण्ड में कानड़ी भाषा ही राज्य भाषा थी। उनके राज्य का दूसरा नाम मण्डल भी था ॥१७२॥

हिंसामयी धर्म सब को दुःख देनेवाला है इसलिए वह अप्रिय है। इस प्रकार का उपदेश देते हुए उस चक्री ने राज्य दण्ड और धर्म दण्ड से हिंसा को भगा दिया ।१७३।

अहिंसा धर्म अत्यन्त गहन है। इस प्रकार के गहन धर्म को चक्री ने सबको सिखा दिया था ।१७४।

जब अहिंसा धर्म की ख्याति बढ़ गई तब अणुव्रत का पालन करनेवाले भी बढ़ गये ।१७५।

यह ख्याति सबको सुख कर है ।१७६।

भरत खण्ड की ख्याति ही यह ६ खण्ड शास्त्र रूपी भूवलय की ख्याति है ।१७७।

जब इस भूवलय शास्त्र की ख्याति बढ़ गई तब यह भरत खन्ड इस लोक का स्वर्ग कहलाया। और यह प्रथम अमोघवर्ष राजा इस भूलोक स्वर्ग का अधिपति कहलाया। इस प्रकार से राज्य करनेवाला अभी तक नहीं हुआ और न आगे ही होगा इस प्रकार से सभी जनता कहने लगी। १७८ से १८१ तक।

❖**नोट:**—एक समय में सैंगोट्ट शिवमार चक्री अपने राजसी वैभवों सारी पृथ्वी पंकमयी थी। दूर से देखने पर श्री आचार्य कुमुदेन्दु अपने गुरु रोक दिये तथा स्वयं हाथी से उतरकर पादमार्ग से श्री गुरु के सन्मुख जाकर अमूल्य जवाहरात से जड़ित किरीट बांध रक्खा था, वह गुरु देव के चरण (तत्कालीन विख्यात मणि) गुरु के चरण समीप कीचड़ में सन गई और उसकी प्रस्थान करा दिया। इधर शिवमार परम सन्तुष्ट होकर गजारूढ़ हो राजसभा सदों के समक्ष वार्तालाप करते समय तथा अपने मस्तक को इधर उधर फेरते चकाचौंध कर देती थी किन्तु आज उसकी चमक कीचड़ लगजाने के कारण कीचड़ को वस्त्र से साफ करदो। यह सुनते ही मन्त्री कीचड़ को वस्त्र से राजा की दृष्टि समीपस्थ मन्त्री के ऊपर सहसा जैसे ही पड़ी वैसे ही राजा ने आपके किरीट में लगे हुए कीचड़ को साफ करने के लिए मैं खड़ा हुं। राजा नहीं पोंछने देंगे। क्योंकि इसे हम सदा काल अपने मस्तक पर धारण करना हो गये।

के साथ हाथी के ऊपर बैठकर जा रहे थे। उस समय वृष्टि होने के कारण और शिष्यों के साथ अपनी ओर विहार करते हुए देखकर अपनी सारी सेना गुरुओं की बन्दना की। तत्पश्चात् शिवमार सैंगोट्ट चक्री ने जो अपने मस्तक में कमलों में गिर पड़ा। किरीट के गिरते ही उसमें से अमूल्य नायक मणि देदीप्यमान कान्ति मलिन हो गई। गुरुदेव ने अपने शिष्य को शुभाशीर्वाद देकर में जाकर सिंहासन पर आसीन हो गया। इससे पहले राजसभा में बैठकर सभा समय किरीट में जड़ित उपर्युक्त अमूल्य रत्न की कान्ति सभी सभासदों को नहीं दीख पड़ी। सभासदों ने मन्त्री से इङ्गित किया कि किरीट में लगे हुए स्वच्छ करने के लिए राजा के निकट खड़ा हो गया। वार्तालाप करने में मग्न विस्मित होकर पूछा कि तुम यहां क्यों खड़े हो? मन्त्री ने उत्तर दिया कि ने मंत्री से कहा कि गुरु की अहैतुकी कृपा से प्राप्त चरण रज को हम कदापि चाहते हैं। राजा की अपूर्व गुरुभक्ति को देखकर सभी सभासद आश्चर्य चकित

जब एक साधारण शिष्य की गुरुभक्ति का माहात्म्य इतना बड़ा विलक्षण था तब उनके पूज्य गुरुदेव की महिमा कैसी होगी?

उत्तर—राज्य शासन करते समय शिवमार राजा को जो उपर्युक्त धवल जय धवलादि पांच उपाधियां प्राप्त थीं उन्हीं उपाधियों के नाम से अपने शिष्य शिवमार राजा का नाम अमर रखने के लिए गुरुदेव ने स्वविरचित पांच ग्रन्थों का नामकरण धवल जयधवलादि रूप से ही किया। इन दोनों गुरु शिष्यों की महिमा अपूर्व और अलभ्य है।

ज्ञानवर्ण आदि आठ कर्मों को दहन करते हुए आत्म कल्याण कराने वाला यह भरत खण्ड है ।१८२।

कर्माटक अर्थात् आठ कर्म के उदय से जगत के समस्त जीव कर्म में फंसे हुए हैं । इसलिए कानड़ी भाषा ही सभी जीवों की भाषा है । उदाहरण के लिए सर्व भाषामय काव्य भूवलय ही साक्षी है ।१८३।

इस भारत वर्ष में सद्धर्म का प्रचार बहुत बढ़ जाने से सभी जनों में धार्मिक चर्चा चलती थी ।१८४।

राज्य को अहिंसा धर्म से पालन करनेवाला चक्रवर्ती राजा राज्य करे तो उनके शासनकाल में स्वभाव से ही अहिंसा धर्म का प्रचार रहता है ।१८५।

अहिंसा धर्म ही इस लोक और परलोक के सुख का कारण है और सुख का सर्वस्व सार है ।१८६।

परस्पर प्रेम से यदि जीवन निर्वाह करना होतो परस्पर में सहकार ही मुख्य कारण है और वही धर्म का साम्राज्य है ।१८७।

इस लोक में सभी को सौभाग्य देनेवाला यह अहिंसा धर्म है ।१८८।

महावीर भगवान ने इस धर्म को मङ्गल स्वरूप से दान दिया है ।

।१८९।

गुफा में रहते हुए तपस्या द्वारा सिद्ध किया हुआ अहिंसा धर्म है ।१९०।

हिंसा को विनाश करके अहिंसा की स्थापना करके सन्मार्ग बतलाने वाला यह राजा का राजभार कर्म है ।१९१।

सुख शिवभद्र इत्यादि सभी शब्द मङ्गल वाचक हैं । यह सब इस राज्य में फैला हुआ था ।१९२।

महानभावों को पैदा करनेवाला अर्थात् उन सभी का वर्णन करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।१९३।

महावीर जिनेन्द्र जी इस राज्य में विहार किये थे ।१९४।

सिद्धान्त को पढ़ते हुए अन्तर्मुहूर्त में सिद्धान्त के आदि अन्त को साध्य करनेवाले राजा अमोघव केर्ष गुरु (आचार्य कुमुदेन्दु) के परिश्रम से सिद्ध किया हुआ यह भूवलय काव्य है ।१९५।

कानड़ी भाषा में चरित नामक छन्द को सांगत्य कहते हैं । सांगत्य अर्थात् दिगम्बर मुनि राजों का समूह ऐसा अर्थ होता है उन गुरु परम्परा से आये हुए अर्थात् श्री बीरसेनाचार्य द्वारा सम्पादन किये हुए सद्ग्रन्थ को लेकर रचना किये हुए इस भूवलय काव्य को वाचक काव्य भी कहा जाता है ।१९६।

हमारे (कुमदेन्दु आचार्य के) गुरु श्री बीरसेन स्वामी ने छाया रूप से हमें उपदेश दिया उस गुरु का अमृत रूपी वाणी को गणित शास्त्र के सांचे में ढाल कर प्राचीन काल से आये हुए पद्धति के अनुसार मङ्गल प्राभृत के कर्मानुसार गुणाके सांचा में ढालकर हम (कुमदेन्दु आचार्य) ने अत्यन्त उन्नत दशा को पहुंचे हुए सात सौ अट्ठारह असंख्यात अक्षरात्मक भाषा युक्त रीति से इस ग्रन्थ को बनाया । इस ग्रन्थ की पद्धति बहुत सुन्दर शब्द गंगा से लिखा है; अक्षर गंगा से नहीं । इसलिए सभी भाषायें इसके अन्दर आगई हैं । इस ग्रन्थ के बाहर कोई भी भाषा नहीं है ।१९७-१९८।

अत्यन्त सुन्दर रचना से युक्त कर्नाटक भाषा यह आदि काव्य है ।१९९।

यह काव्य अंग ज्ञान द्वारा निकलने के कारण समस्त भाषा से भरा हुआ है । अंक लिपि सौंदरी देवी का है । उस अंक लिपि द्वारा हम बांधकर इस ग्रन्थ की रचना किये हैं । यह हृदय का अतिशय आनन्द दायक काव्य है । इस काव्य के बाहर कोई भी भाषा नहीं है । अगणित जीव राशि आदि की सभी भाषा इसके अन्दर विद्यमान है । अंक अधि-देवता के गणित द्वारा यह काव्य बांधा हुआ है ।२०० से २०४।

यह काव्य अनेक चक्र बन्धों से वंधित है ।२०५।

अनेक प्रकार का जो भी चक्र बन्ध है वह सब इस भूवलय में उपलब्ध हो जाता है ।२०६।

गणित में अनेक भङ्ग (गणित का नियम) होते हैं उनमें यदि मृग, पक्षी की भाषा निकालनी हो तो इसी गणित भङ्ग से निकालनी चाहिए ।२०७।

उस भङ्ग का नाम स्वर्ग बन्ध चक्रबन्ध भी है ।२०८।

गणित में [१] अगणित (२) गणित (३) अनन्त इस प्रकार से अनेक भेद होते हैं ।२०९।

इन तीनों बिधि और बिधान द्वारा सारे विश्व को इस ग्रन्थ में बांध दिया है ।२१०।

मृग अर्थात् तिर्यंच जीव किस प्रकार से मालूम होते हैं उस विधि को बतलाया गया है ।२११।

पक्षी जाति किस प्रकार से स्वर्ग में जाती है इस विधि को भी इस ग्रन्थ में बतलाया गया है ।२१२।

इस भूवलय में विश्व का सारा विषय उसके अन्दर भरा हुआ है ।२१३।

इस भूवलय काव्य में यदि काल के दृष्टिकोण से देखा जाय तो युग परिवर्तन की विधि भी इसके अन्दर विद्यमान है ।२१४।

सम्पूर्ण जीवों की रक्षा करनेवाला यह जैन धर्म क्या मानव की रक्षा नहीं कर सकता है अर्थात् अवश्य कर सकता है। इसी प्रकार गुरु के कहे हुए धर्म का आचरण करने से राजा शिवमार द्वारा पृथ्वी की रक्षा करने में क्या आश्चर्य है ।२१५।

इस तृष्णादि में सम्पूर्ण जोव भरे हुए हैं। इन सब जीवों की रक्षा करनेवाला यह जैन धर्म शुभकर है सर्व लक्षणों से परिपूर्ण है और स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा करनेवाले की इच्छा पूर्ण करता है ।२१६।

सम्पूर्ण जीवों को यश कर्म उदय को लाकर देनेवाला यह जैन धर्म जीव निर्वाह करनेवाले मनुष्य को सौभाग्य किस तरह देता है इसका समाधान करते हुए आचार्य जी कहते हैं कि यशकायी जीवों के दुःख को दूर करने के लिए पारा सिद्धि के उपाय को बताया है ।२१७।

यह जैन धर्म विष से व्याप्त मानव को गारुणमणि के समान विष से रहित करनेवाला है ।२१८।

जैन धर्म के अन्दर अपरिमित ज्ञान साम्राज्य भरा हुआ है ।२१९।

दश दिशाओं का अंत नहीं दिखाई पड़ता इस भूवलय रूपी ज्ञान के अध्ययन से अपना ज्ञान दिशा के अंत तक पहुंचाता है ।२२०।

यह धर्म हुडांवसर्पिणीकाल का आदि ऋषभसेन आचार्य के ज्ञान को दिखाता है ।२२१।

ऋषभसेन आचार्य से लेकर वर्तमान काल तक तीन कम नौ करोड़ मुनियों के सब ज्ञान का सांगत्य (अर्थात् भूवलय का छन्द है) से युक्त है ।२२२।

यह धर्म अनादि काल से आये हुए मदनोन्माद का नाश करनेवाला है। ।२२३।

इस काव्य रूपी ज्ञान के हो जाने पर दुर्मल रूपी कर्म को नष्ट कर देता है ।२२४।

तीन, पांच, सात और नौ यह विषय अंक हैं। सामान्य से २ अंक से अर्थात् समान अङ्क से भाग नहीं होता है इस भूवलय ग्रन्थ के ज्ञान से विषम अङ्क सम अङ्क से भाग होते हुए अन्त में शून्य आता है ।२२५।

इस अंक के ज्ञान से सूक्ष्म काल अर्थात् भोग भोगी काल की सम्पदा को दिखाता है ।२२६।

इस प्रकार समस्त ज्ञान को दिखाते हुए अन्त में आत्म सिद्धि को प्रदान करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।२२७।

श्री धरसेनाचार्य के शिष्य भूतवल्य आचार्य ने द्रव्य प्रमाण अनुवाम शास्त्र से अंक लिपि को लेकर भूवलय ग्रन्थ की रचना की थी। यह भूवलय ग्रन्थ उस काल में विशेष विख्यात और वैभव से परिपूर्ण था। नूतन प्राक्तन इन दोनों कालों के समस्त ज्ञान को संक्षेप करके सूत्र रूप से भूवलय ग्रन्थ की रचना की थी। इस भूवलय ग्रन्थ के अन्तर्गत समस्त ज्ञान भण्डार विद्यमान है ।२२८।

श्री भूतवली आचार्य का अतिशय क्या है ? तो हर्षवर्द्धन उत्पन्न करने वाला इस भारत देश का जो गुरु परम्परा से राज्य की स्थापना हुई है यही इसका अतिशय है ।२२९।

यह भारत लवण देश से घिरा हुआ है और इसी भारत देश के अंतर्गत एक वर्द्धमान नामक नगर था। उस वर्द्धमान नगर के अन्तर्गत एक हजार नगर थे। उस देश को सौराष्ट्र कहते थे और सौराष्ट्र देश को कर्माटक (कर्नाटक) देश कहते थे ।२३०।

उस देश में मागध देश के समान कई जगह उष्ण जल का झरना निकलता था। उसके समीप कहीं कहीं पर रमकूप (पारा कुआं) भी निकलते थे। उसके उपयोग को आगे करेंगे। २३१ से।२३४।

सौराष्ट्र देश का पहले का नाम निर्कलिंग था। भारत का त्रितलि नाम इसलिए पड़ा। क्योंकि भारत के तीन ओर समुद्र है यह भूमि सकनड़ देश थी इस अध्याय के अन्तर्काव्य में १५६ हजार में १६८ अक्षर कम थे।२३५।

इस भूवलय के प्लुत नामक नववें अध्याय के श्रेणी काव्य में आठ हजार सात सौ अड़तालिस (८७४८) अंकाक्षर हैं। इसका स्वाध्याय करनेवाले भव्य जीव श्री जिनेन्द्र देव के स्वरूप को प्राप्त करने की कामना करते हैं। उस कामना को पूर्ण करने वाला ९ अंक है। अर्थात् श्रेणी काव्य के ८७४८ अंक आड़ा जोड़ देने से ९ आ जाता है। यह ९ वां अंक श्री जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रतिपादित भूवलय की गणित पद्धति है। और यही अष्टम महाप्रातिहार्य वैभव भी है ।२३६।

इति नवमोऽध्यायः

ऊ ८७४८+अन्तर १४८३२=२३५८०

अथवा

अ से लेकर ऊ पर्यन्त

१, ५२, ४४२+२३, ५८०=१, ७६, ०२२

इस अध्याय को उपर्युक्त, कथनानुसार यदि ऊपर से नीचे तक पढ़ते जाएँ तो जो प्राकृत काव्य निकलकर आ जाता है उसका अर्थ इस प्रकार है:—

इस परम पावन भूवलय ग्रन्थ को हम त्रिकरण शुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हैं। यह भूवलय ग्रन्थ भव्य जीवों के अज्ञानान्धकार को नाश करने के लिए दीपक के समान है। इस दीपक रूपी ज्योति का आश्रय लेकर चलनेवाले भव्य जीवों के कल्याणार्थ हम त्रिलोक सार रूप भूवलय ग्रन्थ को कहते हैं।

इस अध्याय का स्वाध्याय यदि मध्य भाग से किया जाय तो संस्कृत भाषा इस प्रकार निकलकर आ जाती है:—

भूतबलि, गुणधर, आर्यमंक्षु, नागहस्ती, यतिवृषभ, वीरसेनाभ्याम् विरचितम् श्री श्रोतारः सावधा। इन आचार्यों द्वारा विरचित ग्रन्थ को आप लोग सावधान पूर्वक श्रवण करें।

दसवां अध्याय

ऋ* द्धि सिद्धिगळनु होन्दिसि कोडुवंक । सिद्धिय सर्वज्ञ न* वन ॥ शुद्ध केवलज्ञानदतिशय धवलदे । सिद्धवागिरुव भूवलय ॥१॥
सि* रि वीरसेन भट्टारकरुपदेश । गुरु वर्धमान श्री मुखदे । त* रतर वागि बन्दिरुवुदनेल्लव । विरचिसि कुमुदेन्दु गुरुवु ॥२॥
श्रो* दिसिदेनु कर्माटद जनरिगे। श्री दिव्य वाणिय क्रमदे । श्री द या* धर्म समन्वय गणितद । मोदद कथेयनालिपुदु ॥३॥

आदिय कथेय नालिपुदु ॥४॥ नादिय कथेयनालिपुदु ॥५॥ वेद हन्एरडनालिपुदु ॥६॥ इ दिनदादिय काव्य ॥७॥
सादि अनन्तद ग्रन्थ ॥८॥ वेदागम पूर्व सूत्र ॥९॥ वेदद हदिनाल्कु पूर्व ॥१०॥ श्री दिव्य करण सूत्रांक ॥११॥
आदिगनादि सद्वस्तु ॥१२॥ साधिक वय्भव बंध ॥१३॥ श्रोदिनध्यात्मद बन्ध ॥१४॥ श्री धन घी धन रिद्धि ॥१५॥
श्रोदिनोळव्षध सिद्धि ॥१६॥ श्रोदिनोळव्षध रिद्धि ॥१७॥ कादियिम् वर्णमालान्क ॥१८॥ कादियिम् नवमान्क बंध ॥१९॥
टादियिम् नवमान्कदंग ॥२०॥ पादियिम् नवमान्क भंग ॥२१॥ याद्यष्टरळ कुल भंग ॥२२॥ साद्यन्त अं अः कः पः द ॥२३॥
मोदद्इप्पत्तेळु स्वरद ॥२४॥ श्रोदिन अरवत्नाल्क् अन्क ॥२५॥ साधित सिद्ध भूवलय ॥२६॥

सु* रनर नागेन्द्र तिरियन्च नारक । रिरियुवेळ्नूर् एम्ब श्* ॥ वरभाषे हविनेन्ट बेरसिनाम् बरेदिहे । गुरु वीर सेन सम्मतदिम् ॥२७॥
ग्* मनिसि अखत्नाल्क् अक्षर सम्योग । विमल भंगांक रु* व्रुद्धि॥ क्रमविह अपुनरुक्तान्कद अक्षर । विमल गुणाकार मग्गि॥२८॥
गि* डिदु तुम्बिरुवनु लोमांक पद्धति । पोडवियोळतिशुद्धव ण्* ण ॥ गडियोळगदनुम् प्रतिलोमदन्कविम् । बिडिसलु बहुदेल्ल भाषे ॥२९॥
व* र भाषेगळेल्ल समयोग वागलु। सरस शब्दागम हुट्टि॥ सर व* डुमालेयादतिशय हारव । सरस्वति कोरळ आभरण ॥३०॥

परि परि वर्णद कुसुम ॥३१॥ अरहन्त वाणिय महिमा ॥३२॥ सरळवागिह कर्माटकद ॥३३॥ परम वय्विध्यांक पूर्ण ॥३४॥
गुरु परम्परेय सूत्रान्क ॥३५॥ परमात्म नोरेद रहस्य ॥३६॥ वर कुसुमाक्षर दन्क ॥३७॥ सरळवादरु प्रउड विषय ॥३८॥
गरुडगमन रिद्धि गमन ॥३९॥ शरीर सव्न्दर्यद अक्ष ॥४०॥ विरचित कुमुदेन्दु काव्य॥४१॥ अरवत् नाल्क क्षरदन्ग ॥४२॥
गुरुगळ वाक्य भूवलय ॥४३॥

ह* रुष वर्धनवा जीव राशिय काव्य । सरुवान्क सरुवाक्षर न्* अम् ॥ बरेयदे वरुव रेखांक समृद्धिय । परमाम्रुतद रचनेयिम् ॥४४॥
णु* णुपाद दुन्डाद लिपिय कर्माटक । दनुपम र ळ कुळवेरसि॥ म्* अनुजर देवर जीवराशिय शब्द । दनुपम प्राक्रुत द्रविड ॥४५॥
मो* क्ष मार्गोपदेशकवाद् एळोम्देन्दु । साक्षर अक्षरद् तु* हिन ॥ रक्षेय जगद समस्त भाषेगळिह । शिक्षेये भव्यर वस्तु ॥४६॥

रक्षणेगादिय वस्तु ॥४७॥ अक्षयानन्त सुवस्तु ॥४८॥ आक्षरद् एरडने भंग ॥४९॥ आक्षर दादि त्रिभंग ॥५०॥
शिक्षण अरवत् नाल्क् अंग ॥५१॥ सूक्ष्मांकदनुपम भंग ॥५२॥ अक्षय सुखद स्रूप ॥५३॥ शिक्षेयनादिय वस्तु ॥५४॥
लक्ष कोटिगळ श्लोकांक ॥५५॥ कक्षद पिन्छद गणित ॥५६॥ कुक्षियोळ् हुगिविरुवंक ॥५७॥ कक्ष खगोळ मंगलद ॥५८॥
लक्षण पाहुडदन्ग ॥५९॥ दीक्षावसनद त्याग ॥६०॥ तीक्षण वाग्बाणदे मृदुल॥६१॥ कक्षपुटदे चक्र भंध ॥६२॥
अक्षर बन्धद मनेगळ् ॥६३॥ चक्षुरुन् मीलनदन्क ॥६४॥ चक्षु अचक्षु सज्ञान ॥६५॥ यक्ष सञ्चक्षण वक्ष ॥६६॥
वक्षस्थल हार पदक ॥६७॥ यक्ष प्रकर्ष भूवलय ॥६८॥

ग* मनि सलिन्तु ई सर्वविषयगळ । क्रम मार्ग गणितदेसर मं* विमल विहारदे अ चरिसुव मुनिगळ गमकदतुल कलेयन्क ॥६९॥
व* शवागदेल्लरिग् ई कालदोळगेम्ब । अस्द्रुश ज्ञानद् साम् ग* त्य ॥ विषहर 'सर्व भाषाम ई' कर्माट । दसमान दिव्य सूत्रार्थ ॥७०॥
य* वेय काळिन क्षेत्रदळतेयोळ् जोविप । सविवरानन्त जीव ल* क् ॥ सुविख्यात कर्माट देशप्रदेश । सविवर कर्माटकवु ॥७१॥
ग* णित शास्त्र वदेल्ल मुगिदरु मिक्कुव । गणितव नणुरूप म* गेय्दु । जनवेने जयश्रीन्दरोळसम ख्यातद । गुणितदेकेडिसुवक्रमवु॥७२॥
व* र विश्वकाव्यदोळडगिर्प कारण । सरणियनरितवर् शु भ* द ॥ गुरुवर वीरसेनर शिष्य कुमुदेन्दु । गुरु विरचितदादि काव्य ॥७३॥
क* र्मदक्षयवेन्तो अनतु बनदक्षर । निर्वाहदोळनग ग* ळ ॥ सर्वव अनुलोम् प्रतिलोम हारद । सर्वांक मंगल विषय ॥७४॥
खो* डिकर्मवगेल्व हाडनुम् हा डद । रूढियम् हळेय कन्नड वा* ॥ गाढ प्रगाढ समरूढियज्ञानद । कूडणेयतिशय बन्ध ॥७५॥

हाडलु सुलभवादनग ॥७६॥ नोडलु मेच्चुव गणित ॥७७॥ जोडियनकद कूटदनग ॥७८॥ कुडुव पुण्यानग भंग ॥७९॥
कूडुवागले बंद लब्ध ॥८०॥ गूढ रहस्यद अंग ॥८१॥ सूढ प्रउदरिग् ओम्दे भंग ॥८२॥ गाढ रहस्य कर्मांग॥८३॥
ओडि बरलु पुण्यदंग ॥८४॥ श्रे ढिय कळेव भागांग ॥८५॥ गाढ श्री गुणकार भंग ॥८६॥ माडिद पूजानग भंग ॥८७॥
रूढियिस् बंद पुण्यानग ॥८८॥ ओडिनोल् हाडुव अनग ॥८९॥ काडिन तपदे बनदनग ॥९०॥ तौडिनोळ् गणिपनतरनग॥९१॥
ताडनवळिव दिव्यानग ॥९२॥ माडिद पुण्यानग गणित ॥९३॥ रूढियागमद सूक्ष्मानग ॥९४॥ याडिल्लदणु महा भंग ॥९५॥
गाढ भक्तिय भव्यरनग ॥९६॥ कूडिद भव्य भूवलय ॥९७॥

य* शकीर्ति नाम कर्मोदयवळिदस । दृयशद दिव्यात्म निम्ब न* द ॥ असमान द्रव्यागमद पाहुडदनग । कुसुम वर्णाक्षर माले ॥९८॥
णी* लमहानोलनामद ऋषिगळ। सालिनिम्बनुविहगणित॥ दोलेय वो* र जिनेन्द्रन वाणिय । सालिनिम् बंदिह गणित ॥९९॥
ल* क्ष्मणनर्घ चक्रेश्वर नवनग । लक्मान्कदक्ष रो* चनव॥ लक्षमवभावदिगुणिसुतगणिसिह। लक्षयांक दनुबंधकाव्य ॥१००॥
म* नुमथनजुपमदेह सम्स्थानद । घन बन्ध सम्हननव मं* त्रनवकारद सिद्धरतिशय सम्पद । देणकेय सौन्दर काव्य ॥१०१॥

जिन चन्द्रप्रभरनग धवल ॥१०२॥ मुनिसुव्रतरनक कमल ॥१०३॥ जिन मुनिमालेय कमल ॥१०४॥ घनरत्नत्रय दिव्य धवल ॥१०५॥
जिन माले मुनिमालेयनक ॥१०६॥ गणित दोळक्षर ब्रह्म ॥१०७॥ अनुभव गोचर गणित ॥१०८॥ जिनमतवर्धन धवल ॥१०९॥
तनगे आत्मध्यान धवल ॥११०॥ कुनय विधूर साम्राज्य ॥१११॥ कनकव धवलगेय्वनक ॥११२॥ तनुमन वचन शुद्ध धन ॥११३॥
विनुतद लौकिक गणित ॥११४॥ जिनर केवल ज्ञान गणित॥११५॥ थणथणवेने श्वेतस्वर्ण ॥११६॥ चणक प्रमाणवे मेरु ॥११७॥
जण जण होळेव दिव्यांक ॥११८॥ पण वळिदिह सद्गणित ॥११९॥ गुण स्थानदनुभव गणित ॥१२०॥ जिनर अयोगद गणित॥१२१ ।
सनुमत काव्य भूवलय ॥१२२॥

म* रळि मार्गणस्थानदनुभव योगद । मर जोवरसमास दरि ग* ॥ वरुषव समयव कल्पव समयव । वह समयदोळननन्तानक ॥१२३॥
ह* रडुत तनगुत बेरेयुत हरियुत । सरुव पुद्गल होन्दि सर लं* बरुत होगुत निळ्व जोवराशिगळनक । करगदे तोरुवनन्त ॥१२४॥
णी* चातिनीच जीवनद जीवरनेल्ल। आचेगे सागिप दिव्य॥ राचमं भ* द्र मन्गलद पाहुड काव्य । ईचेगाचेगे अन्तरदिम् ॥१२५॥
लो* कदोळगे भद्रवागिसि पिडिदिर्दु । लोकदग्रके बन्धिसि ग* ॥ श्री करवागिरिसिर्प कल्याणद । शोकापहरणद अनक ॥१२६॥

नाकाग्र श्री सिद्ध काव्य ॥१२७॥ व्याकुल हरि सिद्ध काव्य ॥१२८॥ आकाररहित दिव्यान्ग ॥१२९॥ एकाग्र ध्यान सम्प्राप्त ॥१३०॥
ओकार वरजित शब्द ॥१३१॥ ओम्कार गोचर वस्तु ॥१३२॥ ह्रोम् कार दाराध्य वस्तु ॥१३३॥ ह्रूम्कार दतिशय वस्तू ॥१३४॥
ह्लूम्कार राराध्य सम्ज्ञा॥१३५॥ हरीमकार गोचर वस्तु॥१३६॥ ह्रोम्कार पूजित गर्भ ॥१३७॥ ह्र्ओम्कार दतिशय वस्तु॥१३८॥
ह्रम्कार राराध्य सव्ज्ञ ॥१३९॥ ह्रह्कार गोचर वस्तु ॥१४०॥ शम्का विरहित भूवलय ॥१४१॥

ण* वकारमन्त्रदोळादिय अरहन्त । शिव पद कय्लास गिरि वा* सवे श्री समवसरण भूमियतिशय । जवम्जव सम्हार भूमी ॥१४२॥
व* र भद्र कारणवदनु मंगलवेन्दु । गुरु परम्परेय अ न्* गवदु॥ परमात्म सिद्धिय कारणागमन व। सिरिवर्धमान वाक्यांक॥१४३॥
ण* र सुर तिरियन्च नारकि जीवर्गे । परि परि सम्यक्त्वद गौ* चरियद चारित्र्य लब्धि कारणवागे । अरहन्त भाषित वाक्य ॥१४४॥
उ* सह तीर्थन् करवादि इप्पत्नाल्कु । यश धर्ध तीर्थर त* त्व ॥ वशवाद भव्यर सम्सारदन्त्यवु । जसदन्ते बन्दोदगेवुदु ॥१४५॥
दी* व सागर गिरिगुहे कन्दरवा। ठाविनोळिरुव निर्वाण॥ भूवि मो* क्षदनेलेवनेयद तोरुव । पावन मंगल काव्य ॥१४६॥

श्री वीरवाणि ओम्कार ॥१४७॥ कावन सम्हार नेलवु ॥१४८॥ आ विश्व काव्यांग धर्म ॥१४९॥ ई विद्य अरवत् नाल्क् अंक ॥१५०॥
वय्विध्य कर्म निर्जरेय ॥१५१॥ श्री विद्य पुण्य बन्धकर ॥१५२॥ पावन शिव भद्र विश्व ॥१५३॥ ई विश्व वय्भवद् अंक ॥१५४॥
काव पुण्यान्कुर वृक्ष ॥१५५॥ देवर देवन क्षेत्र ॥१५६॥ ई विश्वदर्शन ज्ञान ॥१५७॥ एवेळ्वेनतिशय विदरोळ् ॥१५८॥
श्री वीरनुपदेशदन्क ॥१५९॥ आ विश्वदन्चिन चित्र ॥१६०॥ कावनेरिद दिव्य भूमी ॥१६१॥ श्री विश्व काव्य भूवलय ॥१६२॥

को* टा कोटि सागरगळनळेयुवा । पाटिय कर्म सिद्धांत ॥ दाटव ग* णिसुव विधिय द्रव्यागम भाटान्क वय्भवमल ॥१६३॥
ड्* मरुगविन्द शब्दवु हुट्टे जडवदु । क्रमवल्लवदर ए णी* केयु॥ विमलजीवद्रवदिम्बंदद्रव्यवे। अमलशब्दागमवरियय् ॥१६४॥
ई* गणहिन्दण नादिय मुन्दण । तागुवनन्त कालवनु ॥ श्री गुरु मं* गल पाहुडदिम् पेळ्द । रागविराग सद्ग्रन्थम् ॥१६५॥
ओ* कारदोळु विन्दुवदनु कूडिसलन्त । ताकिदक्षर ओम् अन् गं* श्रीकर सुखकर लोक मंगल कर । दाकार शब्द साम्राज्य ॥१६६॥

वयाकुल हरदन्क भंग ॥१६७॥ साकारदतिशयदन्ग ॥१६८॥ आकार रहित दाकार ॥१६९॥
आकारवदे निराकार ॥१७०॥ एक द्वि त्रि चतुह् भंग ॥१७१॥ आकडे ऐदारु भंग ॥१७२॥
ज्योकेयोळ् एळेन्दु भंग ॥१७३॥ साकु भाषे एळ्नूर् हदिनेन्दु ॥१७४॥ 'ओ' कार'अ'क्षर कळेय ॥१७५॥
लोकद भाषेगळ् बबुदु ॥१७६॥ श्री कारवदु द्वि संयोग ॥१७७॥ नूकलु मूरु अक्षरवम् ॥१७८॥
आकारद् आरु भन्गविदे ॥१७९॥ हाकलु नाल्कु भन्गदोळु ॥१८०॥ जोकेयोळ् हदिनारु भन्ग ॥१८१॥
बेकागे ऐदु अक्षरवम् ॥१८२॥ आकार इप्पत्ऐद् अन्ग ॥१८३॥ एक मालेयोलारक्षरद ॥१८४॥
आ कारद एप्पत् एरडु ॥१८५॥ हाकलु एलु अक्षरव ॥१८६॥ साकार नूरिप्पत् अन्ग ॥१८७॥
बेकागे एन्टु अक्षरव ॥१८८॥ साकलु एळ्नूरिप्पत्तु ॥१८९॥ ताकुव भाषे भूवलय ॥१९०॥

तु* ळियुवुदादि अन्त्यदेरळ् अक्षरगळ । बळि सारुव लं* भाषे॥ बळिसार्दक्षुल्लकद्एलन्नूररभाषे। बाळेसिरिमहाहदिनेन्टम्१९१
न्* वदन्कवनेरडन्कवन् आगिसे । सवियादि देव मानवरु ॥ तव्ए कं* दव महाभाषेगळ् पुट्टलु । भुविय समस्त मातुगळु ॥१९२॥
गि* र्वाग्वाणि सरस्वति रूपिन । सर्वज्ञ वाणियोम्दागि॥ सार् द* द्रव्यागम् श्री जिनवाणिय । निर्वाहदतिशय पाठ ॥१९३॥

गि* रि गुहे कन्दरदोळगे होकगे निन्दु । अरहन्त वाणिय बळि कुं* सर मालेयोळगेल्ल भाषेय बलेसुव । गुरु परम्परे यादि भंग ॥१९४॥
रि* षि वर्धमानर मुखदन्गवेन्देने । होसेवेल्ल मेय्इन्द् दा* होरदु॥ रस वस्तु पाहुड मंगल रूपद । असदृश वय्भवभाषे ॥१९५॥
वशकाद दिव्याक्षरान्क ॥१९६॥ रिषिवम्श दादिय भाषे ॥१९७॥ कसिय द्रव्यागम भाषे ॥१९८॥
विष वाक्य सम्हार भाषे ॥१९९॥ वशवागलात्म सम्सिद्धि ॥२००॥ विषयाशा हरण दिव्याँग॥२०१॥
रसद् अरवत् नाल्कु भंक ॥२०२॥ यशदेरळ् अन्गय् बरेह ॥२०३॥ रस वस्तु त्याग धर्व्योंग॥२०४॥
यशदंक भन्ग भूवलय ॥२०५॥ रस सिद्धियादिय भन्ग ॥२०६॥ यशस्वति पुत्रियरन्गम् ॥२०७॥
रस रेखेयतिशय काव्य ॥२०८॥
णि* ज तत्व एळर भाजितदिम् बन्द । अजनादि देवन वाणि॥ बिज द्* वय विजय धवलदन्क राशिय। स्रुजसिद अतिशय धवल ॥२०९॥
व्* रदवाद एळनूर हदिनेन्दु भाषेय । सरमालेयागलुम् विद् या* सरणियोळ् मूरुनूररवत्मूर् अंकदे । परितरलागिदेमतवम् ॥२१०॥
वु* ळिद धवलवु महा धबलांकद । बळिसार लेरडे भाषे ॥ कळे जो* व धर्मोस्तु मन्गलम् काव्यवु । बळिक श्री जय धवलांग ॥२११॥
दे* वागम स्तोत्रवादि महोन्नत । पावन पाहुड ग्रन्थ ॥ तोवे व* र्पागम वेल्लवु तुम्बिह । श्री विजयद भूवलय ॥२१२॥
पावन महासिद्ध काव्य ॥२१३॥ देवन वचन सिद्धान्त ॥२१४॥ श्री वीर वचन साम्राज्य ॥२१५॥
श्री वनवासिय काव्य ॥२१६॥ देव जिनेन्द्रर वचन ॥२१७॥ देवरष्टम जिन काव्य ॥२१८॥
देंव शान्तीशन मार्ग ॥२१९॥ देव आदीशन चरण ॥२२०॥ काव दोर्वलिय सौन्दर्य ॥२२१॥
श्री विश्व सिद्धांत वचन॥२२२॥ देववाणिय दिव्य भाव॥२२३॥ भाव प्रमाणद काव्य ॥२२४॥
देवन भाव प्रमाण ॥२२५॥ पावन तीर्थद गणित ॥२२६॥ ई वनवासद तीर्थ ॥२२७॥
भावद भल्लातकाद्रि ॥२२८॥ श्री विश्व भ्यषज्य ग्रन्थ ॥२२९॥ पाव कर्मोदय नाश ॥२३०॥
साविर रोग विनाश ॥२३१॥ श्री वर सौभाग्य मंग ॥२३२॥ देवन वचन भूवलय ॥२३३॥
व* शवहुद् इल्लि श्री स्वसमय सारव । रसिकात्म द्रव्य ध* र्मोस्तु ॥ वशवाद ध्यातमद सारसर्वस्ववे। रसद मंगल पाहुडवु ।२३४।
न्* वदन्कदिम्बन्द कर्मांक गणितदे । अवतरिसिरुव ध र्* माक्ष ॥ रव अंकद ध्यान स्वसमय काव्यद। सवियिह् भद्र मंगलवु।२३५।
दे* व जिनेन्द्रन वाणिय प्राभृत। दाविश्व काव्य दर्शन मो* क्षावनि गोय्युव नेराद मार्गद । ई विश्व वतिशय धवल ॥२३६॥
प* डिहार दतिशय वेन्टन्क वागलु । गुडियतिशय काव्य सद स्* त् वडगुडिदागिल्लि बरुवंक वय्भव। म्रुडनञग धवल शुभ्रांक ॥२३७॥
व्* वएसदतिशय महनीय वाणिय । सविय लाञ्छनदुदयव्अ तु* विवरदजगोसाञग मिदु मधुरतेयिह । सविवर दिव्य मन्गलवु ॥२३८॥
द्* रुशिसे 'ऋ' अक्षर हत्तन्तर । दिरुवन्कवदरलि बरुव ॥ मं* रकतवय्दोम्बत् एळु ऐद्ओम्दु । सरि गूडिसल् 'ऋ' भूवलय ॥२३९॥
ए* रिसि बरुवन्कदा मूलदक्षर । दारय्केयतिशय्अद् अन्ञ ग* सेरलेन्ट् नाल्केळु एन्टाद काव्यदु । दारते यरसुव (दारतेये बर्प)
भञग ॥२४०॥

ऋ+८७४८+अन्तर १५,७९५=२४,५४३ अथवा अ—ऋ ग, १७६,०२२+२४,५४३=२,००,५६५ ।

दसवां अध्याय

धवल, जयधवल, विजय धवल, महाधवल इन चारों धवलों में रहने वाले अतिशय को अपने अन्दर समावेश करने वाला यह भूवलय सर्वज्ञ देव के शुद्ध केवल ज्ञान रूपी अतिशय के द्वारा निकलकर आया हुआ है। केवल ज्ञान में जगत के सम्पूर्ण ऋद्धि और सिद्धि इन दोनों को अपने अन्दर जैसे वह समावेश कर लिया है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी अपने अन्दर विश्व के सम्पूर्ण पदार्थ को अन्दर कर लिया है।१।

जैसे श्री भगवान महावीर के श्री मुख कमल से अर्थात् सर्वांग से तरह तरह की आई हुई सर्व भाषाओं को श्री वीरसेन आचार्य ने संक्षेप में उपदेश किया था उन सबको मैं श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने सुनकर इन सब विषयों को भूवलय ग्रन्थ के नाम से रचना की।२।

श्री दिव्य ध्वनि के क्रम से आये हुए विषय को तथा धर्म के साथ समन्वय करके समस्त कर्नाटक देशीय जनता को एक प्रकार की विचित्र गणित कथा श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने जो बतलाया है उसे हे भव्य जीवात्मन् ! तुम सावधान होकर श्रवण करो।३।

आदि तीर्थंकर श्री वृषभ देव से लेकर आज तक चलाये गये समस्त कथाओं को हे भव्य जीव ! तुम सुनो।४।

इतना ही नहीं बल्कि इससे बहुत पहले यानी अनादि काल से प्रचलित को गई कथा को हे भव्य जीव तुम ! सुनो।५।

हे भव्य जीव ! तुम आचारांगादि द्वादशांग वाणी को सावधानतया सुनो।६।

यह भूवलय काव्य अनादि कालीन है, किन्तु ऐसा होने पर भी गणित के द्वारा गुणाकार करके इसकी रचना वर्तमान काल में भी कर सकते हैं, अतः यह आधुनिक भी है।७।

अनन्त के अनाद्यनन्त, साद्यनन्त, सादिसान्त, साद्यनन्त इत्यादिक भेद हैं। उन भेदों में से यह भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ साद्यनन्त है।८।

भगवान् जिनेन्द्र देव की वाणी, वेद, आगम, पूर्व तथा सूत्र इत्यादिक विविध भेदों से युक्त है और वह सब इस भूवलय में गर्भित है।९।

भगवान् की उपर्युक्त वाणी अग्रेयणीयादि चौदह पूर्व भी है।१०।

नौ अंक को घुमाकर सकलागम निकालने की विधि को श्री दिव्य कर्णांक सूत्र कहते हैं।११।

चौदह पूर्व में अनेक वस्तुयें हैं और वे सभी आदि व अनादि दोनों प्रकार की हैं। अतः यह भूवलय वस्तु भी है।१२।

द्वादशांग वाणी का बन्धपाहुड भी एक भेद है। और बन्ध में सादि-बन्ध, अनादि बन्ध, ध्रुव बन्ध, अध्रुव बन्ध, क्षुल्लक बन्ध, महा बन्ध, इत्यादि विविध भांति के भेद हैं। उपर्युक्त सभी बन्ध इस भूवलय में विद्यमान हैं।१३।

जो महात्मा योग में मग्न हो जाते हैं उसे आध्यात्मिक बन्ध कहते है।।१४।

श्री धन अर्थात् समवशरण रूपी वहिरङ्ग लक्ष्मी और धन अर्थात् केवलज्ञान ये दोनों ऋद्धियाँ सर्वोत्कृष्ट हैं।१५।

औषधिऋद्धि के अंतर्गत मल्लौषधि जल्लौषधि इत्यादि आठ प्रकार की ऋद्धियाँ होती हैं। वे सभी ऋद्धियां इस भूवलय के अध्ययन से सिद्ध हो जाती हैं। इन सबको पढ़ने के लिये क अक्षर की वर्णमाला से प्रारम्भ करना चाहिये।१६-१७-१८।

कादिसे नवमाङ्क बन्ध, टादि से नवमाङ्कदंग, पादि से नवमाङ्क भंग, याद्यष्टरलकुल भंग, साद्यन्त से ०, ः, ँ, ः: और २७ स्वर से भङ्गाङ्क, वर्णमालाङ्क, तथा बन्धाङ्क इत्यादि अनेक गणित कला से सभी वेद को ग्रहण करना चाहिये। अथवा ६४ अक्षराङ्क के गुणाकार से भी वेद को ले सकते हैं। ऐसे गणित से सिद्ध किया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है।

।१९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६।

देव, मानव, नागेन्द्र, पशु, पक्षी, इत्यादि तिर्यञ्च समस्त नारकी जीवों की भाषा ७०० और महाभाषा १८ हैं। इन दोनों को परस्पर में मिला कर इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हमने (कुमुदेन्दु मुनि ने) की है। इस रचना की शुभ सम्मति हमें पूज्य पाद श्री वीरसेनाचार्य गुरुदेव से उपलब्ध हुई है।२७।

हमने ६४ अक्षरों के संयोग से वृद्धि करते हुये अपुनरुक्ताक्षराङ्क रीति से गुणाकार करके इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की है ।२८।

जिस प्रकार षड् द्रव्य इस संसार में एक के ऊपर दूसरा कूट कूटकर भरा हुआ है उसी प्रकार ६४ अक्षरों के अन्तर्गत अनुलोम क्रम से समस्त भाषायें भरी हुई हैं। संसार में यह पद्धति अद्भुत तथा परम विशुद्ध है। इस भरे हुए अनुलोम क्रम को प्रति लोम क्रम से विभाजित करने पर संसार की समस्त भाषायें स्वयमेव आकार प्रकट हो जाती है ।२९।

इसी प्रकार समस्त भाषाओं का परस्पर में संयोग होने से सरस शब्दागम की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् समस्त भाषायें परस्पर में गुंथी हुई सुन्दर माला के समान सुशोभित हो जाती हैं और वह माला सरस्वती देवी का कंठाभरण रूप हो जाती है ।३०।

उस माला में विविध भाँति के पुष्प गुंथे रहते हैं। उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ में भी ६४ अक्षरांक रूपी सुन्दर २ कुसुम हैं ।३१।

यह भूवलय रूपी माला अर्हंत भगवान् की वाणी की अद्भुत् महिमा है ।३२।

यह भूवलय समस्त कर्मबद्ध जीवों की भाषा होने पर भी अर्थात् कर्माटक भाषा की रचना सहित होते हुए भी बहुत सरल है ।३३।

यह भूवलय परमोत्कृष्ट विविधांक से परिपूर्ण है ।३४।

यह वृषभ सेनादि सेन गण की गुरुपरम्पराओं का सूत्रांक है।३५।

अर्हन्त भगवान् की अवस्था में जो आभ्यन्तरिक योग था वह रहस्यमय था, किन्तु उसका भी स्पष्टी करण इस भूवलय शास्त्र ने कर दिया ।३६।

जिस प्रकार पुष्प गोलाकार व सुन्दर वर्ण का रहता है उसी प्रकार ६४ अक्षरांक सहित यह कर्माटक भाषा गोलाकार तथा परम सुन्दर है ।३७।

इस भूवलय का सांगत्य नामक छन्द अत्यन्त सरल होने पर भी प्रौढ़ विषय गर्भित है ।३८।

आकाश में गरुड़ पक्षी के समान गमन (उड्डान) करना एक प्रकार की ऋद्धि है किन्तु वह भी इस भूवलय में गर्भित है ।३९।

कामदेव के शरीर में जितना अनुपम सौंदर्य रहता है उतना ही सौंदर्य ६४ अक्षरांकमय इस भूवलय में है ।४०।

इस प्रकार विविध भांति के सौंदर्य से सुशोभित श्री कुमुदेन्दु आचार्य विरचित यह भूवल काव्य है ।४१।

अनादिकाल से दिगम्बर जैन साधुओं ने इन्हीं ६४ अक्षरों के द्वारा ही द्वादशाङ्ग वाणी को निकाला था ।४२।

इस प्रकार समस्त गुरुओं का वाक्य रूप यह भूवलय है ।४३।

किन्तु उन सबको दुःखों से छुड़ाकर सुखमय बनाने के लिए सर्वांक अर्थात् ९ तथा सर्वाक्षर अर्थात् ६४ अक्षर हैं। क्षर का अर्थ नाशवान् है, किन्तु जो नाश न हो उसे अक्षर कहते हैं। और एक एक अक्षरों की महिमा अनन्त गुण सहित है। इन ६४ अक्षरों का उपदेश देकर कल्याण का मार्ग दिखलाना महत्व पूर्ण विषय है। इतना महत्वपूर्ण अक्षर अंक के साथ सम्मिलित होकर जब परम सूक्ष्म ९ बन जाता है तो उसकी महिमा और भी अधिक बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त ९ अंक सूक्ष्म होने पर भी गणित द्वारा गुणाकार करने से जब अत्यन्त विशाल बन जाता है तब उसकी महानता जानने के लिए रेखागम का आश्रय लेना पड़ता है। अंकों को रेखा द्वारा जब काटा जाता है तब यह भूवलय परमामृत नाम से सम्बोधित किया जाता है ।४४।

र ल क्र ल ये कर्णाटक भाषा में प्रसिद्ध विषय हैं। यह लिपि अत्यन्त गोल व मृदुल है। अतः मानव, देव तथा समस्त जीवराशियों का शब्द संग्रह करने में समर्थ है। वह अनुपम भाषा प्राकृत और द्रविड़ है ।४५।

भाषात्मक तथा अक्षरात्मक भगवान् की दिव्य वाणी रूपी ७१८ भाषायें संसार के समस्त जीवों को मोक्ष मार्ग का उपदेश देनेवाली हैं। और अखिल विश्व की रक्षा करती हुई भव्य जीवों को शिक्षा देनेवाली हैं ।४६।

यह भगवद् वाणी समस्त जीवों की रक्षा के लिए आदि वस्तु है। ।४७।

यह अक्षयानन्तात्मक वस्तु है ।४८।

यह आ अक्षर का द्वितीय भंग है ।४९।

यह आ २ (प्लुत) अक्षर का तृतीय भंग है ।५०।

इस रीति से भंग करते हुए ६४ अक्षर तक शिक्षण देनेवाला यह गणित का अंग ज्ञान है अर्थात् द्रव्य प्रमाणानुगम द्वार है ।५१।

यह सूक्ष्मांकरूपी अनुपम भंग है ।५२।

यह अक्षय सुख को प्रदान करनेवाला गणित का रूप है ।५३।

इसी प्रकार यह अनादि काल से शिक्षा देनेवाला गणित शास्त्र है ।५४।

यह लाख लाख तथा करोड़ करोड़ संख्या को सूक्ष्म में दिखानेवाला अंक है ।५५।

दिगम्बर जैन मुनि अहिंसा का साधन भूत अपने बगल में जो पीछी रखते हैं उसके अत्यन्त सूक्ष्म रोम की गणना करने से द्वादशांग वाणी मालूम हो जाती है ।५६।

विवेचन—श्री भूवलय के प्रथम अध्याय के ४८ वें श्लोक में नागार्जुन सिद्ध का विषय आया है। उन्होंने अपने गुरु देव श्री पूज्यपाद आचार्य जी से कक्षपुट नामक रसायन शास्त्र का अध्ययन करके रसमणि सिद्ध किया था। उस मणि से उन्होंने गगनगामिनी, जलगामिनी तथा स्वर्णवाद इत्यादि ८८ महाविद्या का प्रयोग बतलाकर संसार को आश्चर्य चकित कर दिया था। और इसी ८८ महाविद्या के नाम से ८८ कक्षपुट नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह समस्त ग्रन्थ "हक" पाहुड से सम्बन्धित होने के कारण भूवलय के चतुर्थ-खण्ड प्राणावायपूर्व विभाग में मिल जायगा।

ये समस्त विद्यायें दिगम्बर जैन मुनियों के हृदयङ्गत हैं ।५७।

यह समस्त कक्षपुट मंगल प्राभृत से प्रकट होने के कारण खगोल विज्ञान सहित है ।५८।

यह पाहुड ग्रन्थ अङ्ग ज्ञान से सम्बन्ध रखता है ।५९।

जो व्यक्ति दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जब अपने समस्त वस्त्रों को त्याग देता है तब उसे इस कक्षपुट का ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।६०।

इस कक्षपुट को यदि व्याख्या करने बैठें तो वाक्य तीक्ष्ण रूप से निकलता है, पर ऐसा होने पर भी वह मृदुल रहता है ६१।

भूवलय को यदि अक्षर रूप में बना लिया जाय तो चतुर्थ खण्ड में कक्षपुट निकलता है। उसी कक्षपुट को चक्रबन्ध करने से एक दूसरा कक्षपुट तैयार हो जाता है। इसी प्रकार बारम्बार करते जाने से अनेक कक्षपुट निकलते रहते हैं ।६२।

इन्हीं कक्षों में जगत् के रक्षक अक्षर बन्धों में समस्त भाषायें निकलकर आ जाती हैं। ६३।

यह कक्ष पुटाङ्कन पढ़नेवालों के चक्षु को उन्मीलन करके केवल अंक मात्र से ही समस्त शास्त्रों का ज्ञान करा देता है ।६४।

शास्त्रों में दर्शन और ज्ञान दोनों समान माने गये हैं। दर्शन में चक्षु दर्शन व अचक्षु दर्शन दो भेद हैं। इन दोनों दर्शनों का ज्ञान इस कक्षपुट से हो जाता है ।६५।

यह कक्षपुट विविध विद्याओं से पूरित होने के कारण यक्षों द्वारा संरक्षित है ।६६।

यह कक्षपुट भूवलय ग्रन्थ के अध्येता के वक्षः स्थल का हारपदक है अथवा भूवलय रूपी माला के मध्य एक प्रधान मणि है ।६७।

यह भूवलय ग्रन्थ जिस पक्ष में व्याख्यान होता है उसे पराकाष्ठा पर पहुंचाने वाला होता है ।६८।

उपर्युक्त समस्त विषयों को ध्यान में रखते हुए क्रमागत गणित मार्ग से दिगम्बर जैन मुनि अपने विहार काल में भी शिष्यों को सिखा सकते हैं ।६९।

इस समय यह अद्भुत् विषय सामान्य जनों के ज्ञान में नहीं आ सकता। यह सांगत्य नामक छन्द असदृश ज्ञान को अपने अन्दर समा लेने की क्षमता रखता है। और सर्वभाषामयी कर्माटभाषात्मक है। इसलिए यह दिव्य सूत्रार्थ भी कहलाता है ।७०।

यव (जौ) के खेत में रहकर अनन्तानन्त सूक्ष्म कायिक जीव अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इस रीति से सुविख्यात कर्माट देश एक प्रदेश होता हुआ भी समस्त कर्माष्टक अर्थात् समस्त विश्व की कर्माष्टक भाषा को अपने अन्दर समाविष्ट करता है ।७१।

गणित शास्त्र का अन्त नहीं है। किन्तु उन सबको अणुरूप में बनाकर एक समय में असंख्यात गुणित क्रम से कर्म को नाश करनेवाली विधि को वह बतलाता है ।७२।

यह गणित शास्त्र इस विश्व व्यापक भूवलय काव्य के अन्तर्गत है। अतः गुरु श्रेष्ठ श्री वीरसेनाचार्य का शिष्य मैं (कुमूदेन्दु मुनि) इस गणित शास्त्रमय भूवलय काव्य की रचना करता हूं ।७३।

जिस प्रकार कर्मों का क्षय होता है उसी प्रकार अक्षरों की वृद्धि होती रहती है। वृद्धिगत उन समस्त अक्षरों को गणित शास्त्र में बद्ध करके अनुलोम प्रतिलोम भागाहार द्वारा मंगल प्राभृत नामक एक खण्ड बना दिया ।७४।

दुष्कर्मों का कथनाक प्राचीन कन्नड़भाषा में रूढ़ि के अनुसार वर्णन किया गया था। वह गाढ़ प्रगाढ़ शब्द समूहों से रचित होने के कारण कठिन था। किन्तु भगवान् जिनेन्द्र देव की दिव्य वाणी समस्त जीवों को समान रूप से कल्याणकारी उपदेश प्रदान करती है। इस उद्देश्य से इसे अतिशय बन्ध रूप में बांधकर अत्यन्त सरल बना दिया ।७५।

ऐसा सुगम हो जाने के कारण सर्व साधारण जन इस समय इस भूवलय का स्तुति पाठ सुमधुर शब्दों में प्रसन्नता पूर्वक गान करते रहते हैं ।७६।

भूवलयान्तर्गत इस अद्भुत् गणित शास्त्र को देखकर विद्वज्जन आश्चर्य चकित हो जाते हैं ।७७।

यह गणित शास्त्र युगल जोड़ियों के समूह से बनाया गया है ।७८।

इन युगलों को जब परस्पर में जोड़ते जाते हैं तब अपने पुण्याङ्क का भंग भी निकलकर आ जाता है ।७९।

जोड़ने के समय में ही लब्धांक आ जाता है ।८०।

यह गणित शास्त्र द्वादशांग वाणी को निकालने के लिए गूढ़ रहस्यमय है ।८१।

सांगत्य नामक सुलभ छन्द होने के कारण यह भूवलय मूढ़ और प्रौढ़ दोनों के लिए सुगम है ।८२।

यह भूवलय प्रगाढ़ रहस्यों से समन्वित होने पर भी अत्यन्त सरल है ।८३।

सुन्दर शब्दों में गान किये जाते हुए इस भूवलय ग्रन्थ को अत्यन्त उत्कण्ठा से श्रवण करने के लिए दौड़कर आये हुए श्रोतागण पुण्यबन्ध कर लेते हैं ।८४।

महांक राशि को श्रेणी कहते हैं। उन श्रेणियों को छोटे अंक से घटाकर भाग देने की विधि भी इस भूवलय में बतलाई गई है ।८५।

इसके साथ साथ इसमें महान् अंकों को महान् अंकों द्वारा गुणाकार करने का भंग भी है ।८६।

बहुत दिनों से श्री जिनेन्द्र देव की, की हुई पूजा का फल कितना है ? वह सब गणित द्वारा मालूम किया जा सकता है ।८७।

ऐसी गणना करते हुए वर्तमान काल में भी पूजा करने का पुण्यबन्ध हो जाता है ।८८।

संगीत शास्त्र के घंटावाद्य नामक नाद में भी इस भूवलय कागान कर सकते हैं ।८९।

दिगम्बर जैन मुनि, जंगलों में तपस्या करते समय इन समस्त विद्याओं को सिद्ध किये हैं ।९०।

धान के ऊपर का मोटा छिलका निकाल देने के बाद चावल के ऊपर एक हल्का बारीक छिलका रहता है। उस बारीक छिलके को कूटने से जो सूक्ष्म कण तैयार होते हैं उन कणों की गणना करके दिगम्बर जैन मुनि अपने कर्म कणों को भी जान लेते हैं ।९१।

यह भूवलयान्तर्गत गणित शास्त्र अन्य गणितों से अकाट्य है ।९२।

इस गणित से किये हुए पुण्य कर्मों की गणना भी कर सकते हैं ।९३।

यह परम्परागत रूढ़ि के आगम से आया हुआ सूक्ष्मांक गणित है ।९४।

यह परमाणु भंग भी है और वृहद् ब्रह्माण्ड भंग भी। इसलिए इसकी समानता अन्य कोई गणित नहीं कर सकता ।९५।

परम प्रगाढ़ भक्ति से अध्ययन करनेवाले भव्य भक्तों के अंतरंग में झलकने वाला यह गणित शास्त्र है ।९६।

पुण्योपार्जनार्थ एकत्रित होकर परस्पर में चर्चा करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।९७।

नामकर्म में अनेक उत्तर प्रकृतियां हैं। उनमें एक यश कीर्ति नामक प्रकृति भी है। उस प्रकृति का उदय यदि जीव में हो जाय तो सर्वत्र प्रशंसा हो जाती है। सामान्य जीव प्रशंसा प्राप्त हो जाने से गर्वित हो जाते हैं; किन्तु

जो महापुरुष समुद्र के समान गम्भीर रहते हैं उन्हीं महात्माओं की कृपा से असमान द्रव्यागम पाहुड ग्रन्थ कुसुम- वर्णाक्षर माला से विरचित है।९८।

इस गणित शास्त्र से १२ अंग शास्त्र को निकालकर रामचन्द्र के काल से नील और महानील नामक ऋषि ने इस भूवलय नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उसी पद्धति के अनुसार श्री महावीर भगवान् की वाणी के प्रवाह से इस भूवलय शास्त्र का गणित उपलब्ध हुआ।९९।

लक्ष्मण अर्द्धचक्री थे। उनके द्वारा छोड़ा गया वाण बड़े वेग से जाता था। उस वेग की तीव्रतर गति को भाव से गुणा करके आये हुए गुणनफल के साथ मिला हुआ यह भूवलय काव्य का गणित है। इसलिए इसकानाम अनुबन्ध काव्य भी है।१००।

मन्मथ का शरीर अनुपम था। संस्थान और संहननबन्ध भी उत्तम था तथा नवकार मन्त्र के समान वह पूर्णता को प्राप्त कर लिया था। इन सबका और सिद्ध परमेष्ठी के आठ मुख्य गुण रूप अतिशय सम्पदा की गणना करते हुए लिखित काव्य होने से इसे सुन्दर काव्य भी कहते हैं।१०१।

श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र देव का शरीर धवल वर्ण होने से यह भूवलय ग्रन्थ भी धवल है। अथवा इस भूवलय ग्रन्थ से धवल ग्रन्थ भी निकलता है इस अपेक्षा से भी यह धवल है।१०२।

मुनि सुव्रत जिनेन्द्र के समय में पद्मपुराण प्रचलित हुआ इसलिये यह भूवलय ग्रन्थ पद्मपुराण कहलाता है।१०३।

तीनों काल में ७२ जिनेन्द्र देव, अनेक केवली भगवान् तथा तीन कम ९ करोड़ आचार्य होते हैं। उन सबका माला रूप कथन इस प्रथमानुयोग में है और वह प्रथमानुयोग इसी भूवलय में गर्भित है।१०४।

रत्नत्रयात्मक धर्म शुद्ध धवल है। गणित शास्त्र से ही जिन माला और मुनिमाला दोनों को ग्रहण कर सकते हैं। गणित से ही अक्षर ब्रह्म का स्वरूप निकलता है और यह गणित कठिन न होकर अनुभव गोचर है। यह धवल रूप जिन धर्म वृद्धिगत वस्तु है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से आत्मध्यान की सिद्धि प्राप्त होती है। एकान्त हठको दुर्नय कहते हैं। उस दुर्नयको दूर करके अनेकान्त साम्राज्य को लाने वाला यह ग्रन्थ है।१०५ से १११ तक।

इस संसार में काले लोहे को विज्ञान अथवा विद्या के बल से सोना बनाया जा सकता है; पर इस भूवलय में उस स्वर्ण को धवल वर्ण बना सकते हैं।११२।

यह तन, मन वचन शुद्ध धन है।११३।

यह समस्त संसार के द्वारा पूजनीय लौकिक गणित है।११४।

यह भगवान जिनेश्वर के केवल ज्ञान से निकला हुआ भूवलय है।११५।

यह संतप्त स्वर्ण के समान चमकनेवाला है।११६।

चने के बराबर सुमेरु पर्वत है।११७।

अत्यन्त तेजस्वी किरणों से दीप्तिमान यह दिव्याङ्क है।११८।

मलिनता से रहित परम निर्मल यह गणित शास्त्र है।११९।

यह गुण स्थान के अनुभव द्वारा आया हुआ गणित है।१२०।

यह भगवान् जिनेन्द्र देव का अयोगरूप गणित है।१२१।

यह भूवलय शास्त्र समस्त जीवों के लिए सन्मति रूप है।१२२।

गति, जाति आदि १४ मार्गणा स्थान अनुभव करने के योग में एकेन्द्रियादि १४ जीव समासों का ज्ञान पैदा होता है और ज्ञान के पैदा होने के समय में काल गणना रूप ज्ञान आवश्यक है। वह इस प्रकार है कि जैसे एक वर्ष में १२ माह होते हैं, १ माह में ३० दिन होते हैं, १ दिन में २४ घंटे होते हैं, १ घंटे में ६० मिनट होते हैं और १ मिनट में ६० सैकण्ड होते हैं उसी प्रकार सर्वज्ञ देव ने जैसा देखा है वैसे ही काल के सर्व जघन्य अंश तक अभिन्न रूप से चले जाने पर सबसे छोटा काल मिल जाता है। ऐसे काल को एक समय कहते है। जिस प्रकार १ वर्ष का काल ऊपर बतलाया गया है उसी प्रकार उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों को समय रूप से बना लेना चाहिये। इतने महान् अंक में सबसे छोटे एक समये को यदि मिला लिया जाय तो उसमें अनन्ताङ्क मिल जाता है।१२३।

छिपे हुए अंक को प्रकट करते समय, स्थापित करते समय, परस्पर में मिलाते समय तथा प्रवाहित होते समय पुद्गल द्रव्य सहज में आकर काल द्रव्य को पकड़ लेता है। उस प्रदेश में आते जाते और खड़े होते हुये अनन्त जीव राशि का अंक मिल जाता है।१२४।

एक प्रदेश में काल, जीव और पुद्गल द्रव्य जब आकर मिल जाते हैं तब अनन्ताङ्क मिल जाते हैं। उन नीचातिनीच योनि में जीनेवाले जीवों को बाहर लाकर भव्य जीवों को मंगल पाहुड काव्य के अन्दर लाकर, स्थित करके ।१२५।

लोक में भद्र पूर्वक रक्षा करके गुण स्थान मार्ग से बद्ध करके पांचों कल्याणों की महिमा दिलाकर ऊपर चढ़ाते हुये लोकाग्र अर्थात् सिद्ध लोक में स्थिर करते हुये शोकापहरण करने वाला यह अंक है ।१२६।

नाकाग्र अर्थात् लोक के अग्रभाग का सिद्ध रूपी काव्य है ।१२७।

समस्त व्याकुलता को नाश करनेवाला यह काव्य है ।१२८।

यह आकार रहित दिव्यांक काव्य है ।१२९।

यह एकाग्र ध्यान को प्राप्त कर देने वाला काव्य है ।१३०।

यह ओकार वर्जित शब्द है ।१३१।

यह ओंकार गोचर वस्तु है ।१३२।

यह ह्रींकार के द्वारा आराध्य वस्तु है ।१३३।

यह ह्रोंकार के द्वारा पूजित गर्भ है ।१३४।

यह ह्लुंकार के द्वारा आराध्य संज्ञा है ।१३५।

ह्लेंकार गोचर वस्तु है ।१३६।

ह्लोंकार पूजित गर्भ है ।१३७।

यह ह्लोंकार अतिशय वस्तु है ।१३८।

यह ह्लंकार आराध्य सर्वज्ञ है ।१३९।

यह ह्लःकार गोचर वस्तु है ।१४०।

इस प्रकार मंत्राक्षरांक युक्त होने से यह भूवलय शंका रहित है ।१४१।

नवकार मंत्र के आदि में अरहन्त शिवपद कैलाश गिरि है, उनका निवास स्थान अतिशय श्री समवशरण भूमि है तथा जन्म और मरण का नाशक संहार भूमि है ।१४२।

यह श्रेष्ठ भद्रकारण होने से मंगल मय है, गुरु परम्परागत अङ्क ज्ञान है, परमात्म सिद्धि के गमन में कारण भूत होने से यह भूवलय श्री वर्धमान भगवान का वाक्याङ्क है ।१४३।

नर, सुर तिर्यञ्च तथा नारकी जीवों को विविध भांति से सम्यक्त्व प्राप्त होता है। और उस सम्यक्त्व के प्रभाव से गोचरी वृत्ति द्वारा आहार ग्रहण करने वाले दिगम्बर मुनियों को चारित्रलब्धि प्राप्त होने का कारण हो जाता है, ऐसा श्री जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित वचन है ।१४४।

यह वाक्य श्री ऋषभ तीर्थंकरादि २४ तीर्थंकरों के धर्म तीर्थ में प्रवाहित होता हुआ आया तत्व है और यह तत्व जिन भव्य जीवों के वश में हो जाता है उनके संसार का शीघ्र ही अन्त हो जाता है ।१४५।

द्वीप, सागर, गिरि, गुफा तथा जल गिरने के झरने आदि स्थानों में जो निर्वाण भुमि है, वह मोक्ष गृह की नींव है, उस नींव को बतलाने वाला यह परम मंगल भूवलय काव्य है ।१४६।

वीर वाणी ओंकार स्वरूप है। उस ओंकार से आया हुआ यह भूवलय काव्य है ।१४७।

दिगम्बर योगिराजों ने उपर्युक्त तपोभूमियों में ही काम राज का संहार किया है ।१४८।

उपर्युक्त तपोभूमियों तथा दिगम्बर महामुनियों के कथन करने का धर्म ही विश्व काव्यांग रचना का धर्म है ।१४९।

उस काव्य रचना की विद्या ६४ अक्षरों को घुमाना ही है ।१५०।

इस क्रिया के द्वारा कर्मों की निर्जरा भी होती है ।१५१।

यह श्री विद्या पुण्यबन्ध की इच्छा करनेवालों को पुण्यबन्ध करा सकती है ।१५२।

इस परम पावनी विद्या के साधकों को अखिल विश्व भंगलमय दृष्टि-गोचर होता है ।१५३।

यह मंगलमय ६४ अंक विश्व का वैभव है ।१५४।

जिस प्रकार एक छोटे से बीज का अंकुर कालान्तर में महान् वृक्ष बन जाता है उसी प्रकार यह पुण्यांकुर वृद्धिगत होकर बहुत बड़ा वृक्ष बन जाता है ।१५५।

यह मंगलमय क्षेत्र श्री जिनेन्द्रदेव भगवान का है ।१५६।

इस क्षेत्र का ज्ञान अर्थात् विश्व दर्शन से समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।१५७।

इस भूवलय सिद्धान्त ग्रम्थ में रहनेवाले अतिशयों का कथन वर्णनातीत है ।१५८।

यह श्री जिनेन्द्रदेव के उपदेश का अंक है ।१५९।

यह अंक विश्व के किनारे लिखित चित्र रूप है अर्थात् सिद्ध भगवान का स्वरूप दिखलाने वाला है ।१६०।

यह श्री बाहुबली भगवान के द्वारा विहार किया गया अंक क्षेत्र है ।१६१।

इसलिए यह भूवलय काव्य विश्व काव्य है ।१६२।

ऊपर द्वितीय अध्याय में जो अंक लिखे गये हैं उन अंकों से समस्त कर्मों की गणना नहीं हो सकती । इन समस्त कर्मों की यदि गणना करनी हो तो १०००००००००००००० सागरोपम गणित से गिनती करनी होगी या इससे भी बढ़कर होगी । इन कर्मों की गणना करनेवाले शास्त्र को कर्म सिद्धांत कहते हैं । वह सिद्धांत भूवलय के द्रव्य प्रमाणानुग में विस्तृत रूप से मिलता है । वहां पर महांक की गणना करनेवाली विधि को देख लेना ।१६३।

अन्य ग्रन्थों में जो डमरू बजाने मात्र से शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति बतलाई गई है, वह गलत है; क्योंकि डमरू जड़ है और जड़ से उत्पन्न हुआ शब्द ब्रह्म नहीं हो सकता । इतना ही नहीं उसमें गणित भी नहीं है और जब गणित नहीं है तब गिनती प्रामाणिक नहीं हो सकती यहां पर प्रमाण शब्द का अर्थ प्रकर्ष-माण लिया गया है । शुद्ध जीव द्रव्य से आया हुआ शब्द ही निर्मल शब्दागम बन जाता है । और वही भूवलय है ।१६४।

वर्तमान काल, व्यतीत अनादिकाल तथा आनेवाले अनन्त काल इन तीनों को सद्गुरुओं ने मंगल प्राभृत नामक भूवलय में कहा है । इसलिए यह भूवलय काव्य राग और विराग दोनों को बतलानेवाला सद्ग्रन्थ है ।१६५।

ओ एक अक्षर है और बिन्दी एक अङ्क है । इन दोनों को परस्पर में मिला देने से समस्त भूवलय 'ओं' के अन्दर आ जाता है । इसका आकार शब्द साम्राज्य है । इसलिए यह श्रीकर, सुखकर तथा समस्त संसार के लिए मंगल कारी है ।१६६।

इस अङ्क को भंग करते आने से सारी व्याकुलता नष्ट हो जाती है ।१६७।

साकार रूपी अतिशय अङ्क ज्ञान है ।१६८ ।

यह अंग ज्ञान अथवा शब्दागम आकार रहित होने पर भी साकार है ।१६९।

जो साकार है वही निराकार है ।१७०।

इन अंकों को लाने के लिए एक, द्वि, त्रि चतुर भंगकरना चाहिए ।१७१।

इसी प्रकार पांच व छः का भी भंग करना चाहिए ।१७२।

प्रयत्नों द्वारा सात व आठ भङ्ग करना चाहिए ।१७३।

इसी प्रकार उपर्युक्त भंगों में से यदि अन्तिम का दो निकाल दिया जाय तो ७१८ भाषायें आ जाती हैं ।१७४।

"ओ" और "अ" इन दो अक्षरों को निकाल देना चाहिए ।१७५।

संसार की समस्त भाषायें आ जाती हैं ।१७६।

श्री कार द्विसंयोग में गर्भित है ।१७७।

यहां से यदि आगे बढ़ें तो ३ अक्षरों का भंग आता है ।१७८।

आकार का ६ भंग है । उन भंगों को ४ भंग में मिलाना चाहिए ।

१७९-१८०।

आगे १६ भंग लेना ।१८१।

और ५ अक्षरों का भंग आता है ।१८२।

पुनः २५ अंग आ जाता है ।१८३।

उपर्युक्त समस्त अक्षरों को माला रूप में बनाना ।१८४।

तत्पश्चात् ७२ आ जाता है ।१८५।

और ५ अक्षरों का भङ्ग निकलकर आ जाता है ।१८६।

तदनन्तर १२० अंग आ जाता है ।१८७।

और ८ अक्षरों का भंग बन जाता है ।१८८।

तब ७२० अङ्क आ जाता है ।१८९।

इसमें से यदि २ निकाल दें तो ७१८ भाषाओं का भूवलय ग्रन्थ प्रकट हो जाता है ।१९०।

वह इस प्रकार है:—

१×२×३×४×५×६=७२०—२=७१८ ।

उपर्युक्त ७२० संख्या में से यदि आदि और अन्त की २ संख्या निकाल दी जाय तो सर्व भाषा निकलकर आ जाती है। उसमें ७०० क्षुद्र भाषा तथा १८ महाभाषा है ।१९१।

प्रतिलोम क्रम से आये ९ अंक में अनुलोम क्रम से आये हुये ९ अंक का भाग देने से मृदु तथा मधुर रूपी देव-मानवों की भाषा उत्पन्न हो जाती है। इसका नाम महाभाषा है। जब महाभाषा उत्पन्न हो जाती है तब संसार की समस्त भाषायें स्वयमेव बन जाती हैं ।१९२।

ये सभी भाषायें सर्वज्ञ वाणी से निकली हुई हैं। सर्वज्ञ वाणी अनादि कालीन होने से गीर्वाग्वाणी कहलाती है। यही साक्षात् सरस्वती का स्वरूप है तथा सभी एक रूप होने से ओंकार रूप है। अपने आत्मा की ज्ञान ज्योति प्रकट होने के कारण जिनवाणी द्वारा पढ़ाया गया यही पाठ है ।१९३।

गिरि, गुफा तथा कन्दराओं में बाह्याभ्यन्तर कायोत्सर्ग खड़े होते हुये योग में मग्न योगियों को यह अर्हन्त वाणी सुनाई पड़ती है। और ऐसा हो जाने पर योगी जन अपने दिव्य ज्ञान द्वारा सभी भाषाओं को गणित से निकाल लेते हैं। इसलिये इस भूवलय को गुरु परम्परागत काव्य कहते हैं ।१९४।

श्री वर्धमान जिनेन्द्र देव के मुख कमल अर्थात् सर्वांग से प्रकटित मंगल-प्राभृत रूप तथा असदृश वैभव भाषा सहित है ।१९५।

इस काव्य को पढ़ने से दिव्य वाणी के अक्षराङ्क का ज्ञान हो जाता है ।१९६।

यह भाषा ऋद्धि वंश की आदि भाषा है ।१९७

यह भाष, द्रव्यागम की भाषा है ।१९८।

यह भाषा विष वाक्य अर्थात् दुर्वाक्य का संहार करने वाली है ।१९९।

इस भाषा को वशीभूत करने से आत्म संसिद्धि प्राप्त हो जाती है ।२००।

इस भाषा को सीखने से विषयों की आशा विनष्ट हो जाती है ।२०१।

६४ अक्षरों के भंग में ही ये समस्त भाषायें आ जाती हैं ।२०२।

यह भाषा ब्राह्मी और सौन्दरी देवी की हथेली में लिखित लिपि रूप में है ।२०३।

यह रस त्यागियों का धर्म स्वरूप है ।२०४।

यह भूवलय ग्रन्थ अंक भंग से बनाया गया है ।२०५।

पारा सिद्धि के लिए यह आदिभंग है ।२०६।

यह यशस्वती देवी को पुत्री का हस्त स्वरूप है ।२०७।

उस यशस्वती देवी की हथेली कीरेखा से रेखागम शास्त्र की रचना हुई और वह शास्त्र भी इसी भूवलय में है ।२०८।

सात तत्व के भागा हार से आये हुये आदि ब्रह्म वृषभ देव भगवान् के द्वारा प्राप्त यह भूवलय नाम की वाणी है। समस्त अंकाक्षर को अपने अन्दर समावेश कर लेने के कारण इसमें विजय धवल के अन्तर्गत अंक राशि ढेर ढेर रूप में छिपी हुई है। इसलिये इस भूवलय को अतिशय धवल कहा गया है ।२०९।

इसमें ७१८ भाषायें माला के रूप में देखने में आती हैं। वे सभी अतिशय विद्या के श्रेणी से मिली हुई हैं। ३६३ मतों का अंक के रूप से वर्णन किया गया है ।२१०।

इस भूवलय में आने वाले धवल और महाधवल को यदि इसमें से निकाल दिया जाय तो इसमें दो ही भाषा देखने में आयेंगी। तो भी उसमें ७१८ भाषायें सम्मिलित हैं। मंगल पाहुड ऐसे इस भूवलय में जीव के समस्त गुण धर्म का विवेचन किया गया है। इसलिये यहां इसमें से जय धवल ग्रन्थ को भी निकाल सकते हैं ।२११।

द्वादशांग वाणी में अनेक पाहुड ग्रन्थ हैं। और अनेक आगम ग्रन्थ हैं। उन सब को विजय धवल भूवलय ग्रन्थ से निकाल सकते हैं। और उसी विजय धवल ग्रन्थ के विभाग में अत्यन्त मनोहर देवागम स्तोत्र निकल आता है ।२१२।

इसलिये यह भूवलय काव्य महासिद्ध काव्य है ।२१३।

भगवान का वचन ही सिद्धांन्त रूप होकर यहां आया है ।२१४।

श्री वीर जिनेन्द्र भगवान का वचन ही साम्राज्य रूप है ।२१५।

यह वनवासी देश में तप करने वाले दिगम्बर मुनियों का भूवलय नामक काव्य है ।२१६।

विवेचन:--आदि पुराण में दंडक सजा का वर्णन आया है। उन्हीं के

नाम से दंडकारण्य प्रचलित हुआ। वह राज्य कर्णाटक के दक्षिण भाग में है। आचार्य कुमुदेन्दु के समय में इसे वनवासी देश कहते थे। उस समय में चत्ताण (चतुः स्थान) तथा बे दंडे (द्विपाद) इन दो नमूने का काव्य प्रचलित था। बे-दंडे काव्य का नमूना श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने १२ वें अध्याय के ३१ वें श्लोक में निर्दिष्ट किया है और "चत्ताण" काव्य भी समस्त भूवलय का सांगत्य नामक छन्द है।

यह भूवलय श्री जिनेन्द्र देव का वचन है।२१७।

यदि गणित की पद्धति से देखा जाय तो यह भूवलय अष्टम जिनेन्द्र श्री चन्द्रप्रभ भगवान के द्वारा प्रतिपादित किया गया है।२१८।

इसी प्रकार यह भूवलय श्री शान्तिनाथ भगवान् का मार्ग भी है।२१९।

विवेचनः—श्री शान्तिनाथ भगवान् अगणित पुण्यशाली हैं। श्री ऋषभ नाथ तीर्थंकर भगवान भरत जी चक्रवर्ती तथा बाहुबली स्वामी कामदेव पद के धारी थे। किन्तु श्री शान्तिनाथ भगवान् अकेले तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा कामदेव तीनों प्रकार के वैभवों से संयुक्त थे। अतः वे बहुत बड़े पुण्यात्मा कहलाते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित प्रशस्त मार्ग भी इस भूवलय के अन्तर्गत है।

यह "बेदंडे" काव्य श्री ऋषभनाथ भगवान् के समय से आया हुआ है।२२०।

श्री बाहुबली स्वामी अत्यन्त सुन्दर थे। उसी प्रकार यह भूवलय काव्य भी परम सुन्दर है।२२१।

इस भूवलय में विश्व का समस्त सिद्धान्त गर्भित है २२२।

यह काव्य श्री जिनेन्द्रदेव की वाणी में विद्यमान समस्त भावों को प्रदान करने वाला है।२२३।

यह भूवलय भाव प्रमाण रूप काव्य है।२२४।

यह श्री जिनेन्द्र देव का भाव प्रमाण है।२२५।

समस्त विश्व के अन्दर जितने भी तीर्थ हैं उन सबका वर्णन इस काव्य में दिया गया है।२२५।

यह भूवलय काव्य वनवासी देश के तीर्थ नन्दी पर्वत पर लिखा गया।२२७।

इसमें जो प्राणावाय (आयुर्वेद) विभाग है वह भल्लातकाद्रि अर्थात् "गुरु सुगे" (गिरनाकाद्रि) पर्वत पर जैन गुरियों द्वारा लिखा गया है।२२८।

इस विभाग में संसार की कल्याणकारी समस्त औषधियाँ निकल कर आ गई हैं।२२९।

इस ग्रन्थ के अध्ययन मात्र से पाप कर्मों द्वारा उत्पन्न सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं।२३०।

इस ग्रन्थ के स्वाध्याय से आगन्तुक सहस्रों व्याधियां विनष्ट हो जाती हैं। इस लिये यह महा सौभाग्यशाली ग्रन्थ है।२३२।

यह भूवलय भगवान् का वचन रूपी महान् ग्रन्थ है।२३३।

भूवलय की व्याख्या में ३ क्रम हैं १ ला स्वसयम वक्तव्यता, २ रा पर-समय वक्तव्यता तथा ३ रा तदुभय वक्तव्यता है। इन तीनों वक्तव्यों में प्रधान स्व-समय है। सद्धर्म सागर में गोता लगाने वाले रसिक जनों के लिये यह परमा-नन्द दायक है। इस अध्याय में अध्यात्म सर्वस्व सार ओत-प्रोत भरा हुआ है। इसलिये यह मंगल प्राभृत नामक भूवलय का प्रथम भाग प्रसिद्ध है।२३४।

विवेचन—आत्म-तत्त्व का विवेचन करना स्वसमय वक्तव्यता है, इसके अतिरिक्त बाह्य शरीरादि का विवेचन करना पर-समय वक्तव्यता है तथा दोनों का साथ २ विवेचन करना तदुभय वक्तव्यता है।

नौ अंक से आया हुआ अर्थात् कर्म सिद्धान्त गणित से अवतार लिया हुआ धर्माक्षर रूपी यह अंक ध्यान है। इसलिये यह भूवलय काव्य स्व समय रूप, भद्ररूप तथा मंगल स्वरूप है।२३५।

यह भूवलय ग्रन्थ श्री जिनेन्द्र देव की वाणी से निष्पन्न होने से प्राभृत तथा विश्व काव्य है। इसका स्वाध्याय करने से मोक्ष पद प्राप्त हो जाता है और मोक्ष के लिए सरल मार्ग होने से यह अतिशय धवलरूप है।२३६।

जिस प्रकार श्री जिनेन्द्र देव के ८ प्रातिहार्य होते हैं उसी प्रकार नन्दी पर्वत भी ८ विभागों से विभक्त होने से अष्टापद पर्वत कहलाता है। अष्टम जिनेन्द्र देव श्री चन्द्रप्रभ का वैभव होने से यह अतिशय-धवल नामक शुभ्रांग है।२३७।

श्री जिनेन्द्र देव के आराधक भक्त जन अर्थात् दिगम्बर जैन मुनि अपनी बुद्धि की विशेषता से विविधि भांति की युक्तियों से श्री भूवलय का व्याख्यान बड़े सुन्दर ढंग से किया है। इसलिये समस्त भाषाओं से समन्वित भूवलय मृदु एवं मधुर है और मंगलकारी है ।२३८।

यह दशवाँ ऋ अक्षर का अध्याय है। जिस प्रकार मरकत मणि अत्यन्त शुभ्र व दीप्तवान् होती है उसी प्रकार इस अध्याय के अन्तर काव्य में पाँच, नौ, सात, पांच और एक अर्थात् १, ५, ७, ९, ५, अक्षर रहने वाला ऋ भूवलय है ।२३९।

श्रेणीबद्ध काव्य में मूलाक्षर का अंक आठ, चार, सात और आठ अंक प्रमाण है। यही श्रेणीवद्ध काव्य का भंगांक है ।२४०।

ऋ ८, ७,४,८+अन्तर १५७९५=२४, ५४३

अथवा

अ—ऋ १, ७६, ०२२+२४, ५४३ = २,००,५६५ ।

सम्पूर्ण

ऊपर से नीचे तक यदि प्रथमाक्षर पढ़ते जायँ तो प्राकृत भाषा निकलती है। उसका अर्थ इस प्रकार है:—

ऋषिजनों में सुग्रीव, हनुमान, गवय, गवाक्ष, नील, महानील, इत्यादि ९९ कोटि जनों ने तुंगीगिरि पर्वत पर निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया। उन सबको हम नमस्कार करेंगे।

इसी प्रकार ऊपर से यदि नीचे तक २७ वां अक्षर पढ़ते जायँ तो संस्कृत गद्य निकल आता है। वह इस प्रकार है:—

नतया शृण्वन्तु— मंगलं भगवान् वीरो मंगलं भगवान् गौतमोगणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्या जीव धर्मोऽस्तु मंग ॥

ग्यारहवां दसवां अध्याय

ऋ* पि अरूपियागिरुव द्रव्यागम। दापद्धतियोळगंक ॥ ताप लं* नक्षर दोळगे कूडिसुवन्क। श्री पद द्वयवु भूवलय ॥१॥
आ* दिय अतिशय मंगल पर्याय। दादियनकाक्षर कूट ॥ नाद म* अदे जीवनरि वेन्नुतिह ज्ञान। साधने यध्यात्म योग ॥२॥
म* नदर्थियिन्द मंगल पर्यायवनोदे। जिन धर्म तत्व ज* लेल्ल ॥ तनगे ताने तन्न निजवनु तोरिप। घनविद्यासाधने योग ॥३॥
सु* न्नर किन्नर ज्योतिष्क लोकद। घनव श्री जिन देवालयद् ॥ ल* णधव्य श्री जिन बिम्ब कृत्रिमा कृत्रि। मेनेसान्क गणनेयोळदिदु ॥४॥
दो* षविनाशन श्रीश श्री मन्दर। देशन दरुशन माडि ॥ राशिय म* पुण्यव रूपिनिम् गळिसुव। ईशर भजिसे मङ्गलवु ॥५॥

श्री शन पुण्य सद्ग्रन्थ ॥६॥ राशिय पाप विनाश ॥७॥ ईशनु पेळिद ग्रन्थ ॥८॥ राशिय पुण्यद गणित ॥९॥
ईशन भक्तिय गणित ॥१०॥ दोष अष्टादश गणित ॥११॥ श्री शन सद्धर्म गणित ॥१२॥ राशिय पुण्यद गणित॥१३॥
ईशन ज्ञानद गणित ॥१४॥ दोष अष्टादश गुणित ॥१५॥ श्रीशन सद्धर्म गुणित॥१६॥ राशिय पुण्यद ज्ञान ॥१७॥
ईशन चारित्र गणित॥१८॥ दोष अष्टादशदरित ॥१९॥ श्रीशन सद्धर्म ज्ञान ॥२०॥ कोशद ज्ञान विज्ञान ॥२१॥
ईशन चारित्र सार ॥२२॥ दोष अष्टादश रहित॥२३॥ श्रीशन सद्धरम गुणित॥२४॥ आशेय भव्यर भक्ति ॥२५॥
ईशरिप्पत् नाल्वरन्क॥२६॥ कोषद काव्य भूवलय ॥२७॥

दो* षगळलियबेकेम् बाशेयिहरेल्ल। राशेयम् गुरुतिस्इ हरु स* ॥ देश ज्ञानव सम्पूर्ण वागिसि कोन्ड। देसिय भाषांक काव्य ॥२८॥
ण* वदन्क वेन्देने अरहन्त रादियिम्। नव तीर्थगळन् द र* शनदि ॥ अवनिय पूजेगे विनयोगवेन्नुद। शिव पददन्तवेदरिया ॥२९॥
णि* जदहत् अन्कवे साधित भव्य। विजयांक वेन्दरि अ व* नु ॥ भजिसुत बरुवाग नवपद सिद्धियु। विजय मादुवुदेन् अरिदे ॥३०॥
ज* य सिद्धियाद हत्न्क महाव्रत। दयतदे बंद सन् मा* र्ग ॥ दये दानवेल्लव निरदित्तु भजकर्गे। नय प्रमाणवनु तोरुवुदु॥३१॥
णा* णद सामान्य प्रस्थारदन्कव। ज्ञान साम्राज्य ध्वज न्* व ॥ श्री नेमिनाथांक वेन्दरि परमात्म। अनन्द कल्याण करणा ॥३२॥

ज्ञान वद्भवकर काव्य ॥३३॥ श्रीनिवासद दिव्य काव्य ॥३४॥ आनन्ददायक काव्य ॥३५॥ ऊनवळिद दिव्य काव्य ॥३६॥
काणिय भद्र मन्गलवु॥३७॥ तानल्लि काणिप मन्त्र ॥३८॥ ताने शुद्धोपयोगांक ॥३९॥ आनन्द साम्राज्य गणित ॥४०॥
काणिप शिव सख्यभद्र ॥४१॥ तानल्लि काणिप तन्त्र॥४२॥ जोणि पाहुडदानि ग्रन्थ ॥४३॥ आनन्द साम्राज्य गुणित॥४४॥
काणिप सूक्ष्म विन्यास ॥४५॥ तान्ल्लि काणिप मूर्ति॥४६॥ क्षोणियनलेव सत्कीर्ति ॥४७॥ आनन्द साम्राज्य ज्ञान ॥४८॥
दान दयामय ग्रनथ ॥४९॥ मानवरेल्लर कीर्ति ॥५०॥ जैनागमद दर्शनवु ॥५१॥ क्षोणि जणान्द रूप ॥५२॥
ताने तानाद भूवलय ॥५३॥

ला* वण्य लिपियन्द वेन्तेम्ब ब्राह्मिगे। देवनु नन्नय म ग ळे ॥ नाविल्लि अक्षर ब्राह्मियोळ् पेळ्दवु। देवाधिदेव वाणियणु ॥५४॥
ड* ण ठण वेन्नुत येळलागुव मात। जिनवाणि ओभ्दरिम्परिय ल* ॥ घनवाद अक्षरदादिय 'अ' क्षर। कोनेगे 'पः' अक्षर बरलु ॥५५॥
ण* वदंक गणनेय नवपद भक्तियिम्। सवियक्षरद् अव य* वयम्॥ सवर्णरगेअरवत् नाल्कन्कदिम्पेळुव। नवम बंधांक वंदरिया॥५६॥
रि* षिगळ भावदि बरुवात्म योगदोळ्। वशवप्प सिरि सम्पद व म* ॥वशगोन्डु भ्रामहिये अरवत् नाल्क् अंकद। यशव होन्दुत सुखियागु॥५७॥

न* वदंक बरुवन्दवेन्येनदु केळुव । युवति सव्नदरिगे स* मस्त।। सवियंक ओम्देरळ्मूर्नाल्कय्दारेलु। नवस्रुष्टिएन्ट् ओम्वत्तुगळु।५८
दा* न माडिद देव तन्एडगय्यिन । अनन्ददमृतान्गुलिय र* ताणवनाकेय एडगय्य अमृतद । ताणदन्गुलिय मूलदलि ॥५९॥
ण* मोकार मन्त्रद क्षरगळनाकेयु । गमनिसिर्न्अ च्चोत्तिरु व* विमलांक रेखेय आदिमदन्त्यद । सम विषम स्थानगळनु ॥६०॥

अमलद् अन्तरद रूपवनु ॥६१॥ क्रम बंद्धगोळिप योगवनु ॥६२॥ सम विषमादि सर्ववनु ॥६३॥
अमलद् अन्तरद रेखेयनु ॥६४॥ क्रम बद्धगोळिप भाववनु ॥६५॥ सम विषमांक भागवनु ॥६६॥
विमलद् अन्तरद सत्ववनु॥६७॥ क्रम बद्धगोळिप भागवनु ॥६८॥ सम विषमांक लेक्कवनु ॥६९॥
कमलद् अन्तरद सत्ववनु ॥७०॥ क्रम बद्धगोळिप द्रव्यवनु॥७१॥ सम विषमांक गणितव ॥७२॥
गमकद् अन्तरद सत्ववनु ॥७३॥ क्रम बद्धगोळिप गमकवम् ॥७४॥ सम विषमांक कूटवनु ॥७५॥
यमकद् अन्तरद सत्ववनु॥७६॥ क्रम बद्धगोळिप शून्यवनुम्॥७७॥ रस विषमांक लब्दबनु ॥७८॥
श्रम हरद् अतिशयांकवनु॥७९॥ क्रम बद्धगोळिप विद्येयनुम् ॥८०॥ सम शून्य काव्य भूवलय ॥८१॥

प* ददक्षरांकद भागव तरुवन्क । विधवनु तिळियम्म स क* ल। विधद द्रव्यागम श्रुतविद्येयन्कद । पदवे मंगलद पाहुडवु ॥८२॥
न* वपद बद्धदक्षर विद्ये बेकेम्ब । निवगोग अतिशय क ल* या ॥ णव पेळ्व आगम कर्म सिद्धांतद । अवयव विदरोळ् पेळुवेवु॥८३॥
च* रितेयोळ् बरेदिह सरस्वतियम्मन । परियनरितु साकल् या* अरहन्त विद्यद केवलज्ञानद । परियतिश यव केळम्म ॥८४॥

करुणेयक्षरव केळम्म ॥८५॥ अरिय गेल्लुवुद केळम्म ॥८६॥ परमन अतिशय वम्म ॥८७॥
धरेय मंगल काव्यवम्म ॥८८॥ करुणेय क्षरदन्कवम्म ॥८९॥ अरिय गेल्लुवुदे सिद्धांत ॥९०॥
परमन अतिशय धवल ॥९१॥ धरेय मंगलद पाहुडवु ॥९२॥ करुणेय साम्राराज्यवम्म॥९३॥
अरिय गेल्लुवुदे मंगलवु ॥९४॥ परमन भूवलयांक ॥९५॥ धरेय जीवर काव्यान्ग ॥९६॥
गुरुगळ साम्राज्य वम्म ॥९७॥ अरि गेल्दवरंक वम्म ॥९८॥ परमन गम्भीरदन्क ॥९९॥
धरेयं जीवर सौभाग्य ॥१००॥ अरहन्त साम्राज्यवम्म ॥१०१॥ अरिय गेल्दवर क्षरांक ॥१०२॥
परमन गम्भीर वचन ॥१०३॥ धरेय जोवर चारित्र ॥१०४॥ सरस्वती साम्राज्यवम्म॥१०५॥
अरिद गेल्दवर सिद्धांत ॥१०६॥ परमन गम्भीर दान ॥१०७॥ परमात्म सिद्ध भूवलय ॥१०८॥
नरसुरबन्द्य भूवलय ॥१०९॥ परमाप्तअ सिद्ध भूललय॥११०॥ गुरुगळन्गय्य भूवलय ॥१११॥

को* टि कोटाकोटि सागरदळतेय। गूट शलाके सूचिगळ॥ मेटियपद ण* वकार मन्त्रदे बह । पाटियक्षरद लेक्कगळम् ॥११२॥
ङ* क्कामुरुदन्गादि सर्व शब्दागम । दक्कदक्षरद अन् का* दि॥ तक्करेरवागमवर्णदागमकाव्य। सिक्कदुक्रनव्र्यदागमदि॥११३
ङि* न्डोरदोळु बंद सर्व शब्दागम । अन्डदक्षरद् वश र* वु ॥ खन्डित वागु वुदरि काल क्षेत्रद । पिण्डवु नित्य बाळुवुदु॥११४॥
ओ* म्कारदिम् बंद सर्व शब्दागम । दन्कदक्षरद् अन् क* नित्य॥ शम्केगलेळ्ळव परिहर माडुव। समकर दोष विरहित ॥११५॥

ओम्कार भद्र स्वरूप ॥११६॥ ओम्दन्क ओम्दे अक्षरवु ॥११७॥ ओम्दनु बिडिसुव क्षरवु ॥११८॥

ओम्दंक स्वर नव पदवु ॥११६॥ ओम्कार भद्र मंगलवु ॥१२०॥ ओम्दंक भन्ग अक्षरवु ॥१२१॥
ओम्दनु बिडिसुव अन्क ॥१२२॥ ओम्दन्क वदुवे वर्णगळु ॥१२३॥ ओम्कार सर्व मंगलवु ॥१२४॥
ओम्दन्क वदु शुद्धाक्षरवु ॥१२५॥ ओम्दनु बिडिसलु सर्व ॥१२६॥ ओम्दन्क वदयोग वाह ॥१२७॥
ओम्कार दिव्यनिनाद ॥१२८॥ ओम्दन्क परमात्म वाणि॥१२९॥ ओम्दनु भजिपनु योगि ॥१३०॥
ओम्दन्क अर्वत्नाल्क्आगि॥१३१॥ ओमकार ताने तानागि ॥१३२॥ ओम्दन्क सिद्ध स्वरूप ॥१३३॥
ओम्दनु सर्ववेन्दरिया ॥१३४॥ ओम्दन्कव् इप्पत्तु बिडिय॥१३५॥ ओम्कारदन् एरड्अन्ग ॥१३६॥
ओम्दन्क भन्गव माडे ॥१३७॥ ओम्ददु तोम्बत् एरडन्क ॥१३८॥ ओम्दन्क भन्ग भूवलय ॥१३९॥

पा※ पविनाशक पुण्य प्रकाशक। लोपविल्लद शुद्धरूप॥ ताप म्※ लिसि मोक्षव तोर्प ओम्कार। श्रो पद ओम् बत्तरन्क ॥१४०॥
व्※ शवागलके ओम्कारव कूडलु। यशदादि हत्अन्कवदनु॥ प्र※ शमादि गुणेठाणदतिशयदन्कवु। ओसरुत ज्ञानाक्षरांकम् ॥१४१॥
आ※ शेय अक अइउङ्ऋळ्ए ऐ ओ औ। राशियोम् बत्त स्वर धा※ ॥ आशेयिम ह्रस्व दीर्घ प्लुत मूरिम। राशिय गुणव् इप्पत्एळु।१४२।
गि※ रियन्रदन्दद आआईअरी। सर ऊऊॠ ॠलृ लृ॥ वर एएऐऐ नं※ ओ ओ औ औ। सवरगळे दीर्घ प्लुतगळु ॥१४३॥
रि※ द्धिय ओम्बत्उ स्वरगलु मूररिम्। शुद्धियिम् गुउएइ स※ लु बरुव॥ मुद्दिन्इप्पत् एळुक् ख्गघ्ज् ऐदु। शुद्ध च्छ्ज्झ्ञ् ऐदु॥१४४॥
होद्दिसि ट् ठ् ड् ढ् ण् गळ ॥१४५॥ सिद्धसि त् थ् द् ध् न् वनु ॥१४६॥ शुद्धद प् फ् ब् भ् म् ऐदु ॥१४७॥
रिद्धियोळ् गुणिस् इप्पत्ऐदु॥१४८॥ बद्धय्र् ल् व्श् ष् स्ह्व ॥१४९॥ सिद्धअंअःकःफः नाल्क्अम॥१५०॥
शुद्धव्यन्जन मूवत्मूरम् ॥१५१॥ इद्द नाल्क्अ योगवाहगळ ॥१५२॥ होद्ददलु मूवत्एळ अंक ॥१५३॥
बद्धवाद अरवत्नाल्कु ॥१५४॥ शुद्धदक्षरदंक गळनु ॥१५५॥ उद्दव कूडलु हत्तु ॥१५६॥
होद्दिसला हत्ते ओम्दु ॥१५७॥ शुद्ध १ दे ओम्दु अंक ॥१५८॥ शुद्धांक ओम्दे अक्षरवु ॥१५९॥
रिद्धियोळ् आदिम् भंग ॥१६०॥ बुद्धिगे सिलुकिहुद् अंग ॥१६१॥ सिद्धान्त सागरदंग ॥१६२॥
सिद्धर तोरुव भन्ग ॥१६३॥ शुद्धांक गुणकारद् अंग ॥१६४॥ रिद्धिय तोरुव भन्ग ॥१६५॥
सिद्ध सम्सिद्धद भन्ग ॥१६६॥ बुद्धि प्रकर्षाणु भंग ॥१६७॥ रिद्धि प्रकाशदणु भंग ॥१६८॥
सिद्धत्व दर्वादि भंग ॥१६९॥ सद्दलिदरे सिद्धरन्ग ॥१७०॥ शुद्ध साहित्य भूवलय ॥१७१॥

व※ शवाद कर्माटक देन्दु भागद। रस भंगद् दक्षरद स र※ व॥ रस भावगळनेल्लव। कूडलु बन्दु। वशव एळ्नूरह दिनेन्दुभाषे॥१७२॥
र※ मणीयवादादिम भन्ग समयोग। दमलांकद् आन्दु अक्षर व※ ।क्रमदोळग्ओम्दरिम् गुणिस् अरवत्नाल्कु। विमलांक हुट्टुवुद्अरिया॥१७३॥
सि※ रिसिद्धम ई ओम्दम् बरेदुकोन्डदरोलु। अरहन्त शुद् ध※ रो ठ्'अ'वनु॥ सिरिअशरीररसिद्धर'अ'आदि। सिरिआइरियदोळ्'आ'दि१७४
ह※ रडिद ई मूरु'आआआ' अक्खव।बरेदुकूडलु 'आ'बहुदु॥ वरध मा※ चरणेगादिय 'आ' बरे मुन्दे। बरेवुदु उवज्झ्यदादि ॥१७५॥
रे※ खेयोळ् अनन्तदे साधुगळ् मउनिगळ। श्रीकरदादिम'म' शरम णां※ ॥ साकल्यव कूडे ओमकारवप्पुदु। सौख्य सर्वद मंत्र बहुदु ॥१७६॥
आ कलनकद जीव शब्द ॥१७७॥ साकल्य भंगद मूल ॥१७८॥ साकल्यव कूडे ओमदु ॥१७९॥

पराकट परब्रह्म दन्ग ॥१८०॥ आकलन कद जीव तत्व ॥१८१॥ साकल्य भंगद अंत ॥१८२॥
साकल्यव कूडे सर्व ॥१८३॥ प्राकट परब्रह्म भंग ॥१८४॥ आकर द्रव्यागमवु ॥१८५॥
साकल्य भंगद मध्य ॥१८६॥ साकल्यव कूडे मध्य ॥१८७॥ प्राकट परब्रह्म भद्र ॥१८८॥
आकरवा द्रव्य भावा ॥१८९॥ साकल्य अरवत्नाल्कु ॥१९०॥ साकल्य शब्दागमद १९१॥
प्राकट परब्रह्म तत्व ॥१९२॥ साकल्यान्कद कक्र मोत्त ॥१९३॥ शाफट कर्म समहारि ॥१९४॥
साकलागम द्रव्य रूप ॥१९५॥ एकान्क सिद्ध भूवलय ॥१९६॥

णि※ ज शब्ददादिय ओम्कार ओम्दनु । विजय धवलवन्आगिसि जी※ ॥विजयव होन्दिद परब्रह्म विन्तागे भजिय योगिगळन्द बेरे ॥१९७॥
व्※ शवाद् इप्पत् एळु स्वरदोलु 'ओ' बरे । हुसिय ऐदक्षर व※ शद॥ रसकूटवेतके ओ ओम्दु एन्नदे। ऋषिगंळन्कवेओ ओम्दंक ॥१९८॥
वा※ दिगळेल्लर वादवदिन्तागे । श्री दिव्यवाणिय मर्म॥ दादिय म्※ भेदिसि तिळिव सम्यग्ज्ञान साधनेय् अरवत्नाल्क् अन्क ॥१९९॥
ण※ वदन्कवदनु ओम्वत्एन्दु पेळुव । नव पद भक्तिय वि ज※ य ॥ दवनिय हत्अलु अरवत्नाल्कअन्क। दव नयल्लवु ओम्दंक ॥२००॥
ग※ मनिसि नोडलन्द अक्षर ओम्दु । समदन्क विडियागे ज य※ दे॥ क्रमद् ओम्दु कर्माटकद समन्वय। अमम विस्मयद सामान्य॥२०१॥
या※ वाग कर्म सामान्यव नोडेवेवो। आवाग एनदु रूप्गि॥ तावदु तु※ ळियलु सम्ख्यात । दा विश्वानन्तान्क बहुदु ॥२०२॥

दाविश्व व्यापियागुवुदु ॥२०३॥ जीवर नन्तान्क गणित ॥२०४॥ सावु हुट्उगळ अनन्त ॥२०५॥
देवन अरिकेयनन्त ॥२०६॥ श्री वीरनरिकेय अन्क ॥२०७॥ जीवरनलेसुव कर्म ॥२०८॥
जीवराशिय कर्माटकवु॥२०९॥ दा विश्व कर्मदनन्त ॥२१०॥ कावबरारिल्लद अन्क ॥२११॥
जीवर नलेसुव अन्क ॥२१२॥ जीव राशिय गणितांक ॥२१३॥ पावन जीव घाताँक ॥२१४॥
भावद कर्मांक गणित॥२१५॥ जीवर नलेसुव गणित ॥२१६॥ जीव जीवर गणितांक ॥२१७॥
पावन जीव ज्ञानांक ॥२१८॥ तीवलक्षरव् अर्व्वत्नाल्कु ॥२१९॥ तावल्लि ओम्दे आदन्क ॥२२०॥
श्री वीरवाणि ओम्ब्रत्तु ॥२२१॥ ई विश्व काव्य भूवलय ॥२२२॥

ण※ वपद भक्तिये अणुव्रतकादियु । अवरु श्री जिनदीक्षे वहि श्※ ए ॥ नवदंक एंटरिम् एळरिम् । सव भाग 'सोन्ने काणुवरु ॥२२३॥
मो※ हदंकवदेष्टु रागदन्कवदेष्टु । साहसि द्वेषांकद् आ※ ळा ॥ मोहद्वेषवळिदाग आत्मन । रूहिद ज्ञान्क्वेष्टु ॥२२४॥
ते※ रस गुणठाणदेरिद आत्मन । साराँक दर्शनदंक ॥ भार स※ ग्रुठाण सार चतुर्दश । वेरिनन्तांक (सन्ख्यात) वेष्टु ॥२२५॥
सि※ ववागलात्मनेरिद सिद्धलोकद । अवतारदादिम जीव ॥ अव न※ ष्ट गुणगळ (अवनष्टु ज्ञानद) व्याप्ति एष्टेम् बन्क दवनु (अतिशय धवल) सिद्ध भूवलय ॥२२६॥
म्※ नसिज हणनवु हदिनाल्कु साविर मुन्दए। तनि मूनूर्हत् ओ म्※ वत् अंत ॥ (एंदु साविरद्हत् ओम्) ओन्बत् ओमदु सोन्नेयु एंदु॥ तनुवेल्ल ओमद् 'ऋ' भूवलय ॥२२७॥

ऋ ८,०१९÷अनन्तर १,४३१९=२२,३३९ अथवा अ-ऋ २,००,५६५+ऋ २२,३३८=२,२२,९०३

ग्यारहवां अध्याय

यह भूवलय सिद्धान्त रूपी द्रव्यागम भी है और अरूपी द्रव्यागम भी। इसलिए इसकी रचना अंक पद्धति रूप से की गई है ऐसा होने से अक्षर में अंक मिलाने की शक्ति उत्पन्न हुई। अंक और अक्षर दोनों भगवान के दो चरण स्वरूप हैं और वही यह भूवलय है।१।

श्री ऋषभनाथ भगवान के समय में सर्व प्रथम अतिशय मंगल पर्याप्त रूप से अंक और अक्षर का सम्मेलन हुआ। तत्पश्चात् दोनों के संघर्षण से जो नादब्रह्म (शब्द ब्रह्म) प्रकट हुआ वही जीव द्रव्य का ज्ञान है और सभी जीवों को इसी ज्ञान की साधना करनी चाहिए, क्योंकि यह आत्मयोग है।२।

उस अंकाक्षरी विद्या को योगी जन प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं; किन्तु सामान्य जन भूवलय रूप उस ज्ञान निधि का स्वाध्याय करते हैं। तदनन्तर जैन धर्म का समस्त तत्त्व अपने अपने स्वरूप से प्रत्यक्ष हो जाता है। इस प्रकार घन विद्या साधन रूप महायोग है।३।

सुर, नर, किन्नर तथा ज्योतिष्क लोक के घन स्वरूप को, उस लोक में रहनेवाले कृत्रिम-अकृत्रिम श्री जिनेन्द्र देव के देवालय तथा जिनविम्ब इन सबको अङ्क गणना से योगी जन यथावत देखकर ठीक ठीक जान सकते हैं।४।

समस्त दोषों के नाशक विदेह क्षेत्र में रहनेवाले श्री सीमन्धर स्वामी का दर्शन करके, अतिशय पुण्य कर्मराशि का संचय करके तथा निरन्तर श्री जिनेन्द्र देव का भजन करके योगी जन मंगल पर्याय रूप बन जाते हैं।५।

यह भूवलय ग्रन्थ भगवान के अतिशय पुण्य का गान करने वाला है।६।

इस सिद्धान्त ग्रन्थ के स्वाध्याय से शनैः शनैः समस्त पापों का नाश हो जाता है।७।

इस सद्ग्रन्थ का उपदेश श्री जिनेन्द्र भगवान ने स्वयं अपने मुख कमल से किया है।८।

भगवद्भक्ति से उपार्जित हुई पुण्य राशि की गणना विधि को सिखलाने वाला यह गणित शास्त्र है।९।

भगवान की भक्ति का जितना अंक है वह भी सिखानेवाला यह गणित है।१०।

समस्त संसारी जीवों में क्षुधा-तृषा आदि अठारह दोष हैं। इन सबकी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।११।

श्री जिनेन्द्र देव ने धर्म के साथ सद्धर्म को जोड़कर उपदेश दिया है। उस सद्धर्म के स्वरूप की गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१२।

अगणित पुण्यराशि की भी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१३।

भगवान का केवल ज्ञान अनन्तानन्त है अर्थात् भगवान में अनन्तानन्त जीवादि पदार्थों को देखने तथा जानने की अद्भुत शक्ति होती है। उन सबको अलौकिक गणित से गिनने वाला यह गणित शास्त्र है।१४।

अठारह प्रकार के दोषों की गणना को गुणा करके सिखानेवाला यह गणित शास्त्र है।१५।

इसी प्रकार श्री जिनेन्द्र देव द्वारा कहे गये सद्धर्म को भी गुणा करके सिखलानेवाला यह गणित है।१६।

यह गणित शास्त्र स्वयमेव उपार्जन किये हुए पुण्य की गणना सिखाने वाला है।१७।

भगवान जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित चारित्र की गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१८।

अठारह प्रकार के दोषों के विनाश होने से जो गुण उत्पन्न होता है उन सबकी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१९।

सद्धर्म पालने से जितने आत्मिक गुणों की वृद्धि होती है उन सबका ज्ञान करानेवाला यह गणित शास्त्र है।२०।

यह गणित शास्त्र समस्त ज्ञान-विज्ञान-मय शब्द कोष से परिपूर्ण है।२१।

यह गणित शास्त्र अंतरंग चारित्र को बतलानेवाला है।२२।

यह चारित्र में आनेवाले दोषों को हटा देने वाला है।२३।

यह भगवान के द्वारा प्रतिपादित सद्धर्म मार्ग में सभी को लगानेवाला है।२४।

भक्ति की आशा रखकर भव्य जन गणित शास्त्र के ज्ञान को बढ़ा लेते हैं। २५।

चौबीस तीर्थंकरों के गुणगान करने से ही समस्त गणित शास्त्रों का ज्ञान हो जाता है।२६।

समस्त भाषाओं के समस्त शब्द कोष इस भूवलय ग्रन्थ में उपलब्ध हो जाते हैं।२७।

समस्त दोषों को नाश करने की आशा रखनेवाले भव्य जनों की वांछा को योगी जन इस गणित शास्त्र द्वारा जान लेते हैं। और एक देश ज्ञान को सम्पूर्ण बनाने का जो उपदेश देते हैं वह देशी भाषा में रहता है तथा वही यह भूवलय ग्रन्थ है।२८।

अर्हन्त भगवान से लेकर ९ अंक पर्यन्त का अंक ९ तीर्थ स्वरूप है। उनके दर्शन करने से भव्य जीवों को गणित शास्त्र का विनियोग करने की विधि मालूम हो जाती है। उसके मालूम हो जाने पर मोक्ष पद प्राप्त करने का सरल मार्ग भी मिल जाता है।१९।

उत्तम क्षमादि दस धर्म को भव्य जनों का साधन करने का सत्य धर्म है, वही आत्मा का विजयांकुर है। उन्हीं दस धर्मों को ध्यान करते समय स्वयं अर्हंतादि नौ पदों की सिद्धि प्राप्त करने में क्या आश्चर्य है।३०।

ऐसी विजय को प्राप्त करादेने वाला दस क्षमादि धर्म महाव्रत से प्राप्त होता है। दया, दान इत्यादि सब आत्मिक गुणों को प्राप्त कराकर नय और प्रमाण इन दोनों मार्ग को बतलाता है।३१।

सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञान एक है, विशेष रूप से देखा जाये तो पांच प्रकार का है, संख्यात स्वरूप तथा असंख्यात स्वरूप भी है। इस रीति से ज्ञान को गणित विधि से प्रसारित कर अंक रूप से बना लें तो ज्ञान साम्राज्य रूपी ध्वज हो जाता है। इस ध्वज को नेमिनाथ जिनेन्द्र देव ने फहराया। इसलिए कल्याणकारी हुआ। इसका नाम आनन्ददायक करण सूत्र है। इस करण सूत्र को जिनेन्द्र भगवान ने सिखाया।३२।

यह भूवलय के ज्ञान के वैभव को बतानेवाला है।३३।

समवशरण में भगवान की दिव्य ध्वनि से निकला हुआ यह भूवलय काव्य श्री निवास काव्य है।३४।

यह काव्य सम्पूर्ण जगत् के लिए आनन्ददायक है।३५।

इस दिव्य काव्य में किस विषय की कमी है? अर्थात् किसी की नहीं।३६।

समस्त मङ्गलरूप भद्रस्वरूप को, यह काव्य दिखाता है।३७।

इस मंगल रूप काव्य णमो अरहंताणं इत्यादि रूप समस्त मन्त्रों को दिखाता है।३८।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से योगियों को शुद्धोपयोग मिल जाता है।३९।

यह भूवलय शास्त्र गणित विद्या का आनन्द साम्राज्य है।४०।

मोक्ष लक्ष्मी से उत्पन्न मंगलमय सौख्य को प्रदान करनेवाला यह भूवलय काव्य है।४१।

अनेक युक्ति से मुक्ति लक्ष्मी से प्राप्त होनेवाले सुख का दिखानेवाला यह काव्य है।४२।

सब शास्त्रों का आदि ग्रन्थ योनिपाहुड़ है अर्थात् उत्पत्ति स्थान है। उन सब उत्पत्ति स्थानों को दिखानेवाला यह ग्रन्थ है।४३।

गणित की विधि में सबको क्लेश होता है, यह भूवलय का गणित शास्त्र ऐसा न होकर आनन्ददायक है।४४।

नाट्य शास्त्र में पटविन्यास एक सूक्ष्म कला है, उस कलामय भाव को गणित शास्त्र में बताने वाला अर्थात् परमात्मा में बतलानेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।४५।

गणित शास्त्र और अंक शास्त्र ये दोनों अलग अलग हैं, इन सबका स्वरूप दिखानेवाला यह ग्रन्थ है।४६।

समस्त पृथ्वी अर्थात् केवली समुद्घात गत भगवान के शरीर रूपी विश्व को नापने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।४७।

इस भूवलय ग्रन्थ के अध्ययन करने से ज्ञान रूपी आनन्द साम्राज्य की प्राप्ति हो जाती है।४८।

दया धर्म के सूक्ष्मअतिसूक्ष्म से लेकर बृहद पर्यन्त दान देने को अनन्त दान कहते हैं। उसे बतलानेवाला यह भूवलय है। ४९।

यह अनन्त दान समस्त मानवों की कीर्ति स्वरूप है।५०।

दान के स्वरूप को बतलानेवाला यह ग्रन्थ जैनागम का दर्शन शास्त्र है।५१।

इस पृथ्वी में रहनेवाली समस्त जनता को यह दान क्रमशः आनन्द प्रदान करनेवाला है।५२।

इस रीति से दानमार्ग को चलाने में यह भूवलय ग्रन्थ अद्भुत् अचिन्त्य है।५३।

विवेचनः—

भूवलय के दानमार्ग प्रवर्तन का क्रम इस प्रकार है:—

१-आहार २-अभय ३-औषधि तथा ४-शास्त्र इन चारों को मुख्य बताया है। इन चार प्रकार के दानों में ज्ञान दान की प्रधानता इस अध्याय में रहती है। और ज्ञान अक्षर रूप रहता है। वे ज्ञानात्मक अक्षर यदि लिपि रूप से बन जायं तो उपदेश देने लायक बन जाता है। इसलिए लिपि की उत्पत्ति के क्रम को आचार्य बतला रहे हैं:—

ब्राह्मी देवी ने अपने पिता श्री आदिनाथ भगवान से पूछा कि हे पिता जी! लावण्यरूपी अक्षर की लिपि कैसी रहती है? ऐसा प्रश्न करने पर भगवान ने कहा कि सुनो बेटी! अब हम भगवान की दिव्य ध्वनि को तुम्हारे नाम से अक्षर ब्राह्मी में कहते हैं।५४।

दिव्य ध्वनि जय घंटे के नाद के समान निकलती है। वह सभी ॐ के अन्तर्गत है। इस दिव्य ध्वनि का आद्यक्षर "अ" से लेकर अन्तिम :: तक ६४ अक्षर हैं। ५५।

९ अंक की गणना करने से ९ (नव) पद भक्ति मिल जाती है। वही अक्षर का अवयव है। श्रावकों को ६४ अंक से उपदेश देनेवाला नवम बन्धाङ्क जान लेना चाहिए।५६।

ऋषि गण जब ध्यान में मग्न रहते हैं तब योग की सिद्धि हो जाती और योग की सिद्धि हो जाने पर संसार की समस्त सम्पदायें उपलब्ध हो जाती हैं। उन समस्त सम्पदाओं को प्राप्त करके हे बेटी ब्राह्मी देवी! ६४ अंक को लेकर तुम सुखी हो जाओ, ऐसा श्री वृषभनाथ भगवान ने अपनी पुत्री से उपदेश रूप में कहा। स्नेह, पूर्ण पिता जी का शुभाशीर्वाद सुनकर ब्राह्मी देवी परम प्रसन्न हुई।५७।

उपर्युक्त ९ अंक किस प्रकार निकलकर आ जाता है, ऐसा अपने पूज्य पिता जी से कुमारी सुन्दरी देवी के प्रश्न करने पर उन्होंने उत्तर दिया कि ये समस्त एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ और नौ इन अंकों को।५८।

दान किये हुए देव अपने दाहिने हाथ के अंगूठे के मूल से श्री सुन्दरी देवी के बायें हाथ की अमृतांगुली में।५९।

लिखे हुए अंकों द्वारा सुन्दरी देवी ने णमोकार मंत्र को जान लिया। उस विमलांक रेखा के आदि, अन्त और मध्य में रहनेवाले सम, विषम और मध्यम स्थान को भी उसने अपनी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा जान लिया।६०।

इसी रीति से सुन्दरी देवी ने निर्मल आभ्यन्तरिक स्वरूप को भी जान लिया।६१।

इन सभी को क्रम-बद्ध करनेवाला योग है और सुन्दरी देवी ने उसे भी जान लिया।६२।

यह योग सम, विषम, उभय, तथा अनुभयादि विविध भेद से विद्यमान रहता है।६३।

इसी रीति से निर्मल अन्तर की रेखा भी विद्यमान रहती है।६४।

अन्तर में रहनेवाली सभी रेखाओं को क्रम बद्ध करने के अनेक भाव रहते हैं।६५।

सम विषमांक भावों को निकालनेवाला है।६६।

अत्यन्त निर्मल अंतर सत्य को बतलानेवाला है।६७।

कर्म बन्ध को नाश करने के लिए भागांक को निकालने वाला है।६८।

सम विषमांक गणित को बतलाने वाला है।६९।

हृदय कमल के अन्तर के सत्य को बतलाने वाला है।७०।

कर्मबन्ध को नाश करने के लिए यह द्वार है।७१।

सम विषमांक गणित के द्वारा निकालकर देने वाला है ।७२।
गम्भीरता के साथ अन्तर सत्य को निकालकर देनेवाला है ।७३।
कर्म नाश करने की युक्ति या तरीका बतलानेवाला है ।७४।
सम विषमांक कूट को बतलाने वाला है ।७५।
यमक के अन्तर सत्य को बतलाने वाला है ।७६।
कर्म बंध को नाश करनेवाली बिन्दी को निकालकर देनेवाला है ।७७।
सम विषमांक लब्ध को निकालने वाला है ।७८।
श्रम को नाश करनेवाला अतिशय अंकवाला है ।७९।
यह सम्पूर्ण कर्म को नाश करने वाली विद्या है ।८०।
सम शून्य काव्य नामक यह भूवलय है ।८१।

पदाक्षर अंक के भाव को लाने वाले अंकों की विधि को समझानेवाले तथा समस्त प्रकार के द्रव्यागम श्रुति विद्या अंक का यह अंक नामक पद ही मंगल पाहुड है ।८२।

नौ पद बद्ध अक्षर विद्या की इच्छा करनेवाले भव्य जीव को शीघ्र ही अतिशय कल्याण मार्ग को कहनेवाले आगम सिद्धान्त के अवयव में रहनेवाले विषय को कहते हैं ।८३।

चरित्र, में लिखा हुआ सरस्वती देवी के द्वारा वाणी को भगवान ने समझकर अर्हंतदेव पर्याय उसी अक्षर को जो भगवान की केवल ध्वनि के द्वारा निकला है उसी अतिशय अक्षर को हे बेटी ! तुझे मैं समझाऊंगा तू ! सुन । ।८४।

हे बेटी ! ये करुणामय को उत्पन्न करनेवाले अक्षर हैं ।८५।
हे बेटी ! यह अक्षर शत्रु को नाश करने वाले हैं ।८६।
हे बेटो ! यह अर्हंत भगवान का अतिशय है ।८७।
हे बेटी ! यह पृथ्वी का मंगल रूप काव्य है ।८८।
हे बेटी ! यह करुणामय अक्षर अंक है ।८९।
हे बेटो ! यह शत्रु को जीतनेवाला सिद्धान्त है ।९०।
हे बेटी ! यह परमात्मा का अतिशय धवलयश है ।९१।
हे बेटी ! यह पृथ्वी का मंगलमय पाहुड है ।९२।
हे बेटो ! यह करुणामय साम्राज्य है ।९३।
हे बेटो ! यह सम्पूर्ण शत्रु को नाश करनेवाला मंगल है ।९४।
हे बेटी ! यह परमात्मा का भूवलय अंक है ।९५।
हे बेटी ! सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवों का काव्य है ।९६।
हे बेटी ! यह गुरु का साम्राज्य है ।९७।
हे बेटी ! यह कर्म रूप शत्रु को जीते हुए महापुरुषों का अंक है ।९८।
हे बेटी ! यह परमात्मा का महान गम्भीर अंक है ।९९।
हे बेटी ! यह सम्पूर्णपृथ्वी के ऊपर रहने वाले जीवों का सौभाग्य है ।१००।
हे बेटी ! यह अर्हंत भगवान का साम्राज्य है ।१०१।
हे बेटी ! यह शत्रु को जीतकर वश किया हुआ अंक है ।१०२।
हे बेटी ! यह भगवान के गम्भीर वचन हैं ।१०३।
हे बेटी ! यह सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवों के चारित्र की उत्पत्ति का कारण है ।१०४।
हे बेटी ! यह सरस्वती देवी का साम्राज्य है ।१०५।
हे बेटी ! यह कर्म रूपी शत्रु को जीतेनेवाले महान पुरुषों का सिद्धान्त है ।१०६।
हे बेटी ! यह भगवान के द्वारा सम्पूर्ण जीवों को दिया हुआ गम्भीर दान है ।१०७।
हे बेटी ! यह परमात्म नामक सिद्ध भूवलय है ।१०८।
हे बेटी ! यह देव और मनुष्य के द्वारा वन्दनीय भूवलय है ।१०९।
हे बेटी ! यह परमात्म सिद्ध भूवलय है ।११०।
हे बेटी ! यह पंच गुरुओं का भूवलय है ।१११।

हे बेटो ! यह करोड़ों कोडा कोडी सागर के प्रमाण श्लाका, शुचि, उसकी लम्बाई, चौड़ाई, पद इत्यादि इस नवकार मंत्र से आनेवाले और अनेक तरह के अक्षरों के गणित को तथा ढक्का, मृदंग आदि के झंकार शब्दादि अक्षरों के अंक आदि तथा योग्य रेखागम, वर्णागम काव्य इत्यादि इस द्रव्यागम से प्राप्त होते हैं ।११२-११३।

भगवान की वाणी के द्वारा पाया हुआ सर्व शब्दागम अंक से निकलकर आये हुए अक्षर खंडित न होनेवाले काल क्षेत्र के पिंडात्म हमेशा रहते हैं, अर्थात् ये शब्द नित्य तथा हमेशा जीवन्त है ।११४।

ॐ कार के द्वारा आये हुए सभी शब्दागम के अक्षर अंक सर्वत्र सम्पूर्ण शंकाओं का परिहार करनेवाले शंका दोष रहित अंक हैं ।११५।

यह ओम्का अ शब्द भद्र स्वरूप है ।११६।

ओ३म् भी एक अक्षर है ।११७।

सभी अक्षरों में एक ही रूप में रहनेवाले अक्षर हैं ।११८।

ओ३म् एक अक्षर ही है स्वर नौ पद हैं ।११९।

यह ओ३म्कार भद्र तथा मंगलमय है ।१२०।

यह ओ३म् एक अक्षर ही भंग अंक है ।१२१।

इसमें से एक को छुड़ानेवाला अंक है ।१२२।

एक अंक का अवयव ही वर्ण है ।१२३।

यह ओंकार शब्द सर्व मंगलमय है ।१२४।

ओम् अंक ही शुद्धाक्षर है ।१२५।

ओम् को तोड़ने से सभी आ जाते हैं ।१२६।

ओम् अंक ही योगवाह है ।१२७।

ओंकार ही दिव्यनाद है ।१२८।

ओम् अंक ही परमात्म वाणी है ।१२९।

योगी जन एक ओं को ही भजते हैं ।१३०।

एक अंक ही ६४ रूप होकर ।१३१।

अन्त में अपने आप ही ओंकार रूप हो जाता है ।१३२।

एक अंक ही सिद्ध स्वरूप है ।१३३।

एक मैं ही सब कुछ है, ऐसा समझो ।१३४।

एक अंक ही २० अंक है ।१३५।

यह ओंकार दूसरा अंक है ।१३६।

एक का भंग करने से ।१३७।

९२ अंक होता है ।१३८।

एक अंक ही भूवलय है ।१३९।

यह एक अंक पाप का नाशक, पुण्य का प्रकाशक, समस्त मल से रहित परम विशुद्ध तथा समस्त सांसारिक तापों को नाश करके अन्त में मोक्ष को बतलानेवाला ओंकार रूप श्री पद नौवां अंक है ।१४०।

उसमें ओंकार मिलने से आदि के १० अंक को प्रशमादि गुण स्थान अतिशय अंक उसमें से धीरे-धीरे ज्ञानाक्षर की उत्पत्ति होती है ।१४१।

आशा अंक–अ इ उ ऋ ऌ ए ए ऐ ओ औ इन राशियों के ९ स्वरों में उस आशा से ह्रस्व दीर्घ तथा प्लुत इन तीनों राशियों से गुणा करने पर गुणनफल २७ होता है ।१४२।

पर्वत के अग्रभाग के समान आ, आ, ई, अरी, ऊ, ॠ, ॠ, ऌ, ए—ए—ऐ—ऐ, ओ—ओ, औ—औ इन उपर्युक्त स्वरों को क्रमशः दीर्घ १ २ १ २, १ २ १ २ और प्लुत कहते हैं ।१४३।

इस वृद्धिङ्गत ९ स्वरों को ३ से गुणा करने पर आनेवाला गुणनफल २७ और क् ख् ग् घ् ङ् ये पांच तथा च् छ् ज् झ् ञ् ये पांच, ट् ठ् ड् ढ् ण् इन पांचों को सिद्ध कर त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् म् इन पांचों वर्गों को परस्पर में गुणा करने से गुणनफल २५ आता है। पुनः बद्ध य, र्, ल्, व, स, ष, श, ह् तथा सिद्ध किये हुए अं, अः, कः, फूः ये चार अंक ।१४४ से १५० तक।

शुद्ध व्यंजन ३३ हैं ।१५१।

ये चार अंक अयोगवाह हैं। इनको उपर्युक्त व्यंजनों में मिलाने से ३७ अंक होता है १५२-१५३।

बद्धाक्षर ६४ हैं ।१५४।

शुद्धाक्षरांक को ।१५५।

सीधे मिलाकर ६+४=१० होते हैं ।१५६।

इस संयुक्त १० में से बिन्दी निकाल देने पर १ रह जाता है ।१५७।

यही १० शुद्धांक है ।१५८।

शुद्धांक १ ही अक्षर है ।१५९।

बुद्धि में आदि भंग है ।१६०।

यह बुद्धि के द्वारा उपलब्ध अंक है ।१६१।
यह सिद्धांत सागर का अंग है ।१६२।
यह सिद्ध भगवान को दिखानेवाला भंग है ।१६३।
यह शुद्ध गुणाकार का अंग है ।१६४।
यह ऋद्धि को दिखानेवाला भंग है ।१६५।
यह सिद्ध संसिद्ध भंग है ।१६६।
यह बुद्धि को प्रकट करनेवाला अनुभंग है ।१६७।
यह ऋद्धि को प्रकट करनेवाला अनुभंग है ।१६८।
यह सिद्धत्व प्राप्त करने के लिए आदि भंग है ।१६९।
इसको संपूर्ण मिटाने से सिद्ध भगवान का अंग रूप है ।१७०।
यह शुद्ध साहित्य नामक भूवलय है ।१७१।

वश किये हुए कर्माटक के आठ रसभंगों के सम्पूर्ण अक्षर रस भाव को मिलाने से प्राप्त यह ७१८ (सात सौ अठारह) भाषा है ।१७२।

अत्यन्त सुन्दर रमणीय आदि के भंग संयोग अमल के १ अक्षर को क्रमशः यदि ७ से गुणा करते जायें तो ६४ विमलांकों को उत्पत्ति होती है, ऐसा समझना चाहिए ।१७३।

श्री सिद्ध को लिखकर उसमें अरहन्त अ को श्री अशरीर सिद्ध भगवान अ और आइरिया के पहले का अ इन तीनों के आ अ, आ को पृथक् पृथक् लिखकर एक में मिलाने से आ होता है। यह श्रेष्ठ धर्माचरण के आदि भे आ आता है। पुनः आगे उवज्झाया के आदि में उ आता है। और अन्तिम साधु मुनि के श्रीकार के आदि में मु और मू से म् आता है। इन सभी को परस्पर में मिलाने से ओम् बन जाता है। यही ओंकार समस्त प्राणी मात्र को सुख देनेवाला मन्त्र है। १७४-१७५-१७६।

यह कलंक रहित जीव शब्द है ।१७७।
यह साकल्य भंग का मूल है ।१७८।
यह साकल्य का संयोग होते ही एक है ।१७९।
यह पराकाष्ठ परब्रह्म का अंक है ।१८०।
यह उस अकलंक जीव का तत्त्व है ।१८१।
यह साकल्य भंग का अन्त है ।१८२।
साकल्य मिलाने से सब है ।१८३।
यह पराकष्ट का भंग है ।१८४।
अन्त में सभी मिलकर यह द्रव्यागम है ।१८५।
यह साकल्य भंग का मध्य है ।१८६।
यह साकल्य मिलने पर भी भव्य है ।१८७।
यह पराकष्ट परब्रह्म भद्र है ।१८८।
यह आकार से द्रव्य भाव है ।१८९।
यह साकल्य ही ६४ है ।१९०।
यह साकल्य ही शब्दागम का ।१९१।
पराकष्ठ परब्रह्म तत्त्व है ।१९२।
यह साकल्यांक चक्र का आदि है ।१९३।
यह साकल्य कर्म से हारी है ।१९४।
यह सकलागम द्रव्य रूप है ।१९५।
यह एकांक सिद्ध भूवलय है ।१९६।

आदि निज शब्द एक ओ३म्कार की विजय रूप है इस विजय को प्राप्त किया परब्रह्म के समान अपने को मानकर अपने अन्दर ही आराधन करनेवाले योगीअन्य अपने को वसूआ २७ स्वरों में 'ओ' अनि से अन्य शेष पांच अक्षर के उ अन्य रसकूट की आवश्यकता क्या है क्योंकि वह जो एक अक्षर है सो एक है और उसी का अंक अर्थात् जो पंच परमेष्ठी है वह भी उसी का रूप है और उसी का नाम ओम है जोकि एक अक्षर है। और ओम अक्षर ही इस विश्व में सम्पूर्ण प्राणियों को इष्ट को प्राप्त कराने वाला है ।१९७-१९८।

समस्तवादियों को पराजित करके भगवान की दिव्यवाणी के तथा मर्म जाननेवाले सम्यग्ज्ञान के साधन यह ६४ चौसठ अंक हैं ।१९९।

बंध अंक नौ रूप को कहनेवाला नवपद भक्ति की विजय पृथ्वी तलमें प्राप्त होने से ६४ अंक इस सम्पूर्ण पृथ्वी में एक है ।२००।

अभेद दृष्टि से देखा जाय तो अंक का अक्षर एक है सम अंक को अलग

किया जाय तो भी एक है। यह कर्माटक कितने आश्चर्य का है ? क्या यह सामान्य है ? अर्थात् सामान्य नहीं है।२०१।

कर्म सामान्य रूप से एक है, मूल प्रकृतियों के अनुसार ८ प्रकार का है। उत्तर भेदों के अनुसार कर्म संख्यात भेद वाला है। उन कर्मों को दबा देनेवाले आत्म-प्रयत्न भी उतने हैं। इन सबके बतलानेवाले विश्व के अंक निकल आते हैं।२०२।

वह विश्व का व्यापी होता है।२०३।

यही जीव का अनन्त गणित है।२०४।

यह जन्म और मरण का अनन्त है।२०५।

भगवान अर्हंत देव के ज्ञान में आया हुआ यह अनन्त है।२०६।

श्री वीर भगवान का जाना हुआ यह अंक है।२०७।

जीवों को संसार में हलन-चलन करानेवाले कर्म हैं।२०८-२०९।

यही जीव राशि का कर्माट है।२१०।

बिना रक्षा के यह अंक है।२११।

जीव को संसार में भ्रमण करानेवाला यह अंक है।२१२।

यह जीव राशि के गणित का अंक है।२१३।

पवित्र जीव को घात करनेवाला यह अंक है।२१४।

भाव कर्मांक रूप यह गणित है।२१५।

जीव को संसार में रुलाने वाला यह गणित है।२१६।

यह सम्पूर्ण जीवों का गणित है।२१७।

पवित्र जीव का ज्ञानांक है।२१८।

भेद की अपेक्षा से अक्षर चौंसठ हैं।२१९।

अभेद विवक्षा से एक अंक है।२२०।

श्री भगवान वीर की वाणी नी अंक रूप है।२२१।

यह विश्व काव्य नामक भूवलय है।२२२।

नवपद भक्ति ही अणुव्रत की आदि है और जीव जिन-दीक्षा धारण करके नवांक को आठ से, सात से, दोसे, समभाग करने से शून्य रूप में दीखता है।२२३।

मोह के अंक कितने हैं, राग के कितने हैं, ऐसा जानकर वह मोह द्वेष को जब नष्ट कर डालता है तब निरञ्जन अमूर्तिक आत्मा का ज्ञानांक कितना है, यह मालूम होता है।२२४।

तेरहवें गुणस्थान में पहुंचा हुए आत्मा के सारे दर्शनांक, बारहवें गुण स्थान का अंक और सार भूत चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त हुआ चौदहवां अंक कितना संख्यात है।२२५।

पुनः शिव पद को प्राप्त करके सिद्ध लोक में पहुंचा हुआ सिद्धलोक के निवासी जीव और उनके आठ गुण की व्याप्ति से आये हुए अंक कितने हैं, इस सम्पूर्ण विषय को बतलाने वाला यह अतिशय नामक धवल भूवलय है। २२६।

कामदेव का हन्ता आगे १४, ३१९ अन्तर के ८,०१९ सम्पूर्ण मिलने से एक को बतलानेवाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है।२२७।

ऋ, ८, ०१९+अंतर १,४३१९=२२,३३८,

अथवा अ-ऋ २,००,५६५+ऋ २२,३३८=२,२२९०३।

बारहवाँ अध्याय

ऋ* षिगळ् अध्यात्म योग साम्राज्यदे । वशवाद श्री भद्ररा शि* ॥ रसवस्तुत्यागद सम्यमदिम् बन्द । यशसिद्ध काव्य भूवलय ॥१॥
ए* रिद ध्यानाग्नियारय्केयोळु बन्द । शूर दिगम्बरर् नव व* ॥ मूरु कुन्दिद कोटियक्षरदन्कद । सारात्म सिद्ध भूवलय ॥२॥
व्* रद सम्हननवु व्यवहार नयवाद । परिय निश्चय नय म* दुवे ॥ सर मागेर्दाग शुद्धत्व सिद्धिय । परमात्मनन्ग भूवलय ॥३॥
आ* दिय सम्हननवु व्यवहारद।साधने निश्चय नयव ॥ साधिप स* वसमययद्दि मंगल काव्य । दोदिनिम् बन्द भूवलय ॥४॥
ण* र जन्मदाद्यन्तदादिय शुभ कर्म । विरुवष्टु सुखवनु तु* मूवि ॥ सरुव पुण्योदय हृदिनेन्दु श्रेरेणियु ॥ बरबेकेन्देनुव भूवलय ॥५॥

उरदवरन्ग रक्षणेयु ॥६॥ न्रज न्मदन्त्य शरीर ॥७॥ एरडने चरम शरीर ॥८॥
व्रगळ सम्बळ काव्य ॥९॥ उरद सन्मौन्जिय बंध ॥१०॥ ग्रुव श्री गुरुवर काव्य ॥११॥
अरसराळिद गन्ग वम्श ॥१२॥ र्रसोत्तिगेय वर मन्त्र ॥१३॥ एरड्वरेय द्वीपदन्द ॥१४॥
गुरुव गोट्टिगरेल्लरन्द ॥१५॥ अरमनेयोळु पूर्ण ग्रुहुवु ॥१६॥ न्र कुरिगळ अन्दवळिद ॥१७॥
इरुवेगळन्टद सिहियु ॥१८॥ ज्रेयोदगलु यव्वनान्ग ॥१९॥ अरसुगळाळ्द कळ्वप्पु ॥२०॥
मूरेतिह अध्यात्म राज्य ॥२१॥ अरवट्टिगेय तवरुरु ॥२२॥ ट्रदन्गदनुभव काव्य ॥२३॥
ष्रबाणगळ तीक्ष्ण मृदुल ॥२४॥ अरमने गुरुमनेयोमृदु ॥२५॥

इ* वु 'रिद्धि सिद्धिगे आदिनाथरु' पेळ्द । धव 'अजितर' गद्दुगे' स* वि॥ नव वाहनगळु'एत्तु आनेगळु 'मु'।नवकारस'र्दिनिम् स्याद्वा'॥२६॥
ए* वेळ्दुरुवर 'द लाञ्छनदम्तिह्' । गायन 'सुदृश्य पेळ्' दव र* उ॥ सावय सर्'व्उदिम्तहहा'[१]'सर्वार्थसा'।रावयवद'धनवाद ॥२७॥
व्* रतर 'माञ्च गलिकद' सर्वकार्यद' । सरद 'आदियलि' सर्व' व* रु॥ अरुह'रु कुदुरेय तन्दु सेविसुवरु । 'अरहन्त सर्व मङ्गलद' ॥२८॥
ई* तेरनाद्श्र 'मङ्गळमम्[२] हाराडुव' ख्यातिय 'मनव्अनु' न्ते ज* य॥ नूतान् 'कट्टिट्टिट्टन्तेनेरदिकपिय'।ख्यात 'लांछनवु' हारुव'द ॥२९॥
रे* णुकादेविय' 'स्यादवादमुद्रेयिम्' ताणदि'कट्टिदर् सार'॥ दाण ग* 'सर्व स्ववागिरिसि' [३] द अंक । क्षोणिय अतिशय धवल ॥३०॥

अणुवनु 'स्वस्ति श्रीम' न्त्र ॥३१॥ र्तनिया 'द्राय राजगुरु' ॥३२॥ त्नगे 'भूमण्डला' धिपरु ॥३३॥
इनवम्शद्श्रा 'चार्यरु' ए ॥३४॥ न्श्रनगे 'एकत्वभाव' नेय ॥३५॥ इणुकुव अणु'नाभावितरुम्' ॥३६॥
द्श्रन् 'उभयनम्' समग्ररुम श्रो ॥३७॥ अनुदिन 'त्रिगुप्ति गुप्तरुम्च'॥३८॥ य्श्रनुवन् 'तुष्करिया रहित्' ॥३९॥
आनन्द 'रुम् पञ्च व्र'त ॥४०॥ य्श्रनुव 'समेतरुम् सप्त' ॥४१॥ र्ण 'तत्व सरोजिनी रा' ज ॥४२॥
अनु 'जहम् सरुम अष्टमद' द ॥४३॥ प्नेय 'भंश्रनरुम् नवनि' ॥४४॥ ळनवि 'धवाल ब्रह्म चर्या' ॥४५॥
अनुव 'लन्क्रुतरुम् देश' वद ॥४६॥ ग्नवु 'धर्म समेतरुम द्वा' ॥४७॥॥ न्नेव दशान्ग श्रुत' धरर् ॥४८॥
अनुवु 'पारावाररुम' श्रो ॥४९॥ म्न 'चतुर्दश पूर्वादिगळुम्' ॥५०॥

प* द 'दीप्ति तेजव नात्म चक्रदोळ्' तानु । मिदु 'बेळगुव गुप्ति' ता* वम्॥ अदर 'त्रयव पालिसुतसुप्तवादात्म'।नुदित'तत्ववसुत्तुतलिह'॥५१॥
च्* रिते 'गुप्तिय चक्र कोकवहि'[४]सिदागि। वर'णवराशिलेक्क' म्* द॥ लिरुवु'दंकगळ तन्नोळगिट्टु'नव नमो'दिरियिरि'दयमूवृदुगंध'॥५२॥

छ्* ळिलेम्ब 'सुविशालवह तावरेय मे । ट्टे' ळियुत बरुत लिर्द प्* अद। वलिय्'उतवन्दवरंक दादियकमल्अ'[५]ळेवाग'मणिस्वर्णरजत'।५३।
म्* र्मद 'पारद गंधकादिय क्षण' निर्मल 'दोळु भस्म' वेद अ* ळ ॥ धर्म 'वागिसुव' न्क 'गणनेय हूविना' धर्मा'युर्वेद विद्येगे,म' ॥५४॥
अ* 'णिनव जलजद पंख' [६] म 'चित्तदोळेसे' दन'व सम्पूर्ण।'द र ॰ सद। गुणद'क्षरांकद ओत्तुगळोडने कू । डि'नचन्दर'सुव'चित्र विद्ये'॥५५॥

एनलु 'परम जिन समय' ॥५६॥ गण 'वार्धिवर्धनरवरु' ॥५७॥ इन 'तण्पिनसुधाकररुम्' ॥५८॥
ट्ण 'प्रतिक्रमण शास्त्राढ्यर्' ॥५९॥ प्णसदिरुव 'परीक्षितरु' ॥६०॥ उणवण्ण' मतिज्ञान धररुम् ॥६१॥
र्णि से आर्मूरु मूर्उगळम् ॥६२॥ स्इनलि इष्टार्थवरिदर् ॥६३॥ म्नद पर्याय अक्षररुम् ॥६४॥
अणु 'पद सम्घात धररुम्' ॥६५॥ द्णु 'प्रतिपत्यनाग धररुम्' ॥६६॥ म्नद् 'अनुयोग श्रुताढ्यर्' ॥६७॥
ओणि 'प्राभृतक प्राभृतकर्' ॥६८॥ ळ्णरलु 'प्राभृतकांगर्' ॥६९॥ ओणिज 'वस्तु हत्तन्क पूर्वर्' ॥७०॥
ळ्ण 'दश चोद्दश पूर्वर्' ॥७१॥ अनुयोग 'जीव समासर्' ॥७२॥ ग्ण 'समासवु हन्तिप्पत्तु' ॥७३॥
न्णद 'आचार सूत्रक्रुतर्' ॥७४॥ अणि 'स्थान समवायधररु'॥७५॥ ग्णद 'व्याख्याप्रज्ञप्तर्' ॥७६॥
उनद 'ज्ञात्रुकथा रूपर्' ॥७७॥ ग्न 'उपासकाध्ययनांगर्' ॥७८॥ अणु अन्तक्रुद्दशधररुम्' ॥७९॥
ट्न 'अनुत्तरोपपाद दशर्' ॥८०॥ ष्ण 'प्रश्न व्याकरणांकगर्'॥८१॥ अणु महा 'विपाक सूत्रांगर्'॥८२॥

भा* ग्यदसद 'य स्वस्तिक वाहनवेरि'। नीग 'दुत्तम पोरेयुवु' ह्* अ॥ सागलदेम्अम्[७]ण्व पददंकवु वृद्धि'। नाग'यम्होदुव' सुविशा' ॥८३॥
य* शदे 'लवहतम्बेळग चउतियचम्' । देसेविन् 'द्रनकिरणद् इ* होस 'बेलळदु' प्रवहिपकाव्यवेन्न' य । जस [८] हरुषदोळेरडु' गळ ॥८४॥
म्* न्अ 'प्राणिगळोम् दागिर्प तेरदोळु' । घन करिमकरियदु' त् त्* अ ॥ जनर् 'ओरेय द्विधारेय स्याद्वादद'। घनवाद'स्तरद परिय' ॥८५॥
ह* अरिसि 'भाविसलद् भुतवल[९]मणिरत्नावर'मालेआहारादि'य् अ* ल ॥ सर 'गळनी व रु'गणितद हत्तु'सिरि'पृक्षगळु कषणदोळु'गे ॥८६॥
इं* वु 'कल्पदिन्दय् तन्' द'दोम्दादन्ते'।सवि 'जिन रासन' वद न्* अ॥ अवु'वृक्षकल्प'(१०)गळगळु'गोचरि'।सवि'बृत्तियोळा हाहारवनुम्' ॥८७॥

अवरु 'हन्नोम्दनग् धररु' ॥८८॥ द्व 'परिकर्म सूत्ररवरु' ॥८९॥ नव 'प्रथमानुयोग धररु' ॥९०॥
इवु 'पूर्वगत चूळिकेगळु' ॥९१॥ द्वु 'दृष्टिवाददय्दुगळु' ॥९२॥ अवरोळु 'पूर्वगतदलि' ॥९३॥
व्वु 'उत्पाद ग्रेणियद' ॥९४॥ अवर 'वीर्यानुवाद दलि' ॥९५॥ भ्व'अस्तिनास्ति(प्रवार्द)पूर्ववरु' ॥९६॥
य्वेयसु 'ज्ञानप्रवादर' ॥९७॥ ववरु 'सत्य प्रवादववु' ॥९८॥ अविरल 'आत्म प्रवादर्' ॥९९॥
य्वरु 'कर्म प्रवाद धरर्' ॥१००॥ र्नव 'प्रत्याख्यान पूरम्' ॥१०१॥ आव 'विद्यानुवाद पूर्वर्' ॥१०२॥
ह्यवु'कल्याण वाददवर्'॥१०३॥ तिविये 'प्राणावाय पूर्व' ॥१०४॥ राव 'क्रिया विशालवरु' ॥१०५॥
प्व 'लोकबिन्दुसार धवर्' ॥१०६॥ आवेल्ल'हदिनाल्कु प्र्वर्' ॥१०७॥ हवु 'हत्तु हदिनाल्कु एन्दु' ॥१०८॥
अवु 'हदिनेन्दु हन्नेरडु' ॥१०९॥ म्वु'हन्नेरड् हदिनार् इप्पत्तु' ॥११०॥ अवु 'म्रवत् हदिनय्दु हत्तु' ॥१११॥
ट्वु 'हत्तु हत्तु हत्तुगळु' ॥११२॥ पवि 'अन्ग विरुव वस्तुगळ' ॥११३॥ अवरङग 'वस्तु भूवलयर' ॥११४॥

स्* अवणनुन् 'डु श्री चर्येयोळात्मन' । विवरद नु आच्इन् इ* नुदु'॥ सावदु'ण ुव मुनिगंडभेरुन्ड'ई'। नव 'चिह्न स्याद्वादवप्प'(११)आ।११५।

इ※ वु 'वशवल्लद मन कोणनन्तिर्दा । ग'वनु'वशगोळिसिद' ब र्※ दुक॥ सवणनु'जिनमुद्रे।होसभूवलयदि'न्द । सवि'लांछनवागलु'श्री ॥११६॥
द्※ रुशन'वशवाय्तेम्मय सोम्मु'(१२)लुएन्दु ।बरे'दिवदिन्दवत् अ※ रिसु॥ व'र'जिननाथनु, अवितु हन्दियवेष। धरिसि अर्वानगे काव्यगळ' ॥११७।
ध※ 'र्भवनित्त सूकर'नव वाहन' स्रभव पोरेगेम्मम्'[१३]य् अ त्※ न ॥ गर्भद 'गणनेयिल्लद द्रव्य श्रुतदक्ष' । गर्भ'रांकद मणिगळ'नु ॥११८॥
व※ शवद'रोमरोमदलि'हेणेदु कोन्डिर् प्'सम श्री करडिय् अ' आ※ त्म॥ यशवदु'लांछनक्षणदअमहिमेयम्।यश'तोर्क[११]यक्षदेवरुगळ्' ॥११९॥
र※ सद 'आयुध वज्र जिन धर्म' दक्षुण्ण' दिशेयलि 'सेवेगागि' भ※ उवि॥ गिसि'हुदु' शिक्षे योळ्रक्षणेयिरुव'। व'श लांछन वज्र'यशदे ॥१२०॥

'आशेयादिय एरडरलि' ॥१२१॥ म्आशे 'अग्रेयणीय वरुम्' ॥१२२॥ 'इसेव पूर्वेय हदिनाल्कम्' ॥१२३॥
ह्सनदरलि 'पूर्वान्त' ॥१२४॥ असमान 'अपरांतर्रुवरुम्' ॥१२५॥ म्सक्ए' अर्रुव चवनलब्धि'॥१२६॥
असद्रुश 'अद्रुव सम्प्रणधि'॥१२७॥ द्इशे 'अर्थ भौमावमाद्य' ॥१२८॥ ळ्एसेये 'सर्वार्थ कल्पनिया' ॥१२९॥
एशे 'अतीत ज्ञानधरर्' ॥१३०॥ प्सरिसिद् 'अनागत सिद्ध' ॥१३१॥ 'उसह सिद्धम् उपाध्याय' ॥१३२॥
ल्सरिसि 'इनितेल्लवुगळम्' ॥१३३॥ ओसेयिसिदरु 'सेनगणरु' ॥१३४॥ 'दशधर्मद् अचार ग्रन्थ' ॥१३५॥
असिहर 'जिन समहितरु' ॥१३६॥ यशद 'भुवलय धवलरु' ॥१३७॥ अस् 'महाधवळ प्ररूपर्' ॥१३८॥
लसदृश 'जय धवलवरु' ॥१३९॥ असम 'विजय धवलवरु' ॥१४०॥ व श्रद 'सिद्धांत पञ्चधरर्'॥१४१॥
'उसह सेनर वम्श धवलर्' ॥१४२॥ भ्सव पूजितर भूवलय ॥१४३॥

क्※ वचद 'रक्षणो ईउदु सहसा'(१५)कवि'तुष मष बोधदिन्द'॥ नव् अ※ 'असि आ उ सावनु वशगोळिसिद'।अवर'वेगवनु'यशदोळु' ॥१४४॥
ऊ※ रुत'तोरुव हरिण लांछन वदु' । 'सारि हेसरिसे बह पुण्य 'अ' व्※। 'सार सकल(१६)रसयुतवा'गिरुवु'देल्ल'।दारियलि'ह'सोप्पुगळनु'॥१४५॥
ड्※ ळिसुत 'तिन्दु हसनल्लदाडुमुदृ' द । 'यश'वनु' बिसुड्उव् अ※ टगरम्'।हसदन्'तेपापहरणमाळ्प होसटगर्'।एसेयलु'हृदिनेळरंक'(१७)॥१४६॥
ए※ रिसि 'गगनवेल्लव सुत्ति बगेयोळ' । गारा' गडगिद् अगणित' न्※ ।'सारद 'शब्दराशियदुम् सोगसाद' । नेरद 'गमल भूवलय' ॥१४७॥
हो※ दिव्य 'नन्द्यावर्त हगलिनन्ति' । रीदिनवि 'रलेन्न' अन् तु※ वेदित 'हृदय'(१८)दे वारणाशियोळेळ'। साध'ने बल वास्देव' ॥१४८॥

उदित 'णाणद राद्धांतर्' ॥१४९॥ द्धवश 'सकल शास्त्रगळम्' ॥१५०॥ न्वद 'सम्पन्नरम् सकल' ॥१५१॥
वेदगे 'विमल केवल णाणा'॥१५२॥ अदरअ 'धीश्वररुम्' श्री ॥१५३॥ ण्धर 'त्रिलोक स्वामि दया' ॥१५४॥
अदु 'मूल धर्मदोळु' दित ॥१५५॥ र्'दरु पविष्ट त्रिलोक' ॥१५६॥ आदर 'सार लब्धि' गळु ॥१५७॥
क्दिर 'सार चारित्र सार' ॥१५८॥ एदु''रु चतुष्टयन्गळोळ' ॥१५९॥ ग्दरोळ 'गाद श्रावक र्' ॥१६०॥
इदर 'आचार मोदलाद' ॥१६१॥ ध्दरे 'सन्धानि लोकानि' ॥१६२॥ स्दवधि 'सूर्य प्रज्ञप्ति' ॥१६३॥
इदु 'युक्ति युक्ति आगमरु' ॥१६४॥ द्द 'परमागमवाद' ॥१६५॥ अदरलि 'तीर्थकरान्त' ॥१६६॥
र्द 'सन्तति मूल प्रकृति' ॥१६७॥ तृदिगे 'उत्तरोत्तर प्रकृति' ॥१६८॥ न्द 'वरन्नतप्प सज्जनरु' ॥१६९॥
अदुवे 'मय् आरत सम्ज्ञ एन'॥१७०॥ मृद्दश 'ग्रन्थ भूवलयर्' ॥१७१॥

च※ रद 'सारात्म' नु 'नवमांक चक्रि'यु । बरे 'सार मंगल प्ऊ' भ्※ आ॥वरव'र्ण कुम्भवाहननु नेरदि'। अरिदु'तुतिसे वाहन मा'[१९]॥१७२॥
क्※ रि'णव पदवेल्लर्गे भद्रकवच' । वर 'वन्तु सवेयद चि'र ऊ※ ॥बरेद क 'प्पहमेय्य' सुविशालवाद्आ । मे'रेव 'य लांछन'कविगे' ॥१७३॥

की* रुति'भद्रतेयम् कलिसु'[२०]'व राज्य'। सार'व षट्खण्डव'नु त्* ऐ ॥ अरय्दु'पोरेदरुहन''राज्य मुक्तिगे'। दारि 'हन्नोन्दनेय'नेले ॥१७४॥
द* व 'राज्यवनाळ्द चक्रियु पूजिसि'। सवि'दन्त'राज्य वाहन् अ* नी॥धव'लोत्पलकु'[२१]ळ'कोटिलेक्कदोळिप्प'।नवनु'अन्तादिकाव्यव'ला१७५
ह* दवे'मीदुव तन्तियनाद'दाटवु। ओदगि'बन्द श्री'शंख'॥ पद ग* र्भ'वाहनवेम'गाटविश्रुत'। सदव 'व नितत सर'[२२] सति ॥१७६॥
अदरलि'तर्क व्याकरणर्' ॥१७७॥ र्दरु छन्दस्सु निघन्टु ॥१७८॥ आद्'अलंकार काव्य धरर्' ॥१७९॥ क्दसिन 'नाटकाष्टांगर्'॥१८०॥
अदणित'गणित ज्योतिष्कर्'॥१८१॥वद्गिद'सकल शास्त्रगळ'॥१८२॥ अदर'विद्यादि सम्पन्नर्'॥१८३॥ नृदियन्ते 'महाअनुभावर्'॥१८४॥
अदरलि'लोकत्रयाग्रर्' ॥१८५॥ द्दि'गारवद विरोधर'॥१८६॥ अदे'सकल महीमण्डलार्यर्' ॥१८७॥ ल्धिय'तार्किक चक्रवर्ति॥१८८॥
अदे'सद्विद्या चतुर्मुखरु' ॥१८९॥ ड्द'षट्तर्क विनोदर्' ॥१९०॥ नृद'नय्यामिकव वादिपरु' ॥१९१॥ अदरलि'वय्शेषिकवम्' ॥१९२॥
मृदिय 'भाष्य प्रभाकररु' ॥१९३॥ अदे 'मीमाम्सक विद्याधररु'॥१९४॥ कृद् 'सामुद्रिकर भूवलयर'॥१९५॥
क* 'रुणेयोळय्वर मन्तरद' सरणिमिम् । अरुहन 'मृहिमेयिम्' णा* णा ॥'धरणेन्द्र पद्मे यरागि'ताव्'परितन्द'वर।हावु'वाहनगळ'लि॥१९६॥
प्* रिपरि'चिन्हेयु धरेगे विस्मयकर । वरिग'[२३] ने'म् अन्प्रसिम् ह* पीठ॥ व'रिद'नेरिद महवीर'जिननायक'हरिव'स्वाहनव'जन' ॥१९७॥
पे* 'रेल्ल राज्य चिन्हेगे वीररसवेन्दु'। हारि 'मनेय मेल्एर्' दो* सार'इदहरित्व[२४]पद्ममगळेरडुन्नूरिप्प'।सारु'त्तय्दरचक्र पद्म'॥१९८॥
आ* 'गळ्नाल्कु'म् 'सेरिसुत' पद्मगळोम्भय्' सागे । 'नूराय्तुनाल्' षा* क॥ ईगल्'कने'पद्मविष् ठरपाद'वि।राग'विजय[२५]'उत्पल'रु॥१९९॥
ह्* र'पुष् पवाहन देव' श्री 'नमिजिन'। गुरुवि'नुत्पत्ति' यग्ररु ह* सिरि'कालद चिन्हे' सत्पथवनु तोरि'।गुरुवे 'नम्मम् पालिसेम्बे' ॥२००॥
उ* सरि'चित्पथ मार्गकयदिसला(२६) मनु'। विष'मथनय्य'नृम्रम् प्* द'नु॥वृषभ तीर्थंकर'जिनमुद्रेयोळुतप'।वश'गय्दजिनवृक्षवदन'म्॥२०१॥
ट्* णटरण होळेव् अशोकेय रूपेन्नुव । घनवटवृक्षवद्म्र' र* लि॥गुणदरिग[२७]म् श्री'म्नसिजमर्दन'।धनद्'अजित जिनेश्वर'रे।२०२
ट* वणेय'तनुभारव तपकोड्डिजि। न'व'नाद एळेले बाळे'य' वन या* 'गिडदडि 'एन्नुवशोकेयु'। नव'ताम् स्वच्छ [२८] णरभव ॥२०३॥
य* श'दन्तिम देहव शाल्मलि'वर'। वश 'वृक्षद डियोळु बइ' न् दु॥ वशम्र'ट्ट परमात्म शम्भव जिनरिगा'।यश'वृक्षवे' सुरवन्द्य' ॥२०४॥
आशायुर्वेद विधिज्ञर् ॥२०५॥ 'द्शधर्म योगसार धरर् ॥२०६॥ रसवाद दतिशय भद्रर् ॥२०७॥ आस हदिनेन्टु दर्शनरु ॥२०८॥
त्स स्थावरजीवहितवर्॥२०९॥वश ब्रह्म विद्या ळषणरु॥२१०॥ अशा भूवलय दिग्भ्ररु ॥२११॥ त्रसजीवगणनेय चतुरर् ॥२१२॥
रेसेवर स्वच्छाभिप्रायर्॥२१३॥यश राज्य चक्रवर्तिगळु ॥२१४॥आसे शब्दद विद्यागमरु ॥२१५॥ प्सरिप कन्नाडिनोडेयर्॥२१६॥
छशतद सूत्रांगधररु ॥२१७॥ न्सनसेयळिद सिद्धान्तर्॥२१८॥ पिसुणतेयळिद कन्नडिर्ग ॥२१९॥ कसवरनाडिनोळ्चलिपर्॥२२०॥
तसविद्येयतिशय कुशलर॥२२१॥ स्सदक गणनेय कुशलर्॥२२२॥पुष्पगच्छदलि भूवलयर्॥२२३॥
को* टिय 'वृक्षवदण्ण'(२९) ने'नरवन्द्य'। साटियळिद अभिनन् तु* साटिये 'अभिनन्दन मत्तु सुमतियु'। पेटेय 'सरल प्रियन्गु ॥२२४॥
ड्* गणित'वृक्षगळ्' वु 'मरदडियोळु'। सोग 'तपगेय्द वृक् ना* ग॥ अग'षगळे'धरणिगे सन्तोष।बगेहित'कारि[३०]दर्शन वोळ्'॥२२५॥
इ* वर् 'अगात्मनिरव कन्डिरदर'। सविवर 'दर्शनोत्पत् शं* सव 'तिय वृक्ष' हर्षद कुटकि शिरीष'। नव गळेरडम् 'स्पर्शद शो ॥२२६॥
ण्* व्केय नरुह(३१)आत्म प्रकाशव पद्म'।नव 'प्रभ जिन,रात्म' ति* ळिये॥सिव'सुपार्श्व जिनेन्द्र'स्वात्मसिद्धिनाग।सवि व्रुक्षषद मूलदि आत्म२२७
इ* रे 'चन्द्रप्रभ सुगुणि'(३२)वशगय्दात्मन'। सिरि 'पुष्पदन्त' ष्* इक्षणव। व'र वृक्ष'होस अक्षवेनेनागभणियु'।बरे हस बेल्लवत्त वदू ॥२२८॥

अंतर श्लोक की तीन लाईन यहाँ होनी थीं परन्तु यहां चार लाईन होने से प्रथम अक्षर सर्प की गति से पढ़ने से नहीं निकल सकता है। पाठक लोग तीन तीन लाईन बनाकर पढ़ने से पहला पुन : पढ़ सकता है इस ग्रंथ में यही एक अद्भुत कला है।

व्* नद'ली वृक्षदडियलि'ह'रसश्'ई। कन'तल जिननज्जा'३३ व ट* द ॥ जिन'तपगेय्दु मुत्तुगवेने तुम्बुर'। वन'गिड'दपवर्ग दडियिम्' ॥२२९॥
वु* दुरि 'पोद'म्'तपसिगळ ग्रगण्यरु' । सदय 'श्रेयाम्सरु' अ तु* ल॥ मुददि'तपसिदशोकवदज्ज्'३४अ'तपिसिद'।षिदु'देहव तेन्दु वृक्ष'।२३०।
द्* रिय'दि बिट्टु'द'अपवर्गवम् वासु' । सिरि'पूज्यर्'सुपवित्र' जि* नरु।।सिरिय'पाटलि जम्बूवृक्ष दितपिसिद'।वरदे'विमलनाथ नव'३५रु।२३१।
ए* सिरि'मनसिजनस् गेद्दनन्त'रु । लील 'धर्म स्वामि' युक्त त* र॥ पाळिय'कोनेगे अश्वत्थवु दधिय'अ' । साल'नुवाद पर्ण दगि' ॥२३२॥
लुळिगि'डदडियिन्दय्दि' ॥२३३॥ कोलु तात'जिनराद'सुप' ॥२३४॥ यल'वित्रद महो३६ अरहम' ॥२३५॥
एलेयु'तराद शान्तियु' क॥२३६॥ एलु'कुन्थु देवरु सुरुचि' ॥२३७॥ वलवो 'रनन्दियु तिलक' ॥२३८॥
ट्ल 'सरदियवृक्ष मूल' ॥२३९॥ यल'दलि तपवगेय् दरहन्' ॥२४०॥ ललि'तरागिरुव जसा ३७ दर्' ॥२४१॥
वलदर्'शनदोळगनरि' ॥२४२॥ ऊलि'त श्री अर मल्लि' ॥२४३॥ म्लात काद्रि भूवलय ॥२४४॥
व* श'दशिसिदात्म वृक्षगळु स्पर्श'। हस'मणियतेर मावु शा* लि ॥ वश'कम्केलिय हर्षद वृक्षग ळ'श'हहो ३८ धरणियोळ् मुनिसु' ॥२४५॥
अ* निसु 'व्रत नमि देवरु'अरहन्त। गुण 'राद वृक्षगळ्म्' स* ब्बोण'वरेये चम्पक बकुलगळे म्बेर । ड' णव 'म् परमात्मर ब्रु' ॥२४६॥
न्* 'क्षवहह् ३९ समवसरणवनु नेमि'। अक्षर'तीर्थंकरर्' न* सक्ष 'विमल मेषभृङ्ग (गिडद) विमलरमे' रक्षे'योळूर जन्तदि कय्' ॥२४७॥
दे* 'वल्य'होन्दिदरममश्रीमन् नेमि'। तावु'जिनरा४०सीमेय'म* नु ॥ नोव 'ळिद श्री पार्शव तीर्थेशनु' । पावेय 'रामणीयकवा' ॥२४८॥
दवन्'द दारु'आ मरद' ॥२४९॥ लवर'डिय सुवर्ण भद्रा' ॥२५०॥ गवरा'चल' शीमेगे सम' ॥२५१॥
न्व'मेदवरव ४१ महवीरदेवनु'॥२५२॥ मवतारे'शालोर्वीरुहद' ॥२५३॥ ववएसद'ढि बहळ कर्म ॥२५४॥
न'वनेल्ल केडिसि' वहिसिद' ॥२५५॥ वावे'पावा पुखेद' र ॥२५६॥ व्व'शोकेयु सिहियागि' ॥२५७॥
अवि'हुदल्लि जस ४२ यक्षराक्ष'॥२५८॥ रव 'स व्यन्तरर शोकवने'॥२५९॥ ववने'ल्ल'साक्षात् आगि' ॥२६०॥
गेवे'निल्लिस व'रक्षेय म' ॥२६१॥ शवेय रगळेल्लवनु अशो'॥२६२॥ 'क् अवेन्दी क्षिसलिल्लि रुव' ॥२६३॥
तिविध'महि'४३ यु'रसयुतवा' ॥२६४॥ कवि'देल्ल वृक्षदि माले' ।२६५॥ क्वन'गळ'होस घन्टेगळ्' ॥२६६॥
तबिद'लंन्कार'रसवुक्कि' ॥२६७॥ वबु'बरुव फलावळि बगि' ॥२६८॥ रिवि'ह'रसमान विभव नो'॥२६९॥
गेवु'डमम ४४ सोरुव गन्ध'॥२७०॥ रव'द भारव हूवनु'भूरि' ॥२७१॥ ववु 'वय्भवद शाखेगळ' ॥२७२॥
अवु'दारियोळेल्ल भव्य' ॥२७३॥ वुवु आ'त्मरशोकवु हारे' ॥२७४॥ तव'नोरोगिगळ'म् माडे ॥२७५॥
रव'हरम् ४५ तरगळु इप्पत्'।२७६॥ ववु'नाल्कर हूवम् परमा' ॥३७७॥
ण* म आ'त्म वय्द्य शास्त्रदलि'बरेदिह हदि'। गम'नेन्दु सा' सु* विरजाति'॥सम'गेपरममंगलकन्डुन्ड'४६ह'तीक्षण।सम''वागिह स्याद्वाद'॥२७८॥
म्* न'द बुद्धि य'तीक्ष्णतेयेष्टेम् बुदनु'॥घन'तीक्ष्णवाग' चि* रितोडे' ॥ घन 'पुष्यायुर्वेदद'रक्षणे' । तन'योदगुबुदेनन्[४७]चाव॥२७९॥
अ* नु'लेक्कवनु नोडिदरु बरु वोम्बत्तु'। जिन'श्रीवीर जिनन' र* 'भूव'॥ तनु'लय' साविर एरडु इंन्नूरय्वत्' एने 'अक्षर' ईवाग सरि' ॥२८०॥
ह* रि'यहुदरिग'४८ अन्तर मूरोम्बत् ओम्बत्। बरे ऐदओन्द म* काव्य॥ बरेऐवुमूरोम्बत् सोन्ने योम्दे अंक । सिरि'गुरु' वीरसेन भूवलय।२८१।

समस्त ऋ अक्षरांक १०९३५+ समस्त अन्तराक्षरांक १५,९९३=२६,९२८+समस्त अन्तरान्तर २२५०=२९,१७८

अथवा अ–ऋ २,२२,९०३+ऋ २९,१७८=२५२,०८१ ।

बारहवां अध्याय

बारहवां अक्षर तीसरा 'ऋ' है, इस अध्याय का नाम 'ऋ' अध्याय है। इसमें पच्चीसवें श्लोक तक विशेष विवेचन करेंगे। २६ वें श्लोक से अन्तर काव्य निकल कर आता है, उस काव्य को अलग निकाल कर लिख लिया जाय तो भी उसमें पुनः दूसरा काव्य देखने में आता है। इस गद्य में सबसे पहले वह दिया जाता है। इस गद्य में इस तरह का विषय है कि गुजरात प्रान्त में श्री नेमिनाथ तीर्थंकर और कृष्ण जी एक जगह रहते थे। गुजरात प्रान्त में एक समय नेमिनाथ और कृष्ण दोनों गुजराती में बातचीत करते थे। उस समय गुजराती और संस्कृत प्राकृत दोनों मिश्र भाषा मौजूद थी, ऐसा मालूम पड़ता है। उसमें से कुछ विषय यहां नीचे उद्धृत किया जाता है –

१ रिषहादिणम् चिण्हम्, गोवदि, गय, तुरग, वाणरा कोकम्, पउपयम्, णनदवत्तम् अद्धससी, मयर, सो ततीया।

गडम्, महिस, वरहह्,हो, साही वज्जणहिरिण भगलाय, तगर कुसुमाय, कलसा, कुम्मुप्पल, सख अहिसिमूहा॥

अर्थ—वृषभादि २४ चौबीस तीर्थंकरों के चिन्ह वृषभ हाथी, घोड़ा, बन्दर, कोकिल, पक्षी, पद्म, नंद्यावर्त, अर्द्धचन्द्र, मगर, सो ततीय (वृक्ष) भेरुंड पक्षी, भैंष, सुवर, हंस, वज्र, हरिण, मेढा, कमल पुष्प, कलश, मछली, शंख सर्प और सिंह। इन चिन्हों के विषय में जैन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न मत मालूम पड़ते हैं। इसके विषय में आगे चलकर लिखेंगे और १३ वें अध्याय से बहुत प्राचीन काल के दिगम्बर जैनचार्यों की परम्परा से पट्टावली के विषय में यहां एक गद्य अन्तर पद्यों से बहते हुए १४ वें अध्याय के १३० वें पद्य तक चला जाता है। कानड़ी में कर्णाटक पंप कवि के पहले चत्ताना अर्थात् चतुर्थ स्थान (यह भूवलय के काव्य के सांगत्य नाम का छन्द है) और बिजड़े अर्थात् दो स्थान नामक काव्य लोक-प्रसिद्ध थे। उस बेजड़ नामक काव्य को यहां उद्धृत करते हैं।

इस अध्याय में मुनियों के संयम का वर्णन किया गया है। ऋषियों के अध्यात्म योग साम्राज्य के वशीभूत जो अनशन अवमौदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये छह बहिरंग तप और प्रायश्चित्त विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, उत्सर्ग और ध्यान ये छह प्रकार के अंतरंग तप हैं इन दोनों को मिलाकर बारह तप होते हैं। इन तपों की सामर्थ्य से प्राप्त हुआ यह यश-सिद्ध भूवलय काव्य है।१।

इस अढाई द्वीप में तीन कम नौ करोड़ शूरवीर दिगम्बर महा मुनियों के अन्तरंग की ध्यानाग्नि के द्वारा उत्पन्न यह सारात्म नामक भूवलय ग्रन्थ है। इन तीन कम ९ करोड़ मुनियों की संख्या इस ग्रन्थ में [सत्तादी अर्हंता छाम्मव मज्जा] अर्थात् आरम्भ में सात, अंत में आठ और बीच में छै बार नौ हो, अर्थात् आठ करोड़ ८९९९९९९७ इस प्रकार बताई गई है।२।

उत्तम संहनन वालों की जो व्यवहार धर्म की परिपाटी है वह व्यवहार नय है और तद्भव मोक्षगामी के चरम-शरीरी व्यक्तियों ने जो अपनी वज्र-मय हड्डियों के बल से शत्रु का नाश करके प्राप्त की हुई जो शुद्धात्म सिद्धि परमात्म अंग है उस अंग का नाम ही भूवलय है।३।

पुनः इसमें यह बताया है कि आदि का संहनन व्यवहार नय तथा निश्चय नय का साधन है। निश्चय साधन से साध्य किया हुआ जो मंगल काव्य पढ़ने में आया है वह भूवलय ग्रन्थ है।४।

इस उत्तम नर जन्म के आदि और अन्त के जितने, शुभकर्म हैं वानी जब तक वह पुण्य कर्म मनुष्य के साथ रहने वाला है उतने में ही उनके परिपूर्ण सुख को एकत्र कर देने वाली तथा उस सुखके साथ साथ मोक्ष पद को प्राप्त करा देने वाली ये अठारह श्रेणियां हैं। उस श्रेणी के अनुसार आत्म सिद्धि को प्राप्त करा देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।

इन अठारह श्रेणियों को अर्थात् ऊपर से नीचे तक और नीचे से ऊपर तक पढ़ते जाना और नीचे से ऊपर पढ़ते आने में अठारह श्रेणियों के स्थान मिलते हैं। जिस तरह भूवलय में अठारह श्रेणी पढ़ने में प्रत्यक्ष मालूम हो जाता है इसी तरह भूवलय ग्रन्थ पढ़ने वालों का राजाधिराज, मंडलीक इत्यादि चक्रवर्ती और तीर्थंकर की अठारह श्रेणियां अखण्ड रूप से मिल जाती हैं।५।

इस मार्ग से चलने वाले भव्य जीवों की रक्षा करने वाला यह भूवलय सिद्धान्त है।६।

इस संसार का अन्त करने के लिए अन्तिम मनुष्य जन्म को देने वाला भूवलय है ।७।

दूसरा जन्म ही अंतिम शरीर है ।८।

जैसे नौकर को अपने स्वामी द्वारा महीने में वेतन मिलता है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ समय समय पर मनुष्य को पुण्य बंध प्राप्त कराने वाला है ।९।

गर्भाधान तथा जन्म से मरण तक सोलह संस्कार होते हैं, उसमें मौंजी-बंधन अर्थात् व्रत संस्कार विधि इत्यादि उत्तम संस्कार हैं। इन विधियों का उपदेश करने वाले गुरुओं के द्वारा चलाया हुआ यह भूवलय है ।११।

इन अठारह श्रेणियों को साधन किये हुए गंग वंश के राजाओं के काव्य हैं। इस गंग वंश के साथी राजा लोग प्रतिदिन भूवलय का अध्ययन करते थे। यह काव्य उनके लिये मंत्र के समान था ।१३।

भूवलय का चक्र बंध ढाई द्वीप के समान है ।१४।

यहां पराक्रमशाली 'गोट्टिग' दूसरा नाम शिवमार चक्रवर्ती थे। यह शिवमार सम्यक्त्व शिरोमणि 'जक्की लक्की अब्बे' के साथ इस भूवलय को आचार्य कुमुदेन्दु से हमेशा सुना करते थे ।१५।

कर्णाटक भाषा में राज महल को 'अरयने असे' कहते हैं। अरयने अथवा अथाघर ऐसा अर्थ होता है, जब इस राज महलमें गुरु का मठ बन जाता है, तब पूर्ण गृह बन जाता है ।१६।

इस शब्दार्थ को अज्ञानी लोग नहीं जानते ।१७।

भूवलय में जो ज्ञान है, वह बहुत मधुर तथा मनोहर है। मधुर अर्थात् मीठे रस के लिये अनेक चीटियां उसके चारों ओर चाटने के लिये जुट जाती हैं। परन्तु इस ज्ञान रूपी मीठे को कोई भी खाने के लिए [समाप्त करने के लिए] नहीं जुटता।

भूवलय के अध्ययन करने वाले को वृद्धावस्था आने पर भी तरुण अवस्था ही दिखाई देती है। गंग वंश के राजा के साथ आचार्य कुमुदेन्दु का संघ कल्वप्पु तीर्थ अर्थात् श्रवण बेलगुल क्षेत्र में दर्शन के लिए गया था। पुरातन समय में लक्ष्मण ने गदा दंड के द्वारा अपनेभाई श्री रामचन्द्र जी के दर्शन के लिये एक बड़े पहाड़ को शिला पर एक भगवान के आकार की रेखाएं खींची। वे रेखायें बाहुबली की मूर्ति के समान दिखने लगीं। तब रामचन्द्र जी ने उसी मूर्ति की आकार रेखा को मूर्ति मान कर दर्शन कर भोजन किया। उस पत्थर पर रेखा से मूर्ति बनने के कारण उसका नाम 'कल्लु वप्पु' रक्खा था ।२०।

इस अध्यात्म-राज्य के नाम को कुमुदेन्दु आचार्य की उपस्थिति में अर्थात् उन्हीं के समय में लोग भूल गये थे ।२१।

जिस समय प्रतिवर्ष यात्रा को जाते थे, उस समय सम्पूर्ण राज्य में सम्पूर्ण जनता को रास्ते में शर्बत, पानी को पिलाने के लिए मार्ग में प्याऊ का प्रबन्ध कर दिया था ।२२।

बाण का अग्र भाग बहुत तीक्ष्ण होता है। उसी प्रकार लक्ष्मण के बाण की तीक्ष्ण अग्र नोक से अब अत्यन्त सुन्दर रूपसे दर्शन होने वाले भव्य तथा अत्यन्त सुन्दर और मनोज्ञ बाहुबली की मूर्ति बन गई ।२४।

ऐसा महत्वशाली कार्य राज महल तथा गुरु का मठ ये दोनों एक रूप होकर कार्य करें तो महत्वशाली कार्य होता है, अन्यथा नहीं। कुमुदेन्दु आचार्य के अन्यत्र भी कहा है कि—

तिरेय जीवरनेल्ल पालिप जिन धर्म नरर पालिसुव देनरिद्रे ।
गुरु धर्म दाचार वनुमरिद्दिह राज्य नरर पालिसु वुदनरिदे ॥

अर्थ:—समस्त पृथ्वी मंडल के सब जीवों की रक्षा करने वाला जैन धर्म मनुष्यों की रक्षा करे उसमें क्या आश्चर्य है ? इसी तरह गुरु की जो आज्ञा को पालन करने वाले राजा अपने राज्य का पालन करने में समर्थ हों तो क्या आश्चर्य है ?

इस बात को अपने ध्यान में रखते हुए राजमहल और गुरु का आश्रम एक ही था ऐसा कहा।

ईहा: अर्थात् ऊपर कहे हुए जो विषय हैं उनकी ऋषि सिद्धि के लिए भगवान ऋषभदेव द्वारा कहा हुआ मुख्य सिंहासन अथवा वाहन बैल व हाथी यह नवकार शब्द के स्यात चिन्हित है अर्थात् ।२६।

लांछन के समान रहनेवाली पवित्र शुद्धता को इस वर्तमान का कहा हुआ अर्थात् इस लांछन का कहा हुआ इस भगवान की महिमा को कहां तक

वर्णन करें। सर्वार्थ सारमय पदार्थ का साध्य कर देनेवाले अर्थात् अनेक प्रकार के वैभव को प्राप्त कर देनेवाले, तथा श्रावकों को यह सारी वस्तु अत्यन्त उपयोगी तथा प्रदान कर देने वाले हैं।२७।

इस प्रकार इन दोनों श्लोकों का अर्थ कहा गया। इन्हीं दोनों श्लोकों को पहचानने के लिए अर्ध विराम डालकर कोष्ठक में बन्द किया है। श्लोक में जहां अंग्रेजी का अंक डाला है वहां एक श्लोक का अर्थ निकलता है। वहां से आगे दूसरा अर्थ निकलता है। इसी प्रकार प्रत्येक श्लोक का अर्थ निकालना चाहिए और आगे भी इसी प्रकार से प्रत्येक अध्याय और प्रत्येक श्लोक में मिलेगा।

प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में उस कार्य के गौरव के अनुसार भिन्न-भिन्न मंगल वस्तु को लाने की परिपाटी है। अर्हंत देव ने समस्त मंगल कार्यों को दो भागों में विभाजित किया है—१ लौकिक मंगल २ अलौकिक मंगल।

अलौकिक मंगल की विवेचना आगे चलकर करेंगे लौकिक मंगल में श्वेत घोड़े को लाकर देखना चाहिए।२८।

श्वेत घोड़े से भी अधिक वेग से भागनेवाले उस मन को अमंगल जैसा माना जाता है। उस अमंगल रूप मन को मंगल रूप में परिवर्तन करने के लिए अत्यन्त वेग से दौड़नेवाले को, अत्यन्त मत्त होकर कूदने वाले चंचल बन्दर को खड़ा कर देखने से अपने चंचल मन को एकाग्र चित्त बनाने के निमित्त इन दोनों के मंगल में लाने का यही प्रयोजन है।२९।

रेणुकादेवी अर्थात् श्री परशुराम की माता स्या द्वाद मुद्रा से अपने मम को बांधती थी। जिस समय उनके पति उनके ऊपर क्रुद्ध हुए थे उस समय रेणुका देवी ने अपने मन को एकानु करके यह चिन्तन किया कि मेरा आत्मा ही मेरा सर्वस्व है यही मेरा सहायक है, उसी समय उनके पुत्र परशुराम के परशु के आघात से उनका प्राणान्त हुआ और उन्होंने उत्तम शुभ गति को प्राप्त किया। अर्थात् देवगति प्राप्त की।

(यह प्रसंग अन्य वैदिक ग्रन्थ में नहीं है)

इस प्रकार अनेक विशेष विषयों को प्रतिपादन करने वाला यह अतिशय भूवलय ग्रन्थ है।३०।

(श्लोक नं० ३१ से ५० तक में सेनगण गुरु-परम्परा का वर्णन आया है। इस विषय का प्रतिपादन व विवेचन ऊपर किया जा चुका है)।

अपने को जब उत्तम पद की प्राप्ति होती है। उस समय मानव के हृदय रूपी चक्र में चमकने वाले उज्ज्वल ज्योति को कोमल करके त्रिगुप्ति से अपने अन्दर ही अपने आत्मा (हृदय चक्र) को बांधना उस समय आत्मा अपने अन्तरंग के समस्त गुणों में घूमता रहता है। उस समय अनेक तत्व अपने भीतर ही दीखते हैं। उस समय वह आत्मा एक तत्व को देखकर आनन्दित होते हुए दूसरे तत्व में और इसी तरह अनेक तत्व में घूमता रहता है। इसी को स्वजेय में परजेय को देखना कहते हैं। [यह अत्यन्त सुन्दर अध्यात्म–विषय है]।

इस अध्यात्म का अत्यन्त मादक सुगन्ध नवनवोदित, अर्थात् "नयी-नयी उत्पन्न हुई गंध" जैसे नव अंक अपने अन्दर समावेश कर लिए हैं उसी प्रकार इसके भीतर नये नयेवर्ण रूपी चौंसठ अक्षर निकलते हुए तथा न्यूनाधिक होते हुए राशि में सभी अंकों में घूमने का चरित्र अर्थात् बंधन रूप है।५२।

कमल के ऊपर के सूक्ष्म भाग को स्पर्श करते हुए नीचे उतर कर आने वाले, भ्रमर के समान उसी में घूमते समय रत्न, सोना, चांदी का रंग दीखने लगता है।५३।

इस मर्म को समझकर पारा और गंधक के गणित क्रमानुसार भस्म करके धर्मार्थ रूप में इसका उपयोग करना यही पुष्पायुर्वेद का मर्म है।५४।

जलज अर्थात् जल कमल की एक-एक पंखुड़ी को को स्पर्श करके कमल रूप बन गया, उसी प्रकार द्रव्य मन भी है। द्रव्य मन अनेक विषयों से भिन्न-भिन्न होने पर भी एक ही है। उसको एकत्रित करके, जैसे अक्षर को मात्रा और अंक मिलाकर जैसे काव्य रूप बना देते हैं उसी प्रकार द्रव्य मन को भी बांध दे तो चन्द्रमा के समान वह भीतर का मांस पिण्ड धवल-रूप दीखता है। इसका नाम चित्र विद्या है।५५।

(श्लोक नं० ५६ से श्लोक नं० ८२ तक सेनगण का वर्णन आता है)

जैसे नव अंक अपने अन्दर ही वृद्धि को प्राप्त करता है उसी पर संरक्षित भी होता है। इसी तरह होने के कारण ही नव पद भाग्य-शाली कहलाता है,

और यह स्वस्तिक रूप भी है। यदि यह सिद्ध हो जाय तो सदैव अपनी रक्षा कर लेता है।८३।

व्यवहार और निश्चय यह दोनों नय मिश्रित होकर एक ही काव्य में प्रवाह रूप होकर वृद्धि को प्राप्त होनेवाले चतुर्थी के चन्द्रमा की किरणों के समान, साथ साथ प्रवाह रूप में आगे बढ़ता जाता है।८४।

मन और प्राण दोनों एक समान रहनेवाले को करिमकर स्वरूप कहते हैं। अर्थात् हाथी और मगर के समान रहनेवाले को कहते हैं। मन और प्राण दोनों एक रूप में होकर रहनेवाले द्विधारा शस्त्र के समान स्याद्वाद रूप में दीख पड़ता है। इस प्रकार यह जिनेन्द्र भगवान की वाणी में दीख पड़ता है।

"करो कथंचित् मकरी कथंचित्, प्रख्यापयज्जैन कथंचिदुक्तिम्" अर्थात् एक तरफ हाथी का मुंह और दूसरी तरफ देखा जाय तो मगर का मुंह, इसी का नाम 'कथंचित्' है। यह "कथंचित्" वाक्य जिनेन्द्र भगवान् का वाक्य है।८५।

कल्प वृक्ष एक क्षण में जैसे दस प्रकार की वस्तु को एक साथ ही देते हैं उसी प्रकार पारा और गंधक से बनी हुई रस रूपी वनोषधि अनेक फल एक ही साथ देती है। वैसे ही द्रव्य मन को वद्ध रूप कर दिया जाय तो एक क्षण में अनेक विद्याओं को साध्य कर देने योग्य बन जाता है। इसी अक्षर से सभी विद्याओं को निकालकर ले सकते हैं। गोचर वृत्ति से आहार को लेकर अन्त में मुनि देह च्युत होकर स्वर्ग में अपने कंठ से निकले हुए अमृतमय से प्राप्त होकर आयु के अवसान में वहां से च्युत होकर इस भरत खंड में आर्यकुल में जन्म लिया,। उन लोगों (महात्माओं) न इन कल्प विद्याओं को २४ भगवान के वाहन (चिन्हों) का गुण करते हुए आये हुये लब्धांक से अक्षर बनाकर इस विद्या को प्राप्त कर स्वपर हित का साधन कर लेता है।

यहां ऊपर भूवलय के चतुर्थ खंड में आये प्राण वायु पूर्व के प्रसंग को उद्धत करते हैं।

"सूतं केसरगंधकं मृगनवा सारद्रुमंमर्दितम्"

अर्थात् पारा २४, तोला, गंधक १६ तोला, नवसार १० तोला इस प्रकार इसका अर्थ होता है। इसका अर्थ कोई वैद्य ठीक नहीं कर सकता भूवलय से ही इसका अर्थ ठीक होता है। २४ भगवान के चिन्ह को लिया जाय तो भगवान महावीर का चिन्ह 'सिंह' है इसलिए चौवीस लेना, इस श्लोक को बता दिया। शांतिनाथ भगवान का चिन्ह हरिण होने से गंधक १६ है। शीतल भगवान का चिन्ह 'वृक्ष' होने से नवसार दस तोला है। इस गणित का नाम 'हरशंकर गणित' है। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा है।८७।

[श्लोक नं० ८८ से श्लोक नं० ११४ तक ऊपर कहे अनुसार वर्णन किया जा चुका है।]

दिगम्बर जैनाचार्यों ने बहिरंग में गोचरी वृत्ति पुद्गलमय अन्न ग्रहण करते हैं। और अंतरंग में अपनी श्रीचर्या अर्थात् अपनी ज्ञानचर्या में ज्ञान रूपी अन्न को ग्रहण करते हैं। इसी तरह 'गंडवेरुक' अर्थात् दो सिखाला पक्षी भी ग्रहण करता है। [इस पक्षी का चिन्ह मैसूर राज्य का प्रचलित राज्य चिन्ह है)।११५।

गोचरी और श्री चर्य ये जिनके वंश नहीं है उनका मन भैंस के समान सुस्त रहता है। उस सुस्त भाव को बतलाने के लिये भैंस के चित्र को लांछन रूप में बताया गया है।११६।

हमारे अंतरंग में प्रगट हुई दर्शन शक्ति को लेकर और शास्त्र रूप में बनाकर लिखने का जो कार्य है, यह कार्य जिनके अन्दर जिनेन्द्र भगवान होने की शक्ति प्रगट हुई है केवल वे ही इस शास्त्र की रचना कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं। इस बात को बतलाने के लिये सूअर के चिन्ह को यहां दिखाया है।११७।

जिस जिनेन्द्र देव ने शूकर चिन्ह को प्राप्त किया है, यदि उस चिन्ह की महिमा को यत्नाचार पूर्वक समझ लें तो वह हमारी रक्षा करके अनेक प्रकार की विद्याओं को प्राप्त करा देता है। द्रव्य सूत्र के अक्षर किसी कल्प-सूत्र से आये हुए नहीं हैं, ये तो अनन्त राशियों से निकले हैं। प्रत्येक आकाश प्रदेश में अमूर्त और रत्नराशि के समान रहने वाले काल द्रव्य असंख्यात हैं। उस असंख्यात राशि के प्रत्येक कालाणु में अनादि कालीन कथन है और अनन्त काल तक ऐसा ही चलता रहेगा। जब एक कालाणु में इतनी शक्ति है तो उन सब शक्तियों को दर्शन करने की शक्ति श्री जिनेन्द्र देव हमें प्रदान करें।११८।

रीछ ने अपने शरीर में जिस प्रकार अपने शरीर में सम्पूर्ण बालों को गूंथ लिया है उसी प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य सूत्र के अक्षरों को कालाणु ने अपने में समावेश कर लिया है। इस बात को सूचित करने के लिए रीछ के लांछन (चिन्ह) को योगी जनों ने शास्त्र में अंकित किया है। उस अंकित चिन्ह की देवगणं पूजा करते हैं।११६।

जगत में वज्र अत्यन्त बलशाली है। इसमें पारा मिला कर भस्म किए हुए भस्म को शस्त्र के ऊपर लेप किया जाय तो वह शस्त्र सम्पूर्ण आयुधों को जीत लेता है। उसी प्रकार जैन धर्म इन सम्पूर्ण सूक्ष्म विचारों का शिक्षण देते हुए भव्य जीवों की रक्षा करने वाला है। इस विषय को बताने के लिए वज्र लांछन अंकित किया है।१२०।

नोट:—श्लोक नं० १२१ से श्लोक नं० १४३ तक अर्थ लिखा जा चुका है। मूर्ख से मूर्ख अर्थात् अक्षर शून्य को भी जिसको "अ सि आ उ सा" का उच्चारण करना नहीं आता है ऐसे मनुष्यों को भी तुष्माष इस मंत्र को देकर अति वेग से उनको ज्ञान शक्ति बढ़ाने वाला एक मात्र जैन धर्म ही है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीवों को इनकी शक्ति के अनुसार उपदेश देकर उनके ज्ञान को बढ़ा देता है।

तुष्माष, कहने का अभिप्राय यह है कि 'तुषा' ऊपर का छिलका है और 'माष' भीतर की उड़द की दाल है। छिलका अलग है और उसके भीतर की दाल अलग है। उसी प्रकार शरीर अलग है और आत्मा अलग है। यह उपदेश अज्ञानियों के लिए एक महत्व पूर्ण उपदेश है।१४४।

संसारी जीवों के लिए अत्यन्त शील गति से पुण्य बन्ध होना अनिवार्य है। इस हेतु को बतलाने के लिए 'हरिण' लांछन (चिन्ह) अंकित किया गया है। जंगल के रास्ते में पेड़ से गिरे हुए कच्चे पत्ते के रस के द्वारा अत्यन्त वेग से दौड़ने वाले चंचल पारे को बाँध दिया जाता है। उसी तीव्र वेग से शरीर के रोग नाश के निमित्त को बतलाने के लिए आरोग्य को शीघ्रातिशीघ्र बढ़ाने के लिए यहाँ 'पादरस' का प्रयोग बतलाया गया है।१४५।

सत्रहवें भंग के गणित में मेंढ़ा का दृष्टान्त दिया गया है। वह मेंढ़ा सभी प्रकार के पत्ते को खाकर केवल बकरी के न खाने वाली वस्तु को छोड़ देता है। उसी प्रकार इस जीव को पाप को छोड़कर पुण्य को ग्रहण करना चाहिए।१४६।

यह भूवलय रूपी समस्त अक्षर द्रव्यगमन की राशि लोकाकाश के संपूर्ण प्रदेश में व्याप्त है। जिस प्रकार वह व्याप्त हुआ है उसी प्रकार यह जीवात्मा को भी ज्ञान से जो-जो अक्षर जहाँ-जहाँ है वहां वहां ज्ञान के द्वारा पहुंच कर समझ लेना चाहिए। उसी प्रकार भूवलय चक्र के प्रत्येक प्रकोष्ठ में रहने वाले प्रत्येक अंक ७१८ भाषाओं में रहने वाले समस्त विषयों को स्पर्श करते हुये भिन्न-भिन्न रस का आस्वादन कराता है।१४७।

वाराणसी अर्थात् बनारस में वासुदेव ने नन्द्यावर्त गणित से उपरोक्त शब्द राशि को समझ लिया था और अन्य दिव्य साधन को भी साध लिया था।१४८।

नोट—श्लोक नं० १४६ से १७१ तक की व्याख्या की जा चुकी है।

नवमांक चक्र में समस्त मंगल प्राभत चौदह पूर्व बड़ा है। उपमा से देखा जाए तो विचित्र चौंसठ वर्ष रूपी कुंभ में समस्त द्वादशांग रूपी अमृत भरा है। संसारी जीवों का सम्पूर्ण दशा उस कुंभ के द्वारा जानी जा सकती है। इस प्रकार करने की शक्ति जिनमें नहीं है वे इस कुंभ की पूजा करें।१७२।

कुंभ भरे हुए समस्त अक्षर नव पदों के अन्तर्गत हैं। अर्हंत सिद्ध आदि नव पद ही रक्षक रूप भद्र कवच है। वह भद्र कवच कभी नाश नहीं होने वाला है। इस बात को सूचित करने के लिये ही कछुए का लांछन [चिन्ह] है। यह कविजनों की काव्य रचना के लिए महत्व पूर्ण वस्तु है।१७३।

राज्य में पहले फैली हुए कीर्ति ही राज्य की भद्रता को सूचित करती है। उसी तरह जब जीवों को व्रत प्राप्त होता है तो उस समय ११ प्रतिमा अर्थात् श्रावकों के ११ दर्जे अर्थात् श्रावक धर्म रूपी राज प्राप्त होता है। जब श्रावक लोग अपने व्रत में भद्र रूप रहते हैं, वही मोक्ष महल में चढ़ने की प्रथम सोपान है। यहां से जीव का स्थानादि षट्खंड आगम रूपी सिद्धान्त राज अर्थात् महाव्रत में समावेश हो जाता है।१७४।

कुमुदेन्दु आचार्य के शिष्य, समस्त भारतवर्ष के चक्रवर्ती ने इस भूवलय के अतर्गत षटखंड आगम को लेकर करोड़ों की गिनती से गिनते हुए निकाला

था। उसका आदि अन्त का रूप काव्यमय था। अर्थात् पहले श्लोक का अंताक्षर ही श्लोक का प्रथम बन जाता था।१७५।

सरस्वती देवी अपनी उंगलियों से वीणा पर जो टंकार का मधुर नाद करती है उस नाद से निकले हुए शब्द रूपी भूवलयों से श्रुतज्ञान को लेकर शिवमार चक्रवर्ती ने पढ़ाया था।१७६।

नोट—१७६ श्लोक से १९५ श्लोक का विवेचन हो चुका।

एक मदारी एक स्थान पर बैठा हुआ था। उसने भंग पीकर अग्नि को नीचे फेंक दिया। वह अपनी पोटली में नाग नागिन दो सर्प लिये बैठा था। भंग पीकर फेंकी हुई अग्नि उस पोटली में जाकर गिर पड़ी और अन्दर ही अन्दर सुलग गई। तब उस पोटली में रखे हुए नाग नागिन प्राण को न छोड़ते हुए दोनों आपस में लिपटे हुए ऊपर उठकर खड़े होते हुए अग्नि की जलन के कारण तड़प रहे थे। उस समय उसी मार्ग में आने वाले पहले भव के पार्श्वनाथ भगवान अपने पूर्व भव में यतिरूप में जब आ रहे थे तब इन दोनों नाग-नागिनियों के मरण समय को देखकर तुरन्त ही वहां पहुंच गए और इनको पंच परमेष्ठियों के नवकार मंत्र को सुना दिया। कभी किसी भव में न सुने हुये परम पवित्र इस मन्त्र के शब्द को सुनकर वे दोनों नाग नागिन एकाग्र चित्त से स्थिरता के साथ ऊपर देखते हुएखड़े हुए। तब आकाश मार्ग से धरणेन्द्र और पद्मावती का विमान जा रहा था। वह विमान अत्यन्त वैभव के साथ जा रहा था। उस महिमा की इच्छा रखते हुए निदान बन्धकर उत्तम सुख की प्राप्ति करलेने के मार्ग को छोड़कर भुवन लोक में जाकर धरणेन्द्र पद्मावती हुए। यहां कई लोग शंका करते हैं कि—इस मन्त्र के मन्त्रण से आम टूटकर गिर जाता है क्या? और बहुत से लोग वाद-विवाद करते हैं। किन्तु यह बात ठीक नहीं है कि—तत्वार्थ सूत्र में उमा स्वामी आचार्य ने "ध्यानमन्तर्मुहूर्तात् एकाग्र चिन्तानिरोध ध्यान" अर्थात् एक वस्तु पर अंतर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनट तक ध्यान रह सकता है। अगर मनुष्य अपने ध्यान को अंतर्मुहूर्त काल तक स्थिर होकर करता है तो वह उतने समय में केवल ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अब विचार करो कि शरीर को मैं कैसे छोड़ूं ऐसा मन में आर्त्त रौद्र कर मरे हुए जीव को दुख में प्राप्त होना तथा नीच गति में जाकर उत्पन्न होना स्वभाविक है। इसी तरह पंच परमेष्ठि नमस्कार मंत्र को सुनकर शरीर की वेदना को भूलकर समाधिस्थ हुआ उन दोनों जीवों को सद्गति होने में कौनसा आश्चर्य है? अर्थात् आश्चर्य नहीं हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य ने अज्ञानी जीवों के कल्याण के लिए केवल अ सि आ उ सा मन्त्र का ही प्रयोग करके अत्यन्त मूर्ख तथा निरक्षर भट्ट जैसे जीवों को भी आयु के अवसान काल में इन तुष माष या पंच परमेष्ठी महा मन्त्र को उन जोवों को देकर अंतिम समय समाधि स्थिरता कराके मूर्ख को ज्ञानी बनाकर देव गति प्राप्त करा दिया. यह कितने उपकार की बात है! क्या जैनागम का महत्व कम है? अर्थात् नहीं।

पार्श्वनाथ भगवान को कमठ के द्वारा जब उपसर्ग हुआ तब मातंग सिद्धदायिनी इत्यादि देव, देवियाँ उस उपसर्ग को दूर करने के लिये क्यों नहीं आए और धरणेन्द्र पद्मावती क्यों आए? इस प्रश्न का उत्तर ऊपर के विषयों से हल हो चुका है।१९६।

महावीर भगवान के हमारे हृदय में रहने के कारण हमारा मन सिंह के समान पराक्रमी हो गया है इसीलिये हम वीर भगवान के अनुयायी या भक्त हैं, ऐसा लोग कहते हैं। अपने हृदय रूपी सिंह को महावीर भगवान को सिंह-वाहन कर समर्पण करने के बाद शूर वीर लोग अन्य देवों को क्यों नमस्कार करेंगे? कभी नहीं इसीलिये भगवान के सिंहासन का चिन्ह वीरों का चिन्ह है।१९७।

राज चिन्ह को वीर रस प्रधान होने के कारण आज कल भी अपने महल के ऊपर वीर तथा सिंह के ध्वजा लगाते हैं। इसी कारण से मन रूपी सिंहासन से २२५ कमलों को चक्र रूप बना कर वर्णन किया है।१९८।

चार मुख रूप में रहनेवाले सिंह के सिर पर आये हुये ९०० कमलों के ऊपर संचरण करने वाले भगवन्त के चरण कमल राग विजय के कारण उत्पल पुष्प अर्थात कमल पुष्प के समान दिखता है।१९८।

तीर्थंकर के रहने का समय ही मंगलमय होता है। क्यों कि उनके जन्म होने की लोग प्रतीक्षा करते रहते हैं। जन्म होने के पश्चात उनके होने वाले अन्य तीन कल्याणक अर्थात तप, ज्ञान तथा मोक्ष मिलकर पंच कल्याणक होते

हैं। इसी प्रकार नेमिनाथ भगवान के समय का कथन यहां आया है। इस वर्णन को सुनकर हम अपनी शक्ति के अनुसार उनकी भक्ति करें।१९९-२००।

ऋषभदेव भगवान ने जिस वृक्ष के नीचे खड़े होकर तप किया था उस वृक्ष का नाम जिन वृक्ष है।२०१।

जिस प्रकार बट वृक्ष अपनी शरण में आनेवाले सम्पूर्ण जीवों को अपनी छाया से शीतल कर आश्रय प्रदान करता है उसी प्रकार उसी वृक्ष के नीचे जिनेन्द्र भगवान ने अपनी कामाग्नि को शान्त कर कर्म की निर्जरा करके आत्म रूपी शान्त छाया को प्राप्त किया, इसलिये इसको जिन वृक्ष एवं अशोक वृक्ष भी कहते हैं।२०२।

यह शरीर रहल के समान आधार भूत है। उसको सदुपयोग में उपयोग कर जैसे नई आत्मा को प्राप्त कर शोक रहित होता है, उसी प्रकार अत्यन्त कोमल सात पत्ते वाले केले के वृक्ष के नीचे तप करके सिद्धि प्राप्त करने के कारण उसका नाम अशोक वृक्ष पड़ा। तब उनका नरभव फलीभूत हुआ।२०३।

शालमली वृक्ष के नीचे संभव नाथ तीर्थंकर ने तपस्या की थी इसलिये इसको भी अशोक वृक्ष कहते हैं। यह अशोक वृक्ष देवताओं के द्वारा भी वंदनीय है।२०४।

नोट—श्लोक नं० २०५ से लेकर श्लोक नं० २२३ श्लोकों तक विवेचन हो चुका है।

सूखा हुआ सरल [देवदारू] करोड़ों वृक्षों के गणित और उनके गुणों को जिन्होंने बताया है उन अभिनन्दन और सुमतिनाथ भगवान को नमस्कार करते हैं।२२४।

जिस वृक्ष के पोल अर्थात् तने में सर्प रहता है उस वृक्ष को नागवृक्ष कहते हैं। उस झाड़ को काटते समय नीचे के हिस्से मात्र को काटकर जब उसमें सर्प दिखाई पड़ जाय तब उस वृक्ष को काटना बंद कर देना चाहिए। अगले दिन जब वह सर्प निकलकर दूसरी झाड़ी में चला जाए तब उस वृक्ष को काट देना चाहिए। जहां पेड़ के पोल में सर्प रहता है उसके सिर के भाग की मिट्टी बहुत नरम होती है। वह मिट्टी अनेक दवाइयों के काम में आती है। यदि सर्प को इस प्रकार न हटाया जाय तो वह सर्प वहीं चोट करके मर जाता है और वहां की मिट्टी विषमय बन जाती है।२२५।

दोनों नौ-नौ को मिलाने से १८ होता है। कुटकी और शिरीश अर्थात् शीसम इन दोनों वृक्षों की मिट्टी से लेप करने से मनुष्य निराकुल हो जाते हैं। पद्म प्रभु और सुपार्श्व नाथ भगवान ने जिस नाग वृक्ष के नीचे आत्मसिद्धि को प्राप्त की थी उस वृक्ष के गर्भ में रहने वाली मिट्टी को कुछ रोग की निवृत्ति के लिए संजीवनी औषध रूप में उपयोग किया जाता है।

।२२६। और।२२७।

बेलपत्र और नागफणा इन दोनों वृक्षों के गर्भ में रहने वाली मिट्टी को भिन्न-भिन्न रोगों के लिए दिव्य औषध रूप में परिवर्तित करते हैं। उसको चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त जिनेन्द्र भगवान के शिक्षण से अर्थात् गणित के द्वारा समझना चाहिए।२२८।

सुम्बूर वृक्ष अर्थात् बीड़ी बांधने के पत्तों का वृक्ष और पलाश का वृक्ष इन दोनों की मिट्टी भी उपरोक्त विधि के अनुसार निकाल लेनी चाहिए। इसको विधि शीतलनाथ भगवान के कहे के अनुसार समझनी चाहिए।२२९।

इसी प्रकार तेन्दु वृक्ष और इस वृक्ष के नीचे गिरे हुए पत्तों को मिलाने से महाऔषधि बनती है। इसकी विधि श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर के गणित से जाननी चाहिए।२३०।

इसी प्रकार पाटली वृक्ष और जम्बू वृक्ष इन दोनों की मिट्टी से औषधि बनाने की रीति को वासुपूज्य और विमलनाथ तीर्थंकर के गणित से जाननी चाहिए।२३१।

अश्वत्थ और दधिपर्ण इन दोनों वृक्षों के गर्भ से मिट्टी को प्राप्त करने की विधि को अनन्तनाथ और धर्मनाथ तीर्थंकर भगवान के गणित से जाननी चाहिये।२३२।

नन्दी और तिलक इन दोनों वृक्ष की मिट्टी को निकालने की विधि शांतिनाथ और कुंथनाथ भगवान के गणितों से समझनी चाहिए।

आम, ककेली इन दोनों वृक्षों के गर्भ में रहने वाली मिट्टी की विधि को मुनिसुव्रत और नमिनाथ तीर्थंकर के गणित से समझनी चाहिए।

मेष शृङ्ग वृक्ष के गर्भ से प्राप्त मिट्टी से आकाश गमन की सिद्धि होती है। इस विधि को नमिनाथ और नेमिनाथ तीर्थंकरों के गणितों से समझ लेनी चाहिए। २३३ ।२३४।२३५।२३६।२३७।२३८।२३९।२४०।२४१।२४२। ।२४३।२४४।२४५।२४६।२४७।२४८।

सम्मेद पर्वत पर रहने वाले अनेक प्रकार के अशोक वृक्षों को पार्श्वनाथ तीर्थंकर के गणितों से समझना चाहिए।

दारु वृक्ष की जड़ से सुवर्ण अर्थात् सोना बन जाता है। इस विधि को पार्श्वनाथ भगवान् के गणितों से समझनी चाहिए।

इस विधि को न जानने वाले भील और गडरिये लोग अपने भेड़िये के पाँवों में लोहे की नाल बांधकर सुवर्ण भद्र कूट के पास भेज देते थे। उस जड़ के ऊपर भेड़िये के पांव पड़ने से लोहे की नाल के स्पर्श से पांव में बंधी हुई नाल सोने की बन जाती थी।

रात में जब भेड़िये घर आते थे तब उनके पांवों में जड़ी हुई नाल को निकाल लेते थे और उसको बेचकर अपने जीवन का निर्वाह कर लेते थे। इसी स्वर्णभद्र कूट से पार्श्वनाथ भगवान मोक्ष गए थे इससे इसका नाम सुवर्ण भद्र कूट पड़ा है। इसलिए इसका नाम सार्थक है।

शालोर्बी वृक्ष से महाऔषधि बन जाती है। इस विधि को श्री महावीर भगवान के गणितों से समझनी चाहिए।

यक्ष-राक्षस और व्यन्तरों के समस्त शोक को निवारण करने के कारण इन सबको अशोक वृक्ष के नाम से पुकारते हैं। यक्ष-राक्षसों के पास विद्या आदि का बल होता था परन्तु आजकल के मनुष्यों को ऋद्धि-सिद्धि विद्यादि प्राप्त होनी असाध्य है। इस कारण कुमुदेन्दु आचार्य ने चौबीस तीर्थंकरों के अथवा ७२ तीर्थंकरों के लांछनों से और तपस्या किये हुए वृक्षों से आरोग्यता आकाश-गमन, लोहादिक को परिवर्तन करने वाले और सुवर्णमय रूप यंत्र (मशीनरी) इत्यादि को पारे के रससे साधन करनेवाले अनेक रसों की विधि को यहां बताया है।

परमात्म जिनेन्द्र भगवान ने वैद्यक शास्त्र में अठारह हजार मंगल तथा उतने ही पुष्पों को तीक्ष्ण स्याद्वाद बुद्धि से अपने गणित के द्वारा निकालने की विधि बतलाई है।२७८।

मन तथा बुद्धि की तीक्ष्णता के कितने अंग हैं? इस बात को तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा ही गणितों से गुणा करने से पुष्पायुर्वेद का गणितांक देखने में आ सकता है।२७९।

यदि अनुलोम क्रम को देखा जाए तो इस गुणाकार का पता लग जायगा। उसको यदि आड़े से जोड़ दिया जाय तो नौ-नौ आ जायगा। यह वीर भगवान के कथनानुसार २२५० वर्ग में आता है। इसी विधि के अनुसार यदि कोई गणित देखा जाय तो नौ ही आता है किन्तु उन सभी को यहां नहीं लेना चाहिए केवल २९५० (दो हजार नौ सौ पचास) के गणित में ही इसे मानना चाहिए।२८०।

इस अध्याय के २८१ श्लोकों में १५९९३ अक्षरांक १०९३५ कुल २६९२८ इस प्रकार अंकाक्षर आते हैं। श्री वीरसेन आचार्य द्वारा पहले उपदेश किया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है। आगे अतरंग में आने वाले ४८ "ऋद्धि-सिद्धगे आदि नाथरू" नाम के श्लोक के प्राकृत और संस्कृत मात्र अर्थ यहां दिया जाता है।

आगे चलकर समयानुसार प्राकृत भगवद्गीता लिखी जायगी। इसके आगे हम पुनः बारहवें अध्याय के अंतरंग चौबीसवें श्लोक से लेकर २८१ श्लोक तक श्रेणीबद्ध वाक्य से पढ़ते जाएँ तो अन्दर ही अन्दर जैसे कुए के अन्दर से पानी निरन्तर निकालते रहने पर भी पानी कम न होकर बढ़ता रहता है उसी प्रकार भूवलय रूपी कूप में अक्षर रूपी जल न रहने पर भी अंक रूपी जल (२७×२७=७२९) निकालकर यदि बाहर रख दिया जाय तो उससे २४ वां श्लोक रूपी जलकण उपलब्ध हो जाता है। वह इस प्रकार है:—

इनु रिद्धि सिद्धिगे 'आदिनाथरू' पेलद। धर्म अजितर गद्गुगे सार्व॥
नववाहनगलु एत्तु आनेगलुम। नवकार सद्दिनिस्याद्वा॥

इस श्लोक में "इवु" "पेलदधव" "सविनववाहनगलु" "नवकारस" इन अक्षरों को छोड़कर शेष अक्षरों के अतिरिक्त श्लोक बनते जाते हैं। वह इस प्रकार हैं:—

रिद्धि सिद्धिगे आदिनाथरू अजितर।
गद्यगे एतु आनेगलु॥

मुद्यिनिस्याद्वा·····॥

इसी रीति से २७वें श्लोक से लेने पर भी यह श्लोक पूर्ण हो जाता है।

दत्तांघनदन्तिह ।

सुद्यिय पेलबुदिन्तहहा ॥

छोड़े हुए "इ" यह अक्षर प्राकृत भाषा और "स" अक्षर—भाषा को जाएगा। इस गिनती से चार काव्य बन गये।

रिद्धि सिद्धि में रहनेवाला आद्यक्षर "रि" के अतिरिक्त यदि पढ़े तो 'रिसहादीणं चिण्हम" इत्यादि रूप एक अलग भाषा का काव्य निकल आता है जो ऊपर लिखा जा चुका है। यह श्लोक मूल भूवलय से नहीं पढ़ा जा सकता, किन्तु यदि वहां से निकालकर पढ़ा जाय तो पढ़ सकते हैं, यह चमत्कारिक बात है अर्थात् अद्भुत लीलामयी भगवद्वाणी है।

अब ऋद्धि सिद्धिगे श्लोक से लेकर ४८ श्लोक पर्यन्त अर्थ लिखेंगे—

भूवलय में बुद्धिरिद्धि, बलरिद्धि, औषधिरिद्धि इत्यादि अनेक ऋद्धियों का कथन है। उन सब ऋद्धि की प्राप्ति के लिए अर्थात् सिद्धि के लिए भी आदिनाथ भगवान और श्री अजितनाथ भगवान को आदि में नमस्कार करना चाहिए, उनके वाहन बैल और हाथी से स्याद्वाद का चिन्ह अंकित होता है। ऐसा ग्रन्थकार ने कहा है।१।

अपना अभीष्ट स्वार्थ साधन करना है अर्थात् भूवलय के ६४ अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करना है। उन ६४ अक्षरों का यदि साधन करना हो तो सर्व प्रथम मंगलाचरण होना अनिवार्य है। मंगलाचरण में लौकिक और अलौकिक दो भेद हैं। लौकिक मंगल में श्वेतछत्र, बालकन्या, श्वेत अश्व, श्वेत सर्प, पूर्ण कुम्भ इत्यादि दोष रहित वस्तुएं हैं। अब सर्वमंगल के आदि में श्वेत अश्व को खड़ा करना अभीष्ट है।२।

मनुष्य का मन चंचल मर्कट के समान एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष, शाखा से शाखा तथा डाली से डाली पर निरन्तर दौड़ता रहता है। उसको बाँधकर रखना तथा मर्कट को बांधना दोनों समान हैं। चंचल मन स्याद्वाद रूपी धागे से ही बाँधा जा सकता है। उसके चिन्ह को दिखाने के लिए आचार्य ने मर्कट का उदाहरण दिया है।३।

जब मन की चंचलता रुक जाती है तब आत्म ज्योति का ज्ञान विकसित होने लगता है। और उस विकसित ज्ञान ज्योति को पुनः २ आत्मचक्र घुमाने से काय गुप्ति, वचन गुप्ति तथा मनः गुप्ति की प्राप्ति होती है। तब आत्मा के अन्दर संकोच-विस्तार करने की शक्ति बन्द हो जाती है। उसे गुप्त कहते हैं। उस अवस्था को शब्द द्वारा बतलाने के लिए श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने चक्रवाक पक्षी का लांछन लिया है। यह उपर्युक्त उदाहरण ठीक ही है, क्योंकि भूवलय चक्रबन्ध से ही बन्धा हुआ है।४।

इस भूवलय ग्रन्थ की, महान अंक राशि से परिपूर्ण होने पर भी यदि सभी संख्याओं को चक्र में मिला दिया जाय तो, केवल नौ (९) के अन्दर ही गणना कर सकते हैं। इसी रीति से प्रत्येक जीव अनन्त ज्ञान से संयुक्त होने पर ९ के अन्दर ही गर्भित हो जाता है। वह ९ का अंक एक स्थान में ही रहनेवाला है। इसी प्रकार अनन्त गुण भी एक ही जीव में समाविष्ट हो सकते हैं। जिस तरह सूर्योदय होने पर प्रसार किया हुआ कमल अपनी सुगन्धि को फैलाता है पर रात्रि में सभी को समेट कर अपने अंदर गर्भित कर लेता है, उसी प्रकार प्राप्त की हुई आत्म ज्योति को अपने अंतर्गत करके और भी अधिक शक्ति बढ़ाकर बाहर फैलाने का जो आध्यात्मिक तेज वृद्धिंगत हो जाता है उसे शब्द और चिद्रूप से बतलाने के लिए आचार्य श्री ने जल कमल और ९ अंक का चिन्ह लिया है।५।

रत्न, स्वर्ण, चाँदी, पारा और गन्ध इत्यादि क्रूर लोह तथा पाषाण को क्षण मात्र में भस्म करने की विधि इस भूवलय में—पुष्पायुर्वेद रूपी चौथे खंड में बतलायी गई है। वहां इसी जलकमल और नवमांक गणित को उपयोगी बतलाया गया है।६।

गुप्तित्रय में रहनेवाली आत्मा का चित्त में सम्पूर्ण अक्षरात्मक ६४ ध्वनि को एकमात्र में समावेश करने की विज्ञानमयी विद्या की सिद्धि को देने वाले श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर हैं। उनका वाहन स्वस्तिक है। इस महान विद्या को शब्द रूप से दिखलाने के लिए आचार्य ने स्वस्तिक का चिन्ह उपयुक्त बताया है।७।

९ का अंक अर्हंत सिद्धादि ९ पद से अंकित है। वह वृद्धि के होने पर

भी केवल ९ ही रहता है। जैसे ९×२=१८ तथा ९×३=२७ होने पर भी इन दो संख्याओं को पृथक पृथक (८+१=९ २+७=९) जोड़ने पर केवल ९ ही होगा। इसका उदाहरण ऊपर भी दिया जा चुका है। ९ संख्या में से पहले का १ निकालकर यदि दो को १ मानकर गिनती करें तो आठवीं संख्या बन जाती है इसीलिए कुमुदेन्दु आचार्य ने गणना करने के समय में आठवें चन्द्रप्रभ भगवान को आदि में लिया है। चन्द्रमा शीतल प्रकाश को प्रकाशित करता है और वह शुक्ल पक्ष की चतुर्थी से बढ़ता जाता है। इसी प्रकार योगी की ज्ञान-किरण भी ८ और ९ इन दोनों अंकों से अर्थात् सम—विषमांक से प्रवाहित होती रहती ह। इस शीतल ज्ञान-गंगा प्रवाह को शब्द रूप में दिखाने के लिए श्री आचार्य जी ने चन्द्रमा का चिन्ह उदाहरण रूप में लिया है।८।

इस ज्ञान-गंगा के प्रवाह में डूबकर यदि आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त करना हो तो स्याद्वाद का अवलम्बन लेना चाहिए। स्याद्वाद रूपी शास्त्र द्विधार से युक्त है। अर्थात् उस तलवार की १ फल के ऊपर यदि प्रहार करें तो वह स्वपक्ष और परपक्ष दोनों को काटता है। इस तथ्य को शब्द रूप में बतलाने के लिए आचार्य ने करी मकरी का उदाहरण लिया है। कहा भी है कि:—

"करी कथंचिन्मकरी कथंचित्प्रख्यापयज्जैन कथंचिदुक्तिम्" इसका अर्थ ऊपर आ चुका है।९।

स्वर्ग लोकस्थ कल्पवृक्ष से आकर भूवलय शास्त्र का १० वां अंक १ बनकर मणि रत्न माला आहार आदि ईप्सित पदार्थों को प्रदान करता है। इस बात को शब्द रूप देने के लिए आचार्य ने १० कल्प वृक्षों को चिन्ह रूप में लिया है। अर्थात् वृक्ष का चिन्ह १०वें तीर्थंकर का है।१०।

दिगम्बर जैन मुनि गोचरी वृत्ति से आहार ग्रहण करते हैं। आहार लेने के गोचरी, अश्वचरी, गर्धपचरी (गधाचरी) ऐसे तीन भेद हैं। जिस प्रकार गाय फसल को नष्ट न करके केवल किनारे से खाकर अपनी क्षुधा शान्त करने के बाद भी अन्य जीव जन्तुओं के खाने के लिए रख छोड़ती है उसी प्रकार ३६ और २८ मूल गुणधारी महाव्रती आचार्य तथा मुनिजन गोचरी वृत्ति से अल्प आहार ग्रहण करके आहार देनेवालों के लिए भी रख छोड़ते हैं।

जिस तरह अश्व फसल के अर्धभाग को खा लेता है, किन्तु उसके खालेने के अनन्तर गाय के खाने के लिए भाग न रहकर केवल गधे के खाने के योग्य ही रहता हैं उसी प्रकार अणुव्रती के आहार ग्रहण करलेने के पश्चात् शेषान्न मुनिजनों के उपयुक्त न रहकर केवल अव्रतियों के लिए ही रहता है।

जिस प्रकार गधा फसल को उखाड़कर समूल खा जाता है और उसके खाने के बाद किसी भी जानवर के खाने लायक नहीं रह जाता उसी प्रकार अव्रती के भोजन कर लेने के पश्चात् शेषान्न किसी त्यागी के योग्य नहीं रह जाता। इन तीन लक्षणों को क्रमशः गोचरी, अश्वचरी तथा गधाचरी कहते हैं

मुनिजन आहार ग्रहण करते समय अपना लक्ष्य दो प्रकार से रखते हैं। एक तो शरीर के लिए चावल-रोटी आदि जड़ान्न ग्रहण करना और दूसरा स्वात्मा के लिए ज्ञानान्न।

यद्यपि उपर्युक्त दो प्रकार के आहारों को मुनिजन ग्रहण करते हैं तथापि शरीर के लिए जड़ान्न की अपेक्षा नहीं रखते। क्योंकि मुनिजनों की भावना सदा इस प्रकार बनी रहती है कि जब वमन किया हुआ भोजन कुत्ता भी नहीं खाता तब कल के त्याग किए गए आहार को हम रुचि के साथ कैसे ग्रहण करें? अतः वे आहार ग्रहण करने पर भी अरुचि के साथ करते हैं। इसे गोचरी और श्वीचरी दोनों वृत्ति कहते हैं।

इस विषय को बतलाने के लिए आचार्य ने गण्डभेरुण्ड पक्षी का चिन्ह लिया है।११।

यह मन द्रव्य मन और भाव-मन दो प्रकार का है।—एक प्रकार का मन लगातार विषय से विषयान्तर तक चंचल मर्कट के समान दौड़ लगाता रहता है और दूसरा सुसुप्त होकर काहिल भैंसे के समान स्थिर होकर पड़ा रहता है। इस विषय को बतलाने के लिए आचार्य श्री ने भैंसे का चिन्ह लिया है। इन दोनों क्रियाओं से, अर्थात विषय से विषयान्तर तक जाना या सुप्त रह जाना, आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता क्योंकि ये दोनों आत्मा के लक्षण नहीं हैं। आत्मा का लक्षण सदा ज्ञानदर्शन में लीन रहना ही है।१२।

जिनेन्द्रदेव जब स्वर्ग से च्युत होकर मातृगर्भ में अवतरित होते हैं तब हाथी के आकार से मातृमुख द्वारा प्रवेश करके मार्ग में तिष्ठते हैं।

जिनेन्द्रदेव ही सर्व संसार के काव्य हैं। वैदिक धर्म के अंतर्गत भी मुद्रित वेद में ऐसा प्रतिपादन किया गया है कि पाताल में छिपे हुए भूवलय रूपी वेद को विष्णु रूपी शूकर ने निकाला था। इस दृष्टि से वैदिक धर्म में शूकर का महत्वपूर्ण स्थान है। ।१३।

भूवलय में ६४ अक्षर रूपी असंख्यात अक्षर हैं और उतने ही अंक हैं। उसको बढ़ाने से संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त ऐसे तीन रूप बन जाते हैं। किन्तु यदि उसे घटाया जाय तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होजाता है अर्थात बिन्दीरूप हो जाता है। लोक में यदि एकीकरण न हो तो यह सुविधा नहीं मिल सकती अर्थात् न तो अनन्त ही हो सकता और न बिन्दी ही। रीछ (भालू) के शरीर में अनेक रोम रहते हैं। किन्तु उन सभी रोमों का सम्बन्ध प्रत्येक रोम से रहता है अर्थात् एक रोमका दूसरे रोम से अभेद सम्बन्ध है। इसीलिए कुमुदेन्दु आचार्य ने उपर्युक्त विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए भालू का लांछन दिया है।१४।

यक्ष देवों का आयुध वज्र है और वह जैन धर्म की रक्षा करनेवाला सुदृढ़ शस्त्र है। ऐसा होने से शिक्षण के साथ-साथ रक्षण करता है। इस विषय को दिखाने के लिए आचार्य श्री ने वज्र का लांछन दिया है।१५।

तुष-माष कहने में अ सि आ उ सा मंत्र का वेग से उच्चारण हो जाता है। इस चिन्ह को दिखाने के लिए आचार्य श्री ने हरिण का लांछन दिया है।१६।

सभी पुण्य को अपनाकर केवल १ पाप को त्याग करने की शिक्षा को बतलाने के लिए आचार्य श्री ने यहां बकरी का दृष्टान्त दिया है। क्योंकि बकरी समस्त हरे पत्तों को खाकर १ पत्ते को त्याग देती है।१७।

शब्दराशि समस्त लोकाकाश में फैली रहती है। इतना महत्व होने पर भी १ जीव के हृदयान्तराल में ज्ञान रूप से स्थित रहता है। इस महत्व को बतलाने के लिए नन्द्यावर्त का लांछन दिया गया है।१८।

सातवें बलवासुदेव बनारसी में आत्म तत्व का चिन्तवन करते समय नवमांक चक्रवर्ती के साथ अपनी दिग्विजय के समय में मंगल निमित्त पूर्ण कुम्भ की स्थापना की थी। पवित्र गंगाजल से भरा हुआ उस पवित्र कुम्भ से मंगल होने में आश्चर्य क्या ? अर्थात् आश्चर्य नहीं है। इस विषय को सूचित करने के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने कुम्भ वाहन को लिया है।१९।

अर्हंत सिद्धादि नौ पद को हमेशा जपने वालों को वह भद्र कवचरूप होकर रक्षा करता है। उस विषय को बतलाने के लिए कछुआ का चिन्ह दिया है इस कछुवे का वर्णन कवि के लिए महत्व का विषय है।२०।

समवशरण में सिंहासन के ऊपर जल-कमल रहता है। तीर्थंकर चक्रवर्ती राज्य करते समय नील कमल वाहन के ऊपर स्थित थे। इसलिए यहां नीलोत्पल चिन्ह को दिया गया है।२१।

भूवलय में आनेवाले अन्तादि (अन्ताक्षरी अर्थात् जिसका अन्तिम अक्षर ही अगले पद्य का प्रारंभिक अक्षर होता है) काव्य है। ऐसे श्लोक भूवलय में एक करोड़ से अधिक आते हैं। गायन कला में परम प्रवीण गायक वीणा की केवल चार तंत्रियों से जिस प्रकार सुमधुर विविध भांति की करोड़ों राग-रागनियों को उत्पन्न करके सर्वजन को मुग्ध करता है उसी प्रकार भूवलय केवल ९ अंकों में से ही विविध भाषाओं के करोड़ों श्लोकों की रचना करता है। इसलिए यह ६४ ध्वनिशास्त्र है। इसको बतलाने के लिए आचार्य ने शंख का चिन्ह दिया है।२२।

भूवलय काव्य में अनेक बन्ध हैं। इसके अनेक बन्धों में एक नागबन्ध भी है। एक लाइन में खण्ड किये हुये तीन २ खण्ड श्लोकों को अन्तर कहते हैं। उन खण्ड श्लोकों का आद्यअक्षर लेकर यदि लिखते चले जायें तो उससे जो काव्य प्रस्तुत होता है उसे नागबन्ध कहते हैं। इस बन्ध द्वारा गत कालीन नष्ट हुये जैन वैदिक तथा इतर अनेकों ग्रन्थ निकल आते हैं। इसे दिखलाने के लिये सर्पलांछन दिया है।२३।

वीर रस प्रदर्शन के लिये सिंह का चिन्ह सर्वोत्कृष्ट माना गया है। शूर वीर दो प्रकार के होते हैं। १ राजा और दूसरा दिगम्बर मुनि। इन दोनों के बहुत बड़े पराक्रमी शत्रु हुआ करते हैं। राजा को किसी अन्य राजा के चढ़ाई करने वाले बाह्य शत्रु तथा दिगम्बर मुनि के ज्ञानावरण आदि आठ अन्तरंग कर्म शत्रु लगे रहते हैं। अन्तरंग और बहिरंग दोनों शत्रुओं को सदा पराजित करने की जरूरत है। इन्हीं आवश्यकताओं को दिखाने के लिए आचार्य ने सिंह लांछन दिया है।२४।

प्रथम अध्याय में भगवान् के चरण कमल की गणना में जो २२५ (दो सौ पच्चीस) संख्या का एक कमल चक्र बताया गया था उसे यदि चार से

गुणा करें तो कुल ६०० कमल चक्र हो जाते हैं। इस ६०० को कमल चक्ररूपी बनावें और उन्हीं चक्रों से भगवान् के चरण कमलों की गिनती करें तो लब्धांक से यह अध्याय निकल कर आ जायगा। इसे पद्म-विष्टर विजय काव्य कहते हैं।२५।

श्री नमि जिनेन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर अपनी माता के गर्भ में आने के समय में उत्पल पुष्प के रूप में रहे थे। ऐसी भावना भाते हुये यदि उस पुष्प की पूजा करें तो स्वर्गादि सुखों की प्राप्ति हो जाती है।२६।

आदि मन्मथ के पिता श्री ऋषभ तीर्थंकर ने वट वृक्ष के नीचे तपस्या की। इस कारण उसे जिन वृक्ष और शोक निवारक अर्थात् अशोक वृक्ष भी कहते हैं।२७।

सप्तच्छद अर्थात् ७-७ पत्तों वाला सुन्दर वृक्ष भी कल्प वृक्ष है। इस वृक्ष के नीचे श्री अजित तीर्थंकर ने तप किया था। इसलिये यह भी अशोक वृक्ष है।२८।

शाल्मलि (सेमर) वृक्ष के नीचे श्री संभवनाथ ने तप धारण किया।२९।

सरल-देवदारु और प्रियंगु इन दोनों वृक्षों के नीचे अभिनन्दन व सुमति तीर्थंकर ने तपस्या की थी, इस कारण यह भी अशोक वृक्ष कहलाता है।३०।

सम्यग्दर्शन शास्त्र से आत्मा की पहचान कराने वाला सम्यग्ज्ञान उन दोनों का स्वरूप दिखलाने के लिये कुटकी और सिरीश का चिन्ह बतलाया गया है। इसे भी अशोक वृक्ष कहते हैं।३१।

नागवृक्ष भी अशोक वृक्ष है। चन्द्र प्रभु जिनेन्द्रदेव ने इसी नाग वृक्ष के नीचे तपस्या करके आत्म-कल्याण किया है।३२।

इसी रीति से नागफणि और कपित्थ (कैथ) ये दोनों भी कल्प वृक्ष हैं।३३।

पलाश अर्थात् तुम्बुर वृक्ष भी अशोक वृक्ष है।३४।

तेन्दु वृक्ष पाटलि, जम्बू (जामुन) भी अशोक वृक्ष है।३५।

अश्वत्थ और दधिपर्ण भी अशोक वृक्ष है।३६।

नन्दी और तिलक भी अशोक वृक्ष है।३७।

आम और कंकेलि ये दोनों वृक्ष भी अशोक वृक्ष हैं।३८।

चंपक (चंपा) और बकुल भी अशोक वृक्ष हैं।३९।

समवशरण की रचना में मेष शृङ्ग वृक्ष का उपयोग बतलाया है। यह भी अशोक वृक्ष है।४०।

दास वृक्ष को भी अशोक वृक्ष के नाम से पुकारा जाता है।४१।

शालोवीरू अर्थात् शाल्मली वृक्ष श्री अशोक वृक्ष है।४२।

देव मनुष्य इत्यादि जीव राशि के सम्पूर्ण रोग को नाश करने वाले ये सभी वृक्ष चौबीस तीर्थंकरों के तपोभूमि के वृक्ष थे।४३।

इन वृक्षों को ध्वजा घंटादि से अलंकर करते हुए यक्ष देवगण चौबीस तीर्थंकरों के स्मरण में पूजा करते हैं।४४।

इन वृक्ष के पुष्प जब खिल जाते हैं तब उसमें से निकलने वाली सुगंध की वायुका शरीर से स्पर्श होते ही शरीर के सभी बाह्य रोग नष्ट होते हैं। सुगंध के सूंघने से मनके रोग का नाश होता है। ऐसे होने से इस फूलों को पीस कर निकले हुए, पारे के रस से बनाये हुआ रस मणि के उपभोग से आकाश गमन अर्थात् खेचर नामक ऋद्धि प्राप्त होने में क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ भी आश्चर्य नहीं है।४५।

इन चौबीस को परमात्म रूप वैद्यक शास्त्र में और भी अनेक प्रकार के अर्थात् अठारहहजार प्रकारके वृक्षों की जाति बतायी गयी है। इस मंगलप्राभृत अध्ययन से गणित शास्त्र के मर्म को जानने वाले ही निकाल सकते हैं।४६।

स्याद्वाद रूपी तलवार की धार तीक्ष्ण है। इसी तरह के तीव्र बुद्धिमान जन बहुत सूक्ष्म विवेचन करके इस भूवलय से पुष्पायुर्वेद गणित निकाल सकते हैं।४७।

जिस संख्या को देखें उससे ९ ही ९ आता है, यह महावीर भगवान् का वाक्य है।

इस अध्याय में २२५० अक्षर हैं।

संस्कृत के अर्थ को लिखते हैं:—

समस्त भूत गण परहित में रत हों। सम्पूर्ण दोष नाश हो। समस्त शासन को जीतने वाला जैन शासन जयवंत हो।

श्रीमत्परम गंभीरस्याद्वादामोघ लाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जैन शासनं ॥

बारहवां अध्याय पूर्ण हुआ:।

तेरहवां अध्याय

ळ* अडदेशद्अ 'साधुगळिहरेरइ' । पाडिन 'वरे द्वीषदि' सा ॥ कूडि ध्* वयु 'साधिसुतिहरुम् मोक्ष' । रूडिय 'वनु'ळ्'अ काव्यदलि ॥१॥
ड* गमग 'आदियनादिय कालदिम्' । दोगे 'दिह सर्व साधुगळि ॥ गे'ग व्* असणिगेयागे'नमवेम्ब् ओम्[१]धरिसल'। अगणिता'नन्त ज्ञानादि।२
व* शद 'स्वरूपव परिशुद्धात्म रू' । वशरू 'पवनु वरसर्व् अ*' हसद 'साधुगळ् साधिसुतिरुव' तिशय । वेस 'रु परमन तम्मात्म॥३॥
म* 'नोळमि [२]यमिगळिवरु महाव्रतगळय् । दनु होन्दि कर्म् अ' ला* स'दोळु'॥मिनुगुतमुनि'गुप्तित्रयवसमनागिन'।मुनि'उप'क्रम'वासकाव्य
स* रस 'वि पेळिद गमकदोळिरु साधु' । वर गळ्त्' [३]अ 'नवगळेरड' मृ* तु॥ स'र सावर जाति शीलव'द'नवर'तर'भेदगळे'ल्ल वरितु'॥५॥
आ* वनु 'सुविशुद्धवादेम् भत्नाल्कु' । काविन् अ 'लक्षगळ्वेम् भा'* पावक'अवनु अत्तर गुणगळन् यो'[४]रि।त।वु'तिळिदु पालिसुवर्॥६॥

आवाग 'दर्शनवरिदर् ।७॥ 'ह् आविन भववरिदवरु' ॥८॥ 'अवरभिप्रायवे शब्द' ॥९॥
'स् आविनोळ् कल्पवनरिइर् ॥१०॥ एळ्वे [illegible] विद्यागमर' ॥११॥ व्आगलु 'सिद्धान्तिगळु' ॥१२॥
अवु 'गञ्च मिथ्यात्व ध्वस्तर्'॥१३॥ 'द् आवानलकर्म अ वनरु' ॥१४॥ अवरु 'भेदाभेद नयरु' ॥१५॥
'व्वरेलुनयदे प्रवीणर्' ॥१६॥ 'अवरष्टान्गनिमित्त' कुशलर् ॥१७॥ व्आवाद 'स्तम् भनवरितर् ॥१८॥
अवरु 'मोहन वशिकरणर् ॥१९॥ य्वरु 'आकर्षण निपुणर्' ॥२०॥ अवर् 'उच्छाटन बलरु' ॥२१॥
द्वल 'सकल मन्त्र साध्यर् ॥२२॥ ईवरु 'सिद्ध सिद्धार्थर् ॥२३॥ 'प्वनदन्तिह चक्र बन्धर्' ॥२४॥
'ईव गुणदे अति प्राज्ञर् ॥२५॥ स्वि 'वन चक्रवर्तिगळु' ॥२६॥ आवाग'तपोवन वाळ्दर्' ॥२७॥
'थ्आवर जीव रक्षकरु' ॥२८॥ 'स्आविर सेन भूवलयर्' ॥२९॥

प* रिव'अयदनेपरमेष्टिगळिळेयोळागि' रिसि'र्दु समाधियोळ् अ' र* गा ॥नर'गात्मसिरियेम्बाहारवकोम्बबाल'र'शालिगलुसाधुगलका'५ ।३०।
ज* ज्ञान साधने योळात्मध्यान यिडदिह । ज्ञानवन्तरु सिम्ह' ती* र्थ॥ आणतिया'दन्ते शाने पराक्रम' । ज्ञानस 'बुळ्ळ सम्यमिगळ ॥३१॥
जु* ळि'उज्ञानादिशक्तियोळ्'वि'रतरक्'[६]उस।वळि'नानाविधवाव' मृ* गुळिगे॥यलि'आहारविट्टरु त।ुगम्भीर।दोळिद्दु'र'ज्ञानेगव्रविसल॥३२॥
ण* रनु'अन्नवतिम् बानेयन्तानन्द । 'सिरि स्वाभिमानिग्रळ्ष [७] प* र ॥ सर'दिनवेल्लतिन्दन्नवरात्रिका ।ल'रिय'दिमन विट्टुमेलव्'आ॥३३।
णो* वागम 'रत्रिनन्ते,'आ 'दिनवेल्ल' । रूवा 'गळिसिद शृरुत् अद नृ* का'वा'क्षरगळ मनसिट्टु रात्रियोळ्'। श्री वाणि'मेलुवर(दशक्ति ॥३४

ववरु 'तपोराज्यदवरु' ॥३५॥ अवरतिशय राजराजर् ॥३६॥ क्विदवर् तपचक्रधररु ॥३७॥
नवमान्क पद यतिनिलयर् ॥३८॥ दवरल्लि गुरुकुल चन्द्रर् ॥३९॥ क्वि गुरुकुल समुद्धरणर्॥४०॥
षव मध्यान्ह कळ्पवृक्षवर् ॥४१॥ रवर् इन्द्र प्रस्थ गद्गेयर् ॥४२॥ ळवळद सिम्हासनवर्गे ॥४३॥
योवनाळि भाषा भाषितरु ॥४४॥ णेवदोळु कविय मन्निपरु ॥४५॥ ववरु चातुर्वर्ण प्रियरु ॥४६॥
टवणेयोळ् हितव पेळ्वरु ॥४७॥ यवेयष्टु कर्मविळ्ळदसु ॥४८॥ भूवलयके ज्ञान्नि धर्र् ॥४९॥
ववरु श्री वृषभसेनार्यर् ॥५०॥ ळवरादि चतुराशीतियरु ॥५१॥ यवररजिके सव्नवरि ब्रामृहि ॥५२॥

व्व्रुषभ चक्रेशवरियर् ॥५३॥ कावर् तोम्बत् ओबत् सहस्र ॥५४॥

स* रि 'योळोम्दे दारियोळ्' बह 'वेगदि' वर 'व्यक्यवागोड्उवअ' च* रर'मृरुगव'दर' व्यक्तित्वके तन्दन्ते । सरलवादव्यक्तिगळिवर्॥५५॥
म* नवर् 'उसावुगळ् अ[६]सद्रुश 'क्रुणोय' । घन'वरपो एन्दे' र ख* ॥ तनदे 'न्नुब हसुवदु गरियने मेयु' । वेनु 'वतेरदि परमान्न' ॥५६॥
भु* क्तिय अन्न 'वगोचरिव्रुत्तियिन्' । व्यक्तदिन् 'दुन्डि' ह न्* गु 'खु' ॥ शक्तर् 'निरेह व्रुत्तिगळम् [१०] तिरेयोळु'। व्यक्तित्व 'तडेयि ळ्ळदे' ह ॥५७

कु* नयव'हरिदाडुववरणाळियन्। ते निस्सन्ग वेरसुत चरि ट्* अ ॥ युविअ'सुवेकान्ग विहारिगळ् गुरु'।मुनि'गळय्दनेयसादुगळ् अब्[११]'॥५८॥
मा* नव'भिक्षुगळिवरु सकळ तत्व' । ध्यान'गळनुसाक्षात् ध् अ* रिसि । तान्'आगिबेळगुव अक्षरज्ञानिगळ्'।तानुआदित्यनन्दादिर'॥५९॥
रो* पविळ्ळदेर'क्षिप तेजोमूरति' । आमे'यवर्'[१२]उ'रमेय्अ'ननु म्* ॥ ई'सुत्तिह सागरनन्ते गम्भीर'द् । ईसुव'र्समरदोळ् करम'॥६०॥

धमभन्ग 'ऐवर अङ्ग ॥६१॥ दइसेरादि 'केसरिसेनर्' ॥६२॥ सिंसिद्धरु 'चारुसेन गुरु' ॥६३॥
हसमन 'वज्र चामररु ॥६४॥ नुसुळद 'वज्रसेनगुरु' ॥६५॥ वशगुप्त 'आदत्त सेनर्' ॥६६॥
मसकद 'जळज सेनगुरु' ॥६७॥ न्सेयळिदिह 'दत्तसेनर्' ॥६८॥ वेसेव 'विदर्भ सेनवरु' ॥६९॥
तस रक्ष 'नागसेनगुरु' ॥७०॥ रातिगे 'कुन्थुसुनगुरु' ॥७१॥ मसहर 'धर्म सेनवरु' ॥७२॥
रुषिमद्दर सेनगुरु' ॥७३॥ पसरिप 'जयसेनगुरु' ॥७४॥ ळसदव्र :सद्धर्म सेन' ॥७५॥
गसद्रुश चक्र बन्ध गुरु ॥७६॥ यशद 'स्वयभूसेनर् ॥७७॥ मसकविजइ 'कुम्भसेनर' ॥७८॥
न्सहर 'विशासेनवरु' ॥७९॥ मेसेवरु 'भळ्लि सेनगुरु' ॥८०॥ हिसिहिग्गदिह 'सोमसेनर् ॥८१॥
म्स 'वरदत्त मुनीन्द्ररर्' ॥८२॥ एसेव 'स्वेयम् परभारतिषु' ॥८३॥ नुसिरं 'इन्दरभूति विप्रवर ॥८४॥
वशदनादिय 'गुरुवम्श' ॥८५॥ द्शधर्मधर 'सेनवम्श' ॥८६॥ न्सहरर् 'ओम्दारय् दोम्दु ॥८७॥
एसेयुव 'सेन भूवलयर्' ॥८८॥

त* नुविन कर्म 'व गेळुवर् समतेयोळ्' । 'धन 'मन्दराचळश्म्' च* ॥जनुम'ते उपसर्ग वमरळ कम्परागि'न चन्वि'हरुम[१३]माह'॥८९॥
हे* 'घ 'ननाद चन्द्रमनन्ते शान्तिय' । गाध् 'रूहनु सार्व' वर तु* ॥द्धाधन'चन्द्रम'ख'रु साहस व्रत'। धीधन'गळमणियुप्य' ॥९०॥
व* रिसुत रूहिन मणिगळन्तिहर ह्'[१४]अ ।'क्षरवेने नाशवदळि' चि* दरि'दक्षरवेम्ब परिशुद्ध केवल'। वर'ज्ञान दिरवमु सहने'॥९१॥
अ* वनि'योळिरुव भूमियतेर अखि'द । नव'समतेयोळीरेवर् अ'[२५] नि* अव'मिदुवाडि'ह 'मणिणिनिम् गेद्दळु'।अवु'मनेकट्टेअदरोळ्वा'॥९२॥
णि* जवि वा'सिप हाविनन्तेसदनवनितार' ज'रुकट्टिरळ्ळलि' र्* वा।निजद्'येमुदविल्लदे वासिपरुव'(१६)र।भजिसुत'तिरेयोळगिद्द॥९३॥
रु* तिरेय मुट्टदलिह सुरुचिरदाकाश' त'दन्ते पोरेवबरारि'॥ म* ति हति'ल्लद निरालम्बरु सरुबरु' । सततवु 'निर्लेपकरया'(१७)॥९४॥
द्* व'सार्व कालदोळु मोक्षदन्वेषण'।नव'दोर्वियोळिरुव सा ला* ॥सवणसा 'धुगळु निर्वाणपदव साधि । मु'वग'त बाळुवरवर्स'॥९५॥
धो* रणरहितर्'सर्व साधुनळिगे' । दारियोळ्'नमि' स'ह(१फ)धर्म अ! म्* 'व॥सारुतकमंभूसियोळिह शर्मरुमूरुकालदोळ् निर्मल'रु॥९६॥

णिरयहोगद्अ 'वायुभूति' ॥९७॥ दारिजपदद् 'अग्नि भूति' ॥९८॥ ररसे 'सुधर्मसेनगुरु' ॥९९॥
वीरन् 'आर्यसेदगुरु' ॥१००॥ हर 'मुन्डिपुत्रारव्यगुरु' ॥१०१॥ नूर श्रेष्ट 'मय्त्रेइ सेनर्' ॥१०२॥
नर 'अकम्पनसेनगुरु' ॥१०३॥ मरवेवळिद 'अन्धरगुरु' ॥१०४॥ निरयके होगद 'अचलरु' ॥१०५॥
हरुष 'प्रभाव सेनगुरु' ॥१०६॥ 'विरचिसिदरु पाहुडवम्' ॥१०७॥ तिरेय 'केवलव रक्षिसलु' ॥१०८॥
शरदोळक्षरव कटटुवरु ॥१०९॥ यरडने गणधररवरु ॥११०॥ दरदन्क भङ्गान्क वेदर् ॥१११॥
इरद महाभाषेयरिर्द ॥११२॥ कार्य कारणद सम्बन्धर् ॥११३॥ णिरयद ज्ञान वेळ्दवरु ॥११४॥
ओरण वेद अन्ग धरर् ॥११५॥ म्रणदोळ् हितव माधिपरु ॥११६॥ वारणाशियलि वादिपरु ॥११७॥
हर शिव शङ्कर गणितर् ॥११८॥ विरचित कव्य भूवलयर् ॥११९॥

बा॰ ळुव'पद्धतियाद भूवलयद्अ'। पालिन्अ'कर्म भूमिय् अ' र् ध॰ ॥'पालिसिर(१९)वर'ई'शुद्ध चयतन्य' द।विलसित लक्षण परम्' ॥१२०॥
ह॰ रुष'निजात्म तत्वरुचि' य 'परम'रु। वरद' सम्यग्दर्शान' व॰ ॥सर'द वर्तनेयिर्प परमात्म दर्शना'। दरदा'चारन्(२०) 'हवणि'॥१२१।
त्॰ णि'सि कोळ्ळुतलिन्द्रियवर्गवेललव'। गुण'अवरु तम्मा' लो॰ ढदलि॥विनुता'त्मनोळ्तन्दु समतेयोळ्विकार'।जन'दानन्द मयरागि'॥१२२॥
त॰ मगल्लि'सुविशालवह तन्नन्दव'।क्र'मा[२१]सर्व साधुउवु' क्॰ आलिसिर्। दमल'भेद ज्ञानदिन्दलि सर्व'रा।समल'रागादिगळेम्ब'॥१२३॥
र्॰ वर 'गर्वद परभाव सम्भन्ध'वे। सवि'वळिसुवसर्'व'व रु॰ ॥ अवर'क्रियेयु सम्यग्ज्ञानम्[२२] मनसिज। सवन'मर्दनरी निश्च'॥१२४॥
अ॰ वनि'यज्ञान दनुभवदोळगाचरि। प'व'चिनुमयतत्वद्अ त॰ निय॥ नवद्'भ्यास ज्ञानाचारकोनेयादि'।सवि'यरिवाचार आ[२३]'तानु'॥१२५॥

अवनरिविह'सेनगणरु' ॥१२६॥ गुवनिये 'तानेम्ब गुरुगळ्' ॥१२७॥ नूवदन्क'भुवलयवेळ्दर् ॥१२८॥
'भवदनूत्यभवव तोर्दवरु ॥१२९॥ ळुवदन्क 'नाल्कुमङ्गलरु' ॥१३०॥ गवियुकय्लासदोळ् वृषभम् ॥१३१॥
मवरोळ् अजितरु सम्मेद ॥१३२॥ एवेळ्वे शम्भव अललि ॥१३३॥ लावभिननादनरल्ले ॥१३४॥
कवि वन्द्यसुमतियर् अल्ले ॥१३५॥ सवरण पद्मप्रभरल्ले ॥१३६॥ टेवु सिरिसुपार्शवरु अललि ॥१३७॥
नूव चन्द्रप्रभ पुष्पदन्तर् ॥१३८॥ दुवदे शीतलुरु श्रीयाम्सर् ॥१३९॥ नूव चम्पेयोळु वासुपूज्यर् ॥१४०॥
एवेयग्र नदिय मध्यदलि ॥१४१॥ यवेयमुच्चद विमलरल्ले ॥१४२॥ सोवुख्य अनन्त धर्म जिनर् ॥१४३॥
नूव शान्ति कुन्थु अररल्ले ॥१४४॥ नेव मल्लि मुनिसुव्रतलि ॥१४५॥ टव नमि सम्मेद नेमि ॥१४६॥
ट्वरूरल्य पावान्तवीरर् ॥१४७॥ त्रिव स्वर्ण भद्रदोळ् पार्श्वर् ॥१४८॥

क्॰ विवन्द्यरिवरु 'शुद्धात्म भावनेयिन्द। अवनिय तोरेयु नि॰ रव्रुतिय॥सवियागि'हुट्टिसिदान्द स्वाभावि।'क'व'दशरीनिकेतनदति'यम्॥१४९॥
ओ॰ विद सुखदनुभूतियु ताने' स। तीवि'सम्यक्त्वचारित्ररि ह॰ पावन व'न्(२४)मूर्मद सम्यक चारित्र'। तीदिर 'दोळगे निरमलव' ॥१५०॥
ड्॰ गव'रतनयिरु'तिरु'व कर्मव हरिप'। नगदे'निश्चय चारित् श्॰ रव॥ओगेद'राकार धर्मवपरिपालिसुवउ'[२५]अगणित'वारिज'दूआरय्॥१५१॥

ई※ सुत'पत्रदोळिरुव नीरिनकण' । आशा'वारिजदोळु वर्यि'स्इ षे※ ॥ राशिइर'पन्ते सारात्मदरूयदोळिर्दु' ।लेसिनिम्'परदरवृय दारय्॥१५२॥
ओ※ रणि'केय निरोधिस्उत्स्(२६)सर्वस'राराजि''मस्त इच्छेग' ष※ ॥ सागर 'ळनिरोधदि निर्वहिसुत' । सेर 'लात्मननु सर्वव निजा'॥१५३॥

उरद् 'उत्तम भावनेयनुष्ठा ॥१५४॥ ळर्'नव निर्वहिसुवुदे' ॥१५५॥ ओरयप'म(२७)र्सयुतयह ॥१५६॥
न्र 'उत्तम तपदलि' ॥१५७॥ कर 'वशर्वति गोळिसुत' ॥१५८॥ करुणेय 'मनव असदृश' ॥१५९॥
लारप 'वागिरिसिर्पु' ॥१६०॥ न्र 'वेनिश्चय दसमान' ॥१६१॥ सर 'तपदाचार(२८)वरवर्' ॥१६२॥
डेर 'शनचारवाद नाल्कु' ॥१६३॥ कूर 'गळोळु मरसदेशकृति' ॥१६४॥ त्ररि 'योळु भजियपरमात्म' ॥१६५॥
तरदे 'परियनाराधिसुवु' ॥१६६॥ मरे'दु ताने परिशुद्ध' ॥१६७॥ वर'वीर्याचारन्(२९)भूरि' ॥१६८॥
रर 'वय्भवयुतवागि' ॥१६९॥ ळ 'रुवी अय्दु चारित्रा' ॥१७०॥ कर 'राधनेगळनु सार ॥१७१॥
टर 'पञ्चाचार वेनुव ॥१७२॥ दोरेव 'सिद्धान्द भूरि ॥१७३॥ रर 'वय्भवद भूवलयद् ॥१७४॥
त्रदवे 'तेरिन कलश ॥१७५॥ टूर 'विद्दन्ते तम्मात्म' ॥१७६॥ त्र 'नसार रत्नत्रयात्म' ॥१७७॥
एर 'कद कारण समय ॥१७८॥ न्रर 'सारद वलदिन्द' ॥१७९॥ पर 'लिसेरिसुवुदु निश्च' ॥१८०॥
परि 'यप्र(३१) पुट्टु भ्द्दसिव' ॥१८१॥ इरुवुदे 'सोक्खमन्गलव' ॥१८२॥

उ※ सिरु'हुट्टिप निश्चयवदनु हुट्टिसे । वश'कार्यवु समय, भु※ वि ॥ रस'दसारवु हुट्टि बहुदु समाधिवया(३२)यश,धर्म साम्राज्यदश्ररी॥१८३॥
ज※ य'वीतरागद निर्मलात्मन समा,। पयो'धियोळु कर्म सम्ह, व※ ॥ नय् 'आख माडुते निन्दिर्य शर्म 'णरु'। स्वयम्'सर्वसाधुगति' 'यात॥१८४॥
ज※ य' के सम्सारदाशेयु बिडुभव्यपू । त'यव'र पूण्य पादग' ना※ ॥ सय' ळ' र 'नीतिमार्गदनिर्भरभक्ति' । 'यिम्नोन मातु मनसु का'॥१८५॥
न※ वि'यवत्य(३४)नमिसु स्मरिसु कोन्डाडुस्तो।त्रव'दोळ् एम्ब' न※ ते'वरमन्त्र'।।नव'भूवलय पेळुवुदु श्रमविल्लदे'।सवि'सिद्धान्त मार्गवहोन्। १८६।
त्※ न्'दे निमगे तप्पदु मुक्तिपद ज[३५]तीर्थम् क'नन 'ररन्ते' ता※ म्'दन्ना ॥ त्मनिहनु स्वार्थवागलु शुद्धज्ञानवे । ने'व्यर्यदज्ञानवकेडिसे'। १८७।
ए※ रि रत्नत्रय तीर्थ नन्य अन्त सा रन्गन्[३६]तिळिपादन म※ त ॥ सार चतुष्टय रूपनु बलित पम् । नारा 'चम' भावयुतनु' ॥१८८॥

एर 'कलि सप्त भय विप्र' ॥१८९॥ ग्र 'मुक्त स्वरपनु चलुव ॥१९०॥ ळरव 'अखम्डस्वरूप्दे [३७]' ॥१९१॥
योर 'नित्यनिजानन्दय्क' ॥१९२॥ गरुव 'चिद्रूपम सत्य' ॥१९३॥ दोरेव 'परात्पर सुखरु' ॥१९४॥
म्रळि 'स्तुतुत्यरु सर्व साधु' ॥१९५॥ सरुव 'गलेन्दरियुत अ' ॥१९६॥ विरल 'त्वन्त भक्ति नमि' ॥१९७॥
द्र 'पे हम्(३८)रुषिगळनवर' ॥१९८॥ वुरवर 'पदप्राप्तियाग' ॥१९९॥ कर 'विर लेन्दसमान' ॥२००॥
लरयद 'भक्तियिम् भजसे' ॥२०१॥ यरडु 'वशवहुवेलूलरगे' ॥२०२॥ हरु 'सविकल्परूपद सु' ॥२०३॥
वरद 'समाधि य सिद्धि' ॥२०४॥ भूरि 'साधनस (३९)करुणेय' ॥२०५॥ धनरसे 'गुरुगळय्वर प' ॥२०६॥
बर 'द भक्तियिम् बरुवकष' ॥२०७॥ गरि 'रानक कावयवनु विर' ॥२०८॥ नकचिसि 'पराकरुतसमसवुर' ॥२०९॥
लर 'त कनड दोळ् वेरसि' ॥२१०॥ मरे 'पञ्चत्तिगर्नथदया(४०)' ॥२११॥ करपात्रदन्न भूवलय ॥२१२॥

स* र 'तिरेयोळगिरुव समसत वसतुव' । सरि पेळवश्ररहन्त' न* वरद।।वर'रादियाददैदुपरमेष्ठिगळवोल्लि।परियपदद्यतियोळु विरचि।२१३।
अ* तिशयि'सिहरुबललिदति(४१)नया यादिल । क्षतिवरणग्रन्थव् अ* नोळगोन । डु'ति'आय हन्नेरडु म' साविरद । हित शरेयो मार्ग श लोकगळिम्।।२१४।।
त्* निया'द कट्टिद श्रेय ऐवरकाव्य' । धन वप(४२) धारेष्ट ज' म* पा ।।गणसि'विसिदरष्टुसत्फलवोव सा । र'न'सर्वस्ववी ऐदु' ।२१५।
त* वगे'सेरिदर्हत्सिद्धराचार्यपाठक',धवरु'साररुसर्व् आ* साधु'।।अवरु'गळर'(४३)सु'तप्पदेभूवलयक्आ।दि'वयद'मंगल विप्पत्नाल्वर्'२१६

दुवसिर् 'अमन्तर ओप्पुव' दु ।।२१७।।	रवु 'पञ्चकार' वरिया ।।२१८।।	डव 'अ सि आउ सा' मन्त्र ।।२१९।।
य्वे 'विप्प साल क्षर काव्य' ।।२२०।।	ए'व मा (४४)साविरदेन्दु' ।।२२१।।	रुव 'नामगळनु कूड' ।।२२२।।
आवा 'लु पावनवाद' ।।२२३।।	नव 'ओम्बत्तु सावाग' ।।३२४।।	नेवदे 'जीवर कावुदेन्नु' ।।२२५।।
यु 'व काव्य श्री वीर पेळद' ।।२२६।।	सोवरट्ट'भूवलमम'(४५) ग ।।२२७।।	टुव 'धरे योळी ओम्बत्तु' ।।२२८।।
ऐवरु 'गळ विस्तरिस' ।।२२९।।	लावाग 'लु बरुवनेक' ।।२३०।।	न्नवु 'न्नूर हन्तेरड परि' ।।२३१।।
कवि 'शुद्ध बद्र मत्ते कूड' ।।२३२।।	मनिर'लु नाल्कु वरधर्म ।।२३३।।	तव'शास्तर्बिम्परि'(४६) ।।२३४।।
ल्व नाल्क होसेयलु नपदे' ।।२३५।।	न्'वतेय होस शास्तरविदतन् ।।२३६।।	नूवन् 'डु कोट्ट भूवलय' ।।२३७।।
काव 'द होस पद्धतिगे' ।।२३८।।	डुविन्'रगुवेति[४७]हर्षवर्ध' ।।२३९।।	रविवार 'नमप्प काव्य ।।२४०।।
दोववनु 'ओम्बत्तारु' गळ ।।२४१।।	ळवर'स्पर्शदोळोन्देरड्एम्ब्' ।।२४२।।	गेवि'स्पर्शमणिगळय्दोदोम् ।।२४३।।
मव 'वत् अन्क के हरुष' ।।२४४।।	रव'दोळेगुवेनिन्दुम्'(४८)नाम् ।।२४५।।	क्विगळन्कद श्री भूवलय ।।४४६।।

स्* र्वार्थ सिद्धियोळ हमी द्र देवरु । निर्दहिसुतलिह हे म्* मे ।। धर्मवय्मवदतिशयददीर्घायुवु। निर्मल भक्तरिगहुदु ।२४७।
अ* वरोळगरसु आळगळेम्ब भेदवम् । कविगळु काणबुदशक् य* अ ।। अवरन्तेकर्माटदेशभाषेयजन । दवरेल्लशाश्वद सुखवि ।२४८।
य* श कीर्तियल्लद यशकीर्ति नामद । हेसरिन कर्मोद अय् अ* व ।। वशगेय्वजनपदविल्लवीनाडिनोळ्।कुसुमायुधनाळ्द् नेलदोळ् ।२४९।
सि* रदोळु धरिसिर्द मकुटदोळ् केतिर्द । वररत्नद्युति ह्* रिसि ।। गुरुविनचरणाद्यूळियहोत्तमोधान्क । दोरेय राज्यद'ळ'भूवलय।२५०।
द* रियन्तर नाल्केन्टोम्बत् ऐदोम्दु । सरियन्कदक्षर् अ* इळ्से ।। गुरुवेळ एळ् नाल्कोम्बत्ड इन्तागे । करुनाडजनतेय काव्य ।२५१।
धा* रिणियोळ्हदिभूरनेअन्क'ळ'अ । सेरिसेन्आल्वत्एन्ट् अ म्* । शूर दिगम्बररक्षम्रक्षद (पर्क्रषद) न्नूर्ननन्त भूवलय 'ळ' ।।२५२।।

ळ् ९,४७७+अन्तर १५,९८४+अन्तरान्तर २१६९=२,२६३० अथवा अ—ऋ—२,५२,०८१+ळ्२७,६३०=२,७९,७११

तेरहवां अध्याय

भारतवर्ष अढाई द्वीप में है। इस प्रदेश में जितने भी साधु गण हैं वे सभी मोक्षमार्ग के साधन में संलग्न रहते हैं। भारत के मध्य प्रदेश में "लाड" नामक एक देश है। उस देश में साधु परमेष्ठी आगमानुसार अतिशय तपस्या करके ऋद्धि के द्वारा अपने आत्मिक बल की वृद्धि करते रहते हैं। उन समस्त साधुओं का कथन इस तेरहवें अध्याय में करेंगे, ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य प्रतिज्ञा करते हैं ।१।

प्रकाशमान आत्मज्योति के प्रभाव से आदिकाल अर्थात् ऋषभनाथ भगवान् से अथवा अनादिकाल अर्थात् ऋषभनाथ भगवान् से भी बहुत पहले से इन समस्त साधुओं ने (तीन कम नौ करोड़ मुनियों ने) इस शरीर रूपी कारागृह से आत्म-ज्योति को प्रगट करके मोक्ष पद को प्राप्त किया है। अतः उन सभी को हमारा नमस्कार है। क्योंकि इस प्रकार नमस्कार करने मात्र से गणित में न आनेवाले अनन्तज्ञानादि गुणों की प्राप्ति होती है ।२।

विवेचनः—मूल भूवलय के उपर्युक्त दो कानड़ी श्लोकों में से साधुगलिहरेरङ्गवरेद्वीपदि'''इत्यादि रूप और एक कानड़ी पद्य निकलता है। उन ४८ कानड़ी पद्यों के मिल जाने से एक दूसरा और अध्याय बन जाता है। वह अध्याय अन्य स्थान में दिया गया है। उस अध्याय में अनेक भाषायें निकलती हैं। किन्तु उन भाषाओं को यहां नहीं दिया है। यही क्रम अगले अध्यायों में भी चालू रहेगा।

वे साधु जन अपने आत्मस्वरूप में रत रहकर परिशुद्धात्म-स्वरूप को साधन करते हुए सर्व साधु अर्थात् पांचवें परमेष्ठी होकर परम अतिशय रूप से परमात्मा के सदृश होने की सद्भावना सदा करते रहते हैं ।३।

वे साधु पंचमहाव्रतों को निर्दोष रूप से पालन करते हुए क्रमानुगत आत्मिकोन्नति मार्ग में सदा अग्रसर रहते हैं। मन, वचन और काय गुप्तियों के धारक होते हुए उपवास अर्थात् आत्मा के समीप में वास करते रहते हैं। साधुओं के गुणों के कथन करनेवाली विधि को उपक्रम काव्य कहते हैं। यही श्री भूवलय का उपक्रमाधिकार है ।४।

उनके तपश्चरण को देखकर सब आश्चर्य-चकित हो जाते हैं, किन्तु वे उस कठोर तपस्या को सरलता से सिद्ध कर लेते हैं। ९+९=१८००० [अठारह हजार] प्रकार के शील को धारण करके तथा उसके आभ्यन्तर भेद को भी जानकर परिशुद्ध रूप से निरतिचार पूर्वक पालन करनेवाले अपने शिष्यों को भी इसी प्रकार शील की रक्षा करने के लिए सदा उपदेश देते हैं ।५।

अठारह हजार शीलों के अन्तर्गत चौरासी लाख भेद हो जाते हैं। उनको उत्तरगुण कहते हैं। इनमें एक गुण भी कम न हो, इस प्रकार पालन करनेवाले को साधुपरमेष्ठी कहते हैं ।६।

ये साधु समस्त दर्शन शास्त्रों के प्रकाण्ड देवता होते हैं ।७।

ये साधु सर्प के भव भवान्तरों को अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा जान लेते हैं (सर्प-शब्द से समस्त तिर्यंच प्राणियों को ग्रहण किया गया है) ।८।

उनके मन में जो अनायास ही शब्द उत्पन्न होते हैं वही शब्द शास्त्रों का मूल हो जाता है ।९।

आम के वृक्ष में जो फूल (बौर) द्वारा रासायनिक क्रिया से गगनगामिनी विद्या सिद्ध होती है उस विद्या के ये साधुजन पूर्णरूप से ज्ञाता हैं। उस विद्या का नाम अनल्पकल्प है ।१०।

ये साधु नौ (९) अंकरूपी भूवलय विद्या के पूर्ण-ज्ञाता हैं, अतः इनकी अगाध महिमा का वर्णन किस प्रकार किया जाय ।११।

इन साधुओं का प्रत्येक शब्द सिद्धान्त से परिपूर्ण रहता है। अर्थात् इनके प्रत्येक वचन सिद्धान्त के कथानक ही होते हैं ।१२।

इनके एक ही शब्द के केवल श्रवण मात्र से मिथ्यात्वकर्मों का नाश हो जाता है, तो उनका पूर्ण उपदेश सुनने से क्या होगा ? ।१३।

उनके दर्शन मात्र करने से कर्मरूपी समस्त वनों का नाश हो जाता है ।१४।

भेद और अभेदरूपी दो प्रकार के नय होते हैं। उन दोनों नयों में ये साधुपरमेष्ठी निष्णात हैं ।१५।

ये साधु नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन सात नयों में परम प्रवीण हैं।१६।

ये साधु ज्योतिष विद्या के अष्टांगनिमित्तज्ञान में अत्यन्त कुशल होते हैं।१७

ये साधु वादी-प्रतिवादी की विद्या को स्तम्भन करने में बहुत चतुर हैं अथवा भूत प्रेतादि ग्रहगणों को भी स्तम्भन करने वाले हैं।१८।

इन साधुओं ने मोहन, वशीकरण आदि विद्याओं में अत्यन्त प्रवीणता प्राप्त की है अथवा बन्ध करनेवाले को मोहन करके अपनी ओर आकर्षित करके उन्हें अपना शिष्य बनाने में भी ये निपुण हैं।१९।

ग्रहादि को आकर्षण करने में भी ये अत्यन्त निपुण हैं।२०।

और ग्रहादि का उच्चाटन करने में भी ये अत्यन्त समर्थ हैं।२१।

और समस्त मन्त्रों को साध्य करने में ये अत्यन्त निपुण हैं।२२।

समस्त अर्थ को सिद्ध करनेवाले इस साधु परमेष्ठी को सिद्ध भगवान भी कहते हैं।२३।

भूवलय में जैसा चक्रबन्ध है उसी रीति से आत्मिकगुणों के चक्ररूपी बन्ध में पवन के समान घूमने वाला है।२४।

ये साधु दान देने में अत्यन्त प्राज्ञ हैं और संसार में सभी लोगों के द्वारा दान दिलाने में बड़े विलक्षण हैं।२५।

जंगलों में समस्त जीवों के बीच चक्रवर्ती सिंह है और उसमें रहने वाले तपस्वी जन उस सिंह से भी पूज्य हैं; किन्तु सिंह और उन समस्त साधुओं से भी सेव्य ये पंचपरमेष्ठी हैं।२६।

ये साधु गण सर्वदा तपोवन रूपी साम्राज्य का पालन करने वाले हैं अर्थात् स्थावर आदि समस्त जीवों की रक्षा करने वाले हैं।२७-२८।

हजारों वर्षों से हजारों मुनि इस भूवलय ग्रन्थ का उपदेश देते हुये इसे लिखते आये हैं।२९।

उसी जंगल में ये साधु जन मनुष्य तिर्यञ्च और देवों को उपदेश देते हुये अपने आत्मावलोकन में लीन रहते थे और ज्ञान दर्शनादि अनन्त गुणों का उपयोग रूपी आहार आत्मा को देते हुये जंगलों में विचरण किया करते थे। अतः वे आत्मिक बलशाली थे। इन मुनियों को जंगल में आनेवाले राजाधिराज बड़ी भक्ति भाव से आहार देते थे। अतः ये आत्मिक बल के साथ २ शारीरिकादि से भी बलशाली थे।३०।

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग ज्ञान से विभूषित होते हुये ये महात्मा आत्मध्यान से कदापि नहीं विचलित होते थे। ऐसे ज्ञानी साधु परमेष्ठी उस जंगल में सिंहतीर्थ नामक पवित्र स्थान में तपस्या करते थे। इन पंचपरमेष्ठियों की आज्ञा पाते ही जंगल में रहने वाले सभी साधु घनघोर तप करने के लिये तैयार हो जाते थे और उस तप को करके प्रखर ज्ञान को प्राप्त कर लेते थे। इस प्रकार समस्त तपस्वी उस सिंहतीर्थ तपोभूमि में अत्यन्त घन घोर तप करके अपने आत्मबल को बढ़ाने वाले थे।३१।

ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानादि शक्तियों के धारी होने पर भी वे साधु ज्ञान मद से सर्वथा रहित रहते थे। ऐसे परमेष्ठियों के कर-पात्र में दिए हुए आहार को देखकर वे इस प्रकार विचार करके ग्रहण करते थे कि यह सात्विक आहार निर्मल ज्ञान की उन्नति करने वाला नहीं है, यह केवल जड़ शरीर को ही पुष्टि करने वाला है और आत्मा के द्वारा उत्पन्न हुआ ज्ञानामृत ब्राह्मण अन्न से आत्मा को पुष्टि करने वाला है। जड़ शरीर और आत्मा को भिन्न रूप समझकर पुद्गल अन्न पुद्गल को आत्म स्वरूप से उत्पन्न अन्न आत्मा को अर्पण करने वाले महापुरुषों को आहार देने का शुभ-समागम अत्यन्त पुण्योदय से ही प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं।३२।

जिस प्रकार गजराज बड़े गौरव के साथ दिए हुए भोजन को गंभीरता पूर्वक ग्रहण करता है उसी प्रकार ये साधु गंभीर मुद्रा से खड़े होकर आत्मोन्नति के लिए आहार ग्रहण करते हैं, आहार के लोभसे नहीं। इसीलिए रात्रि में ध्यान करने पर इनकी आध्यात्मिकता अद्भुत रूप से चमकने लगती है।३३।

नो आगम निक्षेप दृष्टि से ये साधु परमेष्ठी ऋषभ के समान भद्रतापूर्वक मन से द्वादशाङ्ग श्रुत का चिंतन करने लगते हैं। तब अक्षर ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। अक्षर के अर्थ का वर्णन पहले किया जा चुका है। अतः वही अक्षर ज्ञान रात्रि के समय उन साधुओं के हृदय-कमल में अनक्षर रूप बन जाता है।३४।

इस तपस्या में निश्चल भाव से ये साधु परमेष्ठी रत रहने के कारण तपो राज्य के स्वामी कहलाते हैं।३५।

।धु परमेष्ठी अतिशय गुणों के राजराजेश्वर हैं ।३६।

जिस प्रकार षट्खण्ड पृथ्वी को जीत लेने पर चक्रवर्ती पद चक्री को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जीव स्थानादि षट्खण्ड अपने मस्तिष्क में धारण करने के कारण और तपोराज्य में परमोत्कृष्ट होने से तथ चक्रवर्ती कहलाते हैं ।३७।

इन साधु परमेष्ठियों ने नवमांक पद से सिद्ध की हुई द्वादशांग वाणी अर्थात् भूवलय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।३८।

ये साधु परमेष्ठी समस्त गुरुकुल के अज्ञानान्धकार को नाश करने वाले चन्द्रमा के समान हैं ।३९।

इस गुरुकुल में जो कवि गण रहते हैं उनका उद्धार करने वाले साधु परमेष्ठी हैं ।४०।

इन गुरुकुलों में सिंहासन पर विराजमान होकर राजाधिराजों से सेव्य अनेक गुरु विद्यमान थे। वह इन्द्रप्रस्थ से लेकर महाराष्ट्र तामिल और कर्णाटक देश में प्रख्यात अनेक गुरुपीठों को स्थापित किया था। इस गुरुकुल के मुनि संघ में समस्त भव्य जीव समावेश होकर अपने जीवन को फलीभूत बनाने के लिए आत्म-साधन का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे।

इसलिए इन्हें देश-देशों से आये हुए श्रीमान् तथा धीमान् सभी व्यक्तियों ने मध्याह्न कल्प वृक्ष अर्थात् अन्न दान देनेवाले कल्प वृक्ष से नामाभिधान किया था ।४१।

देहली राजधानी को पहले इन्द्र प्रस्थ कहते थे। आकाश गमन ऋद्धि से आकर इस सेन गण वाले मुनियों द्वारा जैन धर्म की प्रभावना होती थी ।४२।

प्राचीन कालीन चक्रवर्तियों का राजसिंहासन नवरत्नों से निर्मित था और उन चक्रवर्तियों ने इन परम पूज्य मुनीश्वरों को प्रवाल मणि का सिंहासन बनवा कर प्रदान किया था और वे सदा उस सिंहासन को नमस्कार किया करते थे ।४३।

इन मुनिराजों की ख्याति सुनकर ग्रीक देशीय जनता आकर इनके धर्मोपदेश का श्रवण, पूजन आदि करते थे अतः ये यवनी भाषा में वार्तालाप करते हुए अनेक यावनी ग्रन्थों की रचना भी करते थे ।४४।

इन आचार्यों के साथ वार्तालाप करते समय इनके पास बैठे हुए अन्य कविगण भी वीतराग से प्रभावित हो जाते थे और उस प्रभाव को देखकर ये आचार्य इसे विशेष रूप से गौरव प्रदान करते थे ।४५।

इन महात्माओं ने ब्रह्मक्षत्रियादि चारों वर्णों के हितार्थ अपनी अनुपम क्रियाओं से संस्कार किया था ।४६।

ये मुनिराज एक ही समय में उपदेश भी देते थे और शास्त्र लेखन कार्य भी करते थे ।४७।

यव मात्र भी कर्म का बंध ये नहीं करते थे ।४८।

ये साधु समस्त विश्व को शान्ति प्रदान करने वाले थे। अर्थात् समस्त भूमंडल को सुख-शान्ति देने वाले थे ।४९।

इन मुनिराजों के आदि पुरुष श्री वृषभदेव तीर्थंकर के प्रथम गणधर श्री वृषभसेनाचार्य थे ।५०।

वृषभसेनाचार्य से लेकर चौराशी गणधर इन साधु परमेष्ठियों के आदि पुरुष थे ।५१।

चतुः संघ में ऋषि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका ये चार प्रकार के भेद होते हैं। उन वृषभसेनाचार्य के समय में सौन्दरी देवी और ब्राह्मी देवी ये दोनों आर्यिकायें थीं। इन्हीं दोनों त्यागी देवियों का सर्व प्रथम स्थान त्यागी महिलाओं में था ।५२।

इन दोनों आदि देवियों ने सर्व प्रथम श्री भूवलय का आख्यान आदि तीर्थंकर श्री आदि प्रभू से भरत चक्रवर्ती तथा गोम्मट देव के साथ सुना था। यद्यपि यह बात हम ऊपर कह चुके हैं, तथापि प्रसंगवश यहां हमने इंगित कर दिया ।५३।

इन्हीं ब्राह्मी और सुन्दरी देवी से लेकर आचार्य श्री कुमुदेन्दु पर्यन्त ९९९९९ गणनीय आर्यिकायें थीं ।५४।

यह सब चतुःसंघ सरल रेखा अर्थात् महाव्रत के मार्ग से ही विचरण करता हुआ संयम पूर्वक अनियत विहार करता था। इनके साथ चलने वाले बहुत बड़े-बड़े शक्तिशाली व्यक्ति भी पीछे पड़ जाते थे। उन साधुओं को गति इतने वेग से होती थी कि मृग और हरिण की चाल भी इनके सामने फीकी

प्रतीत होती थी। इतने वेग से गमन करने पर भी वे जरा भी थकित न होकर श्रावकों को मार्ग में चलते २ उपदेशामृत भी पिलाते जाते थे।५५।

इन साधु परमेष्ठियों के असदृश करुणा होती है। इनका दयाभाव मानवों तक ही सीमित नहीं बल्कि समस्त जीव मात्र से रहता है। ये पूर्वोपार्जित तप के प्रभाव से दया घन बन गये। घन का अर्थ समस्त आत्म प्रदेशों में दया भाव अखंड रूप से व्याप्त हो जाना है। जिस प्रकार गाय फसल को समूल नष्ट न करके केवल छाल को खाकर सन्तुष्ट हो जाती है तथा उसके बदले में अत्यन्त मधुर, पौष्टिक एवं समस्त जन कल्याणकारी पय प्रदान करती है उसी प्रकार नवधा भक्ति पूर्वक श्रावकों के द्वारा दिये गये नीरस आहार को साधु जन ग्रहण करके सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा उसके बदले उन्हें ज्ञानामृत प्राप्त हो जाता है जो कि स्व-पर कल्याणकारी होता है।५६।

इस संसार में प्रायः सभी लोग एकान्त में भोजन ग्रहण करते हैं किन्तु साधुओं के लिये अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई एकान्त स्थान कहीं भी नहीं है। अतः वे गोचरी वृत्ति से सर्व समक्ष आहार ग्रहण करते हैं। इस प्रकार का ग्रहण किया हुआ आहार निरीह वृत्ति कहलाता है। इन साधुजनों को आभ्यन्तरिक ज्ञानामृत आहार परम प्रिय होने के कारण पौद्गलिक जडान्न आहार ग्रहण करते समय यह पता ही नहीं चलता कि "हम आहार ग्रहण कर रहे हैं।" क्योंकि इनका लक्ष्य केवल आत्मा की ओर ही प्रतिक्षण रहा करता है। ध्यानाध्ययन में किसी प्रकार की कोई बाधा न हो, इस कारण ये मुनिराज प्रमाण से कम अर्थात् अर्द्ध पेट अवमौदर्य वृत्ति से आहार ग्रहण करके तपोवन को गमन कर जाते हैं।५७।

ये साधु जन कुनय (दुर्नय) का छेदन-भेदन (नाश) करके अनेकान्तवाद धर्म का प्रचार करते हुये किसी का आश्रय न लेकर पवन के समान स्वच्छन्द होकर अकेले विहार करते रहते हैं। अनेकान्त धर्म का अर्थ अखिल विश्व कल्याणकारी धर्म है। ऐसा सदुपदेश देने वाले इन साधु परमेष्ठियों को पांचवां परमेष्ठी कहते हैं।५८।

ये साधु परमेष्ठी मानव रूपी भिक्षु हैं। भिक्षु शब्द के दो भेद हैं:—

१ ला आहार, वस्त्र तथा वसतिका आदि के याचक और दूसरा ज्ञान पिपासु। ज्ञान पिपासु भिक्षु समस्त तत्त्वों की कामना करते हुये गुरु के उपदेश से अथवा अपने शुभ व शुद्ध ध्यान से अभीष्ट पद प्राप्त कर लेते हैं।

इन तत्त्वान्वेषी साधुओं के आत्मिक ज्ञान का प्रकाश सूर्य के समान अत्यन्त प्रतिभा शाली होता है। और जब ये महात्मा ध्यान में मग्न हो जाते हैं तब इनकी आत्मा के अन्दर ज्ञान की किरणें धवल रूप से झलकने लगती हैं।५९।

ये साधु शिष्यों की रक्षा करते समय किसी प्रकार का रंचमात्र भी रोष नहीं करते। इनका स्वरूप सदा तेज पुंज से पूरित रहा करता है। जिस प्रकार सागर समस्त पृथ्वी को चारों ओर से घेरकर रक्षा करता रहता है उसी प्रकार ये साधु परमेष्ठी समस्त शिष्य वर्गों को अपने ज्ञान रूपी दुर्ग के द्वारा सुरक्षित रखकर आत्मोन्नति के मार्ग की प्रतीक्षा करते रहते हैं। और ऐसा करते हुये भी अनादि कालीन अपनी आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों के साथ सामना करके विजय प्राप्त करते रहते हैं।६०।

पांचो परमेष्ठियों में ये साधु परमेष्ठी पाँचवें हैं। आचार्य कुमुदेन्दु ने वृषभ सेनादि ८४ के बाद गौतम गणधर तक और उनके समय से अपने समय तक सभी आचार्यों ने भूवलय के अंग ज्ञान की पद्धति किन २ आचार्यों में थी इत्यादि का निरूपण करते हुये दूसरा नाम केशरीसेन तीसरा नाम चारुसेन आदि क्रम से वज्रचामर, वज्रसेन, वज्रचामर, वां अदत्तसेन, जलसेन, दत्तसेन, विदर्भ सेन नागसेन, कुन्थुसेन धर्मसेन, मन्दर सेन, जै सेन सद्धर्म सेन, चक्रबंध, स्वयंभू सेन, कुंभसेन, विशाल सेन, मल्लि सेन, सोमसेन, वरदत्त मुनीन्द्र, स्वयं प्रभारती, इन्द्रभूति, विप्रवर, गुरुवंश, सेनवंश इत्यादि १५६१ मुनीश्वर सेनगण में भूवलय के ज्ञाता साधु-परमेष्ठी थे। ६१ से लेकर ८८ तक श्लोक पूर्ण हुआ।

विवेचन:—यह आचार्य परम्परा मूलसंघ के आचार्यों की होती हुई इतिहास से पूर्व काल से लेकर आई हुई मालूम पड़ती है। इस सम्बन्ध में हम अन्वेषण करते हुये महान् महान् इतिहासज्ञों से वार्तालाप किये। तो उस वार्ता-

लाप का भाव यह निकला कि ये १५६१ मुनि आचार्य कुमुदेन्दु के ही समकालीन महा मेधावी, आचार्य के ही शिष्य थे। इन सब के साथ आचार्य कुमुदेन्दु विहार करके मार्ग में समस्त आचार्यों को गणित पद्धति सिखलाते हुये समस्त भूवलय ग्रन्थ की रचना चक्रबंध क्रमानुसार सभी आचार्यों से करवाये। १६२×६४=१०३६८ अर्थात् श्रीमद् भगवद् गीता के १६२ श्लोक को भवलय के ६४ अक्षरों से गुणा कर दिया जाय तो एक भाषा अर्थात् गीर्वाण भाषा में ऋग्वेद बन जाता है। इस प्रकार की विधि से आचार्य श्री कुमुदेन्दु ने अपने एक शिष्य को उपदेश दिया। तो उस मेधावी शिष्य ने एक ही रात्रि में उपर्युक्त अंकों की रचना चक्रबंध रूप में करके दिखा दिया। इसी रीति से दूसरे शिष्य को १६२×५४=वही १०३६८ अंकों का उपदेश देकर कहा कि अच्छा तुम अपनी बुद्धि के अनुसार बनाओ। गुरु देव की आज्ञा पाते ही दूसरे शिष्य ने भी फल स्वरूप श्री वेद व्यास महर्षि विरचित महाभारत अर्थात् वयाख्यान तथा उसके अन्तर्गत पाँच भाषाओं में श्री मद्भगवद् गीता के अंकों को चक्रबंध रूप में शीघ्र ही बनाकर श्री गुरु के सम्मुख लाकर प्रस्तुत किया। इसी रीति से १५६१ महामेधावी मुनि शिष्यों को रचना के लिये दे देने से सभी ऋषियों ने एक ही दिन में महान् अद्भुत भूवलय ग्रन्थ को विरचित करके गुरु को प्रदान कर दिया। तब कुमुदेन्दु मुनि ने समस्त मेधावी महर्षियों की वाक्-शक्ति को एकत्रित करके अपने दिव्य ज्ञान से अन्तर्मुहूर्त्त में इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की। वह चक्रबन्ध १६००० संख्या परिमित है।

अपने अपने कर्मानुसार मानव पर्याय प्राप्त होती है ऐसा सोचकर तपोवन में तपस्या करते समय मुनिराज मेरु पर्वत के समान अकम्प (निश्चल) रहते हैं। तथा अपने आत्मिक गुणों को विकसित करते हुये मोहकर्म को जीत लेते हैं।८९।

जिस प्रकार रात्रि में चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनी के द्वारा स्वयं प्रशान्त रहकर समस्त जीवों के संताप को हर लेता है उसी प्रकार साधु जन सिंह विक्रीडितादि महान महान व्रतों द्वारा स्वयं प्रशान्त रहकर अन्य जीवों को भी शान्ति प्रदान करते हैं। अतः उनकी बुद्धि रूपी संपत्ति सदा चमकती रहती है।९०।

दीप्तिमान नव रत्नों को एक ही आभरण में यदि जड़ दिया जाय तो उनकी पृथक पृथक प्रभा एकत्रित होकर अनुपम प्रकाश देती है इसी प्रकार ज्ञान की विभिन्न किरणों को श्री कुमुदेन्दु आचार्य के १५६१ शिष्यों ने ग्रहण किया और कुमुदेन्दु आचार्य ने उन ज्ञान किरणों कोएकत्रित करके इस भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ का रूप दिया जिसमें कि विश्व का समस्त ज्ञान निहित है।

क्षर नाम नश्वर का है और अक्षर नाम अविनश्वर का है। जिस प्रकार केवल ज्ञान अक्षर (अविनश्वर) है सी प्रकार भूवलय का अंकात्मक ज्ञान अक्षर (अविनश्वर) है।९१।

जिस प्रकार भूमि के अन्तरंग बहिरंग रूप में पदार्थों को धारण करने रूप सहन शक्ति विद्यमान है उसी प्रकार मुनियों के अन्तरंग-बहिरंग समता भावों में अनुपम सहनशक्ति विद्यमान रहती है। उस परम समतामय मुनिराजों के द्वारा इस भूवलय की रचना हुई है।९२।

जिस प्रकार अनियत घूमने फिरने वाला सर्प यदि किसी के घर में आ जावे तो उसके विषमय दन्त उखाड़ देने पर वह किसी को कुछ भी बाधा नहीं दे पाता उसी प्रकार अनियत स्थान और बसितका में विहार करने वाले योगी जन विषय-वासनाओं के विष को दूर कर देने के कारण किसी भी प्राणी के लिए अहित कारक नहीं होते।९३।

जिस प्रकार भूमि को छिन्न-भिन्न करने पर भी भूमिगत आकाश छिन्न-भिन्न नहीं हुआ करता उसी प्रकार साधु गण शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर भी अपने अनुपम समता मय भावों में स्वावलम्बन रूप से अपने गुणों द्वारा आत्मा को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखते हैं। ऐसे मुनिराजों के द्वारा इस भूवलय का निर्माण हुआ।९४।

वे मुनिराज सदा सर्वदा केवल मोक्ष मार्ग के अन्वेषण में ही तत्पर रहते हैं। तपस्या में शालवृक्ष के समान कायोत्सर्ग में खड़े होकर वे मुनिराज निश्चल भाव से तप करते हैं।९५।

ऐसे साधु परमेष्ठी इस कर्म भूमि में रहने पर भी संपूर्ण कर्मों से रहित होते हैं। और मार्ग में विहार करते समय राजा-रंक के द्वारा नमस्कार किये

जाने पर समदर्शी होने के कारण किसी के साथ लेश मात्र भी राग द्वेष नहीं करते ।

उत्कृष्ट कुल में उत्पन्न हुये साधु जन वर्णनातीत हैं। अतः उन्हें ऊँच नीच कुल के चाहे जो भी नमस्कार करें उन सबको वे समान समझते थे। इस प्रकार तीनों कालों में इन साधुओं का चरित्र परम निर्मल रहता है ।९६।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक साधु श्री कुमुदेन्दु मुनि के संघ में थे। वे भी सेनगण के अन्तर्गत ही थे। ये सभी मुनि नरकादि दुर्गतियों का नाश करनेवाले थे । इनका वर्णन निम्न प्रकार है:—

वायुभूति कमल पुष्प के समान सुशोभित चरण हैं जिसके ऐसे अग्नि भूति, भूमि को छोड़कर अधर मार्ग गामी सुधर्म सेन, वीरता के साथ तप करने वाले आर्य सेन, गणनायक मुंडी पुत्र, मानव कुल के उद्धारक मैत्रेय सेन नरों में श्रेष्ठ अकम्पन सेन, स्मरण शक्ति के धारक अन्ध्र सेन गुरु, नरकादि दुःखों से मुक्त अचल-सेन, शिष्यों को सदा हर्षित करने वाले प्रभाव सेन मुनि इन समस्त मुनियों ने पाहुड ग्रन्थ की रचना की है।

प्रश्न—पाहुड ग्रन्थ की रचना क्यों की गई ?

उत्तर—केवल ज्ञान तथा मोक्ष मार्ग को सुरक्षित रखने के लिये इस पाहुड ग्रन्थ की रचना की गई। इन मुनियों के वाग्बाण से ही शब्दों की रचना हो जाती थी। अतः जनता इन्हें दूसरे गणधर के नाम से संबोधित करती थी।

उस उस काल के धारणा शक्ति के अनुसार गणित पद्धति के द्वारा अङ्गज्ञान से वेद को लेकर वे साधु ग्रन्थों की रचना करते थे। अर्थात् मन्त्र का द्रष्टार्थ तत्तत्कालीन महाभाषाओं के वे साधु जन ज्ञाता थे और कार्य कारण का सम्बन्ध भलीभांति जानते थे। नरक गति से आये हुए समस्त जीवों को ज्ञान प्रदान करते हुए वे मुनिराज पुनः नरक बन्ध करने से बचा लेते थे। वे समस्त मुनिराज चारों वेद तथा द्वादशांग वाणी के पूर्ण ज्ञाता थे तथा आयु के अवसान काल में स्व-पर हित करनेवाले थे। उस प्राचीन समय से बनारस नगर में वाद-विवाद करके यथार्थ तत्व निर्णय करने के लिए एक सभा की स्थापना की गई थी। उस सभा में इन्हीं मुनीश्वरों ने जाकर शास्त्रार्थ करके आत्मसिद्धि द्वारा प्रकाश डालकर मानवों को कल्याण का मार्ग निर्दिष्ट किया था इस रीति से बनारस में वाद-विवाद करते रहने से जैनियों के आठव तीर्थंकर चन्द्रप्रभु तथा शैवों के चन्द्रशेखर भगवान् एक ही होने से "हरशिवशंकर गणित" ऐसी उपाधि इन मुनीश्वरों को उपलब्ध हुई थी। इसी गणित शास्त्र के द्वारा भूवलय ग्रन्थ की रचना तथा स्वाध्याय करने के कारण इन्हें "भूवलयर" नाम से भी पुकारते थे ।९७ से १९९ तक श्लोक पूर्ण हुआ।

भूवलय की रचना में "पाहुड" वस्तु "पद्धति" इत्यादि अनेक उदाहरण हैं। ये कर्मभूमि के अर्द्ध प्रदेश में रहनेवाले जीवों को उपदेश देने के लिए सांगत्य नामक छन्द में पद्धति ग्रन्थ की रचना करते थे। उस ग्रन्थ में विविध भाषाओं में शुद्ध चैतन्य विलसित लक्षण स्वरूप परमात्मा का ही वर्णन अर्थात् अध्यात्म विषय ही प्रधान था ।१२०।

वे महात्मा सदा परमात्मा के समान सन्तोष धारण करके आत्मतत्त्व रुचि से परिपूर्ण रहते हैं और सम्यग्दर्शन का प्रचार करते हुए दर्शनाचार से सुशोभित रहते हैं ।१२१।

उन महर्षियों के मन में कदाचित् किसी प्रकार की यदि कामना उत्पन्न हो जाती थी तो वे तत्काल ही उसे शमन करके उस कामना के विषय को जन्म पर्यन्त के लिए त्याग देते थे और अपने चित्त को एकाग्र करके समताभाव पूर्वक आत्मतत्त्व में मग्न होकर आनन्दमय हो जाया करते थे ।१२२।

तब उन महात्माओं का विश्व व्यापक ज्ञान आत्मोन्नति के साथ साथ अलोकाकाश पर्यन्त फैलता जाता था। और प्रकाश के फैल जाने पर भेद विज्ञान स्वयमेव झलकने लगता था। तथा शुभाशुभ रागादि समस्त विकल्प परभावों से मुक्त हो जाता था ।१२३।

जब आत्मा के साथ परभाव का सम्बन्ध उत्पन्न होता है तब संसार बन्ध का कारण बन जाता है। किन्तु अपने निज स्वभाव में रहनेवाले उपर्युक्त साधुओं के ऊपर लेशमात्र भी परभाव नहीं पड़ता था। संघ में रहनेवाले समस्त साधु सरल, समदर्शी एवं वीतरागता पूर्ण थे। अतः परस्पर में आध्यात्मिक रस का ही लेन-देन था व्यावहारिक नहीं। सभी साधु निश्चय नय के आराधक थे ,१२४।

कदाचित् इस पृथ्वी सम्बन्धी वार्तालाप करने का अवसर यदि आक-

स्मिक रूप से आ जाता था तो वे साधुजन तेरहवें गुणस्थान के अन्त में आने-वाले चार केवली समुद्घातों का पृथ्वी सम्बन्धी आत्म प्रदेश को ही विचारते हुए इस पृथ्वी में रहनेवाली पौद्गलिक शक्ति का चिन्तवन करते हुए आत्मा का अवलोकन करते रहते थे। अतः सदाकाल संघ सुरक्षित रूप से विहार करता था। इसका नाम ज्ञानाचार था।१२५।

समवशरण में लक्ष्मी मण्डप (गन्ध कुटी) होती है। उसमें भगवान विराजमान होते हैं। उसके समीप चारों ओर बारह कोष्ठक (कोठे) होते हैं, जिनमें से पहले कोष्ठक में मुनिराज विराजमान रहते हैं। इसी के अनुसार परम्परा से लक्ष्मी सेन गण नाम प्रचलित हुआ। अतः उपर्युक्त समस्त आचार्य लक्ष्मीसेन गणवाले मुनिराज कहलाते हैं।१२६।

गौतमादि गणधरों से लेकर उपर्युक्त सभी आचार्य दिव्य ध्वनि से सुने हुए समस्त द्वादशांग रचना के क्रम को नौ (९) अंकों के अन्दर गर्भित करनेवाली विद्या में परम प्रवीण थे अर्थात् भूवलय सिद्धान्त शास्त्र के ज्ञानी थे।१२७-१२८।

अनादिकाल से लेकर उन आचार्यों तक समस्त जीवों के समस्त भवों को जानकर आगामी काल में कौन-कौन से जीव मोक्ष पद को प्राप्त करेंगे यह भी बतलाकर वे आचार्य सभी का उद्धार करते थे।१२९।

ये साधु परमेष्ठी अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारों के मंगलस्वरूप हैं। इसका प्राकृत रूप इस प्रकार है—"अरहन्त मंगलं, सिद्धमंगलं, साहुमंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मोमंगलम्" ।१३०।

विवेचन—अब श्री कुमुदेन्दु आचार्य जी उपर्युक्त साधु परमेष्ठियों को चौबीस तीर्थंकरों का स्वरूप मानकर २४ तीर्थंकरों का निरूपण करते हुए उनके निर्वाण पद प्राप्त स्थानों का वर्णन करते हैं।

कैलासगिरि से श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर मुक्ति पद प्राप्त किए भगवान् से श्री ऋषभदेव सर्व प्रथम तीर्थंकर तथा भूवलय ग्रन्थ के आदि सृष्टि कर्त्ता थे।१३१।

इसके बाद दूसरे तीर्थंकर के अन्तराल काल में धर्म धीरे घटता चला गया। और एक बार पूर्ण रूप से नष्ट सा हो गया था। तब दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान् ने इस भरतखंड में अवतार लेकर धर्म का उत्थान किया तथा सम्मेद शिखर से मुक्ति पद प्राप्त कर लिया।१३२।

एक तीर्थंकर से लेकर दूसरे तीर्थंकर तक अर्थात् श्री सम्भव, श्री अभिनन्दन, श्री सुमिति, श्री पद्मप्रभ श्री सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ श्री पुष्पदन्त, श्री शीतल, श्री श्रेयांस, इन सभी तर्थंकरों ने श्री सम्मेदशिखर पर्वत से मुक्ति प्राप्त को थी। इनमें से आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभु भगवान श्री कुमुदेन्दु आचार्य के इष्ट देव थे, क्योंकि यह आठवां अंक ६४ अक्षरों का मूल है।१३३ से लेकर १३९ तक।

चम्पापुर नगर में श्री वासुपूज्य तीर्थंकर नदी के ऊपर अधर [यवाग्र भाग] से मुक्ति पधारे।१४०-१४१।

तत्पश्चात् श्री सम्मेदशिखर पर्वत के ऊपर श्री विमलनाथ, श्री अनन्त नाथ, श्री धर्मनाथ, श्री शान्तिनाथ, श्री कुन्थुनाथ, श्री अर्हनाथ, श्री मल्लिनाथ मुनि सुव्रतनाथ, श्री नमिनाथ इन सभी तीर्थंकरों ने श्री सम्मेदशिखर गिरि से मुक्तिपद प्राप्त की थी। और श्री नेमिनाथ भगवान् ने।१४२-१४६।

ऊर्जयन्त गिरि [गिरिनार–जूनागढ़], पावापुर सरोवर के मध्य भाग से श्री महावीर भगवान् तथा श्री सम्मेद शिखर जी के स्वर्ण भद्र टोक से श्री पार्श्वनाथ भगवान् मुक्त हुए थे।१४७-१४८।

विवेचन—श्री पार्श्वनाथ का नाम पहले आकर श्री महावीर भगवान् का नाम बाद में आना चाहिए था पर ऊपर विपरीत क्रम क्यों दिया गया ?

इस प्रश्न का अगले खंड में स्पष्टीकरण करते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य लिखते हैं कि श्री सम्मेदशिखरजी का स्वर्ण भद्र कूट [भगवान् पार्श्वनाथ का मुक्त स्थान] सबसे अधिक उन्नत है अतएव वहां पहुंचकर दर्शन करना बहुत कठिन है। [इस समय तो चढ़ने के लिए सीढ़ियां बन जाने के कारण मार्ग कुछ सुगम बन गया है किन्तु प्राचीन काल में सीढ़ियों के अभाव से वहां पहुंचना अत्यन्त कठिन था] उस कूट के ऊपर पहले लोहे को सुवर्ण रूप में परिणत कर देनेवाली जड़ी-बूटियां होती थीं, अतः सुवर्ण के अभिलाषी बकरी पालनेवाले गणेरिये बकरियों के खुरों में लोहे की खुर चढ़ाकर इसी कूट के ऊपर उन्हें चरने के लिए भेज दिया करते थे जिससे कि वे घास-पत्ती चरती-

करती उन जड़ी बूटियों पर जब अपनी खुर रखती थीं तब उनके लोहे के खुर सोने के बन जाया करते थे। इस कारण इस कूट का नाम स्वर्ण भद्र प्रख्यात हुआ और इसी कारण भगवान पार्श्वनाथ का नाम ग्रन्थकार ने अन्त में दिया है।

इन सभी तीर्थंकरों ने शुद्धात्म भावना से इस पृथ्वी और शरीर के मोह को छोड़कर निवृत्ति मार्गको अंगीकार करके उस अध्यात्म के आनन्द से उत्पन्न हुए स्वाभाविक आत्मिक ऐश्वर्य के समान रहनेवाले मोक्ष पद को प्राप्त किया है। अतः इन तीर्थंकरों को जगत के सभी कवि नमस्कार करते हैं।१४६।

ये जिस सुख के अनुभव में रहते हैं वही सुख सम्यक्त्व चारित्र कहलाता है। उस पवित्र चारित्र के मर्म को अपने अन्दर पूर्णतया भरे रहने के कारण उनको परम शुद्ध निर्मल जीव द्रव्य कहते हैं। इस तरह निर्मल वर्तना में रहनेवाले तीर्थंकर भगवान के निश्चय चारित्र में लीन होने के कारण शेष बचे हुए अघाति कर्म स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। हमारे समान उन लोगों को शारीरिक तप करने की जरूरत नहीं पड़ती और न उन्हें हमारे समान किसी व्यवहार धर्म को पालन करने की आवश्यकता रहती। इसलिए वे समवशरण में सिंहासन पर रहनेवाले कमल पुष्प को स्पर्श न करते हुए चार अंगुल अधर रहते हैं।१५०-१५१।

जैसे कमल पत्र के ऊपर रहनेवाली पानी की बूंद कमल पत्र को स्पर्श नहीं करती तथा पानी में तैरती हुई मछली के समान कमल पत्र के ऊपर पड़ी हुई पानी की बूंदें तैरती रहती हैं उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान भी समवसरणादि पर द्रव्य में मोहित न होते हुए अपने सारभूत आत्म द्रव्य में ही लीन रहते हैं। समवसरण में देव मानवादि समस्त भव्य जीव राशि विद्यमान होने पर भी वे परस्पर में अभिमान तथा रागद्वेष न करते हुए स्वपर कल्याण की साधना में मग्न रहते हैं।१५२।

क्रमवर्ती ज्ञान को निरोध करते हुए अक्रम अर्थात् अनक्षरात्मक सभी की इच्छाओं को एकीकरण करके सम्पूर्ण ज्ञान को एक साथ निर्वाह करते हुए तीर्थंकर परमदेव समस्त संसारी भव्य जीवों को अपने अमृतमय वाणी के द्वारा उद्धार करते हैं। इस क्रम से समस्तजीव एक साथ अपने अपने अनाद्यनंत स्वरूप को जानकर छोड़े देते हैं।१५३।

इस तरह आत्म भावना में ही लीन होते हुए तीर्थंकर परमदेव नवमांक महिमा के साथ जगत के तीनों लोकों का पूर्ण रूप से निर्वाह करते हुए तथा आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप को भीतर से उमड़कर बाहर आनेके समान तपस्या को करते हुए और उसी तरह भव्य जनों को भी आचरण करने का उपदेश तथा आदेश करते हुए उत्तम तप में सभी भव्य जीवों को तृप्त करते हुए जगत को आश्चर्य चकित करते हुए उनके मनको विशाल करते हुए सम्पूर्ण जीव समान हैं, ऐसी प्रेरणा करते हुए आचार सार में कहे हुए तपश्चर्या के मर्म का अनुग्रह कराते हुए ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, और तपाचारादि इन पांच आचार को जनता में स्थापना कराते हुए सामायिक प्रति क्रमणादि क्रियाओं को करते समय शक्ति को न छिपाते हुए आचरण करना चाहिए। इस प्रकार उपदेश करती हुए तीनों संध्याकाल में दैवसिक रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिकसंवत्सरादिक केसमय में अर्हंत सिद्ध चौबीस तीर्थंकरादि गुणों के समान अपने आत्मा के अन्दर अनुकरण करते हुए, गुणस्तव, वस्तु स्तव, रूपस्तव इत्यादि गुणों की भावना करने का उपदेश देते हैं। १५४ से १६६ तक।

पर वस्तु को भूलकर समस्त शुद्ध जीव के समान मेरी आत्मा इसी तरह परिशुद्ध है, ऐसी भावना करते हुए निश्चय चारित्र में अपनी शक्ति को वैभवशाली समझकर महान वैभव संपन्न पांच चारित्र आराधना अर्थात् सिद्धांत मार्ग के अद्भुत और अनुपम ज्ञानाराधना दर्शनाराधना चारित्राराधना, तपाराधना, और वीर्याराधनादि का अत्यन्त वर्णन के साथ उपदेश करते हुए रथ के कलश के समान रहनेवाले अपने आत्मस्वरूप के निश्चय स्थान अर्थात् सिद्धात्म स्वरूप नाम के एक ही सांचे में ढले हुए शुद्ध सोने की प्रतिमा के समान स्वसमय सार के बल से निश्चय नयाबलंबन रूप शुद्ध जीव बन जाता है। तब उनको चिरंजीवि, भद्र, शिव, सौख्य, शिव, मंग और मंगल स्वरूप कहते हैं। १७२ से १८२ तक।

नवजात बच्चे के स्वास चलते रहे तो वह जिन्दा रहेगा ऐसा कहने के अनुसार सम्यक्त्व के अभिमुख जीव को मोक्ष में जाकर जन्म लिया, ऐसा समझना चाहिए। तब यह जीवात्मा स्वयं स्वयंभू अर्थात् स्वतन्त्र होता है, ऐसा समझना चाहिए। तब करनेवाले जितने भी कार्य हैं वे सभी विज्ञान मय होते हैं और समस्त पृथ्वी के सार को समझकर ग्रहण कर लेता है। वह संसार

के सुख को अनुभव करने पर भी आत्म समाधि में लीन होकर धर्म साम्राज्य का अधिपति होता है ।१८३।

वीतरागत्व का निश्चय भाव में परिणाम करनेवाले वे साधु परमेष्ठी आत्मसमाधि रूपी समुद्र में तैरते हुए समस्त कर्मों को नाश करते हुए, सम्पूर्ण नयोंके विषयों को जानते हुए अपने आत्मा में लीन रहनेवाले आत्मा में तीनों काल में संसार में महोन्नत स्थान को प्राप्त होते हैं। ऐसे योगिराज हमेशा जयवंत रहें ।१८४।

आसन्न भव्य को उत्पन्न शुद्धात्म प्राप्ति की होनेवाली आशा उनके जय के कारण होती है हमारे विजय को देखकर भी तू संसार की विषयवासनाओं को नहीं छोड़ता ? परम पवित्र सर्वसाधु परमेष्ठियों के पवित्र पुण्य चरणों में अपने उपयोग को लगाकर अगर तू पूजा करते तो तुम्हें उन समस्त आचरणों का मार्ग तथा निर्भर भक्ति आ जाती। इसलिए आप मन वचन और काय से पंच परमेष्ठियों के पवित्र चरणों की निर्भर भक्ति से आराधना करो ।१८५।

समस्त द्वादशांग वाणी के मर्म को जानकर उस मार्ग से तू श्रम रहित चलते हुए आने से पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार करना, स्तुति करना, स्मरण करना, इत्यादि क्रम को कहे जाने वाले नवमांक गणित से बद्ध होकर रहने वाले को श्री भूवलय से आप समझकर उस मार्ग की प्राप्ति कर लो ।१८६।

मोक्ष दूसरे के वास्ते नहीं है इसलिए वह अन्य किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती। तीर्थंकर भगवान भी अपने हाथ से पकड़कर अपने साथ मोक्ष को ले जानेवाले नहीं हैं।

वे भी हमारे समान कठिन तपश्चर्या करके अपने कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष की प्राप्ति कर लिए हैं। इसी तरह हम लोगों को भी अपने स्वार्थ को सिद्ध कर लेना चाहिये। स्वार्थ का अर्थ अन्य जनों के द्वारा अनुभव करने वाली वस्तु की अपेक्षा करके अनुभव करना है। यह स्वार्थ वैसा नहीं है। क्योंकि इससे किसी को किंचिद् मात्र भी हानि नहीं पहुंचती। मोक्ष सुख का स्वार्थ सिद्ध करने का हक सभी को है। समस्त अज्ञानताओं को नष्ट करके हितरूप में तल्लीन होना शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति है ।१८७।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी निर्मल जल ही तीर्थ है और उस तीर्थ में यदि एक बार जीव गोते लगा ले तो वह शीघ्रातिशीघ्र संसार सागर से पार हो जाता है। वह तीर्थ अन्यान्य क्रोधादिरूप तरङ्गों से बचाकर अनन्त चतुष्टयरूप आत्मिक संपत्ति को प्राप्त करने वाला वज्र वृषभनाराच-संहनन शरीर की प्राप्ति कराके उस जन्म में मुक्ति स्थान में पहुंचा देता है, ऐसा श्री साधु परमेष्ठी उपदेश देते हैं ।१८८।

ये साधु परमेष्ठी इहलोक, परलोक, अत्रण, अगुप्ति, आगन्तुक आदि सात भयों से मुक्त होने के कारण परम पराक्रमी होते हैं। इस प्रकार सात भयों से रहित रहने के कारण उन साधु परमेष्ठियों का मुख-कमल प्रसन्नता से परिपूर्ण रहता है। मोक्ष स्थान में सदा प्रसन्नता-पूर्वक रहना ही जीव का नैसर्गिक स्वभाव है। संसारावस्था में रहने वाले सभी जीवों के शरीर में खंड २ रूप से शरीर के अन्दर छिद्र रहते हैं; पर मुक्तावस्था में ऐसा नहीं रहता। क्योंकि वहां पर जीव अखंड घनस्वरूप में रहता है। किसी के सम्पर्क में न रहने से अखंड स्वरूप रहना शुद्ध वस्तु का स्वभाव ही है। मुक्ति में सदा काल जीव आत्मा से उत्पन्न हुये आनन्द में तल्लीन रहता है। वे महापराक्रमी सिद्ध जीव चैतन्यस्वरूप से रहते हैं और सत्य स्वरूप हैं। उस दुर्लभ सुख में रहने वाले सिद्ध परमेष्ठियों को सर्वसाधु परमेष्ठी अपना सर्वस्व मानकर सदा काल यानी अविरत रूप से भक्ति पूर्वक मनन करते है। ये ऋषिगण उन सिद्ध परमेष्ठियों के पद प्राप्ति के निमित्त त्रिकाल असाधारण भक्ति करते रहने से वह पद प्राप्त कर लेते हैं।

इस संसार में वे साधुगण सविकल्प रूप से दीख पड़ने पर भी अपनी आत्मसमाधि सिद्धि का महान् साधन संचय करते हैं। वह सामग्री परम दया, सत्य आदि वास्तविक सामग्री है। उन सामग्रियों से जब ग्रन्थ रचना करने के लिये बैठ जाते हैं तब आत्मस्वरूप तथा अखिल विश्व के समस्त पदार्थ स्फटिक के समान झलकने लगते हैं। इस काल में श्री धरसेन आचार्य ने पांच परमेष्ठियों की भक्ति से निकल कर आने वाले अक्षरों और अंकों से जिस काव्य की रचना की है वह प्राकृत, संस्कृत तथा कन्नड़ इन तीनों भाषाओं से मिश्रित अर्द्धभाषा कहलाती है। इस रीति से उन्होंने जो साढ़े तीन ($३\frac{1}{2}$) भाषा की रचना की है वह "पद्धति" नामक छन्द कहलाता है। इस प्रकार रचा हुआ ग्रन्थ भी इस

भूवलय में गर्भित है। दिशारूपी वस्त्र और करपात्र आहार ग्रहण करने वाले साधुओं द्वारा अनादि काल से संपादन किया हुआ ग्रन्थसार इस भूवलय में गर्भित है। उसमें से एक ग्रन्थ का नाम "पंच परमेष्ठी बोल्लि" है। यहां तक १८९ से लेकर २१२ श्लोक तक पूर्ण हुआ।

विवेचन—आजकल "पंच परमेष्ठी बोल्लि" नामक कानड़ी भाषा में जो ग्रन्थ मिल रहा है वह प्राचीन कर्णाटक भाषामें होने पर भी दशवीं शताब्दी से पीछे का है, प्राकृत भाषा में मंगलाचरण के प्रथम श्लोक को देखकर अजैन विद्वान इस भूवलय ग्रन्थ को दशवीं शताब्दी के बाद का कहते हैं। किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि भूवलय सिद्धान्त रचित पांच परमेष्ठियों का 'बोल्लि' नामक पद्धति ग्रन्थ साढ़े तीन भाषा में होने से श्री कुमुदेन्दु आचार्य के पूर्व किसी महान् आचार्य द्वारा रचित है। उसका स्पष्टीकरण अगले श्लोक में किया गया है। इस पृथ्वी में रहने वाली समस्त वस्तुओं का अर्थात् जीवादि षड् द्रव्यों का कथन सर्व प्रथम भगवान् की वाणी से निष्पन्न हुआ है। उस कथन को लेकर पूर्वाचार्यों ने अपने अद्भुत ज्ञान से "पंच परमेष्ठी बोल्लि" पद्धति नामक ग्रन्थ की रचना की है। वह ग्रन्थ अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुओं के यश का गुणगान करने के कारण पद्धति नामक छन्द से प्रख्यात था।२१३।

उस पंच परमेष्ठी को बोल्लि में अनेक प्रकार के न्याय ग्रन्थ, लक्षण ग्रन्थ इत्यादि विविध भांति के अतिशय संपन्न ग्रन्थ बारह हजार कानड़ी श्लोक और कई हजार श्लोक के अन्य ग्रन्थ संमिलित हैं। ये सभी ग्रन्थ भूवलय के समान ही सातिशय निष्पन्न हुये हैं।२१४।

इस प्रकार नवमांक बद्ध क्रमानुसार बंधे हुए सभी को नय मार्ग बतलाने-वाले इस पांच परमेष्ठियों के गुणगान रूप काव्य को भक्ति-भाव से जितना ही अधिक स्वाध्याय करें उतना ही अधिक उनका आत्मा गुणवान बन जायगा और परम्परा से अभ्युदय सौख्य १८ तथा नय श्रेयस समस्त सुख विना इच्छा के ही स्वयमेव मिल जायगा। इस प्रकार उत्कृष्ट फल प्रदान करने वाला समस्त संसार का सार स्वरूप भूवलयान्तर्गत यह पंच परनेष्ठी का बोल्लि रूप ग्रन्थ है।२१५।

इस भूवलय के अन्तर्गत पंच परमेष्ठि का बोल्लि सूत्र संक्षेप रूप में भी निकलेगा और विस्तार रूप में भी निकलेगा। इस मंगल प्राभृत नामक ग्रन्थ में जो २४ (चौबीस) तीर्थंकरों का वर्णन है वही पंचपरमेष्ठी अर्थात् अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु का गुण वर्णनात्मक है। और वही पंचपरमेष्ठियों के बोल्लि का विषय है।२१६।

सूत्र रूप में जो पंचपरमेष्ठी का बोल्लि है वह बीजाक्षररूप होने से मन्त्र रूप है और मन्त्राक्षर तो बीजाक्षर बनते ही हैं। चक अक्षर में अनन्त गुण हैं। इसलिये उस अक्षर को केवल ज्ञान कहते हैं। भारतीय संस्कृति में नमः शिवाय तथा अ सि आ उ सा ये दोनों पंचाक्षर बीज मन्त्र हैं। बुद्धि ऋद्धि के आठ भेद हैं। उनमें एक बीज बुद्धि नामक महान् अतिशय-शालिनी बुद्धि भी है। द्वादशांग वाणी के असंख्यात अक्षरों में से केवल एक ही अक्षर का नाम कहने से समस्त द्वादशांग, (ग्यारह अंग तथा चौहद पूर्व आदि)का ज्ञान हो जाना बीज बुद्धि नामक ऋद्धि है। ऋद्धि का अर्थ आध्यात्मिक ऐश्वर्य है। चौदह पूर्वों में अग्रायणी नामक एक पूर्व है। उसका नाम वैदिक सम्प्रदायान्तर्गत ऋग्वेदादि ग्रन्थों में भी दिया गया है, किन्तु वह नष्ट हो गया है, ऐसी वैदिकों की मान्यता है।

उस अग्रायणी पूर्व से 'पंचपरमेष्ठी बोल्लि' नामक १२ हजार श्लोक परिमित एक कनड़ी ग्रन्थ निकलता है। उस ग्रन्थ में पंचपरमेष्ठियों का समस्त गुण वर्णन है, मृत्यु के समय भी यदि उन गुणों का स्मरण किया जावे तो आत्म-शुद्धि होती है। तथा भगवान के १००८ नाम भी उसमें अन्तर्गत हैं उस १००८ को जोड़ देने से (१+०+ ०+८=९) ९ नौ आ जाता है। नव पद आ जाने से यह ग्रन्थ भगवान महावीर की वाणी के अनुसार द्वादशांग के अन्तर्गत है। २१७ से २२६ तक।

सौराष्ट्र में श्री भूतबली आचार्य ने सबसे पहले नवम अंक पद्धति से 'पञ्च परमेष्ठि बोल्लि' ग्रन्थ रचना की थी उस ग्रन्थ को गणित पद्धति द्वारा निकालने की विधि ११२ के वर्गमूल से मिलती है। ११२ को आड़े रूप से जोड़ने पर (१+१+२=४) ४ आता है, उस चार अंक का अभिप्राय जिन वाणी, जिनधर्म, जिनचैत्य और चैत्यालय है। उस ४ अंक को पंच परमेष्ठी के

५ अंक से जोड़ने पर (४+५=९) ९ अंक आ जाता है जोकि नवपद (पंच परमेष्ठी जिन वाणी आदि ९ देवता) का सूचक है।

आचार्य कुमुदेन्दु सूचित करते हैं कि उनके समय में 'पंच परमेष्ठी बोल्लि' ग्रन्थ लुप्त था, वह अब गणित पद्धति से प्राप्त हो गया है हमने उसको 'पद्धति' नाम दिया है। 'पद्धति' चौदह पूर्वों के अन्तर्भूत है अतः हम उस पद्धति नामक ग्रन्थ को नमस्कार करते हैं। यह कविजनों के लिए महान अद्भुत विषय है अतः प्रत्येक विद्वान को इसका अध्ययन करना चाहिए।२२७ से २४७ तक।

अब श्री कुमुदेन्दु आचार्य इस तेरहवें अध्याय को संक्षिप्त करते हुए कहते हैं—इस भूवलय के इसअध्याय का अध्ययन करनेवाले भव्यजन सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्रों के साथ ३३ सागरोपम दीर्घ सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं।२४८।

सर्वार्थसिद्धि में इन्द्र सेवक, आदि का भेदभाव नहीं है, वहां के देव अपनी आयु पर्यन्त निरन्तर सुख अनुभव करते हैं। उस सर्वार्थसिद्धि के समान कर्माट [कर्नाटक] भाषा तथा जनपदवासी जनता सुखी है। इस देश में हजारों दिगम्बर मुनियों का विहार तथा सिद्धान्त प्रचार होने से इस देशवासी यश-कीर्ति नाम कर्म का बन्ध किया करते हैं, अयशःकीर्ति प्रकृति का बन्ध किसी के नहीं होता। प्राचीन समय में श्री बाहुबली ने यहां राज्य शासन किया था। ।२४९-२५०।

अपने मस्तक में कोहेनूर के समान अमूल्य रत्न जड़ित किरीट को धारण किये हुए अमोघवर्ष चक्रवर्ती ने गुरु श्री कुमुदेन्दु आचार्य के चरणरज को अपने मस्तक पर धारण किया था। इनके शासनकाल में इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई थी।२५१।

विवेचन—क्रिश्चन शक ६८० के लगभग समस्त भरतखण्ड को जीतकर हिमवान् पर्वत में कर्णाटक राज्य चिन्ह की ध्वजा को राजा अमोघवर्ष ने फहराया था। उसी समय में इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई थी इस प्रसंग में उनको धवल, जयधवल, विजय धवल, महाधवल और अतिशयधवल की विरुदावली प्रदान की गई थी। गंग वंश के प्रथम शिवमार नामक यह धर्मात्मा सदा सर्वदा इस सिद्धान्त शास्त्र का उपदेश सुनते समय वह सम्यक्त्व शिरोमणि हुंकार साथ सुनते हुए अत्यंत क्रुद्ध होते थे इसी कारण से उन्हें 'शैगोट्ट' अर्थात् सुननेवाला विशेषण दिया गया था। उपर्युक्त शैगोट्ट शब्द कर्णाटक भाषा में है इसका दूसरा नाम 'गोट्टिका' भी था इसका अर्थ श्री जिनेन्द्र भगवान को वाणी को सुननेवाला है। कर्नाटक भाषा में श्री जिनेन्द्र देव को "गोरव, गरुव," इत्यादि अनेक नामों से पुकारते थे। आजकल भी ईश्वर को वैदिक सम्प्रदाय में "गोरव" कहने की प्रथा प्रचलित है। इनकी राजधानी नन्दीदुर्ग, के निकट "मण्णे" नामक एक ग्राम है जोकि पहले राजधानी थी। आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान "मण्णे" नामक ग्राम को "मान्य खेट" नाम से मानकर हैदराबाद के अन्तर्गत समझते हैं। इसी के निकट "शीतकल्लु" नामक एक बहुत प्राचीन ग्राम है। जिसमें गंग राजा के द्वारा अनेक शिल्प कलाओं से निर्मित एक जिन मन्दिर है। प्राचीन काल में जो "मण्णे" नाम था वह छोटा-सा देहात बन गया है।

एक बार महान् वैभवशाली "प्रथम गोट्टिग शिवमार" जब हाथी के ऊपर बैठकर आ रहा था तब उसने एक हजार पांच सौ (१५००) शिष्यों के साथ अर्थात् संघ सहित दूर से आते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य को देखा। उस समय वर्षा होने के कारण पृथ्वी पर कीचड़ हो गई थी। अतः "गोट्टिग शिवमार" हाथी से शीघ्र उतर कर नंगे पैरों से आचार्य श्री के दर्शनार्थ उनके चरण समीप जाकर।

उसने मुनिराज के चरणों में मस्तक झुकाकर नमस्कार किया वैसे ही उसके मस्तक में धारण किये हुए रत्न जड़ित किरीट में मुनिराज के पैरों की धूलि लग गई जिससे कि रत्न का प्रकाश फीका पड़ गया। कुमुदेन्दु आचार्य श्री तो अपने संघ सहित विहार कर गये और राजा लौटकर अपनी राज सभा में जाकर सिंहासन पर विराजमान हो गया। नित्य प्रति राजसभा में बैठते समय मस्तक में लगी हुई रत्न की प्रभा चमकती थी, किन्तु आज धूलि लगने के कारण उसकी चमक न दीख पड़ी। तब सभसदों ने मन्त्री को इशारा किया कि राजा के मस्तक में लगे हुए मुकुट के रत्न पर धूलि लगी है अतः उसे कपड़े से साफ करदो। तब मन्त्री राजा के पीछे खड़ा होकर उसे

साफ करने का मौका देखने लगा। अकस्मात् राजा की दृष्टि मन्त्री के ऊपर पड़ी तब उन्होंने पूछा कि तुम यहाँ क्यों खड़े हो ? मन्त्री ने उत्तर दिया कि आपके किरीट में लगी हुई धूलि को साफ करने के लिए खड़ा हूं जिससे कि रत्न की चमक दीख पड़े। राजा ने उत्तर में कहा कि हम अपने श्री गुरु के चरण रज को कदापि नहीं हटाने देंगे, क्योंकि यह रत्न से भी अधिक मूल्यवान है। इसलिए मैंने अपने गुरु की धूल को जान बूझकर रखलिया है। इस प्रकार कहते हुए उस किरीट पर लगी हुई धूलि को हाथ लगाकर अपनी आंखों में लगा लिया। गुरु देव के प्रति राजा की भक्ति तथा उसकी महिमा अनुपम अद्भुत थी। उस गुरु की दृष्टि भी तो देखिये कि वे अपने शिष्य "शैगोट्ट शिवमार" की कीर्ति संसार में फैलाने तथा चिरस्थायी रखने के उद्देश्य से आई हुई पांचों विरुदावलियों के नाम से धवल, जयधवल, महाधवल, विजय-धवल, तथा अतिशय धवल रूप श्री भूवलय का नाम रख दिया। यह गुरु की अत्यन्त कृपा है, ऐसे गुरु शिष्य का शुभ समागम महान पुण्य से प्राप्त होता है।

इस तेरहवें अध्याय के अन्तर काव्य में १५९८४ अक्षर हैं और श्रेणी-वद्ध काव्य में ९४७७ अक्षर हैं। ये सब कर्नाटक देशोय जनता के महान् पुण्योदय से प्राप्त हुए हैं।२५२।

इस तेरहवें अध्याय के अन्तरान्तर काव्य में इसके अतिरिक्त ४८ श्लोक और निकल आते हैं। शूरवीर वृत्ति से तप करनेवाले दिगम्बर जैन मुनि "अक्षअक्ष" प्रकार से जिस प्रकार आहार ग्रहण करते हैं और उस समय अक्षय रूप पंचाश्चर्य वृष्टि होती है उसी प्रकार इसके अन्तरान्तर काव्य में इसके अलावा एक और अध्याय निकल आ जाता है, जिसमें कि २१६९ अक्षरांक हैं। इस रीति से केवल एक ही अध्याय में ३ अध्याय बन जाते हैं।२५२।

विवेचन:—दिगम्बर जैन मुनि गोचरीवृत्ति, भ्रामरी वृत्ति तथा अक्षअक्ष इन तीन वृत्तियों से आहार ग्रहण करते हैं। इनमें से गोचरी वृत्ति का विवेचन पहले कर चुके हैं। पर शेष दो वृत्तियों का विवरण नीचे दिया जाता है।

भ्रामरी वृत्ति:—जिस प्रकार भ्रमर कमल पुष्प के ऊपर बैठ कर उसमें किसी प्रकार की हानि न करके रस को चूसता है और कमल ज्यों का त्यों सुरक्षित रहता है उसी प्रकार दिगम्बर जैन साधु श्रावकों को किसी प्रकार का भी कष्ट न हो, इस अभिप्राय से शान्त भाव-पूर्वक आहार ग्रहण किया करते हैं। इसे भ्रामरी वृत्ति कहते हैं।

अक्षअक्ष वृत्ति:—तेलरहित धुरेवाली बैलगाड़ी की गति सुचारु रूपसे नहीं चलती तथा कभी २ उसके टूट जाने का भी प्रसंग आ जाता है, अतः उसको ठीक तरह से चलाने के लिये जिस प्रकार तेल दिया जाता है उसी प्रकार साधु जन शरीर का पालन-पोषण करने के लिये नहीं, बल्कि ध्यान, अध्ययन तथा तप के साधन-भूत शरीर की केवल रक्षा मात्र के उद्देश्य से अल्पाहार ग्रहण करते हैं। इस वृत्ति से आहार ग्रहण करना अक्षअक्ष वृत्ति कहलाती है।

इस काव्य के अन्तर्गत २४७ २४६, २४५ और २४४, २४३, २४२ इस क्रमानुसार तीन २ श्लोकों को प्रत्येक में यदि पढ़ते जायँ तो इसी भूवलय के प्रथम अध्याय के ६ वें श्लोकके दूसरे चरणसे प्रथमाक्षर को लेकर क्रमानुसार "क्रमदोलगेरडु काल्नूरु" इत्यादि रूप काव्य दुबारा उपलब्ध हो जाता है। यह विषय पुनरुक्त तथा अक्षय काव्य है। यदि इस ग्रन्थ का कोई पत्र नष्ट हो जाय तो नागवद्ध प्रणाली से पढ़ने पर पूर्ण हो जाता है। लु ९४७७+अन्तर १५९८४+अन्तरान्तर २१६९=२७६३० अथवा अ से ऋ तक २५२०८१+ ल २७६३०=२७९७११ अक्षरांक होते हैं।

इस अध्याय के आद्यअक्षरसे प्राकृत भाषा निकल आती है। जिसका अर्थ इस प्रकार है—

भारत देश में लाड नामक देश है, लाड शब्द भाषा-वाचक भी है और देशवाचक भी है। लाड भाषा अनेक जातीया है, उस लाड देश में श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न शंभुकुमार, अनिरुद्ध इत्यादि ७२ करोड़ मुनि लोग दीक्षा लेकर ऊर्जयन्तके शिखर अर्थात् पर्वत पर तप करते हुए एक-एक समयमें सात सौ-सात सौ मुनि गण ने कर्म को क्षय करके सिद्ध पद प्राप्त किया इस तेरहवें अध्याय के २७ वें श्लोक से लेकर ऊपर से नीचे तक पढ़ते जांय तो संस्कृत श्लोक निकलता है उस श्लोक का अर्थ निम्न प्रकार है:—

अर्थ—इस सिद्धांत ग्रन्थ को धवल, जय धवल, विजय धवल, महा-

धवल और अतिशय धवल, इन पांच खण्डों के रूप में विभाग किया गया है। यह भारती भारत माता की शुचि और निर्मल कीर्ति रूप है। इन पांच खण्डों से आने वाला ज्ञान रूपी किरण विश्व के समस्त पदार्थों को अर्थात् षट् द्रव्य को निःशेष रूप से जैसे सूर्य की किरणों में अर्थात् प्रकाश में रक्खे हुए पदार्थ स्पष्ट रूप से देखने में आते हैं, उसी तरह समस्त भूवलय से पदार्थ स्पष्ट रूप से देखने में आते हैं। इसलिये इन पांच धवल रूप भूवलयग्रन्थ को मैं नमस्कार करता हूँ।

अंतरधिकार:—नीचे दिये जाने वाले 'साधुगलिहरेरडु वदे द्वोपदि साधि सुतिहरु मोक्ष वनु" इत्यादि रूप श्लोक के अध्याय में 'साधयन्ति ज्ञानादिशक्ति-भिर्मोक्षमिति' इत्यादि रूप श्लोक और अन्तिम अक्षर से ओमित्येक्षरं ब्रह्म इत्यादि रूप भगवद् गीता के श्लोक निकलते हैं। इस अध्याय को यहां क्रम से दिया गया है।

साधुगळिहरेरडूवरेद्वोपदि । साधिसुतिहरुम्मोक्षवनु ॥
आदियनादिय कालदिंदिहसर्व । साधुगळिगे नमवेंब्अम्रो ॥१॥
धरिसलनंत ज्ञानादि स्वरूपव । परिशुद्धात्मरूपवनु ॥
वरसर्व साधुगळ् साधिसुतिरुवरु । परमन तम्मात्मनोळमि ॥२॥
यमिगळिववन्दु महाव्रतगळय्दनुहोंदि । क्रमदोळि सर्वसाधु गळ्त॥
समनागिउपवासदिपेळ्द । गमकदोळिहरुसाधु गळ्त् ॥३॥
नवगळेरडर साविर जातिशीलव । नवर भेदगळेल्लवरितु ॥
सुविशुद्धवादेंभत्नाल्कुलक्षगळेम्ब अवनुउत्तर गुणगळन् यो ॥४॥
तिळिदु पालिसुव रेंटनेपरमेष्ठिग । ळिळेंयोळ गिदुं समाधि ॥
योळगात्म सिरियेंब्आहारवकोंब । बलशालिगळु साधुगळ्का ॥५॥
ज्ञान साधनेयोळात्मध्यानविडदिह । ज्ञानवन्तरु सिंहदन्ते ॥
शाने पराक्रम बुळ्ळ संयमिगळु । ज्ञानादि शक्तियोळ् रतरक् ॥६॥
नानाविधवाद आहार विट्टरु । तानुगंभीरदोळिद्दु ॥
शाने गौरविसल् अन्नवंतिबानेयन् । तानन्दवाभिमानिगळ्ष ॥७॥
लांगूलचालन मधश्चरणावघात, भूमोनिपत्य वदनोदरदर्शनं च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु, धीरंविलोकयति चादुशनेश्च भुंक्ते ॥
दिवेल्लतिदन्नवरात्रिकालदि । मनविट्टु मेल्व यत्तिनन्ते ॥
दिनवेल्लगाळसिद श्रुतदंकाक्षरगळ । मनसिद्दु रात्रियोळ्मेलुवर् ॥८॥
शक्तियोळोंदे दारियोळ् वेगदि । व्यक्तवागोडुव मृगव ।
व्यक्तित्वकेपदन्ते सरलवाद । व्यक्तिवागळिवर साधुगळ्श्र ॥९॥
करुणेय वरवो एंदेन्नुव हसुवदु । गरियनेमेयुवतेरदि ॥
परमान्नव गोचरि वृत्तियिदु । डिरुव नीरिहयवृत्तिगळम् ॥१०॥
तिरियोळ् तडेयिल्लदे हरिदाडुव । वरगाळियन्ते निस्संग ।
वेरसुतचेरिसुवेकांगविहारिगळ् । गुरुगळैदने यसाधुगळश्रब् ॥११॥
विभिक्षुगळिवरुसकल तत्वगळनु । साक्षात्तागि बेळगु ॥
अक्षर ज्ञानिगळादित्यु नंदादि । रक्षिप ततो मूर्तियवर् ।१२।
रमेय सुत्तिह सागरदन्ते गंभीर । समरदोळ् कर्मवगेल्वर् ॥
सरतेयोळ् मंदराचलदन्ते उपसर्ग । वररलकंपरगिहरुम् ।१३।
मोहननाद चंद्रमनन्ते शान्तिय । रुहनु सर्व चन्द्रमरु ॥
साहसव्रतगळ मणियनु धरसुत । रुहिन मणिगळंतिहरह् ।१४।
क्षरवेनेनाशवदळिदक्षरवेंब । परिशुद्ध केवल ज्ञान ॥
दिरुवनुसहनेयोळिरुव भूमियतेर । अरिवसमतेयोळोरेवर्श्र ।१५।
मिदुमाडिमन्निंन गेद्दलुमनेकट्टे । अदरोळ्वासिपहाविनन्ते ॥
सदनवनितरू कहिरलल्लिये । मुदविल्लदे वासिपरुव् ।१६।
तिरियोळगिद्दरु तिरुहमुह दळिह । सुरचिरदाकाशदन्ते ॥
पोरेववरारिल्लद । निरालंबरु सरवरुनिर्लेप करया ॥१७॥
सर्वकालदोळु मोक्षदन्वेषण । दूर्वियोळिरुव साधुगळु ॥
निर्वाणपदवसाधिसुत बाळुवर्व । सर्वसाधु गळ्गेनमिह ।१८।

धम व सारुत कम भूमियोळिह् । शर्म रु मूरुकालदोळु ॥
निर्मलपद्धति याद भूवलयद । कर्म भूमियर्द्ध पालिसिर ।१६।
वर शुद्ध चैतन्य विलसितलक्षण । परम निजात्म तत्वरुचि ॥
परम सम्यग्दर्शन दवर्तनोयर्प । परमात्म दर्शन चार्न ।२०।
हवनिसि कोळ्ळुतलिंद्रिय वर्गवेळ्ळवा । श्रवरु तम्मोळ् तंदु ॥
समतेयोळ् अविकार दानंद मयणर्ग। सुविशाल वाहतन्नंदवमा।२१।
सर्व साधुवु भेद ज्ञान विदलि । सर्व रागादि गळेंव ॥
गवर्द परभाव संबंधगोळिसुव । सवरे क्रिये सम्यग्ज्ञानं ।२२।
मनसिज मर्दनरी निश्चय ज्ञान । दनुभवदोळगाचपं ॥
चिनुमय तत्वदभ्यास ज्ञानाचार । कोनेयादियारेवाचार ।२३।
तानु शुद्धात्म भावनेयिंद हुट्टिसि । दानन्द स्वभाविकद ॥
श्रीनिकेतनंदति सुखदनुभूतियु । ताने सम्यक् न्वचारित्रन् ॥२४॥
ममंद समयक् चारित्र दोळगे । निर्मलववर्तनविरुव ॥
कर्म व हरिपनिश्चय चारित्रराचार । धर्म वपरिपालिसुव्उ ।२५।
वारिज पत्र दोळिरुव नीरिन करण । वारिज दोळु वर्तिपन्ते ॥
सारात्म द्रव्य दोळिर्दु पर द्रव्य । दारैकेयनिरोधि सुतुस ॥२६॥
सर्व समस्त इच्चेगळ निरोधदि । निर्वहिसुतलात्ममनु ॥
सर्वनिजात्म भावनेयनुष्ठानव । निर्वहिसुवदे तपम ॥२७
रसयुत दह उत्तम तदल्लि । वशवर्ति गोळिसुत मनव ॥
असदृश वागिरिसिपुंदे निश्चय । दसमान तपदाचार ॥२८॥
वरदर्शनाचार वादनाल्कुगळोळु । मरसदे शक्तियोळ् भजिप ॥
परमात्म परियनाराधिसुवुदु ताने । परिशुद्धवीर्याचारन् ॥२९॥
भूरि वैभवयुतवागिरु वी ऐदु । चारित्राराधनेगळनु ॥
सार पंचाचार वेनुवसिद्धांतद । भूरि वेभवद भूवलयद् ॥३०॥

तेरिन कलशविद्दन्ते तम्मात्मन । साररत्नत्रयात्मकद ॥
कारण समयसारद बलदिंदलि । सेरिसुवुदु निश्चयप्र ॥३१॥
सुट्टु भद्रशिव सोक्ख मंगलवनु । हुट्टिपनिश्चयवदनु ॥
हुट्टिसे कार्यवु समयद सारवु । हुट्टिद बहुदुसमाधिवया ॥३२॥
धर्म साम्राज्यद श्री वीतरागद । निर्मलात्मन समाधियोळु ।
कर्म संहारव माडुतेनिंदिर्प शर्मरु सर्वसाधुगळु ॥३३॥
यातके संसारदाशेय बिडुभव्य । पूतर पुण्य पादगळ ॥
नीति मार्गद निर्भर भक्ति यिंनीनु । मातुमनसुकायदत्य ॥३४॥
नमिसु स्मरिसु कोंडाडु स्तोत्र दोलेंब । क्रमव भूवलय पेळुवदु ।
श्रमविल्लदे सिद्धांतद मार्गवहोंदे । निनगे तप्पदु मुक्ति पदज ।३५।
तीर्थंकररंते नन्नात्मनिहनु । स्वार्थवागलु शुद्ध ज्ञान ॥
व्यर्थद ज्ञानव केडिसि रत्नत्रय । तीर्थनन्य श्रंतरंगत् ॥३६॥
लिळियादनन्त चतुष्टय रूपनु । बनित पंचम भाव युतनु ॥
कलिसप्त भयविर्पमुक्त स्वरूपनु । चलुव अखंड त्वरूपदे ॥३७॥
नित्य निजानंदैक चिद्रूपनु । सत्य परात्पर सुखरु ॥
सत्यरु सर्व साधुगळ दरियुत । अत्यंत भक्तियिं नमिपे ।३८॥
रुषिगळ नवर पद प्राप्तीयागलें । ससमान भक्तियिं भजिसे ॥
वशवहुदेल्लर्गे सविकल्परूपद । सुसाधि सिद्ध साधनस ॥३९॥
करुणेय गुरुगळ वर पद भक्तियिं । बरुव् अक्षरांक काव्यवनु ॥
विरचिसि प्राकृत संस्कृत कन्नड । वेरसि पद्धति ग्रन्थदया ॥४०॥
तिरियोळगिरुव समस्त वस्तुव पेळ्व, । अरहन्तरादियादंदु ॥
परमेष्ठिगळवोल्लिय पद्धतियोळु । विरचिसिहरु बोल्लिदति ।४१।
न्यायादि लक्षण ग्रन्थवनोळगोन्डु । आयहन्नेरडु साविरद ॥
श्रेयोमार्ग श्लोक गळिन्द कट्टिव । श्रेय ऐवर काव्यवप ॥४२॥

यारेष्टु जपसिदरष्टु सत्फलवोव । सारसर्वस्व वि ऐदु ॥

सेरिदर्हत्सिद्धाचार्य पाठक । सारद सर्वसाधु गळर ॥४३॥

हत्तरदे भूवलय बोकादि संगल । हत्पत्नालवर मन्त्र ॥

वप्पुवपंचाक्षर अ सि आ इ सा । विप्पसालक्षर काव्यवमा ॥४४॥

साविरदेंटु नामगळनु कूडलु । पावन वाद बोम्बत्तु ॥

सावाग जीवर कावुदेन्नुव काव्य। श्री वीर पेळ्द भूवलयम् ।४५।

धरियो ळोम्बत्तुगंळ विस्तरिसलु । बरु वंकनू रुहन्नेरडु ॥

परिशुद्ध वदमत्ते कूडळु नाल्कु । वरधर्म शास्त्र विम्ब ग्रहगळ् ।४६।

वशवाद पंचाक्षर दोळगी नाल्कु । होसेयलु नव देवतेया ॥

होसशास्त्र विदतंदु कोट्ट भूवलयद । होस पद्धतिगेरगुवेति ॥४७॥

हर्ष वर्द्धनमप्प काव्य ओम्बत्तारु । स्पर्श नोळोंन्देरडेम्ब ॥

स्पर्शमणि गळं दादोम्बत्तंकके । हर्षदोळेरगुवेनिन्दुम् ॥४८॥

अर्थ–मध्य लोक के अन्तर्गत ढाई द्वीप में मुक्ति मार्ग की साधना करने वाले आत्मकल्याण में निरत जो तीन कम नौ करोड़ मुनिगण अनादि (परम्परा) काल से विहार करते हैं उनको मैं मन वचन काय की शुद्धि के साथ नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अर्थ—अपने ज्ञानादिक अनन्त गुणों को भूलकर तथा शरीर आदि पर-द्रव्य को अपना मानकर यह आत्मा अनादि काल से संसार में भ्रमण कर रहा है। जब इस आत्माके आसन्न भव्यता-प्रगट होती है तब यह अपने हृदयमें प्रथम श्री जिनेन्द्र देव को स्थापित कर लेता है ॥२॥

अर्थ—संयमी साधु पांच महाव्रत तथा तीन गुप्तियों को समान रूप स पालन करते हैं, उपवास यानी आत्मा के समीप रहने के उपक्रम के मार्ग से (उपेत्य वसति, इति उपवासः) कहे हुए विधान के क्रम से साधु १८ हजार प्रकार के शीलों तथा ८४ लाख उत्तर गुणों को समझकर पालन करते हैं। वे पांचवें परमेष्ठी साधु हमारे (साधारण जनता के) देखने में तो पृथ्वी पर चलते हैं, बैठते हैं, भोजन करते हैं, परन्तु यथार्थ में वे चलते हुए बैठते हुए तथा भोजन करते हुए भी आत्मसमाधि में लीन रहते हैं। वे अन्न का भोजन करते हुये भी ज्ञान-अमृत अन्नका ही भोजन करते हैं ऐसा समझना चाहिए। आत्मसमाधिमें लीन रहने वाले उन साधु परमेष्ठियों पर चाहे जैसे भयानक कष्टदायक उपसर्ग आवें किन्तु वे आत्म-ध्यान से च्युत (स्खलित) नहीं होते, आत्म-ध्यान में लगे रहते हैं। जिस तरह सिंह भयानक बाधाएं आने पर भी पीछे नहीं हटता, आगे ही बढ़ता जाता है, इसी तरह वे सिंह-वृत्ति वाले साधु विघ्न-बाधाओं के द्वारा आत्म-ध्यान से पीछे न हटकर आगे बढ़ते जाते हैं ॥३-४-५-६॥

अर्थ—जिस तरह गौरवशाली स्वाभिमानी गजराज (हाथी) के सामने यदि चावलों का ढेर, गुड़ की भेली तथा नारियल की कच्ची गिरी खाने के लिये रख दी जावे तो वह लोलुपी होकर उसे खाता नहीं, गम्भीर मुद्रा में खड़ा रहता है, जब उसका स्वामी उसके दाँत, सूंड़ तथा मस्तक पर प्रेम का हाथ फेरकर थपथपी देता है, भोजन करने की प्रेरणा करता है तब वह बड़ी गंभीरता के साथ भोजन करता है। उसी प्रकार गौरवशाली स्वाभिमानी साधु लोलुपता से भोजन नहीं करते, वे बड़ी निःस्पृहता के साथ भक्ति सहित ठीक विधि मिलने पर शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं ॥७॥

यानी–कुत्ता अपने भोजनदाता के सामन आकर पूंछ हिलाता है, अपने पैरों को पटकता है, जमीन पर लेट कर अपना पेट और मुख दिखलाता है, ऐसी चाटुकारी (चापलूसी) करने पर उसको भोजन मिलता है किन्तु हाथी ऐसी चापलूसी करके भोजन नहीं करता वह तो धीर होकर देखता है और अपने स्वामी द्वारा चाटुकारी किये जाने पर भोजन करता है।

महाव्रती साधु भी भोजन के लिये लोलुपता प्रगट नहीं करते, न किसी से भोजन मांगते हैं, न खाने के लिये कुछ संकेत करते हैं, उन्हें तो जब कोई व्यक्ति भक्ति तथा श्रद्धा के साथ भोजन करने की प्रार्थना करता है तब वे बड़ी निःस्पृहता और गम्भीरता के साथ अपनी विधि के अनुसार भोजन करते हैं।

अर्थ—जिस तरह गाय दिन में वन में जाकर घास चरती है, और रात को घर आकर बैठकर जुगाली (चरी हुई घास का रोंथ) करती है, इसी प्रकार साधु दिन में जो शास्त्र पढ़कर ज्ञान प्राप्त करते हैं, रात्रि के समय उस ज्ञान का खूब मनन करते हैं, उस ज्ञान अमृत का आत्म-ध्यान द्वारा पान करते हैं॥८॥

अर्थ–जिस तरह भोला हिरण अपने पराक्रम और वेग से दौड़ता है उसी तरह साधु भी मन वचन काय की सरलता के साथ विचरण करते हैं। जिस तरह हरे भरे खेत जिस में कि गेहूं, आदि अन्न अपने बालि [भुट्टे] से बाहर नहीं आ पाये, है कोई गाय छोड़ दी जावे तो वह उस धान्य की बालि (भुट्टे) का हानि न पहुंचाती हुई, केवल उस खेत की घास को खाती है, इसी प्रकार साधु गोचरी वृत्ति से, भोजन कराने वाले दाता को रंच मात्र भी कष्ट या हानि न पहुंचाते हुए सादा नीरस शुद्ध भोजन करके अपना उदर पूर्ण करते है ॥९॥

अर्थ–इस अनन्त आकाश में जिस प्रकार वायु अपने साथ अन्य किसी भी पदार्थ को न लेकर सर्वत्र घूमती है, उसी प्रकार साधु निःसंग होकर सर्वत्र विहार करते है ॥११॥

अर्थ–आचार्य उपाध्याय साधु परमेष्ठी अपने दिव्य ज्ञान से त्रिलोकवर्ती त्रिकालीन पदार्थों को जानकर समस्त जीवों को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए विचरण किया करते है ॥१२॥

अर्थ–जिस तरह समुद्र पृथ्वी को घेर कर सुरक्षित रखता है इसी तरह अपने हितमय उपदेश से संसारी जीवों को घेर कर साधु उनकी रक्षा करते हुए स्वयं कर्म शत्रुओं के साथ युद्ध करके कर्मो पर विजय प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार सुमेरु पर्वत वज्रपात तथा झंझावात (भयानक आँधी) से चलायमान न होकर निश्चल रहता है उसी तरह साधु महान भयानक उपद्रवों के आ जाने पर भी अपने आत्मध्यान से चलायमान न होकर अचल बने रहते हैं ॥१३॥

अर्थ—जिस तरह ग्रीष्म ऋतु में भयानक तीक्ष्ण गर्मी से सन्तप्त मनुष्य को रात्रि का पूर्ण चन्द्रमा शान्ति प्रदान करता है, इसी प्रकार संसार दुख से सन्तप्त संसारी जीवों को साधु परमेष्ठी अपने हितमित प्रिय उपदेश से शान्ति प्रदान करते हैं। वे साधु अपने हृदय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी रत्नत्रय की माला धारण करते हैं और वे रत्नत्रय को ही अपना शरीर समझते हैं यानी शरीर आदि पर-पदार्थों पर ममता नहीं करते ॥१४॥

अर्थ—'क्षर' का अर्थ 'विनाश' है, अतः "अक्षर" का अर्थ "अविनाशी" है। केवल ज्ञान अविनाशी है अतः उसे 'अक्षर' भी कहते हैं। बहिरंग में जो 'अ इ' आदि ६४ अक्षर हैं वे भी जगतवर्ती समस्त जीवों को कर्मभार से हलका करके अविनाशी बनाने वाले हैं। इन ६४ अक्षरों से भूवलय का निर्माण हुआ है। इस भूवलय से ज्ञान प्राप्त करके साधु परमेष्ठी अपने उपदेश द्वारा समस्त जीवों का कर्मभार हलका करते हैं ॥१५॥

विवेचन–भूवलय के इस तीसरे अध्याय के प्रथम श्लोक से १५ वें श्लोक तक के अन्तिम अक्षरों को मिलाकर प्रचलित भगवद्गीता के ८ वें अध्याय के १३वें श्लोक का 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' यह चरण निकल आता है। तथा इसके आगे १६वें श्लोक से २९ वें श्लोकों के अन्तिम अक्षरों को मिलाकर गीता के उक्त चरण से आगे का द्वितीय चरण "व्याहरन्मामनुस्मरन्" निकल आता है। इसी प्रकार आगे भी भगवद्गीता के श्लोक निकलते हैं। उस गीता के अन्तर्गत 'ऋषि मंडल' स्तोत्र निकलता है। उस गीता के श्लोकों के अन्तिम अक्षरों को एकत्र किया जावे तो 'तत्वार्थसूत्र' के सूत्र बन जाते हैं।

अर्थ–जिस तरह दीमक अपने मुख में मिट्टी के कण ले लेकर बांबो तैयार करती है, पर उस बांबी में आकर सर्प रहने लगता है फिर कुछ समय के बाद वह सर्प उस बांबी से मोह छोड़ कर वहां से निकल अन्यत्र रहने लगता है। इसी प्रकार साधु गृहस्थों द्वारा बनवाई गई अनियत वसतिका (मठ-धर्मशाला) में आकर कुछ समय के लिए ठहर जाते हैं और कुछ समय पीछे उस वसतिका से निकलकर निर्मोह रूप से अन्यत्र विहार कर जाते हैं।१६।

अर्थ–जिस प्रकार पृथ्वी के ऊपर का आकाश दूर से (क्षितिज पर) पृथ्वी को छूता हुआ-सा दिखाई देता है किन्तु वास्तव में आकाश पृथ्वी आदि किसी पदार्थ को छूता नहीं है, निर्लेप निराधार रहता है। इसी प्रकार साधु अपनी आत्मा में निमग्न रहते हैं, संसार के किसी पदार्थ का स्पर्श नहीं करते, आकाश के समान निर्लेप, निरावलम्ब रहते हैं।१७।

अर्थ—साधु परमेष्ठी को सदा मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा रहती है और वे सदा मोक्ष की साधना में लगे रहते हैं। उन साधु परमेष्ठी को हमारा नमस्कार है।१८।

अर्थ—वे साधु द्विज वर्ण के होते हैं, कर्मभूमि में विहार करते है, दुर्गुणों से अछूते यानी निर्मल रहते है तथा कर्मभूमि की जनता को पढ़ति ग्रन्थ भूवलय का उपदेश देते रहते हैं।१९।

अर्थ—वे साधु श्रेष्ठ होने से 'परमेष्ठी' कहलाते हैं, विशुद्ध चैतन्य ज्योति

को प्रज्वलित करते हैं, अपने आत्मतत्व में ही रुचि करते हैं, इस आत्मतत्व रुचि को ही सम्यग्दर्शन कहा जाता है। सम्यग्दर्शन को निर्मल रीति से आचरण करना दर्शनाचार है। साधु परमेष्ठी सदा दर्शनाचार में रत रहते हैं।२०।

अर्थ—पांचों इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट विषयों में राग द्वेष भावना को त्यागकर साधु परमेष्ठी इन्द्रियों को आत्म-मुख करलेते हैं तथा समस्त पदार्थों में समता भाव रखते हैं। वे किसी भी प्रकार का विकार नहीं आने देते। आनन्द से सदा आत्म-आराधना में लगे रहते हैं।२१।

अर्थ—वे साधु अपने भेद विज्ञान द्वारा आत्मा को शरीर से भिन्न अनुभव करते हैं। तथा ऐसा समझते हैं कि राग द्वेष से उत्पन्न कर्म द्वारा शरीर बना है और यह पर भाव का सम्बन्ध कराने वाला है। ऐसा समझकर वे शरीर से ममता छोड़कर आत्मा में ही रुचि करते हैं।२२।

अर्थ—मन्मथ (कामदेव) का मथन करनेवाले साधु परमेष्ठी अंतरंग तथा बहिरंग का मर्म समझते हैं और बहिरंग पदार्थों को हेय (त्यागने योग्य) समझकर अपने चित्स्वरूप आत्मा को ही अपना समझते हैं। इस प्रकार ज्ञानाचार के परिपालक साधु परमेष्ठी हैं।२३।

अर्थ—अपने आत्म-अनुभव से प्राप्त हुए अनुपम सुख को प्राप्त करने वाले साधु पृथ्वी आदि पदार्थों से मोह ममता नहीं करते। इस निवृत्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द अनुभव के साथ 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा अनुभव करते हैं। उस साधु की शुद्ध प्रवृत्ति ही समयक्चारित्र है, ऐसा समझना चाहिए।२४।

अर्थ—इसी निर्मल सम्यक् चारित्र का आचरण करनेवाले, तथा कर्मों का नाश करने की शक्ति रखनेवाले, निश्चय चारित्र को ही धर्म समझने वाले साधु परमेष्ठी क्या इस जगत में धन्य नहीं हैं ? अर्थात् वे धन्य हैं।२५।

अर्थ—जिस प्रकार कमल के पत्ते पर पड़ी हुई जल की बून्दें कमल के पत्ते को न छूकर इधर-उधर होती रहती हैं। इसी तरह साधु संसार में विचरण करते हुए भी समस्त बाह्य पदार्थों से निर्लेप रहकर स्व-आत्मा में निमग्न रहते हैं।२६।

अर्थ—समस्त इच्छाओं को रोककर आत्माधीन करनेवाले, और अपने आत्मा को परमात्मा स्वरूप भावना करनेवाले तथा उसी के अनुष्ठान को ही परम तप समझनेवाले साधु परमेष्ठी हैं।२७।

अर्थ—आत्मा के उत्तम गुण उत्तम तप से प्रगट होते हैं। आध्यात्मिक गुण जैसे-जैसे प्रगट होते जाते हैं, तैसे-तैसे चित्त आनन्द से भरता जाता है। उस आनन्द को बढ़ाते जाना ही श्रेष्ठ तपाचार है।२८।

अर्थ—दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार तथा तपाचार इन चारों आराधनाओं में रत रहनेवाले, आत्म-आराधक साधु की आत्म दृढ़ता को परिशुद्ध वीर्याचार कहते हैं।२९।

अर्थ—परम वैभवशाली चारित्राचार को ही विद्वान लोग 'पंचाचार' कहते हैं। उस पंचाचार का प्रतिपादन करनेवाला यह भूवलय है।३०।

अर्थ—जिस प्रकार मंदिर के शिखर पर तीन कलश होते हैं उसी प्रकार आत्मा के शिखर पर रत्नत्रय रूप तीन कलश हैं इसी को कारण समयसार कहा गया है। इसी कारण समयसार से निश्चय समयसार प्राप्त होता है। निश्चय समयसार का ही दूसरा शुद्ध आत्मा है, ऐसा समझना चाहिए।३१।

अर्थ—सुष्ठु, भद्र, शिव, सौख्य ये मंगल के पर्यायवाची नाम हैं। उस मंगल को उत्तम करने का निश्चय आत्मा में उत्पन्न होना ही कार्य समय सार है और वही कार्य समय सार साधु परमेष्ठी की परम समाधि को देने वाला है।३२।

अर्थ धर्म साम्राज्य, वीतरगता तथा निर्मल समाधि में एवं कर्मों का विनाश करने के लिए तत्पर हुए श्रमण को ही साधु परमेष्ठी कहते हैं।३३।

अर्थ—हे भव्य जीव ! संसार से तुझे क्या प्रयोजन है, इसे छोड़। तू पवित्र साधु परमेष्ठी के चरणों का मन वचन काय से सेवन कर। इसी से तुझे अविनाशी सुख अनन्त काल के लिए प्राप्त होगा।३४।

अर्थ—हे भव्य जीव ! तू साधु परमेष्ठी को नमस्कार कर उनको हृदय में रखकर स्मरण कर, उनकी स्तुति कर, तथा उनकी प्रशंसा कर। इस प्रकार क्रम को बतलानेवाले भूवलय सिद्धान्त के प्रतिपादित मार्ग को यदि तू ग्रहण करेगा तो तुझसे मुक्ति पद दूर नहीं है।३५।

अर्थ—हे भव्य जीव ! जिस तरह अर्हंत तीर्थङ्कर का परिशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वरूप आत्मा है वैसा ही आत्मा मेरा भी है। वह परिशुद्ध ज्ञान व्यर्थ

अज्ञान को दूर करनेवाला है। अतः सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मेरा आत्मा ही तीर्थ है और वही अंतरंग सार है ।३६।

अर्थ—जिस तरह कीचड़ मिट्टी आदि से रहित जल निर्मल होता है उसी तरह मेरा आत्मा अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य स्वरूप निर्मल (कर्म मल रहित) है। वही पंचम गति रूप है और वही आत्म स्वरूप सप्त भयों का विनाश करके अखण्ड अक्षय मोक्ष सुख को देने वाला है ।३७।

अर्थ—नित्य, निजानन्द, चित्स्वरूप मोक्ष सुख की प्राप्ति में जो सदा रत रहते हैं 'तुम इसी सुख की आराधना करो' इस प्रकार भव्य जीवों को जो सदा प्रेरणा करते रहते हैं, ऐसे साधु परमेष्ठी का ही तुम सदा ध्यान करो, आराधना करो और पूजा करो ।३८।

अर्थ—'वेही महर्षि हैं, उनके पद हमको प्राप्त हों।' ऐसी भक्ति भावना से आराधना करनेवाले आराधक को सविकल्प समाधि की सिद्धि होती है ।३९।

अर्थ—दया धर्म के उपदेशक तथा संस्थापक पंच परमेष्ठी की भक्ति से आनेवाले अक्षर-अंक काव्य को प्राकृत संस्कृत कानड़ी में गर्भित यह भूवलय ग्रन्थ है। यही भूवलय दयामय रूप है ।४०।

अर्थ—इस संसार में रहनेवाले समस्त वस्तुओं को कहनेवाले अर्हंतादि पंच परमेष्ठियों के वोल्लि नामक ग्रन्थ की रचना श्री भूवलय पद्धति के क्रमानुसार अतिशय रूप से पूर्वाचार्य ने की है। उस ग्रन्थ में न्याय लक्षणादि ग्रन्थों को गर्भित करके उसे सातिशय बनाया गया है। उस ग्रन्थ में १२००० श्लोक हैं। वे श्लोक परम्परा से अभ्युदयकारक तथा निःश्रेयस मोक्ष मार्ग की चरम सीमा तक पहुंचाने वाले हैं। उसमें केवल पंच परमेष्ठियों के ही विषय हैं ।४२।

अर्थ—इस काव्य की आराधना या इसका स्वाध्याय जितने भी भव्य जीव करेंगे उन सबको यह उत्तमोत्तम फल प्रदान करनेवाला है। इसलिए सार गर्भित उपर्युक्त पंच परमेष्ठियों के अंको में पुनः अर्हंत सिद्धाचार्य उपाध्याय तथा सर्वसाधु के मिलाने से उभयानुपूर्वी कथन प्रकट हो जाता है ।४३।

अर्थ—इसे नियम पूर्वक यदि गुणा करके देखा जाय तो भूवलय के आदि में मंगल रूप २४ तीर्थङ्करों के मन्त्र अ सि आ उ सा इस पंचाक्षर में गर्भित हैं। इस प्रकार पंक्तियों द्वारा अक्षरों से परिपूर्ण काव्य ही पंच परमेष्ठी का "वोल्लि" है ।४४।

अर्थ—भगवान के १००८ नामों को यदि आड़ा करके परस्पर में मिला दिया जाय तो ९ अंक आता है और वही ९ अंक संसार में जन्म-मरण करनेवाले जीवों को संसार सागर से पार लगाकर अभीष्ट स्थान में पहुंचा देने वाला है, यह भूवलय का कथन है ।४५।

अर्थ—इस प्रपंच में ९ अंक रूपी विस्तृत काव्य को श्री भगवान महावीर स्वामी के कथनानुसार यदि गणित की दृष्टि से देखा जाय अर्थात् १००८+९=११२ हो जाता है और इसी ११२ को सीधा करके यदि जोड़े तो इस योग से प्राप्त ४ अंकों में से ३ हो जाता है। इन्हीं चारों के आधार पर क्रमशः १ धर्म, २ रा शास्त्र ३ रा अर्हद्बिम्ब और ४ था देवालय है। इस दृष्टि से अंक को विभक्त किया गया है ।४६।

उपर्युक्त पंचाक्षर का अर्थ पंच परमेष्ठी वाचक है। और उस पंच परमेष्ठी में ऊपर के ४ को मिला देने से ९ देवता हो जाते हैं। इस तरह क्रम से ९ अंक के साथ ९ देवताओं के स्वरूप को बतलाने वाले इस भूवलय अर्थात् पंच परमेष्ठी के नूतन "वोल्लि" पद्धति को मैं नमस्कार करता हूं ।४७।

अर्थ—हर्ष वर्द्धन नामक काव्य में ९६१२ अंक हैं। स्पर्श मणि के समान इन्हीं अंकों को यदि आड़ा मिला दिया जाय तो सब ९ अंक को मैं सहर्ष मन, वचन काय पूर्वक नमस्कार करता हूं और पंच परमेष्ठी आदि सर्व साधुओं को मैं नमस्कार करता हूं।

वे सर्व सा॰ किस प्रकार हैं ? तो "साधयन्ति ज्ञानादि शक्तिभिर्मोक्ष" इति साधवः। समतां वा सर्वभूतेष, ध्यायन्तीति निरुक्ति न्यायादिति साधवः।

।४८।

चौदहवां अध्याय

ळु* स्वर काव्यदनन्त तीर्थनकर । हरस्वल्लद् अ 'ळु' स्* वरवु । सुस्वरविदनन्त गणनेय अतिशय । द स्वरदञ्ग भूवलय ।१।
वि* 'नमि नेमियुपार्श्वजिनरत्नत्रयर'इगे । धनभक्तिय् 'उ' इ* ति 'विमल' ॥ तनि'वकुलशरुन्गदारुक्रमदव्रुक्ष' । घन 'मूलदोळु'
सिभम्वामि ॥२॥
स* 'तपगेय्दिद्द'स'क्रमदभूवलयके' । हितदि'नमिप्रो[१]मन द* ओव' ॥ युत'केसिद्धान्तदशास्त्रवुतनुविगे' । हित'प्राणावाय'वनार्यु ॥३॥
न्* 'दनुपम वचनद दोषके शब्दव । 'तद 'रधन सिद्धान्त् अ' धा* रि ॥ अदन 'वनरुहिम्(२)श्रीवर्धमानजि'।वद'नेन्द्रन'वाम्भाज्रुष् ॥४॥
तु* स'वाणियसेविसिगवतमऋषियु' । यशद'भूवलयादिसिद्धान्' ना* ॥ सूस'तगळय्दकेकावेम्बहनएरड् । ससमा'न्ग्अ[३] वनु' तिरहयस्द ॥५॥

दाशर 'व्रुषभसेन' वर्ये ॥६॥ ग्अशवणि 'ब्रामहि सवनदरियता ॥७॥ असुवनु 'मोक्षदोळतोर्दान्' ॥८॥
रसवसतु ग्रन्थदोळ्' दयेय ॥९॥ तिसहस्र 'सूत्रानक्म् अरु, पि ॥१०॥ गुसुगुटटु 'वन्गवन् अरितु' ॥११॥
दशधर्मदादियवरन्क ॥१२॥ केसरिल्लवतिशय पन्नीर् ॥१३॥ पोसदउपवासद कर्मा ॥१४॥
नशवळिदिह 'यश' द्ग्रणि ॥१५॥ मुसल 'व मुट्टदयश' स ॥१६॥ कुसुळदे 'पाळुडग्रन्थन्' ॥१७॥
लस 'द्रव्यवनेल्ल वरिग ॥१८॥ गसवणि 'अणियोगद्दार' स् ॥१९॥ ळेसरुदारु 'द्रव्यानक्' ॥२०॥
मसद्रुश 'गणितवनध' दय ॥२१॥ कसवळिसुत बाळव' अनक' क् ॥२२॥ यशवेल्ल 'बळ सिरुव' तत् ॥२३॥
'भूसुरराधिप' यशवा ॥२४॥ 'वश्वर 'तियागदन्का फ ॥२५॥ लशवन्कदोळु 'बनद्' फला ॥२६॥
'यशदन्क वेरडागुव' नि ॥२७॥ वशवद 'तिशयद विद्या' अच ॥२८॥ काशाव्यापिय 'वलयानक' ॥२९॥

जि* तवनु 'पेळेमुन्दकेशंस्तकेवलि । शत 'गळुजिनवाणियअनु' म्* नुतवा 'हदिनाल्कु घन पूर्वेगळलि' हितदि 'कट्टिरिसिरदा' रतेय ॥३०॥
ण* व'पूर्वेयोळ जनर'वर'जीवनकौम्दु । सवि'पूर्वेक[४]र म'द को* ळु ॥ रव'णीयवादोम्दुपराणावायद' ।सवि'क्रमदोळु'धीविनुनो ॥३१॥
व* नु'वनु'हदिभूरुकोटि'य'क्रमवादसि' । घनरा'द्घानतलेककद'लि र्* जिन'पददलिश्रमहारियायुर्वेद । वन् अ(५)धर्मसाम्राज्यमन्नयम् ॥३२॥
रि* द् धीय 'वादोवेददन्कवु कर्म' । सद्व्य 'जाड्यगळ कोल्लु, त* 'वु ॥ डु' द्दद 'निर्मलवइ मध्यम्मद' । सद् 'दिन्दलि' तारचहि ॥३३॥
न्* ररोळु'शर्मरुगुणिसिदक्षरदश्' [६] अ । वर'मालेय सोन्नेग' ना* ॥ सर'ळारन्कदहिन्देसालिनोळ्नाल्नाल्कय् । देरडम्मेलेसोन्नेयुसो'
॥३४॥
दा र 'न्ने एन्टेरडय्दु न्नूलन्ते वन्' । दार'दरडोम्देरड् आ' [७] द्* अ ॥ शारदे'नालग्गेलोपहच्चुवअक्ष' । नूरा 'रु' णायारिद्न्इ ॥३५॥
(२१२५२८००२५४४०००००००-प्रा.दअन्क) कर पात्र दान श्रेयाम्स् अर ॥३६॥ यन्रवन्द्य श्री वरम्हदत्त ॥३७॥
विरेदान सुरीन्द्र सेनव् ॥३८॥ मरळलु इन्दर नक्ष्त्या ॥३९॥ लारन्क पद्म सेनवनी ॥४०॥

यरस सोमसेनणुसुव्रती ॥४१॥ न्रश्रेष्ट महेन्द्र् सुरमे ॥४२॥ सोरमेय्य सोमसेनन्रुपा ॥४३॥
नेरेयोपुष्य मित्र भूपर् ॥४४॥ गिरियग्रद पुनर्नसुथ ॥४५॥ सेरेयळिव सव्नदर करुनि ॥४६॥
भारतजयदत्तसवर्णिश् ॥४७॥ ळुरद् विशाखद्त्त सुरुचि ॥४८॥ दोरे धन्य सेन सुरनुत ॥४९॥
नुरद सुमित्र धर्ममितरम् ॥५०॥ बेरे महाजित नन्दि सम ॥५१॥ सर नृषभर ध दत्त ॥५२॥
वरसेन धन्य सेन गणमु ॥५३॥ मरेय सुकूळर सरनुत ॥५४॥ सरुवरिप्पत्नाल्कु दात ॥५५॥

अ※ दु'वय्द्यसालन्कसरदपादरसपो' । कद'लागदनतद्अ' अ※ रळ्द ॥ विध'हूविनिन्दरेदागलीलेयिनदिषदु' । विध'छदरगळुन(८)मतवश्शा॥५६॥
म※ न्यशवागिओन्दरोळोनदकेबेरे।य'नल'देहोसपुटवोळु भ' न※ ॥ घनिर 'समवागि कुसुमायुर् वेदद महि। मे' न 'यसारुवअस'सियसप् ॥५७॥
रा※ शिस'नरुशकावयभूवलयअ'(९)वु'नित्य' । आशेय'व्वनविते' ते※ ॥ लेसिन् 'तुवीर्यरक्षणेभाळ्पअक्षरान' ईशन 'कद सिद्धरापम्न ॥५८॥
सु※ 'रसदरक्ष' णेकाव्यदोळेन दुभे । ष'रव'जमष्टधा'सूत्र। य※ र'षजरिद्धियक्षयव्प्राणरक्षणे।य अ'र'ल[१०]रसपवक्वा'थास्म् ॥५९॥
र※ ववा 'गलु पुष्पद रसदिन्दहो ।स, व'सिद्धरसवादनत्व' ॥ स्※ वणने 'होस वय्द्य दानद फलदिन्दा'। सवना'त्मगेहोस'तिन्शाम् ॥६०॥

द्अवनु आदिमनु 'भरत' म् ॥६१॥ उवश्रोत्रु सिरि 'सत्य भ्आव' म् ॥६२॥ ववण्स ' सत्य वीर्य' न्उम् का ॥६३॥
अवरोळु सवि'मित्रभाद' म् ॥६४॥ न्वनुम् ई सिरि 'मित्रव्ईर्या' ॥६५॥ लुव वम्शअ 'धर्मवीर्य' व्अना ॥६६॥
ववरोळु 'दानअवीर्य,व्अना ॥६७॥ न्अव श्रोतरु अव 'मघव वीर्यम् ॥६८॥ गेविवर 'वोद्ध्अ वीर्य्आ' न्क ॥६९॥
कविवन्द्य'सोम्अनद्अर'र्अवर् ॥७०॥ न्अव्अश्रोत्रु 'त्रिपिष्ट'सधर्म ॥७१॥ विविधभ्अक्ति'द्विपिष्ट्आ'वनणा॥७२॥
मवने 'स्वयम् भू' भूभुजनुम् ॥७३॥ लावण्य 'पुरुष् ओत्तम' त्अन् ॥७४॥ गवरोळु 'पुरुषवर्अ' वअया ॥७५॥
पाव्अन'प्उन्डरीकअ' च्अस ॥७६॥ लिविवर 'द्अत्तद्अर् अ' अवनुम् ॥७७॥ गविय्ओग 'कुन्नाल्अ' र्सरस ॥७८॥
ळ्वरोळुसिरि'नारायण'न्उम् ॥७९॥ चवन 'सुभ् औम्' 'अजितन्ज्यअन् ॥८०॥ लवरोळ्उ 'उग्रस एस्अ' वया ॥८१॥
मवविव'अज्इत्अस्एन्अ' र्अस ॥८२॥ कविवन्द्य् अ 'शरेणिकअनरप' म् ॥८३॥

व※ र'देहप्राप्तबागुवद्अ'(११)नु'धूळिधू । सरितवागिह मुनिदेह ' ॥ सि※ र'दधूळिनस्पर्शनवागेहाळाद' । नरनिगे 'मह महआ' तन्क ॥८४॥
न्※ वेद'व्याधियरिद्धिगे' सवि 'हेळव' । सवि 'रामव्षधर्धिम्' (१२) द्※ । अवर्'तम्मबायिय'सवि'एन्जलुगुळलु'कविद्'उम्मुवसेचने'व ॥८५॥
द्※ वर्'यिन्दनम्मवयाधिगळेल्लउपशम' । व 'वप्पुदु' नव दा※ 'हेम्मे, ॥ नव'क्ष्वेळव्षधर्धियर'[१३]ल्लिकनुगुव । बेवरिनिम्हुद्दुव
मल' यो ॥८६॥
इ※ नि 'दिन्द कोनेगालद रोगवडगे'श्री । 'जिन मुनिगळ रिद्धियद न्※ घन'झल्औषवि'रिद्धि'एनुवराग।म'न'कोविदर्सा(१४)लीले'व्॥८७॥
दा※ रि 'यिम् किविदनतनासिककरणिन' । सारमेय् 'मालेगळिम् बन् त्※ ॥ सोरि'दमलदिम्'हाळागेसकलरो' । गारागे'गदरिद्धियुन्ट्'इ॥८८॥
आर्म्रु देश 'कव्शल' र् वश) दु ॥८९॥ ळेरडु एन्द्ऐने 'पार्श्वद्वय' ह् ॥९०॥ बर होळय्अदले'क्अश्इ' यर्उ ॥९१॥

दर 'शीतलर्उ' 'माळ्अव् अ' स ॥९२॥ यर 'देश' 'वास्उपूज्य' व्अर् ॥९३॥ द्र 'विमलानन्त् अ' स्अर्उव ॥९४॥
रुरु 'धर्म्अ मल्लि नम् इ' न्क ॥९५॥ ह्अरु 'म् उनिसुव्र्अत्अ' अवेर् ॥९६॥ मूरु'एळुजन्अर्'अन्गद्व्अ'रम ॥९७॥
लररु 'वीररु नेम्रि 'विदेह अ' वफ ॥९८॥ यरु 'शान्ति कुन्थ्उ अर्अ' वल ॥९९॥ म्रर्'कुरुज्आन्ग्अण'द्अरह्अत् ॥१००॥
वर 'देश' द्उत्तरव् 'स् अरया ॥१०१॥ मूरि 'वलयद् अवर अर्इग ॥१०२॥ तिरुगविह्अरु'भूवअलयव्अनु'म् ॥१०३॥
दरुशिसल्आ 'देशद्पद्अ' प् ॥१०४॥ भरत देशद सिरिय्अ व्अरा ॥१०५॥ क्रुनाड अतिशयद् कुरु हु ॥१०६॥
'परुषदकणि' यदुसरस् ॥१०७॥ वर 'वय्राग्यवुसतत् ॥१०८॥ 'नरर सव्भाग्य भूवलया' ॥१०९॥

ध* वर्'आगेपेळुमलव्षधर्धिय सम्' (१५) सवियद्'लालित्य'त्व् अ* गे ॥ सवि'काव्यनालगेयिन्द'लि'बरुवन्ते' । अवु 'सालाबमल मूतरादि ग्' ॥११०॥

उ* ग् 'अळपालेल्ल दिव्यवषधवप्पवे । ह्' गल'बहेलुच्चे विष्टा' प्* ॥ 'ध'ग'धर्धिनम्'(१६)आगे'तनुविनस्पर्शदगाळि । यु'गुळि 'सोकलु' अ 'तनुविन्अ' ॥१११॥

द* णिद'व्याधिगलेल्लकोनेयागिनीरोग' । दनु'वागुवरिद्धिय ज' र* ॥ ह 'नन सर्वव्षधर्धि स्ना' [१७] यु 'मनवसोम्कि । द' न 'कालकूटवम्रुतवम् ॥११२॥

अ* दु 'वप्प जिनमयवन्तिर्प रिद्धि मु-। नि' द 'यमुखवसार्व' सि* विष' ॥ वदु वम्रुतवदागे तनुआस्याविषर्धिय । सि' (१८) दबर नेरवद्रुष्ट्' वि ॥११

क्* विद इ बोळलुविषव' द 'म्रुत सार' । स 'वागुव रिद्धियदु सेरिद्' सविय् 'अ मुनियद्रुष्टियुविष वम्रुतसा । खेद्रुष्टिविषर्धि ३॥ भ' [१९] वनच् ॥११४॥

इ* दु 'चित्रविचत्रवावव्षधरुधिगळ्' । इद 'एनुदुहत्रके' ध* रि 'बनुदु' ॥ अदु'सारिरुवचित्रवल्लियेमोदलाद' । अदर 'मूलिकेगळस् स्' प्क् ॥११५॥

देदकल, अम्रुतवदुविष ॥११६॥ मृदवळियुव 'सोप्पिनरुणा' ॥११७॥ रिद्धिगे बरुवदु सरह ॥११८॥
गदुकिन तिरुळवु 'केपळक' ॥११९॥ ओदळु 'मादलदगिड' ॥१२०॥ 'वदन रसके वम्मुगुळु' स् ॥१२१॥
रदरलि 'दन्त दुर्मल' न ॥१२२॥ रोधन 'कर्णकुन्डल' वज् ॥१२३॥ 'ढददन्क गणदे' य सकदञ् ॥१२४॥
'नूबलिसुव हूवनरे' ए ॥१२५॥ 'ढददक्षर' गुणवरिय ॥१२६॥ 'उदय के तिरुगुव पदुम' ॥१२७॥
रद 'रेलेयदु हविनरस्' ॥१२८॥ 'पदुमावति देविय अणिमा' ॥१२९॥ र्वदन्क 'रसमणि' यदुभि ॥१३०॥
इदरलि 'देवेन्द्र यति' हि ॥१३१॥ स्द 'जिनदत्त गेय्दनु' पा ॥१३२॥ आदर 'लक्किय मर' पा ॥१३३॥
ग्दहर 'सर्वसार' वद ॥१३४॥ इदरिन्द 'रससिद्धि' श्रुवस् ॥१३५॥ य्दु 'प्राणावाय रस' मा ॥१३६॥

विध 'वय्द्ववेदन्गकोविद' न् ।१३७॥ 'सदनद त्यागिगळ्गवनि' ॥१३८॥
ल्* दद 'त्रिसि ग्रन्थके तनु ताम् (२०)तन्क्षण । हविनेन्दुस्त्रा व्* इरश्लोक' ॥ स 'द सूत्र वय्द्यान्कदक्रम'वि 'दि चित्रि ।
सि' ह हविनेन्दु साविर' व ॥१३९॥
ए* रिसि'जातियउत्तमहविनिम्'।सा'रसगो[२१]रसवनु हू' ॥ पारदव् अ* हविनिम् मर्दिसि पुट' । दारय 'विट्टु 'होस रस' र् ॥१४०॥
स्* वणनु 'घुटिकेय कट्टि' द 'रससिद्धि' । रवि 'यागेसिद्धान्त' द क्* षा । ख'रसायनहोसकल्पसूत्रवय्द्यवद् [२२] सु'वशगोळि
सिदश्री' शयति ॥१४१॥
आ* नुव 'समन्तमद्राचार्यऋषियुप्रा' । णद'णावायदिनद्ध्र' स्* शी । लणवेनद्दु'होसेदकाव्यवुचरकादिग।ळ'णिय'रियदअसद्रुश'तु ॥१४२॥
स्वरण'वय्द्यागमकरु(२३)ल्लितायुर्वेद' । सवन'वेल्लवु'सवि ओ* दु। अवु 'हुट्टितिल्लिन्दइळेयवरेल्ल'रु।सवि'विल्लिन्दबळेसुत'म् ।१४३।

दव्रुषभाजितानव्त्कु ॥१४४॥ न्व अभिनन्दन र्एल्ल ॥१४५॥ केववर् अयोध्या पुरक् ॥१४६॥
तव शम्भव श्रावस्तियष॥१४७॥ रबिनीतापुर सुमतिवय ॥१४८॥ ब्व पद्मप्रभ पुरसुक् ॥१४९॥
दव कव्शम्भिय पुररु ॥१५०॥ वव पार्श्व सुपार्श्व रवित॥१५१॥ ण्णु वाराणशि एन्देने काशिम्॥१५२॥
पवि चन्द्रप्रभ चन्द्र पूरदो॥१५३॥ वव सिरि पुष्पदन्त जिनष॥१५४॥ नव पद काकन्दिपुरम् ॥१५५॥
न्व शीतल भद्रिळा पुर्प्॥१५६॥ द्व श्रेयाम्स सिम्हपुर ॥१५७॥ उ वासु पूज्य चम्पापुरप॥१५८॥
केविमल कव्शल्य पुरश् ॥१५९॥ अव धर्म रत्नपुर दय ॥१६०॥ त्व शांति कुन्थु अर वरवद्॥१६१॥
आवरु हस्तिनापुर सदभि॥१६२॥ व्व मल्लि नमि मिथिलेयवर्॥१६३॥ रव मुनिसुव्रत कुशाग्र पुरज्॥१६४॥
ह्वनवे नेमि द्वारावति एन् ॥१६५॥ अववीर कुण्डलपुर आ ॥१६६॥ मवरेल्ल जन्म भूवलय आ ॥१६७॥

अ* वरोळ'जीव हिम्सेय सेरिसि तन्द। ख' व 'ळर काव्यके घिह्का' ना* ॥नव 'स(२४)लेलेयायुर्वेद शब्दव'। सिव'भगवन्त सालिनिम्'ना॥१६८
म्* नद'प्राणावाय शीलवेन्दर जीव' । वनु 'रक्षेयेन्दोरेदिरे' द्* मा । नवनद'पालिस बेडवे दयेने'(२५)र। नवम'कलित जीवर'र्।१६९॥
मे* लेन्दु 'काय्व कलियदवर कोल्व । वलवन्त चरकन' वय्द् य* मतम्'। सोले 'अमगेलुतलहिम्सायुर्वेदव'। साएम्'रक्षिय बलवे'म्द१७०॥
द्* नद'प्राणावायवदि[२६]थावरजीव।र'नव'कोलुवुदरिन्दलेत्त्रा'॥न* नु 'वु पापव होन्दुवरेम् बावीर'। जिन 'वाणिय नेनेयदे'तान् ॥१७१॥
ए* रिद 'हिम्सेयभावनेगिहुदु घिह् । कारने[२७]करुणेय् सर्व् त्र' न्* ॥ नेरिद 'जोवर मेलिरबेकु दो'। दा 'रेयुवुदागव्षधर् ध् इ'त्र॥१७२॥
उरुहिद् कर्म 'वम्श' दोरेवश ॥१७३॥ न्र श्रेष्ट 'श्रोम्देरळ्मूरु' व ॥१७४॥ वर'नाल्कय्दार् एन्ट् श्रोम्बत्त्र॥१७५॥
तर 'हत्तु हन् श्रोम्द् हन्एरळ'शु ॥१७६॥ द्र 'हविमूर् हदिनाल्कवरा' ॥१७७॥ धारे 'हत् श्रोवत् इप्पत् श्रोम्दन्'॥१७८॥
न्रराज वम्श इक्ष्वाकु स् ॥१७९॥ सिरि पार्श्वर सुपार्श्व उग्रउर ॥१८०॥ धर्म शान्तियु कुन्थु अरह् ॥१८१॥
द्रुशिसे 'कुरुवम् शदवरु' ॥१८२॥ मरळि इप्पत् अन्क वरद ॥१८३॥ विरचित हरिवम्श हरुश्त्र ॥१८४॥
रुरु वर्धमान रिरुव च ॥१८५॥ अरहन्त नाथ वम्शजय् त्र ॥१८६॥ य्रसुगळलि नेमि हरिव ॥१८७॥
लरयदा कूडलय्दु वर स् ॥१८८॥ भ्रतव राजवम्श ए ॥१८९॥ उरिद धर्म पालिपन ॥१९०॥
वर राज जिनवम्श वरस य् ॥१९१॥ यरडर अवसर्पिण् हुन्ड्त्रो ॥१९२॥ व्र व्रउषभादि वीरांतर् ॥१९३॥
कारण कार्य भूवलयर् उ ॥१९४॥

ग्* रुवरिग् 'इरुवेन्दु सिद्ध समन्त भद्' । ररु 'रार्यन च' रि त* रण ॥ के' रगि 'नमिसिदरहुदि (२८) ख्याति पूजा ला । भ' र
'दाशेयिम् चरका' भ ॥१९५॥
इ* दि 'दि नूतन ग्रन्थ कर्तारर् प्रीतियिम्' । विधि 'हिम्सेय पोरे' स* 'यलु'।तर'रसविद्येयातकेसिद्धियागुव'।दद'नम[२९]नतमस्तक'यो।१९६।
रि* ण'वागि गिडवोळुकुळितिर्द नुतमू। लि'णे'केगळ हूँवम हतिस' न्* विनद 'लहिम्सेय व्रतदोन्दिगे दिव्य । गुणद'कषिय सिद्धौषध'र।१९७
सि* व'बहसना[३०] मरमद विदये इदनुयरगे' । अव 'वोरेयल कम्म' ता* रमदयल॥न'व'विरोधवनुकरेदु भवदल्लि ।

ह※ रुष 'दायुर्वेद जल[३१]पूर्वार्जित'। वरद'त्पीडन रोग'॥तख न※ वेल्लव सार्वजनिकरेल्ल । क' र 'ळेदु निर्वाण सुखव' इ ॥१९९॥
रे※ गि 'साधिसेरेन्दु पेळ्दुदम् सार्वन्गे' । बेगादि 'सुखसिद्धिय ह※ ज'[३२]वेगदि'जयिसिरि कर्महिम्सेय'। नग'मार्गदिजय' वरेता॥२००।

धगुणर 'तन्दे' ये वरद् अवन् ॥२०१॥ द्गुणिसे 'नाभिराज् अ' व्रस ॥२०२॥ यगरिसे 'जितशत्रु' न्रुपम ॥२०३॥
मगुळलु श्रीरवि 'जित् आर् ई'॥२०४॥ सिगुरि 'सम्बरर्' 'मेघरथर्अ' ॥२०५॥ वग धारणर 'सुपर्अत्इष्ठ' ॥२०६॥
सगुरु 'सेन सुग्रीव् अ' कव्य ॥२०७॥ दग 'ध्रुदरथ विमलवाहनर्'स ॥२०८॥ वगेदरु 'वासु प्उज्य' रुसक् ॥२०९॥
मग'क्रुत वर्म'सिरिवर् अह् अ॥२१०॥ शधरव 'सिम्हसेन' वरद् अव् ॥२११॥ द्ग 'भानु विश्वअ' स्एनवन् ॥२१२॥
सगधरर् 'शूरसेन्अ' वर्अत् ॥२१३॥ अगुरु 'सुदर्शन' विज्अय्ए ॥२१४॥ दगरुवु सिरि 'कुमभवरअ' य्य॥२१५॥
वगण 'सुमित्र विजय्अ' वअस् ॥२१६॥ र्ग 'समुद्र विजय राज' वरव्अ॥२१७॥ ल्ग 'विश्वसेन''सिद्धार्थ अ'र्॥२१८॥
एगरिपर् 'पित्रुकुल' रुज्येव् ॥२१९॥ ग्गनदोळ् निलुव 'भूवलय् आ' ॥२२०॥

णि※ ज सिद्धियप्पुदु रसद' वि 'जयवागे' । द्विज 'देह [illegible]अ' स्※ व। भज'सम्भाग्यदजयलाभहुदेल्ल'। सज'ससाम[३३]यज्ञदपशुहिम'२२१
व्※ र् 'से अज्ञ रायुर्वेद अज्ञर मारिय । ब'र 'लि' ज्ञर् 'यम सुज्ञ' इ※ रुमा॥ प'र'वन्दरिदुत्यागवमाडि'नरने।सरियो'अज्ञतेयमपरिह'ब॥२२२॥
वा※ 'रिकुम(३४)पाप पुण्यगळ विवेचने'। वारि'यिन्दिरदु पाप्अमअ्रा' द्※ अ॥आर 'रगवु हिम्सेघेन्दु' रे 'आपत्तुम'सेरलु'बहुदेन्दु विट्दु'न्॥२२३॥
ण्※ वद् अ 'अहिमसेय श्रो पद्धतियवय् । दयवनम(३५) देवरु' म् धा※ व॥ सित्र'गुरु शात्र'व'शरणेन्दु नबुत'सविय 'नोवुगळ्कलिय'बुद्ध ।२२४
ग※ म 'लु बरलु नावु पुष्पायुर्वेद' द । स 'मर्व पेळि सावुह् उ' न्※ सम 'ट्टडगुव तेरच्च [३६]नमतवरेल्लरगे'।गम'कलिसुवे वदरिम'न२२५
य※ श 'द सम्मोददिन्दलि बन्दु हेम्मेय' । रस 'स्वर्णवादम' त्※ 'र' लु॥ह'सबादवनेममिसव्व्यवसाधिसि'।पस'रिमो[३७]भारतदे'व २२६
आ※ 'शद भाग्यव अहिमसेय सारुव' । ईशन्अ 'हूपिनवय्द्य्अ' ओ※ आ' सार समग्रहव' द 'नु श्री पूज्यपा। दा' सा'चार्यरसार' वस् ।२२७

अशर ताथियो 'मरुवम् थि ॥२२८॥ द्श 'विजया' के सुषेणा' नृता ॥२२९॥ द्शेयोळोम्देरळ् मूरु अन्क अन् ॥२३०॥
इ 'सिद्धार्था' मङ्गला देवि'नअ ॥२३१॥ नृष 'सुषोमा परुथ्वि' नाल्कय्दहो ॥२३२॥ गय्दारेळेन्दु'लक्ष्मणव ॥२३३॥
रस 'जयरामा सुनन्दात् ॥२३४॥ आशा 'नन्दा विजयामम् अ' ॥२३५॥ नष ओम्बत् हत्तु हन् ओम्दम् ॥२३६॥
यश द्वादश 'जयश्यामह' ॥२३७॥ म्श हदिमूरन्क विहत्त् ॥२३८॥ म्श 'लक्ष्मिमति सुन्रभा' पा ॥२३९॥
डश चतुरदश हुणणिमे प ॥२४०॥ अशद 'ऐरा सिरिकान्त देविम् ॥२४१॥ त्से हदिनार हदिनेळ् अन्क ॥२४२॥
एसे 'मित्रसेन प्रजावति'यर् ॥२४३॥ रस 'सोमा वरपिला' विन्तु ॥२४४॥ पशे शिव ब्राम्हिला' अम्म् ॥२४५॥
प्से 'प्रिय कारिणा हदिनेन्टादिव् ॥२४६॥ इ सिरिप्पत् नाल्कु भूवलय ॥२४७॥

ण्※ व 'कल्याण कारक वर्[३८]षिदुगतव्'। अवु'षिधु सञ्राध्धव् सू' नो※ कवइ 'त्रद हदवन्नरितु भूवल । य' वरन्क ॥२४८॥
अ※ स 'दारियम्सिद्धरस दिन्दोदगिसि'।होस'काव्य कविनि[३९]तरु' व※ रस'वदु मङ्गलमयसिद्धरस काव्य'। हुसियद'अरुहनागमग्'सि ॥२४९॥
म्※ र्न्थ बरेदका [व्यव]केळि हिम्सेय' । सर्व'था 'त्यजिसिदि' न् ता※ गे॥पर्वव'सरुवसम्पदवेल्लतरुव(४०)।निर्मल मनवचनवु'ता ॥२५०॥
ओ※ म् 'काय त्रिकरण(मर्म)शुद्धिय जिनवय्द्य'। शम्कादि 'नेन्दुनू च्※ 'र'॥हम्मम् 'कोनेगिप्पत्एळन् कविरुव'श्री।निम्म'भूवलयकेघन'व२५१
त्※ नुमन वचन शुद्धिगळ 'भक्ति यिन्दे'ना । जिनगे 'रगुवेनु (४१) चि※ रका॥ लनमस्कारदे बरुव कय्युगिदिह। मनदर्थियतिशय बंसय॥२५२।
ए※ नेस्बे चरकमर्हषिय हिम्सेय। सानुरागदिनिव आरिसिह। जाण र※ अमोघवर्षान्कन सळयोळु । क्षोणिय सर्वज्ञ मतदिम् ॥२५३॥
सि※ पारवतीशन गणितदे बह वय्द्य । दवनियोळ् पेळुव अ※ दर॥ विवरसमन्वयद्अन्तरद्ओन्दोन्बत्। सविमूरय्दोन्दु अक्षरय॥२५४
म्※ रलु हत्तुसाविरदिन् नूरारु[एरळ्नूरारु]बरुवन्क विद्ये ई'लू' म※ सरुवज्ञनेरिदहदिनाल्सुगुणस्थान।अरहंत[गुरुपरन्परेयाद'ळ्'अन्दद]भूवलयद्

समस्त 'ळ्' अक्षरांक १०,२०६+समस्त अन्तराक्षरांक १५,३९०+समस्त अन्तरांतर १,८२७=२७४२३

अथवा अ—ळ् २,७९,७११+ ळु २७,४२३=३,०७,१३४

चौदहवां अध्याय

स्वर अक्षरों में कु १४ वां अक्षर है। इसी अक्षर का नाम आचार्य ने इस १४ वें अध्याय को दिया है, १४ वें तीर्थङ्कर श्री अनन्तनाथ भगवान हैं। वे अनन्त फल को देने वाले होने के कारण अतिशय धवल रूप भूवलय ग्रन्थ में स्वर अक्षर के दीर्घांक को १४ मानकर अंग ज्ञान को अनन्त रूप गणित से लेकर गणना करते हुए ग्रन्थ को रचना की गई है। इन्हीं अनन्तनाथ भगवान को वैदिकों ने अनन्त पद्म नाभ भी कहा है। वह अनन्तपद्म नाभ श्री कृष्ण रूप पर्यायसे जन्म लेकर कुरुक्षेत्र में दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करने के इच्छुक अर्जुन को कर्तव्य कर्म का बोध, करानेवाली गीता का उपदेश भूवलय के ढंग से दिया था। उसका नाम श्री मद्भगवद् गीता पांच भाषाओं में अन्यत्र अलभ्य काव्य इसी अध्याय के अन्तरान्तर श्लोक में "नमः श्री वर्धमानाय" इत्यादि रूप कानडी श्लोक के अन्तिम दो अक्षरों से निकल आता है। इस अध्याय के अन्त में जैसा है उसी प्रकार से हम प्रतिपादन करेंगे। वहां "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" से लेकर भगवद्गीता प्रारम्भ होगी। आजकल प्रचलित भगवद्गीता से परे और विशिष्ट कला से निष्पन्न वह संस्कृत साहित्य अपूर्व है।१।

यह भगवद् गीता पांच भाषाओं में है। पहले की पुरु गीता है। पुरुजिन अर्थात् ऋषभदेव के समय में उनकी दोनों रानियों के दो भाइयों का नाम विनमि और नमिनाथ था। उन दोनों राजाओं ने अयोध्या के पार्श्ववर्ती नगरों में राज्य किया था। उनके राज्य शासन काल में विज्ञान की सिद्धि के लिए बकुल (सुमन) शृंग देवदारु इत्यादि वृक्षों का उपयोग किया जाता था। वे दोनों राजा विविध भांति की विद्याओं में प्रवीण होने के कारण विद्याधर स्वरूप ही थे। और विविध विद्याओं को सिद्ध करने के लिए इन्हीं वृक्षों के फूलों के रस से रसायन तैयार कर लेते थे। इसी के दूसरे कानड़ी श्लोक के अन्तिम में "इन्द्रियाणां हिचरतां' नामक संस्कृत श्लोक के अन्त में "मिवाम्भसि" है। इस वैज्ञानिक महत्व को रखनेवाले से बढ़कर अपूर्व पूर्व ग्रन्थों के मिलने से यह अनन्त गुणात्मक काव्य है। इस कारण श्री अनन्तनाथ भगवान का स्मरण किया गया है।२।

सक्रम से निर्मोही होकर निर्मल तपस्या करनेवालों को इस भूवलय ग्रन्थ में छिपी हुई अनेक अद्भुत विद्याओं की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ को सभी को भक्ति भाव से नमस्कार करना चाहिए। मन में जब विकल्प उत्पन्न होते हैं तब सिद्धांत शास्त्रों का यथार्थ रूप से अर्थ नहीं हो पाता। मन की स्थिरता तभी प्राप्त होती है कि जब प्राणावाय पूर्वक ज्ञान से शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहता है और तभी तपस्या करने की भी अनुकूलता रहती है। इसीलिए आर्यजन त्रिकरण शुद्धि को सबसे पहले प्राप्त कर लेते थे।३।

विवेचन:—इस तीसरे श्लोक के मध्य में अन्तरान्तर का एक श्लोक समाप्त होता है। उसके अन्त में "नमिप् ओ" शब्द है। जिसका अर्थ कानड़ी भाषा में नमस्कार करेंगे ऐसा होता है। अन्तिमाक्षर ओ भगवद्गीता के ओमित्येकाक्षर का प्रथमाक्षर हो जाता है। वही ओ अक्षर ऋग्वेद का गायत्री मन्त्र रूप में रहनेवाले 'ओंतत्सवितुर्वरेण्यं के लिए प्रथमाक्षर हो जाता है। इसी प्रकार आगे भी अनेक भाषाओं में कभी आदि में व कभी अन्त में ओ मिलेगा; पर वह हमें ज्ञात नहीं है। इस पद्धति से तीन आनुपूर्वी को ग्रहण करना। इसका विवरण इस प्रकार है:—

पहले-पहले अक्षर या अंक को लेकर आगे-आगे बढ़ना आनुपूर्वी (पूर्व अनु इति अनुपूर्व, अनुपूर्वस्य भावः आनुपूर्वी) है। जिसका अभिप्राय 'क्रमशः प्रवृत्ति' है।

आनुपूर्वी के तीन भेद हैं १—पूर्वानुपूर्वी, २—पश्चादानुपूर्वी, ३—यत्र-तत्रानुपूर्वी। जो बांयी ओर से प्रारम्भ होकर दाहिनी ओर क्रम चलता है वह पूर्वानुपूर्वी है जैसे कि अक्षरों के लिखने की पद्धति है। अथवा १-२-३-४-५ आदि अंकों को क्रम से लिखा जाना जो क्रम दाहिनी ओर से प्रारम्भ होकर बांयी ओर उलटा चलता है जिसको वामगति भी कहते हैं, वह पश्चादानुपूर्वी है, जैसे कि गणित में इकाई दहाई सैकड़ा हजार आदि लिखने की पद्धति है इसी कारण कहा गया है 'अङ्कानां वामतोगतिः' यानी—अंकों की पद्धति अक्षरों

से उलटी है। जहां कहां से क्रम प्रारम्भ करके आगे बढ़ना यत्रतत्रानुपूर्वी है जसे ४, १, ३, २ आदि।

आधुनिक गणित पद्धति केवल पश्चादानुपूर्वी से प्रचलित है। अतः वह अधूरा है, यदि तोनों आनुपूर्वियों को लेकर वह प्रवृत्त होता तो पूर्ण बन जाता। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय सिद्धान्य में तोनों आनुपूर्वियों को अपनाया है इसी कारण उन्होंने भूवलय द्वारा संसार के समस्त विषय और समस्त भाषाओं को उसमें गर्भित कर दिया है।

पूर्वानुपूर्वी पद्धति से भूवलय में जैन सिद्धान्त प्रगट होता है, पश्चादानुपूर्वी से भूवलय में जैनेतर मान्यता वाले ग्रन्थ प्रगट होते हैं। यत्रतत्रानुपूर्वी से भूवलय में अनेक विभिन्न विषय प्रगट होते हैं।

किसी भी विषयका विवेचन करने के लिए प्रथम ही अक्षर पद्धति का आश्रय लिया जाता है किन्तु अक्षर पद्धति से विशाल विवरण पूर्ण तरह से प्रगट नहीं हो पाता, तब अंक पद्धति का सहारा लेना पड़ता है। अंकों द्वारा अक्षरों की अपेक्षा बहुत अधिक विषय प्रगट किया जा सकता है। परन्तु जब और भी अधिक विशाल विषय को अंक बतलाने में असमर्थ हो जाते हैं तब रेखा पद्धति का आश्रय लेना पड़ता है।

भूवलय में तीनों पद्धतियों को अपनाया गया है इसी कारण भूवलय द्वारा समस्त विषय प्रगट हो जाता है।

महान मेधावी विद्वान रेखा-पद्धति से विषय विवेचन कर सकते हैं। उससे कम बुद्धिमान विद्वान अंकों द्वारा विवेचन करते हैं। उससे भी कम प्रतिभाशाली विद्वान अक्षरों के द्वारा ही विषय विवेचन कर सकते हैं। इसी क्रम से वर्णों से भी केवल ज्ञान के समस्त विषयों के ज्ञाता महात्मा थे। वह अवधि ज्ञान का विषय है। आगे इन सभी विषयों को श्री कुमुदेन्दु आचार्य विस्तृत रूप से बतलायेंगे।३।

संसार में रहनेवाले सभी जीवों के वचन में कुछ न कुछ दोष रहता है। उस दोष को मिटाने के लिए विद्वज्जन शब्द शास्त्र की रचना करते हैं, किन्तु फिर भी उनकी विद्वत्ता केवल एक ही भाषा के लिए सीमित रहती है। वह विशुद्ध भाषा दूसरे भाषाओं के जानकारों को अशुद्ध सी मालूम पड़ती है। ठीक भी है। जो विषय स्वयं समझ में न आवे वह गलत मालूम होना स्वाभाविक ही होता है। केवल एक ही भाषा में शुद्ध रूप से यदि वाक्य रचना करली जाय तो भी उस भाषा में रहनेवाले श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र देव के केवल ज्ञान में झलकनेवाली समस्त भाषाओं को एक साथ शुद्ध वाक्य रचना करनेवाले जीव इस काल में नहीं हैं। और इस अवसर्पिणी काल में आगे भी नहीं होंगे, ऐसा प्रतीत होता है।४।

भगवान महावीर के दिव्य वाणी में इस प्रकार झलकी हुई दिव्यध्वनि को चौथे मनः पर्ययज्ञानधारी ऋग्वेदादिचतुर्वेद पारङ्गत ब्रह्मज्ञान के सोमातीत पदों में विराजित ब्राह्मणोत्तमों ने अवधारण करके भूवलय नामक अंगज्ञान को ग्रन्थों में गुंथित किया। अर्थात् सर्वभाषामयी, सर्वविषयमयी तथा सर्व कलामयी इन तीनों रहस्यमयी विद्याओं को भेद विज्ञान रूप महान गुणों से युक्त होकर सिद्धान्त ग्रन्थों में गुंथित कर दिया। उसका विस्तार रूप कथन ही यह भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ है।५।

विवेचनः—श्री भगवद्गीता में अनादि कालीन समस्त भगवद्वाणी को मिला देने की असाधारण शक्ति विद्यमान है। गौतमऋषि वैदिक सम्प्रदाय के प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण वृषभसेन गणधर से लेकर अपने समय तक समस्त भगवद्वाणी रूप पुरुगीता, नेमिगीता, कृष्णगीता (भगवद्गीता) और महावीर गीता इन चार गीताओं की रचना की थी और भविष्य वाणी रूपो आचार्य श्री कुमुदेन्दु की गीता का भो वर्णन संक्षेप रूप से किया था। उसके उदाहरण को इसी अध्याय के कानड़ी मूल श्लोकों के अन्तिम अक्षर से देख सकते हैं। ऋषभसेन गणधर ने भी इसी क्रम से अतीतकालीन समस्त भगवद् वाणी की रचना की थी और उसी वाणी को श्री आदिनाथ स्वामी ने ब्राह्मी देवी के नाम से अक्षर रूप तथा सुन्दरी देवी के नाम से अंक रूप प्रकट किया इसका जोकि विवेचन पहले कर चुके हैं इस समय भूवलय में दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार उपदेश करके वे सभी गणधर परमेष्ठी ने क्षणिक शरीर को त्यागकर चिरस्थायी शाश्वत सुख को प्राप्त कर लिया। इन सभी ग्रन्थों को अंग ज्ञान परिपाटो से वस्तु नामक छन्द कहते हैं। ३००० सूत्राङ्कों के ज्ञाता को त्रैविद्याधर चक्रवर्ती कहते हैं। उन समस्त गणधर परमेष्ठियों के वचन

मधुर, मिष्ट एवं सर्वजन हितकारी होते हैं। दयाधर्म का प्रचार ही इन समस्त ग्रन्थों का उद्देश्य है तथा इसमें उत्तम क्षमा, मार्दव आर्जवादि दशधर्मों का ही अतिशय वर्णन है।

जिस प्रकार अन्य जलों में कुछ न कुछ गर्दा (कीचड़) रहता है पर सुगंधित जल में किसी भी प्रकार का किंचिद्मात्र भी गर्दा नहीं रहता, उसी प्रकार अन्य धर्मों में कुछ न कुछ दुर्गुण पाये जाते है; परन्तु परमेष्ठी प्रतिपादित दश धर्मों में किसी भी प्रकार की मलिनता नहीं पाई जाती ॥६ लेकर १३ श्लोक॥

विवेचनः—इस अन्तर श्लोक के २६ वें श्लोक से लेकर ६ वें श्लोक तक यदि आ जायें तो प्रथम अध्याय में कथित, कमलों का वर्णन पुन रुक्ति से आता है। उसमें सात कमल पुष्पों से सुगन्धित जल (गुलाब जल) तैयार कर लेते थे, ऐसा अर्थ निष्पन्न होता है। यह काव्य रचना की अतिशय महिमा है।

दशधर्मों को पालने वाले प्रोषधोपवासी मुनि होते हैं। उपवास शब्द का अर्थ–"उप समीपे वसतीत्युपवासः" अर्थात् आत्मा के समीप में वास करना उपवास है। और इसी प्रकार के उपवासी मुनिराज अविनाशी ग्रन्थों की रचना करके शाश्वत् यश को प्राप्त कर लिया करते थे। वे महात्मा सदा अपने गुरु गणधर परमेष्ठियों के साथ निर्भय विचरण करते रहते थे। इसी लिये इन्हें किसी प्रकार के शस्त्रास्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वे महात्मा पाहुड (प्राभृत) ग्रन्थ की रचना करने में बड़े बुद्धिमान हैं। इतना ही नहीं, बल्कि वे अनियोग द्वार नामक ग्रन्थ की रचना करने में भी परम प्रवीण हैं। वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान में गम्य होने वाले जीवादि षड्द्रव्यों को गणित-बन्ध में बाँधकर अङ्कज्ञान में मिलाने वाले गणितागमज्ञ और अंक-शास्त्रज्ञ होते है। विविध वस्तु अथवा शब्द को देख तथा जानकर उनकी बाह्याभ्यन्तरिक समस्त कलाओं को तत्काल ही व्याख्यान करने में कुशल होने से तत्तकालीन समस्त विद्वान् ब्राह्मण उनके यशों का गुणगान करते थे। यह अद्भुत् ज्ञान साधारण जनता को सहज में नहीं मिल सकता। छोटे अंक को लेकर गुणाकार क्रिया से बड़ा अंक बनाने के बाद उन सबको ९ अंक में एकत्रित करके उसके फलों को दिखलाने वाला सबसे जघन्यांक २ है सर्वोत्कृष्टांक ९ है तथा उसके अन्दर रहकर अतशिय विद्या को प्रदान करने वाले अलोकाकाश पर्यन्त समस्त अंकों को बतलाने वाले ये मुनिराज हैं। उन्हीं के द्वारा विरचित यह भूवलय काव्य है। ॥१३-२९॥

६४ अक्षरों की जो वर्गित संवर्जित राशि आती है उन समस्त अंकों का ज्ञान जिस महानुभाव को रहता है उन्हें श्रुत केवली कहते हैं। और वैदिक मतानुयायी मंत्र-द्रष्टा कहते हैं। मंत्र-द्रष्टा वे ही होते हैं जो कि ११ अङ्ग तथा १४ पूर्व से निष्पन्न समस्त वेद ज्ञान को अंक भाषा में निकालने में समर्थ होते हैं। ऐसे समर्थ मुनि श्री महावीर भगवान् से लेकर श्री कुमुदेन्दु आचार्य पर्यन्त एक सौ (१००) थे। ये समस्त मुनि सदा स्व-पर कल्याण में संलग्न रहते थे ॥३०॥

१४ पूर्वों में प्रथम के ९ पूर्व को निकाल कर शेष ५ पूर्वों में विश्व के समस्त जीवों के जीवन-निर्वाह करने के लिये वैद्यक, मंत्र, तन्त्र, यन्त्र, रसवाद, ज्योतिष तथा काम शास्त्र आदि प्रकट होते हैं। उन सभी विद्याओं में गूढ़ातिगूढ़ रहस्य छिपा रहता है। उसमें रमणीय शरीर–विज्ञान को बतलाने वाला, प्राणावाय (आयुर्वेद) एक महान् शास्त्र निकलता है जो कि चौथे खंड में विस्तार रूप वर्णित है ॥३१॥

विवेचन–प्राणावाय पूर्व में १०००००० कानड़ी श्लोक हैं। उन श्लोकों में पृथक पृथक भाषा के अनेक लक्षकोटि श्लोक निकल कर आ जाते हैं। उसका अंक नीचे दिया गया है।

महा महिमावान आयुर्वेद शास्त्र भूवलय तृतीय खंड सूत्रावतार से भी निकलकर आ जाता है। वह सूत्रावतार नामक तृतीय खंड दूसरे श्रुतावतार खंड से भी निकल कर आ जाता है। वहश्रुतावतार नामक दूसरा खंड इस मंगल प्राभृत नामक प्रथम खंड के ५९ वें अध्याय के अन्तिम अक्षर से लेकर यदि ऊपर पढ़ते चले जायें तो यथावत् निकल कर आ जाता है।

यही क्रम आगे भी चालू रहेगा। अर्थात् पाँचवां खंड विजय धवल ग्रन्थ चौथे खण्ड के प्राणावाय पूर्वक नामक खण्ड में यथा तथा निकल कर आ जाता है। इसी क्रम से आगे चलकर यदि ९ वें खण्ड तक पहुंच जायें तो अन्तिम मंगल प्राभृत रूप नववें खण्ड तक एक ऐसी चमत्कारिक काव्य रचना है जिससे कि अष्ठ महाप्रातिहार्य वैभव से लेकर समस्त ९ खण्ड एक साथ सुगमता से

पढ़ा जा सकता है जो कि कि श्रुतकेवलियों के साक्षात् मूर्त्त स्वरूप है।

हाथी के ऊपर रक्खी हुई अम्बारी को स्याही (इङ्क) से पूर्ण करके उस स्याही से जितने प्रमाण में ग्रन्थ लिखा जा सकता है उसे प्राचीन काल में एक पूर्व कहा जाता था; आधुनिक वैज्ञानिकों के मन में यह बात नहीं आती थी। उनका तर्क था कि इतनी विशालता एक पूर्व की नहीं हो सकती; किन्तु जब उनके सामने अद्भुत् भूवलय शास्त्र तथा उसके अन्तर्गत प्रामाणिक गणित शास्त्र प्रस्तुत हुआ तब सभी को पूर्ण रूप से विश्वास हो गया और श्रद्धा पूर्वक लोग इसका स्वाध्याय करने लगे। इतना ही नहीं इसकी मान्यता इतनी अधिक बढ़ गई है कि यह ग्रन्थराज राजभवन, राष्ट्रपति भवन तथा विश्व विद्यालयों (यूनिवर्सिटीज) के सरस्वती भवनों (लाइब्रेरियों) में विराजमान होकर सभी को स्वाध्याय करने के लिए सरकार से मान्यता मिल गई है और भारत सरकार की विधान सभा तथा मैसूर प्रान्त की विधान सभा में इसकी चर्चा बड़े जोरों से चल रही है।

इस प्राणावाय पूर्व में १३००००००० (तेरह करोड़) पद हैं। और एक पद में १६३४८३०७८८८ अक्षर होते हैं। १३००००००० को यदि उपर्युक्त अङ्क से गुणा करें तो जितना अंक प्रमाण होगा उतनी अंक प्रमाण प्राणावाय पूर्व का अंक होगा। यह सैद्धान्तिक गणना का क्रम है। भूवलय का क्रमांक अनावा है, क्योंकि ३ आनुपूर्वियों की पृथक् पृथक् गणना होने से अंक बढ़ गया है। अर्थात् तेरह करोड़×तेरह करोड़=जो अंक आता है उस अंक को उपर्युक्त ग्यारह अंक × ग्यारह अंक=जो अंक आता है उससे गुणा करने से आने वाला लब्धांक प्रमाण संपूर्ण आयुर्वेद शास्त्र बन जाता हैं।

विवेचनः—पद शब्द का अर्थ तीन प्रकार का है—

१-अर्थपद, २-प्रमाण पद और ३-मध्यम पद अथवा अनादि सिद्धान्त पद। अर्थ पद में केवल अर्थावबोध यदि हो गया तो बस ठीक है। वहाँ पर अन्य व्याकरण तथा गणितादि लक्षणों की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रमाण पद में अनुष्टुप् आदि छंदों के एक चरण में आठ आदि नियत अक्षर होते हैं। [भूवलय में इससे व्यतिरेक क्रम है] सभी व्यावहारिक विद्वानों ने इन दोनों पदों का प्रयोग व्यवहार में रखकर तीसरे को छोड़ दिया है क्योंकि अनादि सिद्धान्त पद का अर्थ दुरूह होने से इसे छोड़ देना पड़ा। अनादि सिद्धान्त पद के एक में रहने वाले ग्यारह अंक प्रमाण अक्षरों के समूह को कौन ध्यान रखने में समर्थ हो सकता है? अर्थात् इस काल में कोई भी नहीं क्योंकि यह श्रुतकेवली गम्य है।

ऋद्धिधारी मुनियों को इस क्रम प्राप्त वेद ज्ञान के अंक को अक्रमवर्ती ज्ञान से समझ कर निर्मल रूप मध्यम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उन्हीं मुनियों के द्वारा विरचित होने से यह भूवलय ग्रन्थराज महा महिमा संपन्न होकर पुण्य पुरुषों के दर्शन तथा स्वाध्याय के लिये प्रकट हुआ ॥३२-३३॥

विद्वानों ने माला के समान इन अंकों को गुणाकार करते हुये एक विशिष्ट विधि से प्राणावाय पूर्व नामक ग्रन्थ से अंकों द्वारा अक्षरों को बनाकर दिव्यौषधियों को जान लिया था। वह समस्तांक छह वार शून्य और सरलमार्ग से चार, चार, पाँच, दो बिन्दी, बिन्दी, आठ, दो, पांच, दो एक, दो अर्थात् २१ हजार कोडा कोड़ी २५ कोटा कोटि, दो कोड़ा कोड़ी।

आठ सौ करोड़ पच्चीस लाख कोड़ी चालीस कोड़ी अंक प्रमाण होता है। उसको अंक संदृष्टि से दें तो २१२५२८००२५४४०००००० अंक प्रमाण होता है।

प्राणावाय पूर्व द्वादशांग के अन्तर्गत एक पूर्व है जोकि उपर्युक्त अंक प्रमाण अक्षरमय है, उसमें वैद्यक विषय विद्यमान है। चरक सुश्रुत वाग्भट्ट को वृद्धत्रय कहते हैं वह वृद्धत्रय ग्रन्थ अथर्ववेद से प्रगट हुआ है, ऐसी वैदिक विद्वानों की मान्यता है। किन्तु यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती क्योंकि अथर्ववेद छोटा है उसमें से वृद्धत्रय जैसे विशाल ग्रन्थ प्रगट नहीं हो सकते। किन्तु भूवलय ग्रन्थ का निर्माण ६४ अक्षरों को विविध रूप भंगों से ९२ अंक प्रमाण अक्षरों से हुआ है अतः भूवलय से सब भाषायें और सर्व विषय करोड़ों श्लोकों में प्रगट होते हैं। इसलिए भूवलय से समस्त वैद्यक विषय स्वतन्त्र रूप से प्रगट होता है। उसका उदाहरण यह है—

श्रीमद् भल्लातकाद्रिवसतिजिनमुनिसूतवादेरसाब्जम्,
'ग्रन्थार्थ' लाञ्छनाक्षं घटपुटरचनानागतातीतमूलम्।
हेमंदुर्वर्णसूत्रागमविधिगणितं सर्वलोकोपकारं,
पञ्चास्यं लाजनाग्निभसितगुणकरं भद्रसूरिः समन्तः॥

यह वैद्यक विषयक श्लोक ग्रन्थ किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता, केवल भूवलय ग्रन्थ में ही मिलता है।

यदि शारदा देवी साक्षात् प्रकट होकर अपने वरद हस्तों से स्वयं जिह्वा का संस्कार करें तो उपर्युक्त अंकों का प्रामाणिक शास्त्र सिद्ध हो सकता है। करपात्र में अर्थात् मुनि आदि सत्पात्रों को आहार औषधादिक दान देनेवाले उत्तम दाताओं को यह प्राणावाय पूर्व शास्त्र मालूम हो जाता है। इस काल तक अर्थात् श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है उनके नाम निर्दिष्ट करेंगे।

दानी श्रेयांस	ब्रह्मदत्त
सुन्दर सेन	इन्द्र
नक्षत्रार्या	पद्मसेन
सोमसेन	सुव्रती
महेन्द्र	सोमसेन
पुष्यमित्र	पुनर्वसु
सौन्दर	जयदत्त
विशाखदत्त	धन्यसेन
सुमित्र	धर्ममित्र
महाजितनन्दि	वृषभवर्द्धनदत्त
वरसेन (धन्य सेन)	सुकूल रस
धन्यसेन	वर्द्धनदत्त

इन सभी राजाओं ने आहार आदि ४ प्रकार के दान को सत्पात्रों को देकर अतिशय पुण्य बंध करके तुष्टि, पुष्टि, श्रद्धा, भक्ति, अलुब्धता, शान्ति तथा अक्रोध इन सात गुणों से युक्त उत्तम दातृपद प्राप्त किया था।३६-५५।

इसी भूवलय के चौथे खंड प्राणावाय पूर्व में १८००० फूलों से समस्त आयुर्वेदिक शास्त्रों की रचना इसलिए की गई कि वृक्षों की जड़, पत्ते, छिलका तथा फूलों के तोड़ने से एकेन्द्रिय जीवों का घात होता है। किन्तु महाव्रती मुनिराज एकेन्द्रिय जीवों का भी वध नहीं करते। ऐसी अवस्था में व्याधिग्रस्त जीवों के रोग निवारणार्थ वैद्यक शास्त्रों की रचना कैसे हो सकती है?

जिन मुनियों ने जो ग्रन्थ रचना की है वह अंग परम्परा का अनुसरण करती हुई की है। अतः वैद्यक शास्त्रों का निर्माण करते हुए आचार्यों ने जिन औषधियों के उपयोग की सूचना की है उसमें अहिंसा धर्म की प्रमुखता रखते हुए वस्तुतत्व का निरूपण मात्र किया है। अतः उसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

यदि इस वैद्यक शास्त्र का निषेध किया होता तो १४ पूर्व में प्राणावाय पूर्व को भगवान जिनेन्द्र देव निरूपण ही नहीं करते। इस ग्रन्थ को किसी मनुष्य ने तो लिखा नहीं। यह साक्षात जिनेन्द्र देव की वाणी से ही प्रकट हुआ है। अतः इसका स्वरूप जैसा है वैसा लिखने में किसी प्रकार की बाधा नहीं है। भगवान जिनेन्द्र देव अपनी कल्पना से कुछ नहीं कहते, किन्तु वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा ही उन्होंने निरूपण किया। अतः इसमें किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं आती आयुर्वेदिक में मनुष्यायुर्वेद, राक्षसायुर्वेद, तथा समस्त जीवायुर्वेद गर्भित है। राक्षसायुर्वेद में मद्य, मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ मिश्रित हैं। जिनका सेवन करने वाले राक्षसों को सिद्ध शुद्ध पारा, स्वर्ण तथा लोहादिक भस्मों से तैयारकी गई सिद्धौषधियां लागू नहीं होतीं। क्योंकि अशुद्ध परमाणुओं से रचित राक्षसों के अशुद्ध शरीर के लिए अशुद्ध औषधियां लाभदायक होती हैं। मांस, मदिरा, मधु, मल मूत्रादि के द्वारा तैयार की गई औषधियां अशुद्ध होती हैं। और ये अशुद्ध औषधियां अनादिकाल से यथावत् रूप से प्रचलन में आने के कारण अपने यथार्थ नामानुसार हैं। उनका प्रयोग में लेना या न लेना बुद्धिमानों का कार्य है।

धर्म मार्ग में प्रवर्त्तन वृत्ति करनेवाले जीवों को हिंसादि पांचों पापों को त्याग देना चाहिए। अतः उनके लिए यह अशुद्ध औषधियां उपयुक्त नहीं होतीं। उनके लिए विशुद्ध रसायन सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रमाण अर्थात् सुई के अग्र भाग प्रमाण मात्र भी सिद्धौषधियां कुष्ठ, क्षयादि असाध्य रोगों को समूल नष्ट करके अमोघ फल देती हैं तथा वृद्ध मनुष्यों की काया पलट कर तरुण बनाने में पूर्ण सफल होती हैं इसका विस्तृत विवेचन प्राणावाय पूर्वक नाम चतुर्थ

खंड में किया जायगा। उपर्युक्त चौबीस दातारों ने आहार, औषधि, शास्त्र अभय इन चार प्रकार के दान सत्पात्रों को देकर त्रिकालवर्ती जीवों के कल्याणार्थ लोकोपकारी इस विशुद्ध आयुर्वेदिक शास्त्र को स्थायी रक्खा। उनका यह कार्य अत्यन्त श्लाघनीय है।३६ ५५।

उपर्युक्त प्राणावाय पूर्वक जो अंक हैं उतने ही अंक प्रमाण एक तोले परिशुद्ध भस्म बनाये हुए पारे में छिद्र हो जाते हैं। छिद्र सहित वह पारा परस्पर में पुनः नहीं मिलता। इसी पारे में यदि फूलों के रस से मर्दन करके अग्निपुट में पकाया जाय तो वह रत्न के समान प्रतिभाशाली विशुद्ध रसमणि बन जाती है। उस मणि को वज्र खेचरी घुटिका, रत्नत्रय औषधि, वसन्त कुसुमाकर इत्यादि अनेक नामों से पुकारते हैं। इन मणियों को पृथक् पृथक् रूप से यदि अपने हाथ में रखलें तो आकाशगमन जलगमन इत्यादि अनेक सिद्धियां उपलब्ध हो जाती हैं। यह सब पुष्पों से बन जाता है न कि वृक्षों की छाल आदि एकेन्द्रिय जीवों के घातक पदार्थों से।५६।

विवेचन—आचार्य श्री कहते हैं कि जिस प्रकार भूवलय ग्रन्थ राज की रचना गणित शास्त्र की पद्धति से की गई है उसी प्रकार संयोग भंग से (Permeetesletion and comlicaciol),

वसन्त कुसुमाकरादि रसों के संयोग से विविध भांति की रासायनिक औषधियां प्राप्त की जा सकती हैं। जब केवल एक ही औषधि में महान गुण विद्यमान है तो संयोग भंग विधि से समस्त सिद्धौषधियों को एकत्रित करने पर कितना गुण होगा, सो वर्णनातीत है।

१८ हजार पुष्पायुर्वेद के अनुसार फूल निकलने से पहले वृक्षों की कली तोड़कर उन कलियों का अर्क पृथक्-पृथक् निकाल कर पारे के साथ उस रस में पुट देते थे, तब वह पाद रस कणि तैयार होता था।५७।

उस पुष्पायुर्वेद की औषधि राशियों को कहनेवाला यह भूवलय है।५८।

उस पुष्पायुर्वेद के अनुसार तैयार की गई रस मणि सेवन करने से वीर्य-स्तम्भन होता है, वृद्ध अवस्था यौवन अवस्था में परिणत हो जाती है, उसके सेवन से अकाल मृत्यु नहीं होती, शरीर सुदृढ़ हो जाता है।५८।

इस सुरसरक्षण काव्य में ऋद्धि, क्षय नाश, प्राण रक्षा, यश, (कान्ति) स्तम्भन, पाचन आदि आठ सूत्रों द्वारा औषधियों का वर्णन है।५९।

उस रस मणि को सेवन करने मात्र से नवीन जन्म के समान नवीन कायाकल्प हो जाता है। तथा उस रस मणि सेवन से आत्मा में अनेक कलायें प्रगट होती हैं।६०।

इस रसमणि को सबसे प्रथम भरत चक्रवर्ती ने सेवन किया।६१।

इस पृथ्वी के वही पुरुषोत्तम थे।६२।

वे ही सत्य वीर्य शाली थे।६३।

वे सदा शत्रु मित्र को समान समझते थे। ६४।

इस कारण वे साम्राज्य ऐश्वर्य के अधिपति बन गये थे।६५।

वे ही मर्मज्ञ तथा धर्मवीर थे।६६।

वे ही दानवीर थे।६७।

वे ही धर्म श्रोताओं में प्रमुख थे।६८।

वे ही शुरवीर योद्धा थे।६९।

वे कवियों द्वारा बन्दनीय तथा स्तुत्य (प्रशंसनीय) थे।७०।

वे नवीन भर्म प्रिय श्रोता कहलाते थे।७१।

अनेक प्रकार की भक्तियों तथा विनयों से युक्त थे।७२।

वे स्वयं-सम्राट कहलाते थे।७३।

वे लावण्य पुरुषोत्तम कहे जाते थे।७४

समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ शरीर धारक थे।७५।

वे पावन पुण्डरीक थे।७६।

दान के प्रभाव से नवीन फल प्राप्त करने वाले थे।७७।

इसी पकार योग धारण करने वा राजाला कुणाल था।७८।

ऐश्वर्य में नारायण के समान थे।७९।

उस औषधि के चबाने से सुभौम चक्रवर्ती के समान तेजस्वी हो जाते हैं।८०।

उग्रता में वे भुजंग के समान थे।८१।

पृथ्वी का अज्ञान दूर करनेवाले थे।८२।

इस तरह भगवान महावीर के समवशरण राजा श्रेणिक था ।८३।

प्राप्त किया श्रेष्ठ मुनि का यह देह यानी इस मुनि का शरीर तप या संयम के द्वारा तपते हुए धूलि से लिप्त हुये इस शरीर की धूलि को अपने शरीर से स्पर्श करने से रोग से जर्रित हुआ शरीर एक निरोग बनकर कामदेव के समान तथा तरुण युवक के समान बन जाता है ।८४।

अत्यन्त पुराने तथा असाध्य रोग के नाश करने के लिए अत्यन्त उत्तम मीठी राम वर्ण औषधि से युक्त ऋद्धि धारी मुनि के मुँह की लार तथा मूठन को सेवन करने से तथा थूक सेवन करने से संसारी सम्पूर्ण मानव प्राणी के सर्व-व्याधियां नाश होती हैं। उस मुनि को क्षल्ल औषधि ऋद्धि कहते हैं।

जिस मुनि के शरीर के पसीना को हमारे शरीर को स्पर्श करने मात्र से पुरानी व्याधियां का उपशम होकर नवीन कांतिमाय सुन्दर काया बन जाती है तथा गर्व के साथ अपने को यह बतलाता है मैं काम देव हूं अहंकार को उत्पन्न करने योग्य शरीर प्राप्त कर देने वाली यह क्षल्लोषधि ऋद्धि धारी मुनि के पसीना का ही महत्व है ।८५ ८६।

आदि से लेकर अन्त तक रोग को नाश करनेवाले, श्री जिन मुनि के ऋद्धि के शरोर की एक मल कण के अणु को लेकर अपने शरीर को लगाने मात्र से जो आदि अन्त का रोग नष्ट होता है ऐसे ऋद्धि को विद्वज्जन जल्लौषधि कहते हैं ।८७।

जिन यति के कान, आंख, नाक, दन्त के मल छूने मात्र से शरीर के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, वह मलौषधि ऋद्धि है ।८८।

वे साधु पुष्पदन्त भगवान को प्राप्त हुए हैं ।८९।

वे पार्श्वद्वय (सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ) को प्राप्त हुए हैं ।९०।

वे गुण की अपेक्षा गणनातीत—अनन्तनाथ को प्राप्त हुए हैं ।९१।

वे समस्त जीवों को संसार ताप से शीतल करनेवाले शीतलनाथ भगवान को प्राप्त हुए हैं ।९२।

समस्त विश्व से पूज्य वासुपूज्य भगवान हैं ।९३।

वे विमलनाथ अनन्तनाथ को प्राप्त हुए हैं ।९४।

धर्मनाथ मल्लिनाथ ये ९ तीर्थंकर अंक हैं ।९५।

इसी अंक के मुनि सुव्रतनाथ हैं ।९६।

सात तीर्थंकर अंग देश में अधिकतर विहार करनेवाले हैं।९७।

वीरनाथ और नेमिनाथ विदेह देश में ।९८।

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ का कुरुजाङ्गल देश बलय विहार क्षेत्र है ।९९—१००।

समस्त तीर्थंकरों का विहार क्षेत्र आर्यावर्त या आर्यवलय रहा है। १०१-१०२।

इस प्रकार तीर्थंकरों के विहार का यह (आर्यावर्त) भूवलय है ।१०३।

इस भूवलय में कहा हुआ यह देश सूचक श्लोक (पद्य) है ।१०४।

यह भरत क्षेत्र का वैभव है ।१०५।

यह कुरु देश का अतिशय रूप कुरु है ।१०६।

ये देश सरस हैं तथा पारस, पारा आदि को खानिवाले हैं ।१०७।

ये देश महान पुरुषों के उत्पादक हैं तथा महान वैराग्य उत्पन्न कराकर मुक्ति को प्राप्त करानेवाले हैं ।१०८।

यह भूवलय मनुष्य के सौभाग्य को प्राप्त करानेवाला है ।१०९।

जिन ऋषियों की जिह्वा (जीभ) पर आया हुआ कड़वा, नीरस पदार्थ भी मधुर (मीठा) रसमय परिणात हो जाता है, वह मधुस्रावी ऋद्धि है। उनके शरीर का मल भी मधुर हो जाता है ।११०।

जिन ऋषियों का थूक, विष्ठा तथा मूत्र पृथ्वी पर पड़ा हुआ सूख जाता है उस सूखे हुए मल मूत्र की वायु के छूने मात्र से अन्य जीवों के रोग दूर हो जाते हैं, यह विडौषधि ऋद्धि है ।१११।

जिन ऋषियों के शरीर को छूकर बहने वाली वायु के स्पर्श मात्र से समस्त मानव पशु पक्षियों के समस्त रोग दूर हो जाते हैं, तथा कालकूट विष का प्रभाव भी नष्ट हो जाता है वह जलौषधि है ।११२।

जिन ऋषियों के मुख से निकली हुई लार के द्वारा रोगियों का विष दूर

हो जावे वह आस्यविष नामक ऋद्धि है।११३।

जिन मुनियों की दृष्टि (देखने) द्वारा दूसरों का विष दूर हो जावे वह दृष्टि विष ऋद्धि है।१४४।

ऐसे ऋद्धिधारक मुनि जिस बनमें रहते हैं उनके प्रभाव से उस बनकी वनस्पतियों (वृक्ष, बेल, पौधे आदि) के फल फूल, पत्ते, जड़, छाल आदि भी महान गुणकारी एवं रोगनाशक हो जाते हैं।११५।

उन वतस्पतियों के स्पर्श हो जाने से विष भी अमृत हो जाता है।११६।

श्रीजिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार उन वृक्षों के पत्र मद (नशा मूर्छा) दूर करने वाले होते हैं।११७।

ऋद्धियों के उपयोग में आने वाले सरल वृक्ष।११८।

तिरुड़ वृक्ष मादल (बिजौरा), वृक्ष की कली के अर्क से दांतों का मल दूर हो जाता है।११९-१२२।

इनके फूलों को कुण्डल की तरह कान में लगाने से कान वज्र समान दृढ़ बन जाते हैं।१२३।

उन पुष्पों को सूंघने से नाक के रोग नष्ट हो जाते हैं।१२४।

उन पुष्पों में अनेक गुण हैं।१२५।

इन समस्त पुष्पों को जानना योग्य है।१२६।

सूर्य के उदय होने पर खिलने वाला कमल उदय पद्म है।१२७।

इत्यादिक पुष्प पद्मावती देवी की अणिमा है।१२८।

राजा जिनदत्त इन पुष्पों को पद्मावती देवी के सामने चढ़ाता था।१२९।

राजा जिनदत्त उन पुष्पों को पद्मावती देवी के शिर पर विराजमान भगवान पार्श्वनाथ के चरणों पर चढ़ाता था। भगवान पार्श्वनाथ के चरणों के तथा पद्मावती देवी के शिर के स्पर्श से वे पुष्प प्रभावशाली हो जाते थे। उन पुष्पों के रस से श्री देवेन्द्र यति ने महान चमत्कार दिखाया तथा वह रस देवेन्द्र यति ने राजा जिनदत्त को दिया। राजा जिनदत्त ने उस रस से अनुपम फल प्राप्त किया। उस रस को पैरों के तलुओं में लगाने से योजनों तक शीघ्र चले जाने की शक्ति आ जाती थी। इसी कारण इसका नाम पाद रस ऋद्धि है। इसका नाम प्राणावाय रस भी है। इसको विद्वान जानते हैं। यह त्यागियों के आश्रम से प्रगट हुआ है।१३०-१३८।

इस प्रकार १८ हजार श्लोकों द्वारा इस भूवलय में १८ हजार पुष्पों के प्रभाव को प्रगट करनेवाले पुष्पायुर्वेद की रचना हुई है।१३९।

अठारह हजार जाति के उत्तम फूलों से निचोड़ कर निकले हुए पुष्प रसको पारद के पुष्पों से मर्दन करके पुट में रखकर नवीन रस की घुटिका को बांधकर उस पुट को पकाने के बाद रस सिद्धि तैयार होती है। तब यही रसायन नवीन कल्पसूत्र वैद्यांग अर्थात् आयुर्वेद कहलाता है।१४०-१४१।

यह आयुर्वेद श्री समन्त भद्राचार्य ऋषि द्वारा वशीभूत किया गया प्राणावाय पूर्व के द्वारा निकालकर विरचित किया हुआ असदृश्य काव्य है। और यह काव्य चरकादिक की समझ में न आनेवाला है। अर्थात् यह असदृश्य काव्य है। इसको श्रवण वैद्यागम कहते हैं। यह श्रमण वैद्यागम अत्यन्त ललित आयुर्वेद है और यह श्रवणों के द्वारा निर्माण होने से अत्यन्त रुचिकर है तथा संसार के प्राणिमात्र का उपाकारी और हित कारक है। इसलिए भव्य जीवों को रूचि पूर्वक पढ़कर के इस वैद्यांग अर्थात् कथित आयुर्वेद कृति के अनुसार इस औषधि को अगर जीव ग्रहण करेंगे तो इह पर उभय लोक सुखदायक आत्म हित साधन करने योग्य निरोग शरीर बन जाता है।१४२-१४३।

इसका स्पष्टी करण श्री कुमुदेंदु आचार्य ने स्वयं करते हुए लिखा है कि इस आयुर्वेद का नाम अहिंसा आयुर्वेद है और इस अहिंसा पुष्पायुर्वेद की परिपाटी ऋषियों तथा श्री तीर्थंकर भगवानों के द्वारा निर्मित होकर परम्परा से चलती आयी है। इस चौदहवें अध्याय में पुष्पायुर्वेद विधि को चरकादि ऋषि ने समझने वाले विधि को जिन दत्त राजा को श्री देवेन्द्रयति और अमोघ वर्ष राजा को श्री समन्त आचार्य ने साधन रूप में बताये गये पुष्पायुर्वेद विधि का इस अध्याय में निरूपण किया गया है।

अहिंसा मय आयुर्वेद के निर्माण कर्ता पुरुषों के उत्पत्ति स्थान तथा उनके नगरों के नाम—

ऋषभनाथ, अजितनाथ, अनन्तनाथ।१४४।

अभिनन्दन इन चारों का जन्म स्थान अयोध्या नगरी है ।१४५-१४६।
शम्भवनाथ का श्रावस्ती है ।१४७।
सुमतिनाथ का विनिता पुरी है ।१४८।
श्री पद्म प्रभ भगवान का कौशाम्बी नगरी है ।१४९-१५०।
श्री भगवान पार्श्वनाथ तथा शुपार्श्वनाथ की जन्म भूमि बाराणसी है ।१५१-१५२।
श्री चन्द्रप्रभ भगवान की जन्म भूमि चन्द्रपुरी है ।१५३।
श्री पुष्पदन्त भगवान की जन्म भूमि काकंदी पुरी है १५४-१५५।
शीतलनाथ भगवान की जन्म भूमि भद्रिला पुरी है ।१५६।
श्रेयांसनाथ भगवान की जन्म भूमि सिंहपुरी है ।१५७।
श्री वासुपूजय भगवान की जन्म भूमि चम्पापुरी है ।१५८।
श्री विमलनाथ तीर्थंकर की जन्म नगरी कौशलपुर है ।१५९।
श्री धर्मनाथ भगवान की रत्नपुरी है ।१६०।
श्री शान्ति, कुंथुनाथ, और अरहनाथ की जन्म नगरी हस्तिनापुर है । ।१६१-१६२।
श्री मल्लिनाथ नमिनाथ की नगरी मिथिलापुरी है ।१६३।
श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर की जन्म नगरी कुशाग्र पुरी है ।१६४।
श्री नेमिनाथ तीर्थंकर की जन्म नगरी द्वारावती है ।१६५।
श्री भगवान महावीर तीर्थंकर की जन्म नगरी कुण्डल पुर है ।१६६।

इन तर्थंकरों का जहां-जहां जन्म है उनका जन्म ही यह भूवलय ग्रन्थ है ।१६७।

यह भूवलय ग्रन्थ सम्पूर्ण विश्व के प्राणी मात्र का हित करने वाला है । यह भूवलय सम्पूर्ण संयम तप शक्ति त्याग इत्यादि परिश्रम से चार घातिया कर्मों के नष्ट होने के बाद श्री तीर्थंकर परम देवके मुखारबिंद से निकला हुआ है ।इस अहिंसामय भूवलय के अन्तर्गत निकले हुए अठारह हजार श्लोक पुष्पायुर्वेद के हैं । और यह आयुर्वेद सम्पूर्ण जीव की रक्षा करने के लिए दया सहित है ।

इस तरह अनादि काल की परम्परा से चले आये हुए अहिंसामय आयुर्वेद में दुष्टों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए इस आयुर्वेद में जीव हिंसा की पुष्टि करके रचना किया है । अतः इन खलों के काव्य को धिक्कार है ।१६८।

अत्यन्त सुन्दर इस आयुर्वेद शब्द का अर्थ आयु तथा शरीर मन वचन इन तीनों बलों को बढ़ाने वाला है । और यह आयुर्वेद शिव तथा क्रम बद्ध श्री चौबीस भगवान की परिपाटी से निकलकर मनके द्वारा उत्पन्न होकर आया हुआ प्राणवाय नामक शीलगुण है । शील का अर्थ जीव है । यह जीव हमेशा अपने स्वरूप से भिन्न होकर किसी पर पदार्थ रूप नहीं होता । जीव के अन्दर आने वाले तथा जीव को घात करने वाले अशुद्ध परमाणुओं को दूर कर जीव के स्वरूप की रक्षा करना या अन्य आत्मघात करने वाले अशुभ परिणति से बचना इस शील अर्थात् जीवात्मा का स्वरूप ही शील है ।

इस श्लोक में प्राणावाय शील का अर्थ जीव दया या जीव की रक्षा कर दिया है । जिस आयुर्वेद शास्त्र में जीव रक्षा की विधि न हो या जीव हिंसा की पुष्टि जिसमें हो वह आयुर्वेद शास्त्र जीव की रक्षा किस प्रकार कर सकता है ? आयुर्वेद शास्त्र का अर्थ सम्पूर्ण प्राणी पर दया करना है यह दया धर्म मानव के द्वारा ही पाला जाता है । इसलिए इस मानव का कर्तव्य सम्पूर्ण प्राणी मात्र पर दया करना बतला दिया है । क्या प्रत्येक मानव को दया धर्म का पालन नहीं करना चाहिए ? अवश्य करना चहिए । और नौमांक अर्थात् नौ अंक ही जीव दया है और यही जीवका स्वरूप है ।१६९।

जिस आयुर्वेद में एक जीव को मार कर दूसरे जीव की रक्षा करने वाले विधान का प्रतिपादन किया गया है तथा जिसमें चरक ऋषि के आयुर्वेद अर्थात् वैद्यागम को खण्ड कर अहिंसा आयुर्वेद का प्रति पादन किया है वह अहिंसात्मक आयुर्वेद है ।१७०।

प्राणावाय से स्थावरादि जीवों की हिंसा करने से ही आयुर्वेद की औषधि तैयार होती है अन्यथा नहीं क्योंकि जैन दर्शन में श्री भगवान महावीर ने सम्पूर्ण प्राणी मात्र की रक्षा करना प्राणी मात्र का कर्तव्य बतलाया है । परन्तु आयुर्वेद की रचना प्राणावाय के बिना अर्थात् प्राणी के वायु को घात किये बिना इस प्राणावाय वैद्यागम की दवाई तैयार नहीं होती । इसलिए

इस प्राणावाय आयुर्वेद को औषधि तैयार करने के लिए जीवरक्षा करना बहुत अनिवार्य है। क्योंकि इसमें पाप का बंध नहीं होता। परन्तु अपनी कल्पना के द्वारा कल्पित हिंसामय ग्रन्थ की रचना करके क्रूर राक्षस के समान प्रकृति के मनुष्यों ने इस ग्रन्थ की रचना करके प्रचलित किया है।

इस तरह हिंसामय ग्रन्थ की रचना करने का कारण यह हुआ कि। भगवान महावीर स्वामी की अहिंसामय वाणी को तथा हिंसा और अहिंसा के भाव को ठीक न समझने के कारण तथा इनकी भावना पहले से ही हिंसामय होने के समान तीव्र चढ़ी हुई थी। इसलिए इन दुष्ट तथा क्रूर परिणाम के द्वारा विरचित इस पाप तथा हिंसामय आयुर्वेद ग्रन्थ को धिक्कार हो, ऐसा श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु कहते हैं।१७१।

सबसे पहले किसी भी मत का आगम, शास्त्र, आयुर्वेद या प्राणावाय इत्यादि जो भी शास्त्र हों उन सभी ग्रन्थों में सबसे पहले जीव दया अर्थात् सम्पूर्ण जीवों के प्रति करुणा भाव अवश्य होना चाहिए क्योंकि जहां जीवों के प्रति दया या करुणा भावना निरूपण न हो वह कभी भी आयुर्वेद वैद्यागम नहीं कहा जा सकता। इसलिए सदा जीवों की रक्षा करने की भावना रखना ही तप है और इसी के द्वारा रस ऋद्धि अर्थात् औषधि ऋद्धि की प्राप्ति होती है।१७२-१७३।

विशेषार्थ:—इस भगवान महावीर स्वामी के मुख से निकली हुई दिव्य ध्वनि के प्राणावाय पूर्व से निकलने के कारण इस भूवलय नामक ग्रन्थ में किसी जीव की हिंसा नहीं है। महावीर भगवान से लेकर श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक जितने भी यहां व्रतधारी दिगम्बर मुनि हो गये हैं वे सभी अनादि कालीन भगवान वीतराग की परम्परा से भगवान महावीर स्वामी के अनुशासन के अनुसार थे और भगवान महावीर से लेकर कुमुदेन्दु आचार्य तक जितने भी व्रती दिगम्बर मुनि थे वे सभी भगवान महावीर के अनुयायी थे। इसीलिए १८००० हजार जाति के पुष्पों से वैद्यक ग्रन्थ का निर्माण किया गया था। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि वृक्ष की जड़, पत्ता और छाल इत्यादि न लेकर केवल पुष्प को ही क्यों लिया ?

उत्तर—रसायन औषधियां केवल पुष्पों से ही तैयार होती हैं। इसलिए वृक्ष की जड़ आदि को यहां ग्रहण नहीं किया गया है। रसायन औषधि का विधान केवल पुष्पों से ही होता है। इसलिए केवल पुष्पों का ही यहां वर्णन किया गया है।

प्राणावायु के बारे में कहा भी है कि—

"प्राणपानस्समानस्य दानव्यानस्समानगः"

इत्यादि दश वायु की सहायता लेनी पड़ती है। किन्तु जिनेन्द्र भगवान की वाणी में प्राण आदि वायु की जरूरत नहीं पड़ती अनेक वस्तुओं से मिश्रित होने पर भी उनकी वाणी का अर्थ स्पष्ट रीति से प्रतिपादित होता है।

इस प्रकार जो औषधि ऋद्धि है वह ऋद्धि जिस भव्य मानव को प्राप्त हुई है, उनको स्पर्श करने मात्र से परम्परा से आत्मा के साथ लगा हुआ कर्म वंश तत्काल नष्ट होता है।१७३।

इस ऋद्धि को प्राप्त किये हुए मानव में श्रेष्ठ १-२-३।१७४।

४-५-६-८-९।१७५।

१०-११-१२।१७६।

१३-१४-१९-२१। ये राजवंश तथा इक्ष्वाकु वंश के थे। ७७-१७९।

श्री पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ उग्र वंश के हैं। धर्म शान्ति नाथ और कुंथुनाथ अरहनाथ, ये कुरु वंश के हैं।१८०-१८१-१८२।

बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ हरिवंश में हुए हैं। श्री वर्द्धमान नाथ वंश के हैं।१८३ से १८६।

श्री नेमिनाथ हरिवंश के हैं।१८७।

ये पांचों वंश हरिवंश (इक्ष्वाकु वंश, कुरुवंश, हरिवंश, उग्रवंश, और नाथ वंश) भारत के प्रमुख राजवंश हैं, इनमें धर्म परम्परा चली आई है और इस वंश को दूसरों के ऊपर अच्छा प्रभाव रहा है।१८८ से १९१।

भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान महावीर तक चले आये हुए हुण्डाव-सर्पिणी काल में यह भूवलय ग्रन्थ कार्य कारण रूप है। यानी—तीर्थंकर की वाणी कारण रूप और भूवलय कार्य रूप है।१९२ से १९४।

यह भूवलय ग्रन्थ किसी अल्पज्ञ का कल्पित नहीं है, बल्कि सर्वज्ञ तीर्थंकरों की दिव्य ध्वनि से इसका प्रादुर्भाव हुआ है। भगवान महावीर के

अनन्तर श्री समन्तभद्र, पूज्य पाद आदि आचार्यों की गुरु परम्परा द्वारा भूवलय ग्रन्थ का समस्त विषय श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक चला आया है। ये समस्त आचार्य भगवान महावीर के अनुयायी थे। इन आचार्यों ने ग्रन्थ रचना किसी ख्याति, लाभ, पूजा आदि की भावना से नहीं का इनका उद्देश्य स्व-पर-कल्याण तथा आध्यात्मिक विकास एवं आत्मा की सिद्धि ही रहा है ।१९५।

श्री समन्तभद्र, श्री पूज्यपाद आदि आचार्यों ने जो लोक कल्याण के लिए रस-सिद्धि आदि का विज्ञान अपने ग्रन्थों में किया, चरक आदि ने उनका आदर, आभार न मानते हुए अपनी ख्याति के लिए उन आचार्यों के ग्रन्थों का अनुकरण करके ग्रन्थ रचना की है ।१९६।

१८ हजार पुष्पों का रस निकालकर उसको पुट देवे फिर अन्य बर्तन में उसे रखकर उसका मुख बन्द कर देवे फिर उसे अग्नि पर चढ़ावे, तब वह नवीन रस सिद्ध होता है। इस रस सिद्धि के अनन्तर ही श्री समन्तभद्र, पूज्य-पाद आचार्य ने वैद्यागम कल्प सूत्र की रचना की है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि श्री समन्तभद्र आचार्य ने प्राणावाय द्वारा जो वैद्यागम कल्प सूत्र की रचना की थी वह अदृश्य होने के कारण रस सिद्धि विधान चरक आदि को प्राप्त नहीं हुआ तब उन चरक आदि परम्परागत रस विज्ञान को त्यागकर कल्पित रचना की तथा आयुर्वेद ग्रन्थ रचना चरक आदि से ही प्रारम्भ हुआ ऐसी प्रसिद्ध कर दी और उस रसायन में जीव हिंसा का विधान किया। ऐसे हिंसा विधान करने वालों को आचार्य धिक्कारते हैं प्राणावाय यानी प्राणियों की प्राण रक्षा रूप आयुर्वेद तीर्थंकरों की वाणी से प्रगट हुआ है। चरक आदि ने त्रस जीवों की हिंसा द्वारा रस औषधि विधान किया है उसे प्राणियों की प्राण रक्षा रूप प्राणावाय या आयुर्वेद कैसे माना जा सकता है।१९७।

उन वृक्षों की कलियों (फूल की अविकसित अवस्था) को तोड़ कर अथवा वृक्ष से गिरी हुई कलियों को एकत्र करके जल में डालकर उन्हें खिलाते हैं, फिर उन कलियों का रस निकालकर उस रस से अतिशय प्रभावशाली रस औषधि तैयार होती है, जोकि इन्द्र को भी दुर्लभ है। गृहस्थ स्थावर जीव हिंसा का त्यागी नहीं है, अतः वह वृक्षों से फूल की कलियों को तोड़कर रसायन तैयार कर सकता है। दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवों का संकल्प से घात करना गृहस्थ के लिए त्याज्य हिंसा है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ।१९८।

उस रसायन की स्वल्पमात्रा भी सेवन करने से मनुष्य के महान तथा जीर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। स्वस्थ शरीर द्वारा मनुष्य तपश्चरण आदि करके स्वर्गादि के सांसारिक सुख प्राप्त कर लेता है और अन्त में अपने स्वस्थ शरीर द्वारा कर्म-क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है।१९९।

ऐसे प्रभावशाली जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट आयुर्वेद प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त करना चाहिए जिससे वह स्वपर-कल्याण करके मनुष्य इस लोक परलोक में सुख प्राप्त कर सके। आयुर्वेद समस्त शारीरिक दोषों को नष्ट करके औष-धियों के गुणों से शारीरिक बल आदि गुण प्रगट करने वाला है ऐसे जयशील आयुर्वेद को सबसे प्रथम कर्म भूमि के प्रारम्भ में राजा नाभि राय के पुत्र भगवान ऋषभनाथ ने अपने पुत्रों को पढ़ाया था।२०० से २०२।

प्राणानुवाद पूर्व के रूप में भगवान आदिनाथ के बाद क्रमशः राजा जित शत्रु के पुत्र भगवान अजितनाथ ने, राजा जितारि के पुत्र भगवान शम्भव नाथ ने, राजा संवर के तनय भगवान अभिनन्दन ने, राजा मेघप्रभ के पुत्र भगवान सुमतिनाथ ने, नृपतिधरण के पुत्र श्री पद्मप्रभ तीर्थंकर ने, सुप्रतिष्ठ राजा के पुत्र श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी ने, राजा महासेन के पुत्र भगवान चन्द्रप्रभ ने, सुग्रीव राजा के पुत्र भगवान पुष्पदन्त ने, दृढ़रथ राजा के पुत्र श्री शीतलनाथ तीर्थंकर ने, विष्णुनरेन्द्र के पुत्र भगवान श्रेयांसनाथ ने, वसुपूज्य राजा के पुत्र भगवान वासु पूज्य ने, राजा कृतवर्मा के पुत्र भगवान विमलनाथ ने, श्री सिंहसेन के पुत्र भगवान अनन्तनाथ ने, भानु राजा के आत्मज श्री धर्मनाथ तीर्थंकर ने राजा विश्वसेन के पुत्र भगवान शान्तिनाथ ने, सूर्यसेन राजा के पुत्र भगवान कुन्थुनाथ ने, राजा सुदर्शन के पुत्र भगवान अरनाथ ने, राजा कुम्भ के पुत्र भगवान मल्लिनाथ ने, राजा सुमित्र के पुत्र श्री मुनि सुव्रत नाथ तीर्थंकर ने, विजय नरेन्द्र के पुत्र भगवान नमिनाथ ने, रजा समुद्र विजय के पुत्र भगवान नेमिनाथ ने, श्री अश्वसेन राजा के पुत्र भगवान पार्श्वनाथ ने और राजा सिद्धार्थ के पुत्र भगवान महावीर ने अर्हन्त पद पाकर उसी आयुर्वेद का उपदेश समवशरण द्वारा भूवलय (भूमण्डल) में अपनी दिव्यध्वनि द्वारा दिया इस प्रकार इसको पितृ कुल भूवलय कहते हैं।२०३ से २२० तक।

पितृकुल परम्परा से चले आये प्राणावाय आयुर्वेद से गर्भित भूवलय का स्वाध्याय करनेवाले व्यक्ति अपना शरीर निरोग करके परमार्थ की सिद्धि कर

लेते हैं। कर्म अहिंसा द्वारा सम्पन्न किये हुए रस का शरीर पर लेप करने से शरीर लोहे के समान दृढ़ हो जाता है। यदि उस रसमणि का लोहे से स्पर्श किया जावे तो लोहा सुवर्ण बन जाता है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि रसमणि के सिद्ध हो जाने के समान आध्यात्मिक सिद्धि हो जाने पर आत्मा अजर-अमर बन जाता है।२२१।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि 'इसलिए अज्ञानी लोगों ने जो जीवों की हिंसा द्वारा औषधि तैयार करने का आयुर्वेद बताया है उसको त्यागकर अज्ञान का परिहार करना चाहिए।२२२।

पाप और पुण्य का विवेचन अच्छी तरह जानकर हिंसामय पाप मार्ग का त्याग करके अर्हन्त भगवान द्वारा उपदिष्ट भूवलय के अनुसार अहिंसा मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।२२३।

सत्यदेव गुरु शास्त्र ही इस जगत में शरण हैं ऐसी अटल श्रद्धा के साथ यदि आयुर्वेद को सीखना चाहोगे तो हम तुमको शीघ्र पुष्प आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करा देंगे और तुम्हें उस आयुर्वेद द्वारा नवीन जन्म प्राप्त के समान कर देंगे।२२५।

श्री पूज्य पाद आचार्य कहते हैं कि भारत देश को जनता को अहिंसा मय पुष्पायुर्वेद सुनने का सौभाग्य मिला और मुझे जनता को आयुर्वेद सुनाने का सौभाग्य पाप्त हुआ है।२२६-२२७।

इस प्रकार जिन २४ तीर्थंकरों को पितृपरम्परा से आयुर्वेद चला आया है उन तीर्थङ्करों की मातृ परम्परा को अब बतलाते हैं। भगवान ऋषभनाथ की माता मरुदेवी, अजितनाथ को माता विजया, शम्भवनाथ की माता सुषेणा, अभिनन्दन की माता सिद्धार्था, सुमतिनाथ की माता पृथिवी, चन्द्रप्रभ की माता लक्ष्मणा, पुष्पदन्त की माता रामा, शीतलनाथ की माता नन्दा, श्रेयांसनाथ की माता वेणुदेवी, वासुपूज्य की माता विजया, विमलनाथ को माता जयश्यामा, अनन्तनाथ की माता सर्वयशा, धर्मनाथ की माता सुव्रत, शांतिनाथ की माता ऐरा, कुन्थुनाथ की माता लक्ष्मीमती (श्रीमती), अरहन्तनाथ की माता मित्रा, मल्लिनाथ की माता प्रभावती, मुनिसुव्रतनाथ की माता पद्मा, नमिनाथ की माता वप्रिला, नेमिनाथ की माता शिवादेवी, पार्श्वनाथ की माता वर्मिला (वामा) और भगवान महावीर की माता प्रियकारिणी है।२४७।

श्री पूज्यपाद आचार्य ने आयुर्वैदिक ग्रन्थ कल्याणकारक द्वारा सिद्ध रसायन को काव्य निबद्ध किया, उसी को मैंने (श्री कुमुदेन्दु ने) भूवलय के रूप में अंक निबद्ध करके रोगमुक्ति का द्वार खोल दिया।२४८।

यह सिद्ध रस काव्य मंगलमय रस को दिलानेवाला है। निसन्देह यह भूवलय अर्हन्त भगवान का उपदिष्ट आगम है, इसको सुनो और हिंसा मार्ग (जीव हिंसा से औषध निर्माण) को त्याग दो।२४९।२५०।

मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक भगवान के उपदिष्ट पुष्प आयुर्वेद को १८ हजार श्लोकों में रचना करके भूवलय में गर्भित किया है। १८००० में से तीन शून्यों को हटाकर शेष रहे '१८' (१+८=९) को नवमांक में लाने पर उसे मन वचन काय रूप तीन के साथ गुणा करने पर (९×३=२७) २७ अंक प्रमाण यह भूवलय ग्रन्थ है।२५१।

२७ अंकों में गर्भित इस भूवलय ग्रन्थ को मैं मनवचन काय की त्रिकरण शुद्धि पूर्वक भक्ति से नमस्कार करता हूं। चिरकालीन परम्परा से से चले आये हुए इस भूवलय ग्रन्थ को शुद्ध मन से बार-बार नमस्कार करता हूं।२५२।

कितने आश्चर्य की बात है कि चरक ऋषि प्रणीत हिंसामय आयुर्वेद का बुद्धिमान राजा अमोघ वर्ष की राजसभा में भगवान जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट अहिंसामय आयुर्वेद द्वारा परिहार करा दिया।२५३।

शिवपार्वतीश गणित द्वारा कहा गया वंद्य भूमिका विवरण तथा उसका समन्वय का अन्तर का एक, नौ अंक तथा तीन, पांच एक (३-५-१) अक्षर नाम का यह भूवलय ग्रन्थ है।

जैसे नौ ९-छोटे अंक ३+५+१=९ पुनः १०२६ आनेवाली अंक विद्या यह 'लु' अक्षर श्री सिद्धि भगवान द्वारा चढ़कर प्राप्त किया हुआ चौदह गुण स्थान नामक अरहन्त भगवान की परम्परा से चला आया हुआ ,लु' शब्द है।२५४-२५५।

समस्त 'लु' अक्षरांक १०, २०६+समस्त अक्षरांक १५, ३९०+समस्त अन्तरान्तर १, ८२७=२७, ४२३ अथवा अ–लु २, ७९, ७११+'लु'

२७, ४२३=३०, ७, ९३४

इति चौदहवां 'लु' अध्याय

43 1 4 4 43 1 1 1 45 1 45 1 1 1 1 59 59 1 56 1 55 1 22 4 4 51 45
42 42 42 43 47 53 52 4 1 1 53 43 54 43 1 1 42 28 54 1 42 47 59 30 16 13 1
24 1 54 1 8 7 13 7 3 4 1 56 1 47 54 1 28 13 56 3 1 1 3 30 18 1 4
42 1 47 51 54 1 54 35 58 54 3 7 1 16 54 1 18 47 42 52 1 53 1 56 47 56 9
43 1 1 1 53 1 54 28 54 60 54 48 45 54 53 7 1 56 54 45 43 47 1 1 60 51 1
52 43 56 16 53 1 7 1 48 1 58 1 1 16 54 59 7 1 3 7 1 53 52 7 7 45 1
43 1 57 1 56 55 56 7 43 7 48 56 13 1 13 42 52 54 13 53 1 7 54 1 7 56 54
1 3 57 1 1 16 30 3 4 59 45 1 56 22 1 1 1 48 56 55 54 1 53 59 18 1 1
45 4 54 53 53 4 30 56 47 4 60 1 45 48 52 46 1 1 1 1 45 1 56 54 35 30 9
56 54 1 7 45 54 1 43 47 1 42 4 52 3 45 4 56 4 54 4 4 3 1 54 16 48 45
1 42 30 47 43 47 1 1 1 55 1 43 4 30 1 47 1 56 56 41 53 5 1 45 1 40 1
1 4 43 1 1 53 52 43 46 54 59 31 1 54 30 1 57 4 40 53 30 28 1 42 1 1 1
55 1 1 53 4 7 54 1 33 59 1 47 57 1 47 47 6 46 3 54 52 45 1 58 45 54 1
54 30 54 55 54 57 48 54 1 1 56 1 54 (1) 1 4 55 1 1 1 7 30 7 1 56 60 54
47 17 1 1 7 48 1 45 53 60 3 54 1 45 47 53 1 54 45 1 1 45 47 4 4 4 56
28 56 56 38 1 47 1 54 1 1 28 1 46 45 7 1 61 45 53 55 1 1 56 45 56 3 1
54 1 38 54 1 30 43 51 16 59 4 13 2 43 1 43 60 4 7 1 57 24 7 1 7 42 1
45 4 1 51 48 16 4 30 24 7 38 47 16 47 4 45 1 46 52 7 42 52 56 47 1 59 1
1 45 3 52 16 16 56 1 1 53 59 1 1 1 54 18 55 54 46 1 54 3 4 47 56 45 56
1 60 4 56 13 1 47 30 13 3 56 60 1 1 45 4 24 16 42 6 53 3 1 1 1 53 4
4 39 1 1 47 1 1 38 42 1 1 47 56 1 13 48 4 60 42 3 55 45 47 30 1 47 1
54 47 16 4 59 53 54 1 43 55 1 57 43 22 4 59 52 45 54 55 35 9 3 47 1 30 1
4 53 35 1 1 1 48 3 54 28 1 54 45 56 1 18 4 6 16 16 37 56 4 59 43 45 7
4 1 52 47 45 1 54 1 42 56 1 1 18 47 56 54 47 7 43 1 1 56 59 1 1 28 45
4 52 54 13 30 3 30 42 42 52 47 45 1 1 48 4 54 7 46 47 1 4 53 3 4 4 47
1 7 18 47 53 47 1 17 42 1 1 52 47 16 47 1 59 4 55 60 42 4 53 56 43 1 54
45 48 1 54 1 30 45 3 53 45 16 1 13 42 54 4 56 55 4 3 42 3 30 47 45 1 1

1 53 4 28 1 47 13 48 60 45 40 52 45 47 4 59 1 1 1 45 60 1 1 45 42 48 13
52 42 3 58 1 22 1 47 44 1 1 1 1 54 4 54 44 1 1 4 54 13 1 1 52 59 45
16 28 54 40 45 54 1 7 1 59 45 52 1 52 1 59 54 54 59 1 56 58 54 4 1 1 54
125 124 126
47 16 1 1 1 13 54 59 30 24 1 33 54 34 1 52 1 1 30 1 4 24 47 54 16 1 4
128
52 53 30 43 1 43 4 1 1 13 13 4 78 56 1 53 30 30 45 43 52 4 1 8 56 13 52
122 88 127 41 130 129
52 24 1 30 1 45 13 45 1 24 47 47 1 56 56 54 4 1 7 1 56 59 4 1 1 4 1
43 54 1 45 1 22 4 56 1 7 1 54 1 1 1 42 30 53 4 1 54 55 52 54 45 54 54
131
1 40 1 30 1 59 1 59 16 45 1 54 54 7 1 1 16 45 54 1 9 52 54 1 3 52 45
123 87 132
★ ★★ ★
7 4 47 18 4 1 51 7 56 55 4 59 7 43 1 1 52 1 1 54 3 3 1 54 53 48 7
134
56 1 4 52 54 1 30 4 54 1 1 45 3 30 1 45 1 55 1 56 45 28 34 1 4 60 56
121
45 59 1 1 47 1 43 30 13 28 56 59 1 6 53 1 52 1 1 1 47 1 57 54 1 54 46
82 138
16 54 1 1 47 1 4 1 7 1 1 48 1 54 1 47 3 6 60 1 1 4 1 52 1 1 54
1 47 31 18 53 45 59 45 54 53 57 3 60 (1) 52 43 43 57 45 53 43 59 7 56 24 1 24
1 54 59 1 3 4 4 16 48 4 3 56 1 42 7 7 4 1 4 45 4 56 1 42 48 1 4
184 185
1 1 54 51 33 55 50 13 53 57 42 16 45 4 47 56 47 47 7 46 1 45 18 54 30 59 46
1 1 1 1 55 1 1 3 46 3 52 3 55 1 52 4 1 7 59 53 1 59 1 44 4 45 50
118
46 58 54 16 54 30 59 7 42 54 4 54 1 36 30 3 56 35 4 54 1 56 42 13 4 1 1
6
★★ ★ ★
1 1 1 54 43 1 16 3 1 1 54 54 56 4 45 55 59 3 7 24 59 1 1 24 44 1 1
189
45 53 1 54 59 47 54 45 56 1 1 1 7 1 1 4 42 57 46 1 43 59 60 4 54 52 59
138
56 60 1 1 47 1 1 1 1 45 55 59 45 56 40 3 45 59 54 27 16 5 52 1 1 3 1
119
1 57 1 1 45 43 56 54 4 55 7 1 1 16 56 1 1 1 46 54 47 3 30 54 31 53 1
6 53 60 1 7 45 60 45 52 47 54 42 28 7 40 53 30 16 43 1 43 3 1 47 42 47 1
120
4 1 30 54 1 4 1 1 7 1 47 52 47 3 6 24 47 1 46 53 59 30 1 1 24 47 1
140 137
40 47 57 54 30 57 45 45 42 4 4 16 56 56 1 1 1 1 1 1 47 59 52 1 1 54 45
4 16 3 3 1 1 47 1 1 56 45 1 3 57 53 1 3 59 1 1 1 1 54 52 1 4 54
53 43 56 53 58 1 54 54 57 7 56 56 3 1 47 1 18 7 54 54 53 7 35 56 59 1 43

2-1-7

जैन सिद्धान्त श्री

भूवलय श्रुतावतार

45	33	6	7	★ 1	13	37	4	30	54	40	54	4	★ 1	1	55	56	59	56	6	55	1	16	60	1	54	51
24	42	59	7	1	35	59	47	1	7	1	43	54	30	1	7	7	7	37	1	53	1	4	57	4	1	9
4	16	54	28	1	4	3	45	159 30	45	48	24	4	45	42	47	163 48	60	56	6	48	54	1	54	28	4	1
160 56	1	59	45	42	57	47	1	43	3	60	4	1	7	1	1	3	164 18	42	165 16	54	56	166 16	47	33	54	9
52	1	7	7	1	1	54	43	1	161 1	13	55	4	56	47	1	30	54	30	4	7	30	1	167 1	45	51	1
45	56	54	45	43	56	7	47	1	1	54	43	1	47	56	54	48	47	59	30	13	56	53	47	1	52	1
1	3	3	4	4	59	47	56	152 4	6	6	47	3	1	1	1	47	30	16	1	7	1	16	1	1	52	4
158 1	56	54	54	1	3	18	59	47	54	47	59	56	57	47	3	7	4	59	54	55	4	53	168 54	1	54	28
45	4	1	54	54	45	4	3	45	1	1	1	7	53	59	54	55	162 1	4	1	56	1	56	47	1	47	4
51	52	59	1	★★ 40	4	1	1	45	7	16	54	1	40	9	56	54	16	1	1	7	54	★ 3	16	52	1	1
1	4	30	43	54	52	54	1	1	144 56	1	43	54	1	22	54	1	45	53	59	1	53	45	1	43	52	53
55	155 3	1	18	1	1	28	33	43	1	48	2	43	52	1	57	43	56	1	52	59	1	59	47	1	42	1
52	30	45	59	42	47	54	4	53	45	4	54	1	54	7	7	47	5	1	1	3	4	1	57	7	42	54
47	1	1	4	3	4	1	1	7	1	13	1	45	(1)	57	45	1	48	28	52	52	53	7	45	1	1	45
45	54	43	154 53	56	46	57	55	1	48	ł	56	1	55	4	46	143 55	43	1	48	1	56	52	28	60	1	47
59	7	42	4	1	4	1	45	47	1	56	1	141 45	4	59	1	24	4	7	49	1	1	1	53	54	1	42
1	7	52	156 30	54	59	54	1	1	43	1	56	1	54	24	142 54	54	54	45	28	43	46	4	3	1	1	48
48	9	3	1	46	1	47	56	54	7	54	52	2	54	1	59	2	16	7	47	47	56	1	45	48	1	52
1	7	7	56	★ 45	1	52	45	4	61	42	54	30	53	53	28	53	46	28	9	56	33	★★ 56	1	51	56	45
54	53	152 1	45	35	1	150 1	54	151 43	7	4	1	56	55	24	55	4	3	4	1	9	59	56	1	1	1	16
4	42	4	1	59	53	4	38	4	47	45	9	1	55	1	59	28	54	56	18	1	4	52	54	57	52	59
7	54	4	3	16	30	22	38	54	1	51	1	54	56	45	1	1	45	60	30	28	1	43	1	1	4	4
18	47	56	54	1	28	1	4	30	45	55	146 47	9	4	53	148 43	52	54	30	1	54	24	53	53	52	53	47
1	1	1	58	4	28	30	1	1	9	38	51	59	1	47	4	3	54	30	33	30	1	1	1	4	1	1
54	40	7	59	47	54	59	28	149 54	58	7	4	55	1	57	60	1	52	5	1	45	38	59	4	56	51	30
52	47	4	1	18	1	24	1	1	46	54	56	53	17	1	50	1	1	30	55	47	1	53	47	52	1	42
3	54	56	43	1	55	47	53	16	1	28	16	45	54	149 1	45	45	147 1	16	1	33	1	3	4	52	169 1	1

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

	1	30	45	52	43	54	4	34	3		54	56	45	1	4	56	53	37	60		47	46	1	30	1	50	50	43	45	
	37	4	1	43	3	54	33	29	42		7	37	54	52	1	1	3	1	3		24	30	37	7	3	1	43	1	1	
	24	53	1	43	30	1	28	1	1		24	1	1	43	30	28	56	53	48		37	1	28	55	42	7	35	53	59	
	2	28	37	1	48	1	44	59	53		59	54	1	3	1	3	4	1	51		28	1	1	1	18	37	4	24	1	
	1	56	30	4	56	43	4	4	42		1	43	54	45	42	30	4	3	7		30	54	53	60	47	54	59	52	52	
	3	1	48	1	1	53	54	37	53		4	1	1	18	37	54	53	42	48		4	1	1	1	4	1	7	1	37	
	34	48	30	59	3	1	1	1	56		56	54	42	1	4	3	3	53	30		30	45	49	53	30	45	42	1	43	
	56	37	7	52	54	59	61	52	1		1	1	52	3	53	54	4	37	52		48	48	3	37	3	6	30	4	37	
	1	56	1	4	2	1	1	53	3		52	4	56	1	42	54	4	1	30		7	43	1	55	1	52	46	1	4	
	42	45	3	30	30	1	56	1	55		1	50	1	55	4	52	51	9	43		43	53	47	52	34	1	45	1	59	
	9	42	37	56	45	1	52	1	1		59	51	9	53	1	29	1	56	1		4	60	1	28	54	1	42	52	7	
	4	1	45	3	42	1	37	1	18		1	1	48	1	42	1	52	1	50		54	42	1	3	30	1	1	45	55	
	59	16	42	37	54	1	43	60	54		54	53	52	1	43	1	1	30	1		1	59	60	37	56	38	1	1	1	
	40	7	7	28	52	43	45	48	1		1	1	1	33	(43)	54	60	1	55		52	52	3	9	38	60	1	24	30	
	30	4	1	1	4	1	1	52	4		56	28	43	9	4	24	1	53	4		1	48	54	1	3	42	52	37	1	
	46	53	37	52	30	52	3	4	37		7	1	47	1	45	45	54	1	52		6	1	30	52	1	42	43	42	42	
	16	9	4	37	1	42	40	3	45		13	54	45	47	18	33	3	57	56		1	37	1	37	3	52	42	3	55	
	51	4	3	52	1	7	57	54	45		22	45	1	28	47	1	45	1	1		17	43	1	43	24	1	42	1	45	
	1	55	1	3	45	1	42	52	1		56	1	1	59	57	1	54	56	52		10	37	59	1	59	42	60	24	37	
	18	43	45	56	52	3	1	40	48		54	37	1	56	59	5	52	52	1		1	4	30	43	16	3	45	7	30	
	7	47	1	4	42	47	7	4	52		52	53	1	3	54	4	1	1	1		45	37	52	37	59	24	59	54	52	
	1	53	1	1	1	60	43	3	54		1	59	59	57	55	56	48	59	1		1	1	42	5	52	52	3	4	3	
	4	37	45	40	3	47	45	57	54		18	7	1	1	1	1	41	56	57		42	4	42	1	1	43	56	37	51	
	4	52	1	48	1	4	1	3	56		40	53	50	53	60	40	3	4	28		43	37	42	52	43	52	1	1	3	
	7	52	1	54	37	56	43	1	45		9	1	1	1	1	45	43	3	47		59	1	1	1	1	30	43		24	
	37	55	1	4	1	1	47	1	30		42	60	57	56	1	1	56	1	51		42	46	33	39	37	1	45	52	52	
	1	59	16	45	37	4	55	1	1		4	1	52	55	7	1	48	4	4		4	4	30	1	52	4	1	9	42	

SARWARTHA SIDDHI SANGHA, BANGALORE-DELHI.